जय

महाभारत

का सचित्र पुनर्कथन

अंग्रेज़ी में 100,000 प्रतियां बिक चुकी हैं

देवदत्त पटनायक

हिंदू आख्यानों के सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक
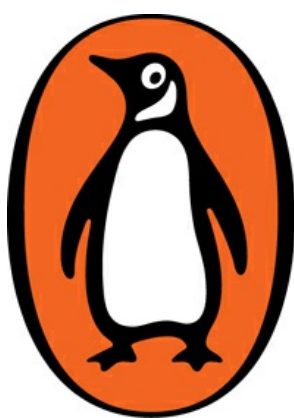
देवदत्त पटनायक

जय

महाभारत का सचित्र पुनर्कथन

अनुवाद
अनंत मित्तल

अंतर्वस्तु

पेंगुइन बुक्स

जय

डॉक्टर देवदत्त पटनायक ने मेडिकल साइंस में शिक्षा-दीक्षा हासिल की है। हालांकि पेशे से वो मार्केटिंग मैनेजर हैं और रुचि से पौराणिक कथाकार। आपने मुंबई यूनिवर्सिटी में तुलनात्मक मिथोलॉजी के कोर्स में सर्वश्रेष्ठ स्थान हासिल किया। आधुनिक भारत में धार्मिक कथाओं, चिह्नों और विधि विधानों पर व्याख्यान देने के लिए आप चर्चित हैं। डॉक्टर पटनायक की कुछ किताबें ये हैं- *शिवा : ऐन इंट्रोडक्शन* (वीएफएस, इंडिया), *विष्णु : ऐन इंट्रोडक्शन* (वीएफएस, इंडिया), *देवी : ऐन इंट्रोडक्शन* (वीएफएस इंडिया), हनुमान: ऐन इंट्रोडक्शन (वीएफएस, इंडिया), *लक्ष्मी : ऐन इंट्रोडक्शन* (वीएफएस इंडिया), *कृष्णा : ऐन इंट्रोडक्शन* (वीएफएस इंडिया), *शिव टू शंकर : डिकोडिंग द फैलिक सिंबल* (इंडस सोर्स, इंडिया), *गॉडेज इन इंडिया* (इनर ट्रेडीशंस, यूएसए), *मैन हू वाज ए वूमन एंड अदर क्वीयर टेल्स फ्रॉम हिंदू लोर* (हैरिंग्टन प्रेस, यूएसए) और *इंडियन मिथोलॉजी : स्टोरीज, सिंबल्स एंड रिटुअल्स फ्रॉम द हर्ट ऑफ द सबकंटीनेंट* (इनर ट्रेडीशंस, यूएसए)। काली पर लिखी किताब *द बुक ऑफ काली* (पेंगुइन, इंडिया) उनके व्याख्यानों पर आधारित है।

अनंत मित्तल तीन दशकों से पत्रकार, लेखक और अनुवादक के बतौर काम कर रहे हैं। उन्होंने *जनसत्ता* में एक दशक से अधिक समय तक बतौर पत्रकार काम करने के अलावा *नवभारत टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया, इकोनॉमिक टाइम्स* और अन्य समाचार पत्रों, टीवी चैनलों और एफएम रेडियो में भी अलग अलग समय में काम किया है। इसके अलावा अनंत प्रमुख राष्ट्रीय अखबारों और पत्रिकाओं में सामाजिक और आर्थिक मुद्दों पर नियमित तौर पर लिखते हैं।

पेंगुइन द्वारा हिंदी में प्रकाशित डॉ. देवदत्त पटनायक की अन्य पुस्तकें

मिथक
सीता

मैं यह पुस्तक प्राचीन और आधुनिक काल के उन सभी विद्वानों, लेखकों, अभिलेखकर्मियों, नाटककारों, फिल्मकारों और कथावाचकों को समर्पित करता हूं, जिन्होंने इस भव्य और प्राचीन महागाथा को अपने गीतों, नृत्यों, कहानोयों, नाटकों, उपन्यासों, प्रदर्शनों, फिल्मों और टीवी सीरियलों के जरिए पिछले 3000 बरसों से जीवंत बनाए रखने की दिशा में काम किया है।

अनुवादक के सुझाव

आख्यानों की कहानियां कहने और समझने का यह नया और अपनी तरह का अनूठा प्रयास है। इसके अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद के दौरान यह बात बहुत साफ तौर से समझ में आती है कि इन दोनों भाषाओं की दुनिया किस कदर अलग-अलग तरीके से सोचती है और यह भी कि हम हिंदी बोलते हुए भी अंग्रेजी में सोचने के आदी बन गए हैं। इसलिए यह किताब पाठकों से पढ़ते और समझने के लिए धीरज की मांग करती है।

लेखक की टिप्पणी

गणेश ने क्या लिखा
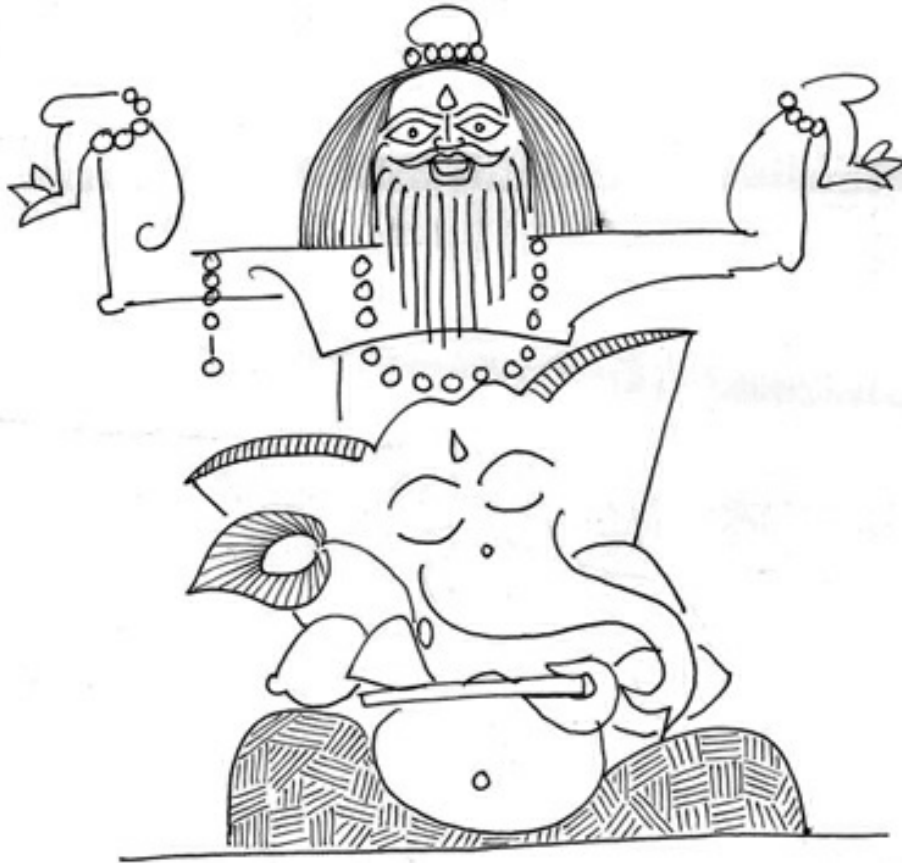
वह शायद ईश्वर की फुसफुसाहट थी अथवा शायद बुद्धिमानों की अंतर्दृष्टि। उनसे दुनिया को अर्थ तथा जीवन को प्रयोजन मिला। इन ऋचाओं से अशांत मानवीय आत्मा की छटपटाहट और वेदना का निवारण हुआ, इसलिए इन्हें सामूहिकता में वेद के रूप में जाना गया। जिन्होंने सबसे पहले इन्हें सुना, वे ऋषियों के रूप में प्रसिद्ध हुए।

वेदों में निहित ज्ञान के आधार पर ऋषियों ने ऐसा समाज बनाया जिसमें हर किसी का स्थान नियत था और जहां हर चीज एक लयात्मक नियमितता के साथ परिवर्तित होती थी। ब्राह्मण समाज के शिक्षक थे, क्षत्रिय उसके संरक्षक, वैश्य आपूर्तिकर्ता तथा शूद्र उसके सेवक थे।

वेद की कृपा से समाज में हर किसी को यह भान था कि जैसा जीवन वे जी रहे हैं वैसा ही जीवन अनेक अन्य लोगों का भी है। अन्य जन्मों में, अतीत अथवा वर्तमान में, इस जीवन में जो शूद्र है वह वैश्य होगा और क्षत्रिय शायद ब्राह्मण होगा अथवा पत्थर, पौधा अथवा जानवर होगा या शायद कोई देवता अथवा राक्षस होगा। इस प्रकार सबके बीच अंतर्संबंध था और सब कुछ चक्रीय था। इस संभावनापूर्ण निरंतर परिवर्तनीय विश्व में तब अस्तित्व का अर्थ कामना अथवा उपलब्धि पाना नहीं था बल्कि आत्मनिरीक्षण करना था।

तब उसके बाद सूखा पड़ा, बेहद क्रूर, चौदह वर्ष लंबा सूखा, जब सरस्वती नदी सूख गई, समाज ध्वस्त हो गया तथा वेद भी जनस्मृति से ओझल हो गए। अंततः वर्षा चक्र के लौटने पर, विवाहेतर संबंध के फलस्वरूप पैदा हुए मछुआरन के पुत्र ने पूरी तरह तितर-बितर ऋचाओं को फिर से संग्रहित करने का जिम्मा उठाया। उनका नाम था कृष्ण द्वैपायन। जिसका अर्थ है नदी द्वीप पर पैदा हुआ श्यामवर्णीय बच्चा। उनके पिता का नाम पराशर था, महर्षि वशिष्ठ के पौत्र। वशिष्ठ वेदों का सबसे पहले श्रवण करने वाले सप्तऋषियों में शामिल थे। समय बीतने पर कृष्ण द्वैपायन, वेदव्यास अर्थात प्रबुद्ध ग्रंथों के संकलनकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हुए।

व्यास ने ऋचाओं का वर्गीकरण करके वेदों के चार संग्रह सृजित किए–ऋग, यजुर, साम तथा अथर्व। इस महती कार्य को पूर्ण करने पर व्यास को अचानक ऐसी महागाथा लिखने की उत्कंठा हुई जिससे दुनिया के दूरदराज क्षेत्रों तक भी आमजनों तक गूढ़तम वैदिक सत्य अत्यंत ठोस रूप में पहुंच जाए। देवताओं को यह विचार पसंद आया और उन्होंने हाथी के सिर वाले गणेश को लेखक बनाकर भेज दिया।

गणेश ने कहा, 'आपको बिना रुके, निरंतर कथा सुनानी होगी।' इससे व्यास जो भी संभाषण करेंगे उसमें मानवीय पूर्वाग्रह नहीं घुस पाएंगे।

व्यास ने कहा, 'मैं ऐसा ही करूंगा लेकिन तुम्हें भी यह ध्यान रखना होगा कि तुम बिना अर्थ समझे कुछ भी नहीं लिखोगे।' इससे कम से कम यह बात पक्की हो गई कि जो कुछ भी लिखा जाएगा वो देवताओं के अनुकूल होगा।

व्यास की गाथा के सभी चरित्र उनसे परिचित लोगों के ही थे। खलनायक, कौरव तो दरअसल उनके अपने ही पौत्र थे।

व्यास ने अपनी गाथा को शीर्षक दिया–जय इसमें साठ भाग थे। उनमें से मात्र एक भाग व्यास के शिष्य वैशंपायन के माध्यम से मनुष्यों तक पहुंच पाया। इस प्रकार यथार्थ में किसी को यह

पता ही नहीं कि दरअसल व्यास ने क्या कथा सुनाई और गणेश ने क्या लिखा?

वैशंपायन ने व्यास की महागाथा पांडव अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय के यज्ञ के दौरान सुनाई थी। उसे रोमहर्षणा नामक सौती ने सुन लिया और अपने पुत्र उग्रश्रवा को सुनाया जिन्होंने नैमिष वन में ऋषि शौनक तथा अन्य ऋषियों के सामने इसका वर्णन किया।

व्यास ने यह गाथा अपने तोते के सिर वाले पुत्र शुक को भी सुनाई जिन्होंने उसे जनमेजय के पिता राजा परीक्षित को तब सुनाया जब वे मृत्युशैया पर थे ताकि इसका श्रवण करके वे शांतिपूर्वक अपनी देह त्याग सकें।

व्यास के एक अन्य शिष्य जैमिनी ने भी अपने गुरु की महागाथा सुनी थी। लेकिन वो दिग्भ्रमित थे। चूंकि उनकी शंकाओं के समाधान के लिए व्यास उपलब्ध नहीं थे इसलिए जैमिनी ने मार्कंडेय ऋषि से संपर्क करने का निश्चय किया। मार्कंडेय ऋषि को दीर्घजीवन का वरदान प्राप्त था और उन्होंने वह घटनाएं प्रत्यक्ष देखी थीं जिनसे प्रेरित होकर व्यास ने गाथा कही थी। दुर्भाग्यवश जैमिनी जब मार्कंडेय ऋषि को ढूंढ़ने में सफल हुए तब तक ऋषि ने दुनिया को त्यागने के अपने निर्णय के अनुरूप मौन व्रत धारण कर लिया था। मार्कंडेय के शिष्यों ने तब जैमिनी को उन चार पक्षियों के पास भेजा जिन्होंने कुरुक्षेत्र में महाभारत प्रत्यक्ष देखा था। इन पक्षियों की मां तब युद्धक्षेत्र के ऊपर उड़ान भर रही थी कि अचानक उसे एक तीर आकर लगा और उसका गर्भाशय फट गया। उसमें से चार अंडे निकलकर जमीन पर गिर गए। युद्धभूमि रक्त से भीगी होने के कारण नरम थी। इस वजह से अंडे साबुत रह गए। युद्ध में शामिल किसी हाथी का घंटा उनके ऊपर गिरा और वे युद्ध के दौरान उसके नीचे सुरक्षित रहे। युद्ध के बाद जब उनके वहां होने का पता चला तो ऋषियों ने सोचा कि पक्षियों को युद्ध की तमाम बातें सुनाई पड़ी होंगी और उन्हें, उसके बारे में, मनुष्यों से भी अधिक जानकारी होगी। उनका दृष्टिकोण तथा गहन जानकारी अनूठी होगी। इसलिए उन्हें मनुष्यों जैसी आवाज का उपहार दिया गया। इस वरदान के बाद यह पक्षी मनुष्यों के समान बोलकर जैमिनी की शंकाओं का समाधान कर पाए। उन्होंने जैमिनी को अनेक ऐसे किस्से भी सुनाए जिनकी जानकारी अन्य किसी को भी नहीं थी।

व्यास की गाथा एक कथाकार से दूसरे कथाकार तक जैसे-जैसे पहुंची वैसे-वैसे उसमें नए

दृष्टांत जुड़ते गए, पूर्वजों और वंशजों के किस्से, शिक्षकों और शिष्यों के, मित्रों तथा शत्रुओं के प्रसंग भी जुड़ गए।

इस प्रकार छोटे से पौधे से बढ़ते-बढ़ते यह कहानी वटवृक्ष की तरह असंख्य शाखाओं वाली महागाथा बन गई। आरंभ में इसका आधार विचार मात्र था। उसके बाद विचार बदला और इसका नाम विजय पड़ गया। शीघ्र ही यह विचार के बजाय व्यक्तियों के बारे में अधिक प्रचलित हुई। इसका नया नाम भारत पड़ा अर्थात भरत के वंशजों तथा उनके द्वारा शासित क्षेत्र की कहानी।

इस प्रकार इसका विस्तार होता रहा। वंशजों, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा तत्वमीमांसा से संबंधित विस्तृत वार्तालाप जुड़ते गए। भारत में अठारह अध्याय और एक लाख से अधिक ऋचाएं जमा हो गईं। कृष्ण के आरंभिक वर्षों की कथा हरिवंश को भी संलग्नक के रूप में जोड़ दिया गया। इस प्रकार भारत अंततः महाभारत का आकार ले पाया, भारतीय लोगों की 'महान' गाथा।

शताब्दियों के दौरान महाभारत को लाखों बार सुनाया गया, मंदिरों के प्रांगणों और गांवों के मेलों में, विभिन्न भाषाओं में, विभिन्न रूपों में, नर्तकों, गायकों, चित्रकारों, घुमंतू गवैयों तथा विद्वान-मनीषियों द्वारा। उत्तर में नेपाल से लेकर दक्षिण में इंडोनेशिया तक, जैसे-जैसे यह महागाथा फैलती गई पुरानी कथावस्तु बदलती गई और नए चरित्र उभर आए। उसमें अर्जुन के पुत्र इरावण के रूप में एक चरित्र था जिसे इरावत अथवा अरावण भी कहा जाता है उसकी तमिलनाडु के किन्नर अलीयों अथवा अरावणियों द्वारा पूजा की जाती थी और भीम का पुत्र बर्बरीक भी, जिसे राजस्थान में खाटू श्यामजी के रूप में पूजा जाता है। बंगाल में प्रचलित महाभारत में एक ऐसा किस्सा है जिसके अनुसार अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात द्रौपदी ने स्त्रियों को इकट्ठा करके सेना बनाई और कौरवों का सफाया कर दिया। केरल के थैयम नर्तक यह गाते हैं कि कौरवों ने किस प्रकार पांडवों के विरुद्ध तंत्र-मंत्र करने के लिए किसी तांत्रिक को मजबूर किया और उसे तांत्रिक की पत्नी ने निष्प्रभावी कर दिया।

बीसवीं सदी में इस महागाथा ने आधुनिक मस्तिष्कों पर भी अपना जादू चलाया। इसके नैतिक विरोधाभासों का तार्किक अर्थ दर्शाने के लिए लंबे-लंबे निबंध लिखे गए जबकि इसकी कथावस्तु का प्रयोग उपन्यासकारों, नाटक लेखकों और फिल्म निर्माताओं ने विभिन्न राजनैतिक एवं सामाजिक मुद्दों पर टिप्पणी के लिए ठोस आधार के रूप में किया। इनमें स्त्री विमर्श से लेकर जातिप्रथा तथा युद्ध के प्रभावों तक अनेक विषय शामिल थे। इसमें निहित बौद्धिक पक्ष बहुधा इसके मनोरंजनकारी पक्ष के नीचे दब जाता है, इसकी गूढ़ताओं को सिद्धहस्त प्रस्तुतकर्ता जरूरत से ज्यादा सरल रूप में पेश करके इसके पारंपरिक उपदेशों की महत्ता घटा देते हैं।

इतनी बार दोहराए जाने तथा इतने बड़े स्तर पर लोकप्रियता को देखते हुए कुछ लोगों का कहना है कि महाभारत दरअसल भारत की महान गाथा ही नहीं बल्कि भारत की महानता की गाथा है। इसके पीछे तर्क यह है कि इसमें वह सभी तत्व शामिल हैं जिन्होंने भारतीयों को वर्तमान स्थिति तक पहुंचाया है–सहिष्णु लोग जिनके लिए बाहरी उपलब्धियों के बजाय आंतरिक ज्ञान अधिक महत्वपूर्ण है।

यह पुस्तक उस महान गाथा के पुनर्कथन का और एक विनम्र प्रयास है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथ तथा उसके क्षेत्रीय एवं लोक संस्करणों दोनों से ही प्रेरित यह पुनर्कथन पौराणिक विश्वदृष्टि के संदर्भ में दृढ़तापूर्वक स्थापित है। इसको तर्कसंगत बनाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। इस

गाथा में कुछ कहानियों में सेक्स का विशद वर्णन है और उन्हें बच्चों द्वारा माता-पिता के निर्देशानुसार ही पढ़ा जाना चाहिए। वनगमन (वनपर्व) तथा कृष्णगीत (भगवद्गीता) और भीष्म के उपदेश (शांतिपर्व एवं अनुशासन पर्व) को संक्षिप्त करना पड़ा है।

इसलिए वे मूल से सिर्फ भावनात्मक रूप में मिलते हैं। अश्वमेध पर्व भी जैमिनी के पुनर्कथन पर आधारित है, इसलिए उसमें अधिक ध्यान सैन्य अभियान के बजाए समर्पण के सिद्धांत पर दिया गया है।

मेरे अपने पूर्वाग्रहों तथा आधुनिक पाठकों की आवश्यकताओं के अनुरूप इसे निरंतरता तथा संक्षिप्तता बनाए रखने के लिए पुनर्गठित किया गया है जिसकी जड़ें मेरी इस मान्यता में हैं कि :

अंतहीन रहस्यों के भीतर ही सनातन सत्य छुपा है
इस सबका द्रष्टा कौन है?
वरुण की कम से कम हज़ार आंखें हैं
इंद्र की सैकड़ों
और मेरी मात्र दो

- अधिकतर लोगों की मान्यता है कि गाथा असली युद्ध से प्रेरित है जो घुमंतू चरवाहों के बीच घटित हुआ था, जिनकी जीवन पद्धति वैदिक थी और जो अपने दुधारू पशुओं को आधुनिक दिल्ली के उत्तरी क्षेत्र, शायद हरियाणा राज्य के वर्तमान कुरुक्षेत्र कस्बे में चराया करते थे।
- प्रसिद्ध चालुक्य सम्राट पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल शिलालेख के अनुसार महाभारत युद्ध 3735 साल पहले हुआ था। शिलालेख पर 635 सीई की अवधि गुदी हुई है (जिसे पहले एडी कहते थे) जिससे यह अंदाज लगता है कि युद्ध प्राचीन भारतीयों की मान्यता के अनुसार 3102 बीसीई (सामान्य युग से पहले, जिसे पहले बीसी कहते थे।) में युद्ध हुआ था।
- गाथा में वर्णित गणना के आधार पर–कि तेरह दिन के अंतराल से युद्ध के आसपास दो ग्रहण पड़े थे- कुछ लोगों ने महाभारत की घटनाओं का काल 3000 बीसीई आंका है। अन्य ने इसका आकलन 1500 बीसीई के आसपास किया है। इस विषय में विद्वानों में कभी सहमति नहीं बन पाई।
- ग्रंथों में चौदह वर्षीय सूखे, सरस्वती नदी के सूख जाने तथा वेदों के लुप्त हो जाने का बार-बार जिक्र है। यह शायद वास्तविक घटना थी जिसके कारण 1500 बीसीई में सिंधुघाटी की सभ्यता नष्ट हो गई। इसकी पुष्टि कुछ भूगर्भीय अध्ययनों से भी होती है अथवा यह शायद तात्विक ज्ञान संबंधी घटना है जब वैदिक विचारधारा समूल नष्ट हो गई और मात्र विचार, प्रथाएं एवं रीति-रिवाज ही बाकी रह गए थे।
- महाभारत जब अपने अंतिम रूप में पहुंचा तो भास ने संस्कृत में महाभारत पर नाटक लिखे जिनकी कथावस्तु बहुधा इस गाथा की कथावस्तु से बहुत भिन्न प्रतीत होती है।
- सोलहवीं शताब्दी में मुगल बादशाह अकबर ने महाभारत का फारसी में अनुवाद कराया और उनके दरबारी चित्रकारों ने उन कहानियों को चित्रों के माध्यम से दर्शाया। इसे रज्मनामा अथवा युद्धग्रंथ का नाम दिया गया।
- संस्कृत में लिखित महाभारत में ज्योतिष के बारह स्वरग्रहों अर्थात राशियों का कहीं कोई जिक्र नहीं है। उसमें सिर्फ ज्योतिष के 27 चंद्रग्रहों अर्थात नक्षत्रों का संदर्भ मिलता है। विद्वानों का मत है कि भारत में मूल रूप में नक्षत्र ही प्रचलित थे और राशियां पश्चिम से, शायद बेबिलोन से, आई थीं। भारतीय ज्योतिष में राशियों का प्रयोग 380 ई. के बाद प्रारंभ हुआ। जिससे इस बात की भी पुष्टि होती है कि सदियों तक मौखिक आदान-प्रदान के बाद महाभारत का संस्कृत ग्रंथ 300 सीई. के आसपास पूरा हुआ।

गाथा किसने सुनाई?	**गाथा किसने सुनी?**
व्यास	गणेश, जैमिनी,वैशंपायन,शुक

वैशंपायन	जनमेजय, रोमहर्षणा
रोमहर्षणा	उग्रश्रवा(सौती)
उग्रश्रवा(सौती)	शौनक
शुक	परीक्षित
चार पक्षी	जैमिनी

व्यास की वंश बेल
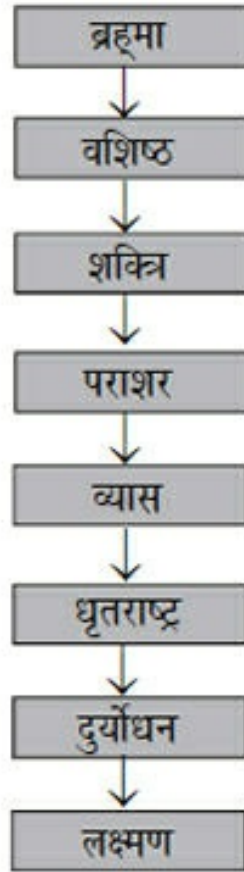
व्यास की गाथा की संरचना
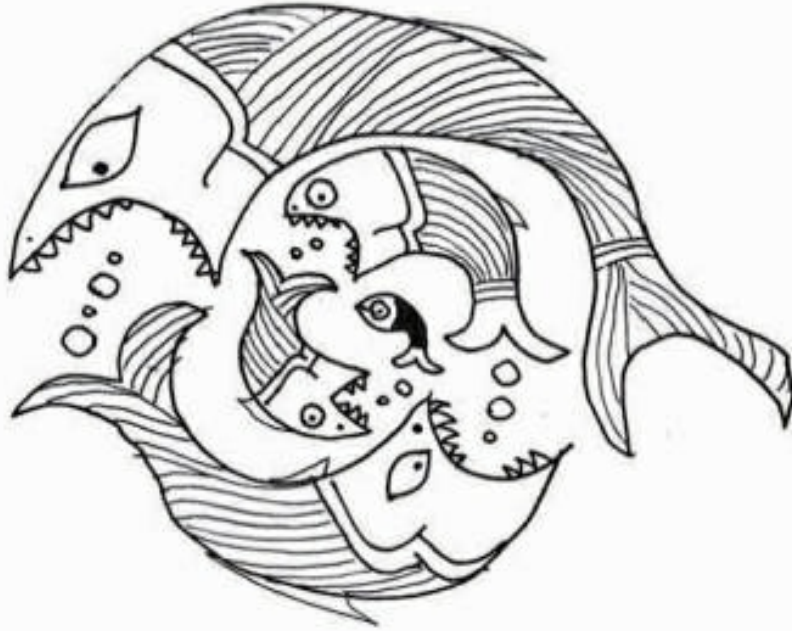
अध्याय अथवा पर्व	मूल शीर्षक	श्लोकों की संख्या	शीर्षक का अर्थ	मूल सामग्री
1	आदि	9984	प्राचीन	इंद्रप्रस्थ में पांडवों का राज्य स्थापित होने तक चरित्रों और कहानियों का परिचय
2	सभा	4311	जमा होना	द्यूतक्रीड़ा जिसमें पांडव अपना सर्वस्व हार जाते हैं।
3	वन	13664	जंगल	12 वर्ष का वनवास
4	विराट	3500	मत्स्यराज	मत्स्य में अज्ञातवास का अंतिम वर्ष
5	उद्योग	6998	प्रयास	शांतिवार्ता
6	भीष्म	5884	प्रथम कौरव सेनापति	पहले दस दिनों का युद्ध, भगवद्गीता सहित
7	द्रोण	10914	द्वितीय कौरव सेनापति	अगले पांच दिनों का युद्ध
8	कर्ण	4900	तृतीय कौरव सेनापति	अगले दो दिनों का युद्ध
9	शल्य	3220	चतुर्थ कौरव सेनापति	अठारहवें दिन का युद्ध
10	सौप्तिका	2870	गफलत	अठारहवीं रात्रि में जनसंहार
11	स्त्री	1775	औरत	विधवा रुदन
12	शांति	14,525	शांति	शांति विमर्श
13	अनुशासन	12,000	अनुशासन	संगठन संबंधी विमर्श
14	अश्वमेध	4402	विजय अभियान	पांडवों के आधिपत्य की स्थापना
15	आश्रम	1106	वानप्रस्थ	बुजुर्गों का वानप्रस्थ
16	मूसल	300	गदा	कृष्ण के वंश का अंत
17	महाप्रस्थानिका	120	संन्यास	पांडवों का संन्यास
18	स्वर्गारोहणिका	200	स्वर्गारोहण	इंद्र के स्वर्ग में पहुंचने पर युधिष्ठिर द्वारा चुनौती
संलग्निका	हरिवंश	16423	हरि का परिवार	हरि (कृष्ण) का आरंभिक जीवन

- महाभारत दरअसल पृथ्वी द्वारा गाय के रूप में अपने भू-संरक्षक गोपालक विष्णु के अवतार गोविंद को की गई शिकायत का परिणाम है। ऐसा विष्णु पुराण में लिखा है। इसलिए यह गाथा अधिक विस्तृत घटनाओं का हिस्सा मात्र है। इसे अकेले नहीं देखा जाना चाहिए।
- महाभारत में इसके वर्तमान रूप में अठारह भाग हैं जिसमें से पहले भाग में पांडवों तथा कौरवों के बीच शत्रुता का संदर्भ स्थापित किया गया है। अगले तीन भागों में युद्ध होने तक की कथा है। उसके बाद छह अन्य भाग हैं जिनमें युद्ध का विस्तृत वर्णन है। उनके बाद आठ अन्य भागों में युद्ध के भावनात्मक, भौतिक तथा आध्यात्मिक परिणामों का वर्णन है।
- जीवन के लिए हिब्रू भाषा के शब्द का अंकीय मूल्य 18 है। इसलिए यहूदियों के बीच दीर्घ जीवन की शुभकामनाओं की अभिव्यक्ति के रूप में 18-18 को जोड़कर ही नगद उपहार दिए जाने की प्रथा बन गई है। चीन की प्रथा के अनुसार संख्या 18 के उच्चारण की ध्वनि समृद्धि को परिलक्षित करने वाले शब्द की ध्वनि से मिलती है। इसके परिणामस्वरूप इमारतों में अठारहवीं मंजिल अत्यंत महंगी मिलती है क्योंकि उसका अर्थ यह लगाया जाता है कि वहां समृद्धि आएगी।
- महागाथा में एक लाख श्लोक हैं जो इसे यूनानी महाग्रंथों इलियड तथा ओडिसी को मिलाकर भी उनसे लंबा बनाते हैं।
- कुल श्लोकों में से एक-तिहाई युद्ध से संबंधित हैं। युद्ध से पूर्व वर्णित श्लोक प्रेम, सेक्स, प्रसूति तथा अन्य लौकिक मुद्दों पर आधारित हैं जबकि युद्ध के बाद के श्लोक उसके अर्थ को समर्पित हैं और उनका रुझान आध्यात्मिकता के प्रति है।
- हिंदू प्रथाओं में पुरुषार्थ अथवा मानवीय अस्तित्व की मान्यता के चार आयाम हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अर्थात सामाजिक व्यवहार, आर्थिक गतिविधियां, दैहिक गतिविधियां एवं आध्यात्मिक गतिविधियां। महाभारत की कहानियों के माध्यम से व्यास द्वारा मानव अस्तित्व के सभी चारों आयामों पर बराबर ध्यान दिया गया है। जिससे यह संपूर्ण ग्रंथ बन पाया है।

पूर्वकथा

नाग यज्ञ का आरंभ

हस्तिनापुरी के राजा परीक्षित कुरुवंश के कुलदीपक थे और उन्होंने, अपने महान साम्राज्य के मध्य में खड़ी ऊंची मीनार में स्वयं को बंद कर लिया था। वह अपनी पत्नियों और अपने बच्चों और अपनी प्रजा से दूर हो गए थे। वे बेहद भयभीत थे। वे लगातार दिन-रात चहलकदमी कर रहे थे और न कुछ खा-पी रहे थे और न ही सो रहे थे। चारणों को उन्हें ऐसे किस्से सुनाने के लिए भेजा गया था जिन्हें सुनकर उनकी आत्मा को शांति मिलती लेकिन उनका भय किसी भी तरह उनका पीछा नहीं छोड़ रहा था।

गलियों में अफवाहों का बाजार गर्म था, 'हमारे राजा के पितामह अर्जुन महान थे जिन्होंने कुरुक्षेत्र में कौरवों को पराजित किया था। उनके पिता अभिमन्यु थे जिन्होंने अकेले दम चक्रव्यूह को भेद दिया था जबकि वह बेहद पेचीदा युद्ध संरचना थी। ऐसे समर्थ पूर्वजों के रहते उन्हें किसी से भी भयभीत होने की क्या जरूरत है? इसके बावजूद वे भयभीत होकर मीनार में बंद हैं? क्यों?'

'मैं सात दिन के भीतर सांप द्वारा काटे जाने से मरने के लिए अभिशप्त हूं।' राजा ने अंततः यह खुलासा किया। 'उन्हें दूर रखो। एक भी लिजलिजा नाग मेरे निकट न आए। मैं मरना नहीं चाहता।' मीनार के प्रत्येक दरवाज़े और खिड़की पर चौकीदार तैनात थे, राजा की दिशा में मुड़ने की हिमाकत करने वाले हरेक सांप को मारने को तैयार। मीनार में आने वाले हरेक सामान की जांच हो रही थी। आखिर नाग कहीं भी छुप सकते थे।

छह रातों के बाद, सातवें दिन भूख से बेहाल परीक्षित ने फल में दांत गड़ाए। उसके भीतर एक ऐसा कीड़ा छुपा हुआ था जो फौरन भयावह सांप में बदल गया। यह तक्षक नाग था!

तक्षक ने अपना फन फैलाया और परीक्षित की खाल में अपने जहरीले दांत गड़ा दिए। जहर तेजी से फैल गया। परीक्षित दर्द से छटपटाकर चिल्लाए लेकिन मदद के लिए किसी चौकीदार के आने से पहले ही वे मर चुके थे और नाग सरककर धीरे से भाग गया था।

परीक्षित का बेटा, जनमेजय गुस्से से बौखला गया। उसने कहा, 'मैं अपने निरपराध पिता की हत्या का प्रतिशोध लूंगा।' उसने, अपने राज्य के सभी ब्राह्मणों को सर्पसत्र आरंभ करने का आदेश दिया। यह ऐसा यज्ञ है जिसमें भूमि पर मौजूद सभी सांपों को नष्ट करने की सामर्थ्य थी।

हस्तिनापुरी के मध्य में शीघ्र ही यज्ञ आरंभ हो गया और उससे काला धुआं आसमान की ओर उठने लगा। यज्ञ की वेदी पर चारों तरफ सैकड़ों पुजारी बैठे आग की लपटें उठाने के लिए उसमें चम्मच भर-भरकर घी झोंक रहे थे। वे विचित्र जादुई ऋचाएं दोहरा रहे थे और ऐसी अदृश्य शक्तियों का आह्वान कर रहे थे जो नागों को धरती के भीतर स्थित उनके बिलों से खींचकर वहां प्रज्ज्वलित अग्नि तक ले आएं। हस्तिनापुरी के आसमान पर चारों तरफ सांप ही सांप छा गए जो यज्ञ वेदी की ओर दौड़े चले आ रहे थे। चारों तरफ ज़िंदा जलते सांपों की हृदयविदारक चीत्कार गूंज रही थी। कुछ लोगों को बेहद दया आ रही थी और वे चिल्ला रहे थे, 'यह अनुचित संहार है।' अन्य इसे सही ठहराते हुए चिल्ला रहे थे, 'हमारे राजा की हत्या का यही खामियाजा भुगतना चाहिए।'

तभी क्षितिज से कोई युवक चिल्लाया, 'रुको, राजा! यह अधर्म है।'

जनमेजय गरजा, 'मुझ पर अधर्म का आरोप लगाने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई। तुम हो कौन?'

‘मैं आस्तिक हूं, नागराज वासुकि का भतीजा।’

राजा ने आरोप लगाने के स्वर में कहा, ‘जाहिर है कि तुम नागों को बचाना चाहते हो। तुम स्वयं भी तो उन्हीं में से हो!’

‘मेरे पिता ऋषि जरत्कारु, तुम्हारी तरह ही मानव थे। मेरी मां नागवंशी थीं। मैं तुम्हारे जैसा भी हूं और तुम्हारा शत्रु भी–मानव भी और नाग भी। मैं पक्षपात नहीं करता, मेरी बात ध्यान से सुनो अन्यथा तुम्हारे वंशजों में से किसी को शांति नहीं मिलेगी।’

राजा ने कहा, ‘बोलो।’

आस्तिक ने कहा, ‘अपनी मृत्यु से सात दिन पहले तुम्हारे पिता आखेट करने गए हुए थे तभी उन्हें जोर से प्यास लगी। उन्होंने वटवृक्ष के नीचे बैठे किसी साधु को देखा और उनसे पीने के लिए पानी मांगा। लेकिन साधु गहन समाधि में थे इसलिए राजा के अनुरोध का कोई उत्तर नहीं दे पाए। इससे क्रोधित होकर परीक्षित ने अपनी तलवार से मरे हुए सांप को उठाकर समाधिस्थ ऋषि के गले में डाल दिया। दूर से यह सब देख रहे ऋषि के शिष्य से अपने गुरु का यह अपमान बर्दाश्त नहीं हुआ। उसने परीक्षित को शाप दे दिया कि वे सात दिन के भीतर सर्पदंश से मर जाएंगे। इस प्रकार, तुम समझे जनमेजय कि तुम्हारे पिता ने अपनी मृत्यु को खुद आमंत्रित किया था।’

‘और तक्षक? उसने मेरे पिता को क्यों डंसा?’

आस्तिक ने इस पर उसे दूसरी कथा सुनाई, ‘बहुत समय बीता। तुम्हारे प्रपितामह अर्जुन ने इंद्रप्रस्थ बसाने के लिए भूमि प्राप्त करने को खांडवप्रस्थ नामक वन को जलाकर नष्ट कर दिया था। उस वन में अनेक नाग रहते थे। उसके जला दिए जाने से तक्षक और अन्य अनेक नाग बेघरबार तथा अनाथ हो गए थे। तक्षक ने तभी अर्जुन अथवा उनके किसी वंशज से प्रतिशोध लेने की ठान ली थी। तुम्हारे पिता की हत्या करके उन्होंने प्रतिशोध पूरा कर लिया। अब तुम्हारी बलिवेदी पर फिर से नाग जलाए जा रहे हैं। इसके फलस्वरूप फिर अनेक अनाथ हो जाएंगे और प्रतिशोध की ज्वाला फिर भड़केगी। तुम भी वही कर रहे हो जो तुम्हारे पूर्वजों ने किया था। और तुम्हें भी उन्हीं की तरह कष्ट उठाना पड़ेगा। रक्त बहेगा और कुरुक्षेत्र की तरह ही विधवाएं फिर से विलाप करेंगी। जनमेजय, क्या तुम यही चाहते हो?’
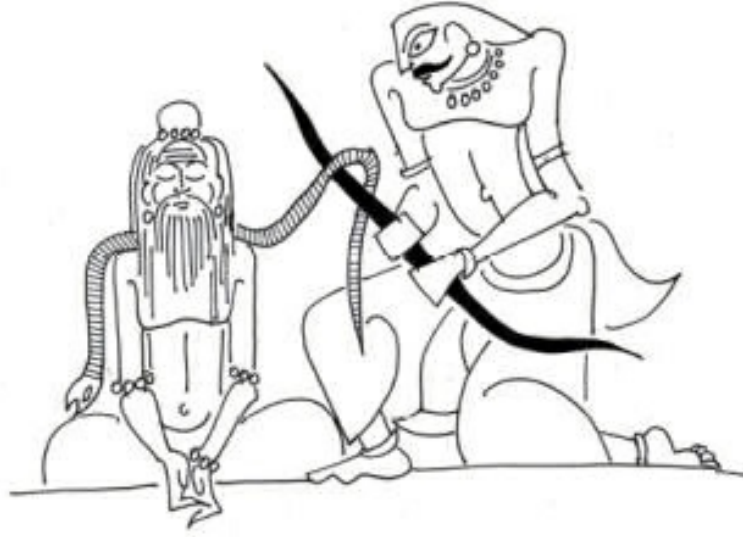
आस्तिक के प्रश्न यज्ञशाला में गूंजने लगे। मंत्रोच्चार थम गया। अग्नि की लौ स्थिर हो गई। प्रश्नवाचक निगाहों के राजा पर टिकते ही वहां शांति छा गई।

जनमेजय ने अपने कंधे उचकाए और विश्वासपूर्वक उत्तर दिया, 'मैं यह सब न्याय पाने के लिए कर रहा हूं।'

आस्तिक ने भी बिना चूके प्रतिवाद किया, 'तक्षक ने भी तुम्हारे पिता का वध, न्याय प्राप्ति के लिए ही किया। तुम भी नागों का संहार न्याय प्राप्ति के लिए ही कर रहे हो। तुम इस यज्ञ के माध्यम से जिन्हें अनाथ कर रहे हो वे भी न्याय पाने का प्रयास करेंगे। न्याय की परिभाषा कौन तय करेगा? प्रतिशोध की इस सतत शृंखला का अंत कैसे होगा जबकि हरेक पक्ष ये सोच रहा है कि वही, सही है और अपराध उनके प्रतिद्वंद्वियों का है?'

जनमेजय चुप रहा। उसने आस्तिक की बात के बारे में सोचा। उसके बाद उसने कुछ सकुचाते हुए पूछा, 'क्या पांडवों ने कौरवों से युद्ध, न्याय पाने के लिए नहीं किया था?'

आस्तिक ने उत्तर दिया, 'नहीं, मेरे राजा। वह युद्ध धर्म के लिए लड़ा गया था। और धर्म का अर्थ न्याय नहीं है; इसका संबंध संवेदना एवं ज्ञान से है। धर्म का अर्थ किसी को पराजित करना नहीं है, इसमें स्वयं पर विजय पाना जरूरी है। धर्म में सभी विजयी होते हैं। कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त होने पर कौरव भी स्वर्ग ही गए थे।'

'क्या?'

'हां। तुम्हारे और तुम्हारे पूर्वजों द्वारा खलनायक बनाकर बदनाम किए गए कौरव भी स्वर्ग ही गए थे। स्वर्ग जो खुशियों का भंडार है और जहां देवता निवास करते हैं।'

इस रहस्योद्घाटन से विचलित राजा ने पूछा, 'और पांडव?'

'वे दुःख-दर्द की नगरी नरक में गए थे।'

'मुझे तो ये पता ही नहीं था।'

'मेरे राजा आप अभी तो और भी बहुत कुछ नहीं जानते। आपको पांडवों का राजपाट भले

विरासत में मिल गया है मगर उनके जैसी बुद्धिमत्ता नहीं मिल पाई। आपको तो धर्म का वास्तविक अर्थ भी नहीं पता जिसे खुद भगवान ने अर्जुन को समझाया था।'

'भगवान?'

'हां, भगवान कृष्ण।'

'इस बारे में और अधिक बताइए।'

आस्तिक ने कहा, 'वैशंपायन को बुलवाइए। उनसे, उनके गुरु व्यास द्वारा रचित और गणेश द्वारा लिखित महागाथा सुनाने को कहिए। ये पूर्वजों और उनसे भी पहले हुए सभी राजाओं की कथा है।'

व्यास की महागाथा के संरक्षक वैशंपायन को बुलाने के लिए दूत भेजे गए। वैशंपायन जब अंततः आए तो उन्होंने यज्ञशाला में अग्निकुंड के ऊपर हवा में लटके हजारों सर्पों, वेदी के चारों ओर विराजमान अपना काम पूरा करने को उद्धत पुजारियों और अपने पूर्वजों के बारे में उत्सुकता से आतुर राजा को देखा।

गाथा सुनाने वाले ऋषि को हिरण की खाल पर बैठाया गया। उनके गले में फूलों की माला पहनाई गई। जल भरा पात्र और फलों से भरी टोकरी भी उनके समीप रखी गई। इस आतिथ्य से अभिभूत होकर वैशंपायन ने पांडवों और कौरवों और भारतवर्ष पर राज करने वाले सभी राजाओं की अपनी कथा आरंभ की। यही गाथा थी जय, जो बाद में महाभारत के नाम से प्रसिद्ध हुई।

आस्तिक ने राजा के कान में फुसफुसाकर कहा, 'जनमेजय इस महागाथा को ध्यान से सुनो। इसके कथानक से विमुख मत हो जाना। कथाओं के आवरण के पीछे ही समझदारी की धारा प्रवाहित है। वही तुम्हारी सच्ची विरासत है।'

- करीब 1000 वर्ष बीसीई पूर्व प्रचलित वैदिक युग में समाज को लयबद्ध रखने में यज्ञ ही प्रमुख अनुष्ठान था। ये विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त पुजारियों द्वारा किया जाता था। वे दिव्य शक्तियों के आह्वान और उनसे अपने यजमान की मनोकामना मनवाने के लिए मंत्र बोलकर अग्नि को सामग्री अर्पित करते थे। सैकड़ों पुजारियों द्वारा अनेक वर्षों तक विशाल स्तर पर आयोजित यज्ञ को सत्र कहते हैं।
- अनुष्ठान से मनुष्य को दुनिया की अनेक भौतिक चुनौतियों का सामना करने में सहायता तो मिलती थी लेकिन उनसे मनुष्य को जीवन की कोई आध्यात्मिक व्याख्या प्राप्त नहीं होती। उसके लिए कथाओं की आवश्यकता पड़ती थी। इसीलिए यज्ञों के दौरान और उनके बीच में भी पुजारियों और उनके संरक्षकों के मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धन के लिए कथावाचकों से कथा करवाई जाती थीं। धीरे-धीरे यज्ञ के बजाए कथाओं को ही अधिक महत्व मिलने लगा। दरअसल 500 सीई तक तो लोग यज्ञ करना लगभग भूल ही गए और देवताओं, राजाओं तथा ऋषियों से संबंधित पवित्र कथाएं हिंदू विचार प्रवाह का आधार बन गईं।
- महाभारत में सिर्फ मानव ही नहीं बल्कि स्वर्ग के निवासी देवों, धरती के भीतर रहने वाले असुर, नदियों की निवासी अप्सरा, मनुष्य की तरह बात करने वाले फनधारी नाग, वन की आत्मा यक्ष, जंगलों के निवासी योद्धा-संगीतज्ञ गंधर्व तथा नितांत जंगली राक्षस भी शामिल हैं। असुर और राक्षसों जैसे कुछ वर्ग मनुष्यों के दुश्मन थे इसलिए उन्हें दानव माना जाता था जबकि देवों और गंधर्वों जैसे अन्य वर्ग उनके प्रति मित्रवत थे इसलिए उन्हें पूजा जाता था। नागों का दर्जा अस्पष्ट था। उनसे कभी डर लगता था और कभी उन्हें पूजा जाता था। तर्कशील लोगों का अनुमान है कि यह विभिन्न गैर-मानवीय नस्ल की अवैदिक जनजातियां थीं जो धीरे-धीरे वैदिक परंपरा में दीक्षित हो गईं।
- ऐसा कहा जाता है सर्प सत्र संचालित करने वाले प्रधान पुजारी उट्टंक की नागों से निजी शत्रुता थी। गुरु दक्षिणा के रूप में उसके गुरु ने उससे गुरु पत्नी को किसी रानी के रत्नजटित कर्णफूल लाकर देने को कहा था। उट्टंक ने बड़ी मुश्किल से वैसे कर्णफूल प्राप्त कर लिए थे, लेकिन उन्हें किसी नाग ने चुरा लिया था। उट्टंक उस चोरी के प्रतिशोध के रूप में सर्प सत्र आयोजित करना चाहता था। लेकिन उसके पास ऐसे आयोजन के संसाधन नहीं थे। अपने पिता की हत्या के प्रतिशोध को आतुर राजा जनमेजय ने अनचाहे ही उसे यह सुनहरा अवसर प्रदान कर दिया। इसलिए जनमेजय ने जब यह सोचा कि सर्पों की बलि सिर्फ उसी के कारण हो रही है तो वह सही नहीं था। उसके अलावा भी अनेक अन्य लोग नागों को नष्ट करना चाहते थे।

जनमेजय की वंशावली

प्रतीप
शांतनु
विचित्रवीर्य
व्यास
पांडु
इंद्र
अर्जुन
अभिमन्यु
परीक्षित
जनमेजय
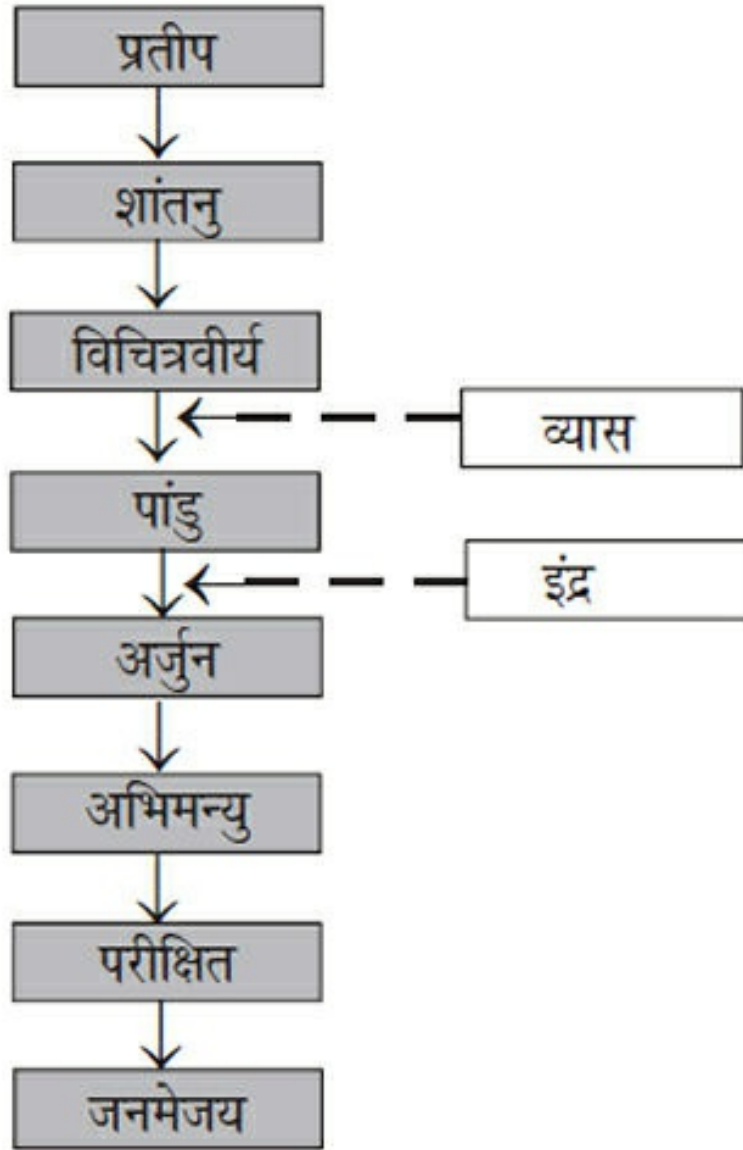
पहला अध्याय

पूर्वज

'जनमेजय तुम्हारे परिवार के इतिहास में पूर्व घटित दृष्टांत अपने आप को बार-बार दोहारते रहे'।

चंद्र का पुत्र

कोई मनुष्य जब मरता है तो यदि उसने, अपने सत्कर्मों से पुण्य कमाया हुआ है तो आसमान के भी ऊपर बसे देवताओं के स्वर्ग में जगह पा सकता है। मनुष्य इसे स्वर्ग कहते हैं। इसके निवासी देव इसे अमरावती नगरी के रूप में जानते हैं। यहां दुख-दर्द का अहसास ही नहीं है। इसमें सारे सपने और सभी इच्छाएं पूरे हो जाती हैं।

इस आनंद को बनाए रखने के लिए देवों को निरंतर समय-समय पर पातालवासी अपने सनातन शत्रुओं यानी असुरों को पराजित करना पड़ता है। उनकी विजय, यज्ञ से प्राप्त शक्ति पर निर्भर है। बृहस्पति ग्रह के स्वामी देवताओं के गुरु बृहस्पति ही देवताओं के लिए यज्ञ किया करते हैं। यज्ञ की सफलता के लिए बृहस्पति की पत्नी तारा का उनके साथ यज्ञ में शामिल होना आवश्यक है। तारा दरअसल तारों की देवी हैं।

एक दिन अचानक बृहस्पति के बगल से उठकर तारा, चंद्रमा के साथ भाग गई। तारा दरअसल हमेशा विश्लेषण में डूबे रहने वाले बृहस्पति से ऊब गई थी क्योंकि उनकी दिलचस्पी तारा से अधिक यज्ञ में ही रहती थी। अपने पर लट्टू चंद्रमा से वह भी प्यार करने लगी थी। बृहस्पति ने

देवराज इंद्र से कहा, 'यदि यज्ञ की सफलता चाहते हो तो मेरी पत्नी को वापस लाकर दो।'

देवों में इस बात पर मतभेद था कि अपने पति को कर्मकांड में डूबे रहने वाला उपकरण मानने वाली तारा को जबरदस्ती उनके पति के पास वापस लाया जाए अथवा उनके प्रेमी के पास ही रहने दिया जाए जिसने उसे फिर जीवंत कर दिया था। लंबी-चौड़ी बहस के बाद अंततः व्यावहारिकता की विजय हुई। देवों के लिए तारा की खुशी के मुकाबले यज्ञ कहीं अधिक महत्वपूर्ण था; यज्ञ की शक्ति के बिना देव धरती पर उजाला और वर्षा दोनों की ही बौछार नहीं कर पाएंगे। यज्ञ के बिना धरती पर सूखा और अंधकार छा जाएगा। नहीं, तारा को बृहस्पति के पास लौटना पड़ेगा। इंद्र का यही अंतिम निर्णय था।

तारा अनमने मन से लौट आई। उसके वापस आते समय यह स्पष्ट था कि वो गर्भवती थी। चंद्रमा और बृहस्पति दोनों ने ही पिता होने का दावा किया। तारा खामोश रही, वो अपने को गर्भवती करने वाले पुरुष का नाम नहीं बताने की जिद पर अड़ी रही। तभी गर्भस्थ शिशु की यह चिल्लाहट सुनकर सब चकित रह गए, 'मां मुझे तो ये बता दो कि मैं किस बीज का फल हूं? मुझे यह जानने का अधिकार है।'

वहां जमा सभी लोग अजन्मे बच्चे की सच जानने की इच्छा से अत्यंत प्रभावित हुए। उन्होंने भविष्यवाणी कर दी कि यह बच्चा बुद्धि का देवता होगा। बुद्धि अर्थात मस्तिष्क का वह भाग जो सच और झूठ के बीच भेद करने का विवेक देकर सही को चुनने की क्षमता प्रदान करता है। उसका नाम बुध रखा गया।

बच्चे के जिद करने पर अपनी आंखें झुकाए तारा ने कहा, 'तुम चंद्रमा के बीज से उत्पन्न हुए हो।'

इतना सुनते ही बृहस्पति आपे से बाहर हो गए और क्रोधित होकर उन्होंने शाप दे दिया, 'मेरी बेवफा पत्नी के प्यार की निशानी यह बच्चा अस्थिरलिंगी हो जाए, न पुरुष रहे और न ही स्त्री।'

इस क्रूर शाप से देवता भी भयभीत हो गए। इंद्र ने राजा होने के नाते मध्यस्थता का प्रयास किया, 'बृहस्पति जिस बच्चे को तुमने इतनी निर्दयता से शापित किया है वह अब से चंद्रमा के बजाए तुम्हारे पुत्र के रूप में जाना जाएगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि खेत में बीज किसने डाला; महत्वपूर्ण यह है कि खेत का मालिक कौन है। तारा के विधिवत विवाहित पति के रूप में तुम्हीं मालिक हो। उसके सभी बच्चों के पिता, भले ही वे विवाह के उपरांत पैदा हुए हों अथवा उससे पूर्व में, तुम्हारे द्वारा अथवा किसी अन्य द्वारा भी।'

इस प्रकार यह मामला निपट गया। तारा ने बुध ग्रह के स्वामी बुध को पैदा किया जिसका आकार बदलता रहता है जो न पुरुष है और न ही स्त्री। जैविक रूप में वह भावप्रधान चंद्रमा का अंश था लेकिन इंद्र के आदेश के अनुसार उसका लालन-पालन तर्कशील बृहस्पति के घर में ही हुआ।

उसी दिन से स्वर्ग और भूमि पर भी प्राकृतिक गोचर के मुकाबले विधि का वर्चस्व स्थापित हो गया; पितृत्व, विवाह से परिभाषित होने लगा। उसी कारण जनमेजय के प्रपितामह अर्जुन को पांडु पुत्र माना गया हालांकि पांडु बच्चे पैदा करने में सक्षम ही नहीं थे।

- मनुष्यों के लिए, देवों की अमरावती विलासिता का स्वर्ग है जिसमें जीवन को शुचितापूर्वक जीकर ही प्रविष्ट हुआ जा सकता है।

- मुत्तुस्वामी दीक्षितार 18वीं शताब्दि में कर्नाटक संगीत के शलाकापुरुष रहे हैं और उन्होंने नवग्रह को समर्पित अपनी कृति में बुध को अस्थिरलिंगी बताया है। नवग्रहों की अनेक छवियों में बुध को कभी पुरुष और कभी स्त्री के रूप में दर्शाया गया है जिससे सिद्ध होता है कि उसका स्वभाव अस्थिर है।
- देव आकाशीय देवता हैं, पाताल निवासी असुरों के शत्रु। उनके बीच अंतहीन युद्ध हुए हैं। बारी-बारी से उनकी विजय और पराजय मौसम में ताल परिवर्तन के प्रतीक हैं।
- कला के लिहाज से बुध याली की सवारी करते प्रतीत होते हैं, ऐसा रहस्यमय जीव जिसका सिर हाथी का और काया शेर के जैसी है, जो शायद उसके अस्थिर स्वभाव का द्योतक है।

बुध के लिए पत्नी

बड़ा होने पर बुध को इसमें संदेह होने लगा कि उसे जीवन साथी मिल भी पाएगा अथवा नहीं क्योंकि वो न तो स्त्री था और न ही पुरुष। तारा ने भरोसे से कहा, ‘तुम्हारा विवाह हम करवाएंगे।’

बुध ने पूछा किससे, ‘पति से अथवा पत्नी से।’

तारा ने कहा, ‘भाग्य को जो मंजूर हो। इस संसार में सभी कुछ किसी न किसी प्रयोजन से होता है। तुम्हारे पिता के शाप का भी कोई कारण होगा। यह सब ठीक हो जाएगा। भरोसा बनाए रखो।’

और ऐसा ही हुआ भी, बुध को एक दिन इला नामक स्त्री दिखाई दी और वह उससे प्यार करने लगा।

लेकिन इला तो स्त्री नहीं थी, वो कभी पुरुष थी। एक राजकुमार, जिसका नाम था सुद्युम्न, मनुष्यों के प्रथम राजा मनु का बेटा।

सुद्युम्न एक दिन घोड़े पर सवार होकर ऐसे जंगल में प्रविष्ट हो गया जिसपर महान वैरागी शिव ने दृष्टिपात करके सभी पुल्लिंग वालों को स्त्रीलिंग में बदल दिया था। वन में घूमने वाले शेर तत्काल शेरनी बन गए और मोर बदल कर मोरनी बन गए। शिव ने ऐसा अपनी संगिनी शक्ति

को प्रसन्न करने के लिए किया था। शक्ति दरअसल यह बिल्कुल नहीं चाहती थीं कि अपने प्रभु के सान्निध्य के दौरान उनका किसी भी पुल्लिंग, पशु अथवा मनुष्य की उपस्थिति से ध्यान बंट जाए। सुद्युम्न को जब वन में अपने पुरुषत्वहीन हो जाने का पता चला तो उसने देवी से पुनः पौरुष प्रदान करने की याचना की। उन्होंने कहा, 'मैं शिव की दृष्टि को निष्प्रभावी नहीं कर सकती। लेकिन उसमें इतना संशोधन जरूर कर सकती हूं कि चंद्रमा के छिपने पर तुम सिर्फ स्त्री रह जाओगे और चंद्रमा के उगते ही पुरुष बन जाओगे।'

बुध को, जो न तो स्त्री थे और न ही पुरुष, इला के रूप में आदर्श जीवनसाथी मिल गया क्योंकि वह स्त्री और पुरुष दोनों ही थी। उन्होंने मिलकर अनेक पुत्र पैदा किए। उन्हें इला के वंशज होने के नाते ऐला पुकारा गया। उनका नाम चंद्रवंशी अर्थात चंद्रमा के वंशज भी पड़ा हालांकि नाम न तो बृहस्पति को रास आया और न ही देवताओं को। शायद इसीलिए इस वंश के भावप्रधान राजाओं को तर्कशीलता कभी नहीं भाई।

समय बीतने के साथ ही चंद्रवंशी, बुध और इला दोनों के ही अस्पष्ट लिंग को भूल गए। अर्जुन के साले शिखंडी में वैसे ही लक्षण प्रकट होने पर वे इसका मखौल भी उड़ाने वाले थे। वे उसे युद्धस्थल में प्रविष्ट होने से भी रोकने वाले थे। मनुष्य निर्मित नियमों की ऐसी ही दशा है; अतीत से विमुख एवं वर्तमान के प्रति असंवेदनशील।

- महाभारत में चंद्रवंशियों अर्थात चंद्रमा के वंशजों अथवा बुधवंशियों की भी कथा है जो अपने अस्पष्ट नैतिक आचरण के लिए कुख्यात तथा सिद्धांतप्रिय सूर्यवंशियों के विपरीत थे। सूर्यवंशियों की कथाएं रामायण में वर्णित हैं।
- वरदान एवं शाप हिंदू रहस्यवाद में अंतर्निहित हैं। वे कर्म की अवधारणा में निहित हैं, जिसके अनुसार हरेक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है जिसका अनुभव उसे करने वाले के लिए अवश्यंभावी है वह भले ही चालू जन्म में ही हो अथवा अगले जन्म में। सकारात्मक परिणाम देने वाले कर्म पुण्य हैं और कथाओं में उनका उल्लेख वरदान के रूप में होता है। नकारात्मक परिणाम देने वाले कर्म पाप हैं और कथाओं में उनका उल्लेख शाप के रूप में होता है। पुण्य आध्यात्मिक अच्छाई है जो सौभाग्यदायक है और पाप आध्यात्मिक बुराई है जो दुर्भाग्य का कारक बनता है। पाप और पुण्य की अवधारणा का निहितार्थ यह दर्शाने में है कि संसार में बुरी और अच्छी घटनाएं क्यों होती हैं।
- इला के पुरुष और स्त्री दोनों ही होने की कथा महाभारत एवं अनेक पुराणों में भी उल्लिखित है। कुछ पुनर्कथनों में इला को मनुपुत्री बताया गया है। पुत्रेष्णा यज्ञ करते समय मनु दिव्य मंत्र का अपभ्रंश उच्चारण कर देते हैं जिससे उनके यहां पुत्र के बजाए पुत्री का जन्म हो जाता है।
- मनु दरअसल सूर्यपुत्र थे। इला के अलावा मनु के इक्ष्वाकु नामक पुत्र भी था। उसके वंशज सूर्यवंशी कहलाए। इस वंश में अयोध्या के राजकुमार राम भी शामिल हैं, जिनकी कथा रामायण में कही गई है।
- तारा के चंद्रमा से प्रेम की कथा के माध्यम से ज्योतिष शास्त्र के अनुरूप चंद्रवंशी राजाओं के व्यवहार की व्याख्या का प्रयास किया गया है। चंद्रमा का संबंध भावनाओं से, बृहस्पति का तर्कशीलता से और बुध का स्पष्टता, संचार तथा चतुराई से है। कथा में यह जताने का प्रयास है कि चंद्रवंशी स्वाभाविक रूप में भावप्रधान थे और इस प्रवृत्ति को तर्कशीलता से नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है।

पुरुरवा का जुनून

चंद्रवंशी पुरुरवा ने एक बार उर्वशी को नदी में नहाते समय देख लिया। उर्वशी दरअसल अप्सरा थी जो देवताओं के साथ रहती थी तथा पृथ्वी पर कभी कभार ही आया करती थी। वो इतनी अनिंद्य सुंदरी थी कि उसके चलने पर तमाम पशु उसे निहारने के लिए ठिठक जाते थे, हरेक पेड़, हरेक झाड़ी, घास का हरेक तिनका उसे छूने का प्रयास करता था। पुरुरवा उससे प्रेम कर बैठा। उसने

कहा, ‘मुझसे विवाह कर लो। मेरी रानी बनकर मेरे राजमहल में ही रहो।’

अप्सरा ने मजाक करते हुए राजा से कहा, ‘यदि तुम मेरी पालतू बकरियों की देखभाल और मेरे अलावा किसी को भी निर्वस्त्र नहीं दिखने का वचन दो?’ पुरुरवा ने उसे चकित करते हुए हामी भर दी जिससे, उसके पास, उसकी पत्नी बनने के अलावा कोई चारा नहीं बचा।

उर्वशी के लिए यह एकदम नया अनुभव था और वह इसका आनंद लेने लगी। उसने अपने मानव पति के अनेक पुत्र पैदा किए।

ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य की जीवन अवधि इंद्र की पलक झपकने में लगने वाले समय के बराबर है। इसके बावजूद इंद्र कुछ पल के लिए भी उर्वशी से जुदाई बरदाश्त नहीं कर पाए। उन्होंने गंधर्वों को उसे वापस लाने के लिए भेजा।

पुरुरवा जब उर्वशी से प्रेमलीला में व्यस्त था तभी गंधर्वों ने उसकी पालतू बकरियों को उसके पलंग के नीचे से चुरा लिया। उर्वशी ने कनखी से यह सब देख लिया और मर्मांतक स्वर में चिल्लाई, ‘मेरी बकरियां! कोई मेरी बकरियां चुरा रहा है! पतिदेव अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो और उन्हें वापस लेकर आओ।’

पुरुरवा कपड़े पहने बगैर ही बिस्तर से छलांग लगाकर चोरों को पकड़ने के लिए दौड़ पड़ा। चोरों को पकड़ने के लिए वो जैसे ही महल के बाहर पहुंचा, इंद्र ने आकाश में बिजली चमका दी जिसके प्रकाश में नगर के सभी लोगों ने पुरुरवा को विवस्त्र देख लिया। इसके साथ ही देवताओं से दूर पृथ्वी पर रहने की उर्वशी की शर्त टूट गई। उसके अमरावती लौटने की घड़ी आ गई।

उर्वशी के बिना पुरुरवा का दिल टूट गया और वह उसके गम में पागल होकर राज करने योग्य भी नहीं बचा। जुनून में ऐसी शक्ति है। ऋषियों को उसकी जगह उसके पुत्रें में से अधिक अनुशासित एवं शासन चलाने में सक्षम पुत्र को राजा बनाना पड़ा।

ऐसी लोक धारणा है कि उर्वशी के वियोग में पुरुरवा आज भी जंगलों में और नदी तटों पर मारा-मारा फिरता है। कुछ अन्य मतों के अनुसार उर्वशी ने उसे गंधर्व बना दिया है और वह जहां भी जाती है वो उसके साथ-साथ नृत्य के लिए संगीत देने जाता है।

उर्वशी के लिए पुरुरवा का जुनूनी लगाव, जो उसके पतन का कारक बना, कुछ पीढ़ियों के बाद शांतनु में फिर परिलक्षित हुआ। एक बार नहीं, बल्कि दो बार। पहली बार गंगा के प्रति प्रेम के रूप में और दूसरी बार सत्यवती के लिए जिसके वैसे ही घातक परिणाम निकले। हालांकि मनुष्य की स्मृति क्षणभंगुर है और इतिहास हमेशा खुद को दोहराता है।

- अप्स का अर्थ है जल और इसलिए जलपरियों को अप्सरा कहते हैं। धरती पर जल वर्षा के रूप में स्वर्ग से आता है और कुछ ही समय बाद वाष्प के रूप में लौट जाता है। धरती पर जीवन इसी जल से चलता है। इसलिए सांकेतिक रूप में समझें तो पुरुष (पुरुरवा) की यह तड़प जल (उर्वशी) के लिए ही है जो कि आकाश (इंद्र) के यहां से आता है और अंततः वहीं लौट जाता है।
- किसी भी पुरुष को पति के रूप में स्वीकारने से पहले उर्वशी बाकायदा शर्तें रखती है और उनके पालन के बाद ही अपनी सम्मति देती है। इससे पितृसत्तात्मक समाज से पहले की स्थिति का अंदाज लगता है जिसमें स्त्री खुद अपनी देह की मालकिन थी। वैदिक समाज में महिलाओं को अत्यधिक मूल्यवान समझा जाता था क्योंकि पुरुष उन्हीं के माध्यम से संतान पैदा करता था ताकि अपने पूर्वजों से उऋण हो सके तथा पुनर्जन्म के चक्र की निरंतरता बनी रहे। मायावी और कामिनी उर्वशी के लिए पुरुरवा की तड़प का पूरा संवाद ऋग्वेद में संग्रहित है। ऋग्वेद प्राचीनतम वैदिक ग्रंथ है जिसे 1500 बीसीई से पूर्व रचा गया माना जाता है। लगभग 1500 सीई में लिखे गए कालिदास के नाटक में *विक्रमोर्वशीयम* में 2000 वर्ष के उपरांत पुरुरवा आकर्षक, सुगठित राजा है जिसे अप्सरा से कोई लेना-देना नहीं है। इसके बजाय अप्सरा उसके लिए तड़पती है; देवता उसे पुरुरवा के साथ रहने की अनुमति इस शर्त पर देते हैं कि वह उर्वशी द्वारा पैदा किए गए बच्चे की कभी शक्ल नहीं देखेगा। इसलिए वह जब किसी यज्ञ में भाग ले रहा था तभी उर्वशी चुपचाप बच्चे को जन्म देती है और च्यवन ऋषि से उसे सबकी नजरों से बचाकर उसका लालन-पालन करने का अनुरोध करती है। वर्षों बाद अवश्यंभावी घटित होता हैः पिता अपने पुत्र से मिलता है और अप्सरा देवताओं के पास लौट जाती है। विछोह की लंबी अवधि बीतने के बाद इंद्र फिर से उर्वशी को पुरुरवा के पास लौट जाने देता है क्योंकि उसे असुरों के विरुद्ध युद्ध लड़ने के लिए पुरुरवा की आवश्यकता है।
- कल्पसूत्र के अनुसार उर्वशी द्वारा प्रसूत पुरुरवा के पहले पुत्र आयु ने पूरब में कुरु पांचाल राज्य की स्थापना की थी। उनके दूसरे पुत्र अमावसु ने पश्चिम में गांधार राज्य की स्थापना की थी। इन्हीं राज्यों ने कुरुक्षेत्र में लड़े गए महाभारत युद्ध की पृष्ठभूमि बनाई थी।

शकुंतला की निश्छलता

कौशिक नामक सूर्यवंशी राजा को ऋषि बनने की लगन लग गई। इसी धुन में उसने सारे भौतिक उपादान त्यागकर ब्रह्मचर्य का संकल्प किया और तपस्या आरंभ कर दी। सफल हो जाने पर वह किसी भी मनुष्य अथवा देवता से अधिक शक्तिशाली हो जाएगा।

इंद्र ने इस बात से भयभीत होकर कि कौशिक शायद उसकी गद्दी छीनना चाहते हैं उनके पास मेनका नामक अप्सरा को ध्यान भंग करने भेजा। अमरावती की तमाम अप्सराओं में मेनका सबसे अधिक रूपवती थी। मेनका ने जैसे ही कौशिक के सामने कामुक नृत्य शुरू किया वह अपनी सुध-बुध खो बैठे। उन्होंने तपस्या और ब्रह्मचर्य को तिलांजलि देकर भोग के आगे हथियार डाल दिए। तपस्वी और अप्सरा के उस संभोग के फलस्वरूप मेनका ने पुत्री को जन्म दिया।

उस बच्ची को उसके माता-पिता ने जंगल में ही छोड़ दिया: उसके पिता ने उसे इसलिए छोड़ा कि वह उनकी भीषण पराजय का परिणाम थी और उसकी माता ने उसे इसलिए छोड़ा क्योंकि

उसके लिए वह उसकी सफलता का प्रतीक मात्र थी।

कण्व नामक ऋषि को वह बच्ची शकुन पक्षियों के झुंड के पंखों से ढंकी मिली जिन्होंने उसकी रक्षा के लिए उसे घेर रखा था। इसीलिए ऋषि ने उसका नाम शकुंतला रख दिया। कण्व ने शकुंतला को जंगल में स्थित अपने आश्रम में अपनी ही पुत्री की तरह पालना-पोसना शुरू किया और बड़े होने पर वह बेहद रूपवान और सुसंस्कृत स्त्री बनी।

एक दिन पुरुरवा का वंशज दुष्यंत अचानक कण्व के आश्रम पहुंचा। वह जंगल में आखेट कर रहा था और वहां उनका आश्रम देखकर ऋषि को प्रणाम करने चला आया अथवा शायद उसने आश्रम में कुछ दिन बिताने को सोची थी। दुर्भाग्य से कण्व तीर्थयात्रा पर गए हुए थे और उसका स्वागत शकुंतला ने किया। शकुंतला को देखते ही दुष्यंत उस पर मोहित हो गया।

अपने मनोभावों को नियंत्रित करने में विफल दुष्यंत ने कहा, 'मुझसे शादी कर लो।'

शकुंतला ने लजाते हुए उत्तर दिया, 'मेरे पिता से अनुमति ले लीजिए।'

दुष्यंत ने फिर कहा, 'यदि तुम मान जाओ तो हम गंधर्वों की तरह वृक्षों को साक्षी बनाकर विवाह कर सकते हैं, परंपरानुसार यह मान्य है।' आकर्षक व्यक्तित्व के धनी राजा से प्रभावित होकर निश्छल शकुंतला ने हामी भर दी।

इस प्रकार वृक्षों को साक्षी बनाकर दोनों ने शादी कर ली और आश्रम में ही प्यार में डूब गए। अंततः दुष्यंत के घर लौटने की घड़ी आ गई। कण्व तब तक लौटे नहीं थे और दुष्यंत और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता था। इसलिए दुष्यंत ने यह वचन दिया, 'ऋषि के बाहर होने के कारण मेरा तुम्हें अपने साथ ले जाना उचित नहीं है। उनके लौटते ही मैं वापस आ जाऊंगा।'

अनेक सप्ताह बाद कण्व आश्रम में लौट आए। आश्रम में प्रविष्ट होते ही उन्हें इस बात का भान हो गया कि उनकी पुत्री प्रेममग्न थी और उसकी कोख में उसके प्रेमी का बच्चा भी था। वह अत्यधिक प्रसन्न हुए। दोनों ने इस बात की खूब खुशी मनाई और दुष्यंत के लौटने का इंतजार करने लगे। दिन बीतते-बीतते सप्ताह बीत गए। सप्ताह बीतते-बीतते मास बीत गए लेकिन दुष्यंत नहीं लौटे।

समय पूरा होने पर शकुंतला ने पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम भरत रखा गया। भरत का लालन-पालन कण्व और शकुंतला की देखरेख में होने लगा। पिता और पुत्री दुष्यंत के वायदे के बारे में भूल ही चुके थे कि एक दिन भरत ने पूछा, 'मेरे पिता कौन हैं?'

कण्व ने कहा, 'उसे यह जानने का अधिकार है।'

दुष्यंत की ओर से निमंत्रण की प्रतीक्षा किए बिना ही कण्व को लगा कि शकुंतला स्वयं दुष्यंत के पास जाए और पुत्र को पिता से मिलवा दे। शकुंतला ने उनकी बात मानी और अपने पुत्र का हाथ पकड़कर जीवन में पहली बार वन से बाहर निकल आई। उसके प्रस्थान के समय वृक्षों ने उसे वस्त्र और फूल तथा खुशबुओं का उपहार दिया ताकि वह जब अपने प्रेमी से दोबारा मिले तो फिर रूपवती दिखे।

लेकिन यह क्या? दुष्यंत के सामने पहुंचकर शकुंतला ने जब अपना और अपने पुत्र का परिचय दिया तो भी दुष्यंत अनजान बना रहा। उसने व्यंग्यपूर्वक पूछा, 'हमारे कथित विवाह का कोई प्रत्यक्षदर्शी है?'

उसने कहा, 'वृक्ष हैं।'

यह सुनकर दुष्यंत सहित वहां उपस्थित सभी लोग हंसने लगे। वन में पली सीधी-सादी शकुंतला, जिसे राजाओं और राज्यों की राजनीति का कोई भान ही नहीं था, इस पर अपमानित महसूस करते हुए बोली, 'मैं यहां पति को पाने नहीं बल्कि अपने पुत्र को उसके पिता से मिलवाने के लिए लाई हूं। मैंने वह काम पूरा कर दिया है, मैंने माता के लिए उचित तरीके से उसका पालन-पोषण किया है। अब मैं आपसे पितृधर्म का पालन करते हुए इसका लालन-पालन करने का अनुरोध करती हूं।' इतना कहकर शकुंतला ने दुष्यंत की ओर से मुंह फेरकर वन का रुख कर लिया।

अचानक आकाशवाणी हुई और उसमें शकुंतला पर संदेह करने के लिए दुष्यंत को डांट पिलाई गई। उसे बताया गया कि शकुंतला वास्तव में उसकी पत्नी तथा भरत उसका, अपना ही पुत्र था। दुष्यंत ने अपने व्यवहार के लिए क्षमायाचना की और अपने रुख के लिए सामाजिक विरोध की आशंका को जिम्मेदार ठहराया। उसके बाद उसने शकुंतला को अपनी महारानी और भरत को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

भरत उन विलक्षण राजाओं में शामिल था जिनमें सूर्यवंशियों और चंद्रवंशियों दोनों का ही रक्त था। वह अपनी माता के माध्यम से सूर्यवंशी तथा अपने पिता दुष्यंत के माध्यम से चंद्रवंशियों का संगम था। उसके वंशजों ने समूचे जंबू द्वीप, भारत पर राज किया था इसलिए इसका नाम ही भारतवर्ष अथवा उसके नाम पर भारत पड़ गया था।

- तप का अर्थ है तपस्या से पैदा होने वाली आध्यात्मिक अग्नि। तपस्वी अथवा अग्नि पचाने वाले साधुओं तथा अप्सरा अथवा जलपरी के बीच यह टकराव पुराणों में बार-बार परिलक्षित होता है। यह आध्यात्मिकता एवं भोग के बीच टकराव है। आध्यात्मिकता से पुण्य मिलता है और उसके वाहक को संसार की सभी नियामतें मिल जाती हैं, लेकिन भोगलिप्सा में लिप्त होने से पुण्य का क्षरण हो जाता है। इसीलिए साधु और परी के बीच टकराव सनातन है।
- महाभारत में शकुंतला से संबंधित प्रसंग कालिदास द्वारा लगभग 500 सीई में लिखे गए लोकप्रिय संस्कृत नाटक से अत्यंत भिन्न है। कालिदास के नाटक में शकुंतला के पिता को यह पता चलते ही कि वह गर्भवती है उसे तत्काल दुष्यंत के पास लाया जाता है लेकिन ऋषि के शाप के कारण दुष्यंत उसे पहचान नहीं पाता। व्यास के ग्रंथ में शकुंतला, दुष्यंत के पास वर्षों बाद पहुंचती है जब उसका पुत्र अपने पिता के बारे में पूछताछ करता है–दुष्यंत लोकलाज की खातिर उसे नहीं पहचान पाने का अभिनय करता है। कालिदास की शकुंतला अपने पति से मिलने आती है जबकि महाभारत की शकुंतला अपने बेटे को उसके पिता से मिलवाने लाती है। कालिदास की शकुंतला लोकलाज के प्रति अत्यंत जागरुक है जबकि महाभारत की शकुंतला उसके प्रति बेपरवाह है। इससे समय बीतने के साथ सामाजिक मूल्यों में आया परिवर्तन स्पष्ट होता है।

भरत का उत्तराधिकारी

बड़ा होने पर भरत महान राजा बना। उसकी तीन पत्नियां थीं। उसकी पत्नियां जब भी उससे पुत्र पैदा करतीं तो वह कहता, 'यह मेरे समान नहीं दिखता,' अथवा 'यह मेरे समान व्यवहार नहीं करता,' जिससे यह प्रतिध्वनित होता है कि उसकी पत्नियां उसके प्रति बेवफा थीं अथवा बच्चे बेकार थे। इससे डरकर भरत की पत्नियों ने इन बच्चों को त्याग दिया।

अंततः ऐसा समय आया जब भरत बूढ़ा हो गया मगर उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। इसलिए उसने पुत्रेषणा यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति पर देवों ने उसे वितथ नामक पुत्र प्रदान किया।

वितथ दरअसल बृहस्पति की भाभी और उतथ्य की पत्नी ममता की कोख से पैदा हुआ था। ममता के गर्भ में वह तब गर्भस्थ हुआ था जब बृहस्पति ने अपने स्वभाव के विपरीत कामातुर होकर ममता से भोग किया था।

बृहस्पति और ममता दोनों ने ही इस बच्चे को त्याग दिया था। बृहस्पति द्वारा बच्चे को त्यागे जाने का कारण यह था कि वह उन्हें उनकी कमजोरी का भान कराता था और ममता ने उसे इसलिए त्यागा कि वह बच्चा उस पर थोपा गया था। इस प्रकार वितथ भी शकुंतला की तरह अपने माता-पिता द्वारा परित्यक्त शिशु था। उसे देवों ने स्वीकार करके भरत को सौंप दिया था।

बड़ा होने पर वितथ भी अत्यंत प्रतापी राजा बना और गोद आने के बावजूद भरत ने उसकी क्षमताएं देखकर उसका राज्याभिषेक करके राजा बनाया।

भरत के लिए राजा बनने का मापदंड रक्त संबंध के बजाए उसका सक्षम या उसका उस लायक होना था। इसी कारण भरत, प्रजा की निगाहों में सबसे महान राजा बन गया। जंबू द्वीप का नाम भारतवर्ष अथवा भारत पड़ने के पीछे शायद यह भी बड़ा कारण रहा होगा अर्थात ऐसा देश जिसका राजा कभी भरत हुआ था।

बाद के राजाओं ने भरत के इन आदर्शों का पालन नहीं किया। धृतराष्ट्र ने अपने भतीजे युधिष्ठिर के अधिक योग्य होने के बावजूद अपने पुत्र दुर्योधन को राजपाट सौंपा।

- ग्रंथ के अनुसार बृहस्पति जब ममता के पास गए तो ममता ने उससे सहवास से इन्कार कर दिया लेकिन ममता ने ऐसा दूसरे व्यक्ति अर्थात उसके भाई उतथ्य की ब्याहता होने के कारण नहीं किया बल्कि पहले से गर्भवती होने के कारण उसने ऐसा किया। इससे यह पता चलता है कि शायद प्राचीन काल में भाइयों के बीच एक-दूसरे की पत्नी से संबंध बना लेना समाज को स्वीकार्य था।
- ममता की कोख में पल रहा बच्चा शापित है और वह दृष्टिहीन पैदा होगा। इस तरह ऋषि दीर्घतमस पैदा हुए। दीर्घतमस की पत्नी का नाम प्रद्वेषी है और वह अपने दृष्टिहीन पति को संभालते-संभालते ऊबकर अपने बेटों के हाथों उसे नदी में फिंकवा देती है। दीर्घतमस पेड़ का तना पकड़कर बच जाता है और वंशविहीन राजा बालि को मिल जाता है। बालि द्वारा दीर्घतमस से यह अनुरोध किया जाता है कि वह उसकी पत्नी सुदेषणा के पास जाकर उसे गर्भवती करे। पूर्वी राज्यों अंग, बंग तथा कलिंग के शासक राजाओं का जन्म इसी प्रकार हुआ था।
- वितथ का प्रसंग शास्त्रों में किसी श्लोक के अपभ्रंश से निकला है और व्यास को परेशान कर रहे इस प्रश्न की ओर ध्यान आकर्षित करता है: राजा किसे बनाया जाए? राजा के पुत्र को अथवा किसी भी योग्य पुरुष को? महागाथा में यह विषय बार-बार उपस्थित हुआ है।

ययाति की मांग

शर्मिष्ठा असुरों के राजा विषपर्व की बेटी थी और देवयानी असुरों के गुरु शुक्र की बेटी थी। उन दोनों में ही गहन मित्रता थी। लेकिन एक दिन दोनों में डटकर लड़ाई हुई।

तालाब में नहाने के बाद झटपट कपड़े पहनते हुए देवयानी ने भूल से शर्मिष्ठा के कपड़े पहन लिए। इससे क्रोधित होकर शर्मिष्ठा ने देवयानी को चोर और उसके पिता को भिखारी कह डाला। उसके बाद उसने देवयानी को कुएं में धकेल दिया और राजसी गुरुर में वापस लौट गई। देवयानी शाम को देर से घर लौटी और उसने अपने पिता से पूरी घटना की शिकायत की तथा फूट-फूट कर रोने लगी। अंततः उसके पिता को यह वायदा करना पड़ा कि वे असुर राजकुमारी को सबक

सिखाएंगे। शुक्र ने कहा, 'अपनी पुत्री के दुर्व्यवहार के लिए राजा जब तक क्षमा नहीं मांगेंगे तब तक मैं उनके लिए कोई भी यज्ञ संचालित नहीं करूंगा।'

विषपर्व ने शुक्र से जिद छोड़कर यज्ञ फिर से आरंभ करने की याचना की क्योंकि उनके बिना वह अपने सनातन शत्रु, देवताओं के सामने कमजोर पड़ता था। शुक्र ने कहा, 'मैं शुरू कर दूंगा मगर उससे पहले आपको अपनी जहरबुझी जुबान वाली बेटी को दंडित करना पड़ेगा। शर्मिष्ठा को मेरी पुत्री की सेविका बना दीजिए तो मैं आपकी यज्ञशाला में वापस आ जाऊंगा।'

विषपर्व के सामने इसके लिए सहमत होने के अलावा कोई चारा नहीं था। इस प्रकार राजकुमारी शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बना दिया गया। यह अपमान भी हालांकि अंततः उसके लिए वरदान ही साबित हुआ।

घटना दरअसल कुछ ऐसे घटी कि शर्मिष्ठा द्वारा कुएं में धकेले जाने के बाद देवयानी को जिस पुरुष ने बचाया था वह चंद्रवंशी ययाति था। उसे बचाने के दौरान ययाति ने देवयानी को उसका हाथ पकड़कर बाहर खींचा था। इस पर देवयानी ने शास्त्रों का उल्लेख करते हुए ययाति से कहा, 'क्योंकि तुमने मुझ कुंआरी कन्या का हाथ थामा है, इसलिए तुम्हें, मुझे अपनी पत्नी के रूप में अंगीकार करना होगा।'

ययाति ने कहा, 'तो ठीक है,' क्योंकि उसे भी शास्त्रों की पूरी जानकारी थी। वह शुक्र के आश्रम में आया और उनका आशीर्वाद प्राप्त करके देवयानी को अपने राज्य में नियमानुसार विवाहित पत्नी के रूप में ले गया।

शर्मिष्ठा को और अपमानित करने की दृष्टि से देवयानी ने कहा, 'मेरी दासी को भी मेरे साथ ले जाने दें।'

ययाति का उत्तर था, 'जैसी आपकी इच्छा मेरी रानी।' शर्मिष्ठा के पास दासी के रूप में देवयानी की ससुराल जाने के अलावा कोई चारा नहीं था।

एक दिन शर्मिष्ठा की नजरें ययाति से मिलीं। पहली ही नजर में दोनों को प्यार हो गया। देवयानी की तरह ऋषि रक्त की जगह शर्मिष्ठा की नसों में राजसी रक्त तथा राजा से मिलती-जुलती भावनाएं थीं। ययाति इससे बहुत प्रसन्न हुआ। दोनों ने चुपचाप शादी की और बच्चे भी पैदा किए।

देवयानी को इसका कोई भान नहीं था; शर्मिष्ठा ने उसे यह भरोसा दिला दिया था कि उसका प्रेमी तो राजमहल का चौकीदार है। लेकिन देवयानी ने एक दिन शर्मिष्ठा के पुत्र को ययाति को पिता के रूप में संबोधित करते सुन लिया। यह पता चलते ही कि उसे, उसके पति तथा उसकी दासी दोनों ने ही धोखा दिया है, क्रोध में उबलती देवयानी राजमहल छोड़कर झटपट अपने पिता के घर लौट गई और उसकी जिद पर शुक्र ने फिर से उसके पति को सबक सिखाने का वचन दिया।

शुक्र ने ययाति को शाप दे दिया, 'तुम बूढ़े और पौरुषहीन हो जाओगे।' शाप का असर तत्काल हुआ। लेकिन शीघ्र ही यह भी स्पष्ट हुआ कि शाप का सबसे अधिक नुकसान स्वयं देवयानी को हुआ। बूढ़ा और कमजोर पति किसी के लिए भी किसी काम का नहीं हो सकता! इसके बावजूद शुक्र अपना शाप वापस नहीं ले सकते थे। वह अधिक से अधिक उसे संशोधित कर सकते थे। 'ययाति, तुम्हें तुम्हारा यौवन और पौरुष तभी वापस मिल सकता है जब तुम्हारा कोई पुत्र इस शाप को तुम्हारे बदले अपने ऊपर ओढ़ ले।'

ययाति ने तत्काल अपने पुत्रें को बुलावा भेजा। देवयानी से पैदा हुए उसके ज्येष्ठ पुत्र यदु ने अपने पिता के बदले शाप ओढ़ने से इन्कार कर दिया। उसने पूछा, 'समय के प्रवाह को उलटना क्या धर्म विरुद्ध नहीं है? बेटे को दुनिया से विमुख करना, जबकि ऐसा करना पिता की उम्र में उचित है?'

यायाति ने उसके बाद शर्मिष्ठा से प्रसूत अपने सबसे छोटे पुत्र पुरु से शाप ओढ़ने को कहा। पुरु इसके लिए राजी हो गया।

इसके परिणामस्वरूप पुरु को बुढ़ापा झेलना पड़ा और उसका पिता फिर जवानी का आनंद उठाने लगा। वह खांसते, लड़खड़ाते छड़ी पकड़कर चलने लगा, जबकि ययाति अपनी पत्नियों को आलिंगनबद्ध करते हुए और आखेट पर जाने तथा युद्ध लड़ने में व्यस्त हो गया।

अनेक वर्षों के उपरांत ययाति को जब यह भान हुआ कि जवानी और पौरुष मात्र से ही संतोष नहीं मिल सकता, उसने पुरु द्वारा ओढ़े गए अपने को लगे शाप से उसे मुक्त कर दिया।

उत्तराधिकारी के नाम की घोषणा का अवसर आने पर ययाति ने सबसे छोटा होने के बावजूद पुरु को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। ययाति ने इसका कारण बताया, 'क्योंकि उसने मेरे लिए कष्ट झेला।' ज्येष्ठ पुत्र होने के बावजूद यदु को न सिर्फ राजसिंहासन से हाथ धोना पड़ा बल्कि शाप भी झेलना पड़ा।

'तुमने क्योंकि अपने पिता के लिए कष्ट उठाने से इन्कार किया था इसलिए तुम ही नहीं बल्कि तुम्हारे वंशज भी कभी राजा नहीं बन पाएंगे।'

इससे व्यथित होकर यदु, ययाति का राज्य छोड़कर दक्षिण की यात्रा करते हुए मथुरा पहुंच गया जो नागों का राज्य था। वहां उसके रूप-रंग और आचार-व्यवहार से धूम्रवर्ण नामक नाग बेहद प्रभावित हुआ। उसने यदु से कहा, 'मेरी बेटियों से विवाह कर लो। मेरे दामाद बन जाओ। मथुरा में ही बस जाओ।' यदु राजी हो गया, क्योंकि मथुरा के नागों का कोई राजा नहीं था; वे बुजुर्गों की परिषद द्वारा सहमति आधारित प्रणाली के माध्यम से शासित थे। उसे यह स्थिति बहुत अनुकूल लगी। अभिशप्त होने के कारण वह राजा नहीं बन सकता था। इसके बावजूद मथुरा में वह

शासक बन सकता था। यदु ने धूम्रवर्ण की बेटियों से विवाह रचाया और उन्होंने उसके बच्चे पैदा किए जिनसे विभिन्न जनजातियां निकलीं, जैसे अंधक, भोजक तथा वृषण। यदु के यह वंशज सामूहिक रूप में यादव कहलाए।

कृष्ण भी क्योंकि यादव वंश में पैदा हुए थे इसीलिए अन्य यादवों की तरह वे भी कभी राजा नहीं बन पाएंगे पर राजा बनाने में सहायक होंगे।

पुरु बहुचर्चित कुरुवंश के पितामह बन गए। कौरव और पांडव भी उन्हीं के वंशज थे।

ययाति के शाप ने ऐसे युद्ध के बीज बो दिए थे जो बहुत बाद में कुरुक्षेत्र में लड़ा जाएगाः क्योंकि उसके पीछे पीढ़ियों के स्वाभाविक प्रवाह के बजाय पुत्र की आज्ञाकारिता को अधिक महत्व दिया जाना था। इस घटना से प्रेरित होकर भीष्म भी अपने बूढ़े पिता को पुनर्विवाह के लिए योग्य बनाने के लिए अपने यौन जीवन का बलिदान कर देंगे।

- देवयानी और शर्मिष्ठा का भाग्य परस्पर बदलने के पीछे कर्मों का हाथ है- दुर्भाग्य लगने वाली घटना (देवयानी को कुएं में धकेला जाना, शर्मिष्ठा का राजकुमारी से दासी बनना) अंततः सौभाग्य साबित हुई (देवयानी को पति मिला, शर्मिष्ठा को प्रेम मिला)। शुक्र के शाप का भी उतना गहन प्रभाव नहीं हुआ-उसकी सजा दामाद की जगह पुत्री को अधिक भुगतनी पड़ी। इस प्रकार किसी भी कर्म के परिणामों की भविष्यवाणी धरती पर कोई भी नहीं कर सकता भले हीवह कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो।
- मनोविश्लेषक फ्रायड ने यूनानी किंवदंतियों पर आधारित इडिपस कॉम्प्लेक्स का सिद्धांत प्रतिपादित किया ताकि मां के स्नेह के लिए पिता से प्रतिद्वंद्विता की मानवीय आवश्यकता की व्याख्या की जा सके। पुत्र सदैव ही पिता से आगे निकलता है जिसकी वजह से वह लगातार अपराधबोध ग्रस्त रहता है। भारतीय मनोविश्लेषकों का मानना है कि भारतीय संदर्भ में यह अवधारणा अपूर्ण है। जहां पुत्र की प्रवृत्ति पिता के लिए समर्पित होने और उसके लिए प्रशंसित होने की है, उन्होंने ययाति कॉम्प्लेक्स का सिद्धांत प्रतिपादित किया है। जहां पिता अपने पुत्र से बलिदान मांगता है और उसे मिल भी जाता है। यूनानी विश्व दृष्टि दरअसल इडिपस कॉम्प्लेक्स से प्रभावित है, जिसके अनुसार अगली पीढ़ी ही समाज की विरासत प्राप्त करती है जबकि ययाति कॉम्प्लेक्स से प्रभावित भारतीय विश्व दृष्टि में समाज पर प्रभुत्व सदैव पिछली पीढ़ी का ही होता है। इससे भारतीय समाज में आधुनिकता पर परंपरा की मजबूत पकड़ होने का कारण पता चलता है।
- चंद्रवंशी हालांकि देवताओं के मूल के थे मगर ययाति के असुर राजा तथा असुर ऋषि की पुत्रियों से विवाह तथा यदु के नागवंशी स्त्रियों से विवाह से यह प्रतीत होता है कि अंतरनस्लीय और अंतरजनजातीय आदान-प्रदान भी जारी था। नागों की हत्या के लिए उनकी यज्ञ बलि का अनुष्ठान करने वाला जनमेजय दरअसल विवाह द्वारा अपने पूर्वजों के रिश्तेदारों की नस्ल को ही नष्ट कर रहा था।
- वैदिक काल में पुरुषों को अपने स्तर की तथा अपने से निचले स्तर की स्त्रियों से भी विवाह करने का अधिकार था। देवयानी से ययाति का विवाह अपवाद है; ऋषिपुत्री होने के कारण वह उच्च कुल की है। यह प्रतिलोम विवाह था– शास्त्रों के अनुसार अनुचित। राजकुमारी से दासी बनी शर्मिष्ठा से उसका विवाह अनुलोम विवाह था और इसे अधिक उपयुक्त माना गया क्योंकि यह निचले स्तर की स्त्री के साथ हुआ था। इसीलिए शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु को देवयानी के पुत्र यदु से अधिक उपयुक्त पुत्र माना गया।
- इतिहासकारों का मत है कि मथुरा की शासकीय परिषद् से नागों के ऐसी जनजाति होने का पता चलता है जो लोकतंत्र के आरंभिक चरण का पालन करते थे। वे शायद सिकंदर के भारत पर आक्रमण के बाद भारत में बसे हिंदी-यूनानियों के या तो वंशज थे अथवा उनसे संबंधित थे।
- नागवंशी स्त्रियों से यदु के वंशजों का प्रसंग करवीर माहात्म्य से आया है जिसके माध्यम से महाराष्ट्र के मंदिरों के नगर कोल्हापुर की स्थानीय किंवदंतियां उल्लिखित हैं। कृष्ण को यह कहानियां बुजुर्ग यादव विकद्रू द्वारा सुनाई गई हैं।

माधवी की क्षमाशीलता

ययाति की एक पुत्री थी, जिसका नाम माधवी था और जिसके भाग्य में चार राजाओं की मां होना निर्धारित था। एक दिन ययाति के यहां गालव ऋषि आए और उन्होंने एक काले कान वाले 800 श्वेत अश्वों की मांग कर दी। वे यह अश्व अपने गुरु विश्वामित्र को अर्पित करना चाहते थे।

ययाति के पास ऐसे घोड़े नहीं थे। ऋषि को खाली हाथ लौटाने से बचने के लिए उसने अपनी पुत्री माधवी को ऋषि को सौंपने का आग्रह किया। ययाति ने कहा, 'इसे, उन चार लोगों को सौंप दीजिएगा जो राजा के पिता बनना चाहते हों और उनमें से हरेक से 200-200 ऐसे घोड़े बदले में ले लीजिएगा।'
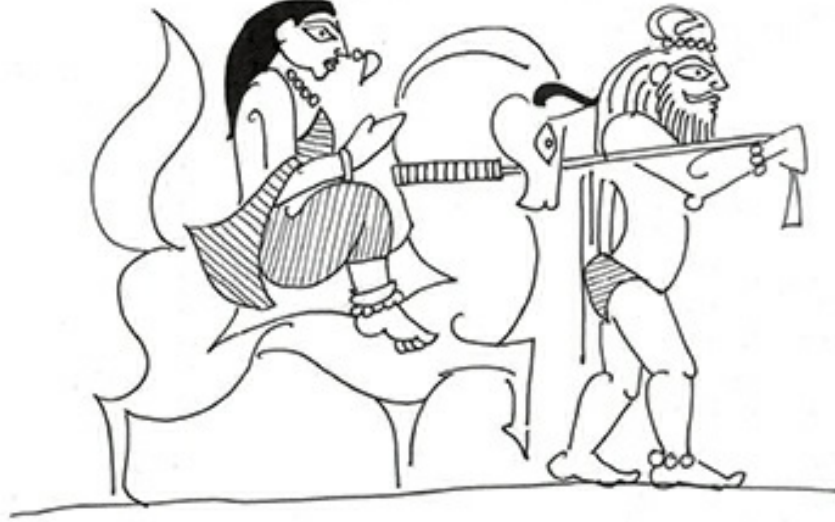
गालव ने उसके कहे अनुसार विभिन्न राजाओं से माधवी का हाथ उन्हें सौंपने का प्रस्ताव किया। तीन राजाओं ने उनकी बात मान ली: उन्हें माधवी से पुत्रों की प्राप्ति हुई और गालव को छह सौ घोड़े मिल गए। अंततः वे अपने गुरु के पास गए और बोले, 'आप जो 800 घोड़े चाहते थे उनमें से 600 मैं ले आया हूं। आप इस महिला ययाति की पुत्री माधवी से पुत्र प्राप्त कर सकते हैं और वह बाकी के 200 घोड़ों के बराबर होगा।' विश्वामित्र ने घोड़ों और माधवी को स्वीकार किया तथा उससे पुत्र प्राप्त किया। गालव इस प्रकार गुरु दक्षिणा से उऋण हुए। चार पुत्र पैदा करने के बाद माधवी अपने पिता के पास लौट आई। उसने माधवी से कहा कि वह उसकी शादी कर देगा लेकिन उसने संन्यास ग्रहण करने का निर्णय किया।

पुरु को राजपाट सौंपने के बाद ययाति इस संसार को त्यागकर स्वर्गारोहण कर गए। स्वर्ग का आनंद भी वह बहुत छोटी सी अवधि के लिए ले पाए और देवताओं ने उन्हें, वहां से बाहर निकाल दिया। ययाति ने जब इसका कारण पूछा तो देवताओं ने कहा, 'ऐसा, इसलिए हुआ ययाति कि तुम्हारे सारे पुण्य चुक गए हैं।' ययाति जंगल में धरती पर आ गिरा जहां उसकी बेटी माधवी तपस्या कर रही थी। अपने पिता के लिए दुःखी होते हुए वह अपने चारों पुत्रों के पास गई जो अब महिमामय राजा बन चुके थे और उसने, उनसे अपने पुण्यों का एक चौथाई भाग अपने नाना को देने का आग्रह किया। पुत्रों ने शुरू में तो इससे इन्कार कर दिया। 'आप, हमसे ऐसे व्यक्ति को हमारे पुण्य देने का आग्रह कैसे कर सकती हैं जिसने, आपको वस्तु समझकर विभिन्न राजाओं

के पास भेजा ताकि इस व्यापार से वह लाभान्वित हो सके।’

और माधवी ने उत्तर दिया, ‘क्योंकि वह मेरे पिता हैं और तुम मेरे पुत्र हो, उन्होंने जो कुछ भी किया उसे बदला तो नहीं जा सकता। और क्योंकि मुझे क्रोध की निरर्थकता का भान है और मैं क्षमाशीलता की शक्ति से परिचित हूं।’

अपनी माता के शब्दों से आंखें खुलने पर माधवी के चारों पुत्रें ने अपनी मां का आग्रह मान लिया। उन्होंने, अपने पुण्यों में से कुछ भाग अपने नाना को दे दिया।

पुण्य समेटकर ययाति ने अपनी पुत्री का धन्यवाद किया और देवताओं के स्वर्ग में लौट गए।

इसके बावजूद समय बीतने के साथ-साथ माधवी की क्षमाशीलता को लोग भूल गए और पांडवों तथा कौरवों में से किसी ने भी क्षमाशीलता का महत्त्व नहीं पहचाना जिसकी अंततः कुरुवंश को भारी कीमत चुकानी पड़ी।

- ययाति के प्रसंग से कर्म का महत्त्व परिलक्षित होता है। पुण्य और पाप पीढ़ियों तक चलते हैं पिता का पाप उसके पुत्र भी भुगत सकते हैं और इसीलिए ययाति के शाप को यदु और उसके वंशजों ने भी झेला। इसी प्रकार अपने बच्चों के पुण्य का भागी पिता भी बन सकता है और इसीलिए माधवी के पुत्रें ने अपने नाना को फिर से स्वर्ग भेजने में सफलता पाई।
- ययाति ने अपने पुत्र और पुत्रियों का फायदा उठाया। पुरु ने अपने पिता का शाप झेला और माधवी का गालव ने वेश्या के रूप में प्रयोग किया। पुरु को अपने कष्टों का लाभ मिला; वह राजा बना। लेकिन माधवी वनगमन कर गई और अपनी तपस्या से उसने अपने क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली। वह अपने पिता को भी क्षमा करके उसे उसके स्वर्गारोहण में सहायता करती है। तपस्या के माध्यम से क्रोध से मुक्ति पाने की प्रथा संबंधी विषय का महाभारत में बार-बार

उल्लेख हुआ है।

दूसरा अध्याय

माता-पिता

'जनमेजय,तुम्हारे कुटुंब में अपने पिता के हित के लिए पुत्र ने कष्ट उठाया।'

महाभीष, शांतनु बने

अपने जीवन काल में पुण्य कमाने के कारण महाभीष नामक राजा को स्वर्ग में प्रवेश की अनुमति मिली। वहां देवताओं की संगति में उसने अप्सराओं के नृत्य और गंधर्वों के संगीत का भरपूर आनंद उठाया। उसे सुरा भी खूब पीने को मिली। उसे कल्पतरु, कामधेनु तथा चिंतामणि तक भी पहुंचने दिया गया जबकि इनमें से हरेक के पास किसी भी कामना अथवा इच्छा को पूर्ण करने की शक्ति थी।

एक दिन इंद्र की सभा में जलपरी गंगा आई। वहीं पर हवा के एक झोंके से उसका उत्तरीय गिर गया और उसकी छातियां दिखने लगीं। वहां बैठे देवताओं ने उसके प्रति सम्मान जताते हुए अपनी नजरें झुका लीं। लेकिन महाभीष तो गंगा के यौवन पर मोहित होकर उसे बेशर्मी से घूरता रहा। मोह के इस भौंडे प्रदर्शन से इंद्र इतने कुपित हुए कि उन्होंने महाभीष को धरती पर लौट जाने का शाप दे दिया।

महाभीष की कुदृष्टि का आनंद उठाने वाली गंगा को भी इंद्र ने अमरावती से निकल जाने तथा महाभीष का दिल तोड़ने के बाद ही वापस लौट कर आने का आदेश दिया।

महाभीष का हस्तिनापुरी नगरी में प्रतीप के पुत्र शांतनु के रूप में पुनर्जन्म हुआ।

पुरु के वंशज प्रतीप ने अपने बच्चों के राजपाट संभालने लायक होने का भान होते ही संसार

को त्याग दिया। परंपरानुसार राजसिंहासन पर उसके ज्येष्ठ पुत्र देवापि को बैठना चाहिए था लेकिन देवापि को त्वचा रोग था और नियमानुसार शारीरिक कमी वाला कोई भी व्यक्ति राजा नहीं बन सकता। इसलिए उससे छोटे पुत्र शांतनु को राजपाट मिल गया। देवापि ने शांतनु की छत्रछाया को त्यागकर संन्यासी बनने का निश्चय किया।

एक दिन प्रतीप, नदी किनारे ध्यान लगाए बैठे थे तभी गंगा आई और उनकी गोद में दाहिनी ओर बैठ गई। 'रूपवती स्त्री, तुम मेरी गोद में दाहिनी ओर बैठ गई। यदि तुम मेरी गोद में बाई ओर बैठती तो उसका अर्थ तुम्हारे द्वारा मेरी पत्नी बनने की इच्छा जताना होता। अब चूंकि तुम मेरी गोद में दाई ओर बैठी हो इसका अर्थ है कि तुम मेरी पुत्री बनना चाहती हो। तुम्हारी क्या कामना है?'

गंगा ने कहा, 'मैं आपके पुत्र शांतनु से विवाह करना चाहती हूं।'

प्रतीप ने उत्तर दिया, 'ऐसा ही होगा।'

कुछ दिन बाद शांतनु जब नदी तट पर अपने पिता का हाल-चाल पूछने आया तो प्रतीप ने उससे कहा, 'गंगा नामक रूपवती स्त्री तुमसे कभी संपर्क करेगी और तुम्हारी पत्नी बनने का आग्रह करेगी। उसकी इच्छा पूरी कर देना। ऐसी मेरी कामना है।'

उसके कुछ ही समय बाद शांतनु ने गंगा को डॉल्फिन पर तैरते हुए देखा। वह एकदम से उसके प्रेम में डूब गया। उसने कहा, 'मेरी पत्नी बन जाओ।'

गंगा ने कहा, 'हां मैं बन जाऊंगी, लेकिन तुम कभी भी मेरी किसी भी गतिविधि पर आपत्ति नहीं करोगे।' अभीप्सा और अपने पिता को दिए वचन से प्रेरित होकर शांतनु ने उसकी बात मान

ली और गंगा उसके साथ घर चली आई।
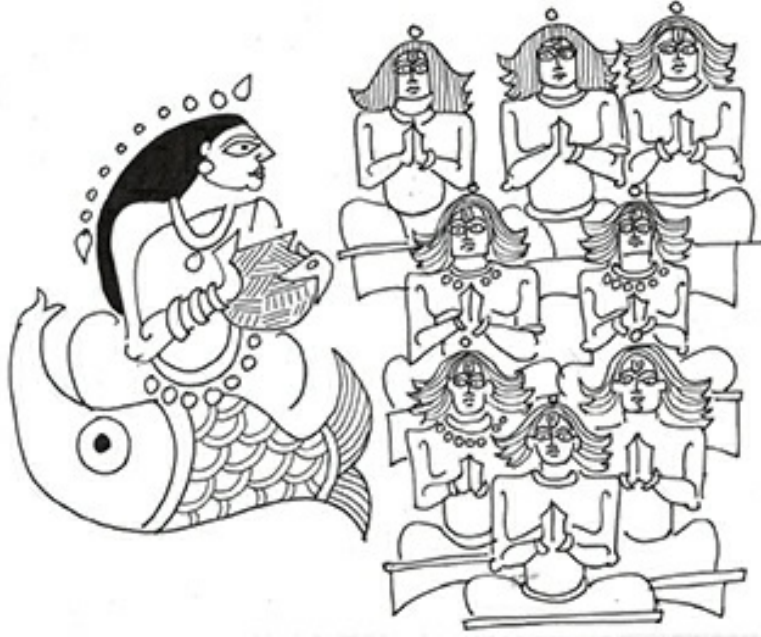
गंगा ने शीघ्र ही शांतनु के पहले पुत्र को जन्म दिया। लेकिन गंगा ने खुशी का कोई भी अवसर दिए बिना शिशु के अपनी कोख से बाहर आते ही उसे नदी में ले जाकर डुबो दिया। उसकी, इस हरकत पर अत्यंत नाराज होने के बावजूद शांतनु ने उसे कुछ भी नहीं कहा। वो अपनी रूपवान पत्नी को खोना नहीं चाहता था।

इसके एक साल बाद गंगा ने शांतनु के दूसरे पुत्र को जन्म दिया। उसने इस शिशु को भी डुबो दिया। इस बार भी शांतनु ने इस बारे में कोई विरोध प्रकट नहीं किया। गंगा ने इसी प्रकार सात शिशुओं को जन्म दिया और पानी में ले जाकर डुबो दिया। शांतनु ने एक बार भी मुंह नहीं खोला।

लेकिन गंगा जब शांतनु के आठवें बच्चे को डुबोने वाली थी तो शांतनु ने सिसक कर कहा, 'ओ निर्दयी औरत रुक जाओ और इसे जीने दो।'

गंगा रुककर मुस्कुराई। उसने कहा, 'पतिदेव आपने अपना वचन तोड़ दिया। इसलिए, अब मेरे द्वारा आपके परित्याग का समय आ गया जैसे कभी उर्वशी ने पुरुरवा को छोड़ा था। जिन बच्चों की मैंने हत्या की है वे वसु नामक आठ देवताओं में से सात थे जिन्हें वशिष्ठ की गाय चुराने पर मनुष्य की योनि में जन्म लेने का शाप मिला हुआ था। उनके अनुरोध पर मैंने उनकी माता बनना स्वीकार किया और भूमि पर होने वाले कष्टों से बचाने के लिए मैंने पृथ्वी पर उनको कम से कम समय रहने दिया। लेकिन दुर्भाग्य से मैं अंतिम शिशु को नहीं बचा पाई। शांतनु तुमने जिस आठवें वसु को बचाया है वो जीएगा तो जरूर मगर उसका जीवन अत्यंत कष्टप्रद रहेगा। पुरुष होने के बावजूद वह न तो विवाह कर पाएगा और न ही तुम्हारे राजसिंहासन का उत्तराधिकारी बनेगा। उसका, अपना कोई परिवार नहीं होगा मगर उसके बावजूद उसे गृहस्थ की तरह रहना पड़ेगा। और अंततः ऐसे पुरुष के हाथों वह शर्मनाक मौत मरेगा जो वास्तव में स्त्री होगा।'

शांतनु ने विभ्रम में कहा, 'ऐसा बिल्कुल नहीं होगा। मैं ऐसा होने ही नहीं दूंगा।'

'मैं तुम्हारे पुत्र को ले जाऊंगी और उसका लालन-पालन प्रशिक्षित योद्धा के रूप में करूंगी। उसकी शिक्षा-दीक्षा योद्धा ऋषि परशुराम से करवाऊंगी। जब वह विवाह योग्य और राजा बनने लायक हो जाएगा तो मैं उसे तुम्हारे पास भेज दूंगी। 'तब देखेंगे।' कहकर गंगा, शांतनु को एकदम अकेला छोड़कर, अपने पुत्र के साथ गायब हो गई।

- महाभारत में कर्मफल को अत्यंत महत्वपूर्ण बताया गया है। इस नियम के अनुसार दुनिया में कुछ भी तात्कालिक नहीं है। सभी कुछ अतीत की प्रतिक्रिया है। शांतनु को गंगा से प्रेम होता है और फिर उसका दिल टूटता है ऐसा उसके पूर्वजन्मों के कर्मों के कारण होता है। गंगा अपने ही बच्चों की हत्या कर डालती है। यह भी उन बच्चों के पूर्वजन्मों के कर्मों के कारण होता है। कर्म के मार्ग में बाधा पैदा करने से हित के बजाए अहित हो जाता है जैसा शांतनु द्वारा गंगा को उसकी आठवीं संतान की हत्या करने से रोकने पर होता है। यहां महागाथा हमें बार-बार यह ध्यान दिलाती है कि ऊपर से अच्छे दिखने वाले कर्म आवश्यक नहीं है कि अपने फल में भी अच्छे ही निकलें क्योंकि वे हरेक क्षण ऐसे कारकों से संचालित हैं जो कि बहुधा मनुष्य की कल्पना से परे होते हैं।
- आठ वसु प्राचीन वैदिक देव हैं जिनका संबंध तत्त्वों से है। वशिष्ठ की गाय चुराने के पाप के लिए उन्हें मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ा। उन आठों के सरदार प्रभास को सबसे अधिक कष्ट झेलना पड़ा, क्योंकि उसने वह गाय अपनी पत्नी के लिए चुराई थी। उसे अन्य सात वसुओं के मुकाबले मनुष्य योनि में देवव्रत के रूप में अधिक लंबा एवं दुःखद जीवन व्यतीत करना पड़ा।
- शांतनु द्वारा गंगा की शर्तों को आंख मूंदकर स्वीकार कर लिए जाने के माध्यम से व्यास द्वारा काम और पिता के प्रति अंध आज्ञाकारिता के खतरों के प्रति ध्यान आकर्षित किया गया है। मानवीय त्रासदियों की जड़ में असल में मनुष्य की गलतियां ही होती हैं।
- हस्तिनापुरी अथवा हाथियों के शहर का नाम पांडवों के लगभग अज्ञात पूर्वज हस्तिन के नाम पर पड़ा था। किंवदंती यह भी है कि हस्तिन दरअसल पुरु का ही दूसरा नाम था। विद्वानों का अनुमान है कि इस नगर के नाम से यह माना जा सकता है कि महाभारत काल में वर्तमान पंजाब और हरियाणा के क्षेत्र में हाथियों के झुंड जंगलों में घूमा करते थे।
- जैन कथाओं में हस्तिनापुरी प्राचीन नगरी थी जिसे स्वयं देवताओं ने निर्मित किया था। जैन धर्म के 24 महान तीर्थंकरों में से तीन–शांतिनाथ, कुंथानाथ तथा अरानाथ–इसी नगरी में पैदा हुए थे।

भीष्म का बलिदान

देवव्रत बड़ा होकर आकर्षक व्यक्तित्व का धनी राजकुमार और कुशल योद्धा बना। उसकी मां ने उसे, जब उसके पिता के पास वापस भेजा तो हस्तिनापुर की जनता ने बहुत प्यार से उसका सत्कार किया और उसके राजा बनने का इंतजार करने लगे। लेकिन ऐसा कभी नहीं हो पाया।

शांतनु दोबारा प्रेमग्रस्त हो गए थे। इस बार उन्हें सत्यवती पसंद आ गई थी। सत्यवती मछुआरन थी जो लोगों को नाव खे कर गंगा पार कराया करती थी। शांतनु, उसे अपनी पत्नी बनाना चाहने लगे। लेकिन सत्यवती ने भी शांतनु द्वारा प्रस्तुत शादी के प्रस्ताव को स्वीकार करने से पहले गंगा की तरह शर्त रख दी: उसने शांतनु से वचन मांगा कि सिर्फ उसी के बच्चे राजगद्दी के उत्तराधिकारी बनेंगे। शांतनु असमंजस में थे कि इस शर्त को कैसे मान लें क्योंकि देवव्रत पहले से ही हस्तिनापुर के युवराज थे।

देवव्रत को जब अपने पिता की मनोदशा का भान हुआ तो वह सत्यवती के पास गए और बोले, 'मेरे पिता आपसे विवाह कर सकें इसलिए मैं राजसिंहासन के लिए अपने दावे का त्याग करता हूं।'

देवव्रत के इस फैसले का हालांकि कुछ असर तो हुआ लेकिन मछुआरों के समूह के मुखिया सत्यवती के पिता तब भी संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने कहा, 'लेकिन बाद में राजसिंहासन के लिए कहीं तुम्हारी संतानें मेरी बेटी की संतानों से लड़ाई न करें। इस आशंका को टालने के लिए तुम क्या उपाय करोगे?' देवव्रत मुस्कुराए और उन्होंने बिना दुःख अथवा पश्चाताप किए ऐसा निर्णय किया जिससे उनके परिवार के इतिहास की समग्र धारा ही बदल जाने वाली थी। 'मैं आजीवन अविवाहित रहूंगा। मैं कभी किसी स्त्री का संसर्ग नहीं करूंगा। मेरी कभी कोई संतान नहीं होगी।'

देवव्रत की इस प्रतिज्ञा ने समूची सृष्टि के सभी प्राणियों को स्तब्ध कर दिया। उनसे देवता भी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने आकाश से उतरकर उन पर फूलों की वर्षा कर दी। उन्होंने उनका नया नामकरण किया भीष्म, ऐसा व्यक्ति जो कठिन से कठिन प्रतिज्ञा करने में सक्षम हो। क्योंकि यह अत्यंत कठिन प्रतिज्ञा थी। देवव्रत चूंकि आजीवन निःसंतान रहेंगे इसलिए उनकी मृत्यु के बाद उनके पुनर्जन्म का मार्ग प्रशस्त करने के लिए पृथ्वी पर कोई भी नहीं बचेगा। वे वैतरणी नदी के पार मृत्यलोक में हमेशा जीवित रहने के लिए अभिशप्त रहेंगे। देवता भी देवव्रत की इस प्रतिज्ञा से इतने अधिक दुःखी हुए कि उन्होंने भीष्म को यह वरदान दे दिया कि वे अपनी मृत्यु का समय स्वयं चुन पाएंगे।

देवव्रत द्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर लेने के बाद सत्यवती से शांतनु के विवाह में कोई अड़चन नहीं बची थी।

- भीष्मप्रतिज्ञा ययाति ग्रंथि का और एक उदाहरण है- अपने पिता की खातिर अपनी खुशियों को बलिदान कर देने वाले पुत्र का महिमामंडन।
- महाभारत के जैन संस्करण में ऐसा उल्लेख है कि देवव्रत ने आजीवन निःसंतान रहने की अपनी प्रतिज्ञा का सत्यवती को भरोसा दिलाने के लिए अपने जननांग कटवा दिए थे।
- आश्रम धर्म का आदर्श मनुष्यों से यह अपेक्षा करता है कि वे अपनी आयु के हिसाब से आचरण करें और शांतनु को इस लिहाज से अपने पिता प्रतीप की तरह वानप्रस्थी होकर देवव्रत को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने देना चाहिए था। महाभारत दरअसल देवव्रत की प्रतिज्ञा के फलस्वरूप बनी परिस्थिति की गाथा ही है अर्थात वृद्धावस्था की ओर अग्रसर पीढ़ी जब अपने स्वार्थ के लिए युवा पीढ़ी की खुशियों का बलिदान ले लेती है तब क्या कुछ घटित होता है।

मत्स्य पुत्री

सत्यवती सामान्य मछुआरन नहीं थी। उसके पिता उपरिचर नामक राजा थे जिन्होंने आखेट के दौरान किसी वृक्ष के नीचे आराम करते समय अपनी पत्नी का ध्यान किया और स्खलित हो गए। यह सोचकर कि उनका वीर्य बेकार न जाए, उसे उन्होंने पत्ते में लपेटकर तोते को इस अनुरोध के साथ सौंप दिया कि वह उसे, उनकी पत्नी के पास ले जाए ताकि वह उससे गर्भवती होकर संतान पैदा कर सके।

तोता जब उस पत्ते को मुंह में दबाए उड़ रहा था तो उस पर चील ने हमला किया और वीर्य बंधी पत्ते की पुड़िया नीचे बहती नदी में गिर गई जिसे उसमें तैर रही मछली ने खा लिया। यह मछली पहले गिरिका नामक अप्सरा रही थी और ब्रह्मा के शाप से तब तक के लिए मछली बन गई थी जब तक वह मनुष्य रूपी बच्चे को जन्म नहीं दे देती।

कुछ दिनों के बाद कुछ मछुआरों ने इस मछली को पकड़ लिया और उसके पेट में उन्हें जुड़वां बच्चे मिले : एक बालक तथा एक बालिका। उन्होंने जुड़वा बालकों को ले जाकर उपरिचर को सौंप दिया जिसने बालक को तो स्वीकार कर लिया लेकिन बालिका को लालन-पालन के लिए मछुआरों को वापस दे दिया। मछुआरों के मुखिया ने बालिका को गोद लेकर अपनी सगी बेटी की तरह उसका लालन-पालन किया। उसका नाम तो सत्यवती था लेकिन उसके शरीर से आने वाली मछली की भीषण दुर्गंध के कारण उसे मत्स्यगंधा कहकर चिढ़ाया जाने लगा।

मत्स्यगंधा लोगों को नाव में नदी पार कराती थी। एक दिन वह पराशर ऋषि को भी नदी पार करा रही थी। अचानक नदी के बीचों-बीच नदी द्वीप के पास ऋषि ने मत्स्यगंधा से संभोग करके, उससे बच्चा पैदा करने की इच्छा का प्रस्ताव रखा। उसने कहा, 'यदि आपने ऐसा किया तो मुझसे कोई भी विवाह नहीं करेगा।'

ऋषि ने कहा, 'निश्चिंत रहो,' और उन्होंने नाव के चारों तरफ घना कोहरा पैदा कर दिया और अपनी बात पूरी की, 'अपने तप की शक्ति से मैं ऐसी परिस्थिति बना दूंगा कि तुम तत्काल शिशु प्रसूत करके फिर से कुआंरी बन जाओगी। और तुम्हारे शरीर से मछली की दुर्गंध आनी भी हमेशा के लिए बंद हो जाएगी। तुम्हारे शरीर से ऐसी सुगंध फैलेगी कि पुरुष तुम्हारी ओर खिंचे चले आएंगे।'

नदी पार दूसरे छोर पर पहुंचने तक मत्स्यगंधा प्रेमिका और फिर माता तथा कुंवारी और अंततः सुगंधित स्त्री बन चुकी थी। इस संसर्ग से पैदा हुए शिशु का लालन-पालन पराशर ऋषि ने किया। उसका नाम पड़ा कृष्ण द्वैपायन अर्थात नदी द्वीप पर प्रसूत कृष्णवर्णी बच्चा। कालांतर में वे व्यास

के रूप में प्रसिद्ध हुए जिन्होंने पवित्र शास्त्रों की रचना की थी।

मत्स्यगंधा के नए सुगंधित व्यक्तित्व ने शांतनु को उसकी ओर आकर्षित किया और उसे हस्तिनापुर की महारानी बनवा दिया।

- उपरिचर के जंगल में 'स्खलित होने' तथा मछली द्वारा उसके पान की विस्तृत कहानी शायद किसी मछुआरन से राजा के अवैध संसर्ग को छुपाने के लिए गढ़ी गई थी।
- शायद ऐसा भी हो सकता है कि अपनी संतान को ही राजसिंहासन दिए जाने की सत्यवती की शर्त अपनी, उस उपेक्षा से उपजी हो जब उसके पिता राजा उपरिचर ने उनके भाई को तो अपना लिया था लेकिन उसे लालन-पालन के लिए मछुआरों को सौंप दिया था। इस कथा में आगे व्यास ने सत्यवती द्वारा अपने भाग्य परिवर्तन के लिए किए गए अतीव और कभी-कभी निर्दयी उपायों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है।
- पराशर और मत्स्यगंधा की कहानी को अधिकारसंपन्न बुजुर्ग ऋषि द्वारा किसी युवती के यौन शोषण के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है अथवा इसे यौन मेजबानी का किस्सा भी माना जा सकता है जो कि महागाथा के युग में प्रचलित थी और जिसके अंतर्गत पिता और पति अपनी बेटियों और पत्नियों को अपने मेहमानों, ऋषियों तथा राजाओं से संसर्ग के लिए परोस देते थे। अथवा इसे मत्स्यगंधा द्वारा यौन संबंध बनाने के बहाने ऋषि को अपने वश में करने की कोशिश भी माना जा सकता है।

तीन राजकुमारियां

समय बीतने के साथ सत्यवती ने शांतनु के दो पुत्रों को जन्म दिया: चित्रांगद एवं विचित्रवीर्य। उसके कुछ समय बाद ही अपनी पत्नी तथा उसके पुत्रों को भीष्म की देखरेख में सौंपकर शांतनु काल-कवलित हो गए।

सत्यवती को यह तीव्र उत्कंठा थी कि उसके पुत्र तेजी से बड़े हो जाएं, विवाह करें और संतान पैदा करें क्योंकि उसका दृढ़ निश्चय था कि वह महान राजवंश की राजमाता कहलाए।

दुर्भाग्य से चित्रांगद की मृत्यु विवाह से पूर्व ही हो गई। वह अहंकारी था और उसे उसी के नाम राशि गंधर्व ने द्वंद्व युद्ध की चुनौती दी और लंबी लड़ाई के बाद उसकी हत्या कर दी।

विचित्रवीर्य अत्यंत लजीला था और अपने लिए पत्नी का वरण नहीं कर पाया। इसलिए उसके योग्य पत्नी ढूंढ़ने की जिम्मेदारी भीष्म को सौंपी गई।

काशी नरेश ने अपनी तीन पुत्रियों- अंबा, अंबिका तथा अंबालिका के लिए स्वयंवर आयोजित किया जिसमें उन कन्याओं को वहां पधारे राजाओं में से अपने-अपने पति का वरण करना था। विचित्रवीर्य को उसके लिए निमंत्रित ही नहीं किया गया। इस पर यह खुसफुसाहट चली कि ऐसा विचित्रवीर्य के किसी भी स्त्री के लिए अयोग्य पति सिद्ध होने की आशंका के कारण किया गया था। कुछ अन्य का कहना था कि ऐसा भीष्म को अपमानित करने के लिए किया गया था जिसने ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करते समय उस स्त्री के हित को नजरअंदाज कर दिया था जिससे उनकी सगाई हो चुकी थी। वो काशी नरेश की बहन ही थी।

भीष्म ने निमंत्रित नहीं किए जाने को अपने कुल के सम्मान के लिए ठेस समझा। वह अपने घोड़े पर सवार होकर काशी गए और तीनों राजकुमारियों का अपहरण कर लाए। स्वयंवर में उपस्थित राजाओं ने प्रयास तो किया मगर उनके प्रताप के आगे सब फीके पड़ गए। भीष्म ने तीनों राजकुमारियों को लाकर अपने छोटे भाई को सौंप दिया।

काशी नरेश की सबसे बड़ी पुत्री अंबा को शाल्व से प्रेम था और उसने अपने स्वयंवर में अपने पिता द्वारा आमंत्रित राजाओं में से उसे ही अपने वर के रूप में चुनने का निश्चय किया हुआ था।

उसने याचना की, 'मुझे मेरे प्रेमी के पास जाने दो। तुम्हारी दो अन्य पत्नियां तो हैं ही। तीन पत्नियों का तुम क्या करोगे?' उस पर तरस खाकर विचित्रवीर्य और भीष्म दोनों ने ही उसे, उसके प्रेमी के पास जाने दिया।

लेकिन शाल्व ने अंबा को स्वीकार करने से मना कर दिया। उसने कहा, 'मैं किसी ऐसी स्त्री को अपनी रानी के रूप में स्वीकार कैसे करूं जिसका किसी अन्य व्यक्ति ने अपहरण किया फिर उसे दान के रूप में लौटा दिया।'

अपमानित अंबा के पास विचित्रवीर्य के यहां लौटने के अलावा कोई चारा नहीं बचा था लेकिन वहां पहुंचकर भी उसे यह कटु वचन सुनने पड़े, 'दान में दी गई वस्तु को कभी वापस स्वीकार नहीं किया जाता।'

अंबा उसके बाद भीष्म के पास गई और उनसे कहा कि वे उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें। 'मेरे इस दुःख का कारण तुम्हीं हो। तुमने यदि मेरा अपहरण न किया होता तो मेरी आज यह दुर्गति न होती। इसलिए मेरा दायित्व उठाना तुम्हारा कर्त्तव्य है। वैसे भी क्योंकि तुमने हमारा अपने रथ पर अपहरण किया था इसलिए तुम्हारा सौतेला भाई नहीं बल्कि तुम ही हमारे वास्तविक पति हो।'

भीष्म ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने हाथ हिलाकर उसे चले जाने को कहा। 'मैंने प्रतिज्ञा की है जिसके कारण मैं किसी स्त्री का संसर्ग नहीं कर सकता। अब चूंकि शाल्व अथवा विचित्रवीर्य में से कोई भी तुम्हें स्वीकार नहीं करेगा इसलिए तुम अपनी इच्छानुसार कहीं भी जाने को स्वतंत्र हो।'

अंबा बिलखते हुए बोली, 'तुमने मेरा जीवन बरबाद कर दिया। यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा से बंधकर मुझसे विवाह नहीं कर सकते थे तो तुम्हें मेरे अपहरण का क्या अधिकार था? अब मैं किसी की भी पत्नी नहीं रही।'

अंबा ने अपने अपमान का प्रतिशोध लेने में समर्थ योद्धा को पूरी पृथ्वी पर ढूंढ़ा लेकिन भीष्म का सामना करने का साहस किसी भी क्षत्रिय में नहीं था। इसलिए उसने भीष्म के गुरु परशुराम से सहायता मांगी।

परशुराम ऐसे ब्राह्मण थे जिनसे क्षत्रिय भी भय खाते थे। बल्कि वे तो क्षत्रियों से घृणा करते थे क्योंकि उनके पिता की हत्या करके उनकी गाय किसी क्षत्रिय ने ही चुराई थी। उन्होंने इसके प्रतिशोध में अपने परशु से क्षत्रियों के पांच महान वंशों की हत्या करके उनके रक्त से पांच झीलें भर दी थीं। ये पांच झीलें सामंत पंचक के नाम से प्रसिद्ध हुईं और यह कुरुक्षेत्र में स्थित थीं। परशुराम का नाम सुनकर हरेक क्षत्रिय कांप जाता था। उन्होंने अपनी राह में आने वाले हरेक क्षत्रिय की हत्या की प्रतिज्ञा की हुई थी।
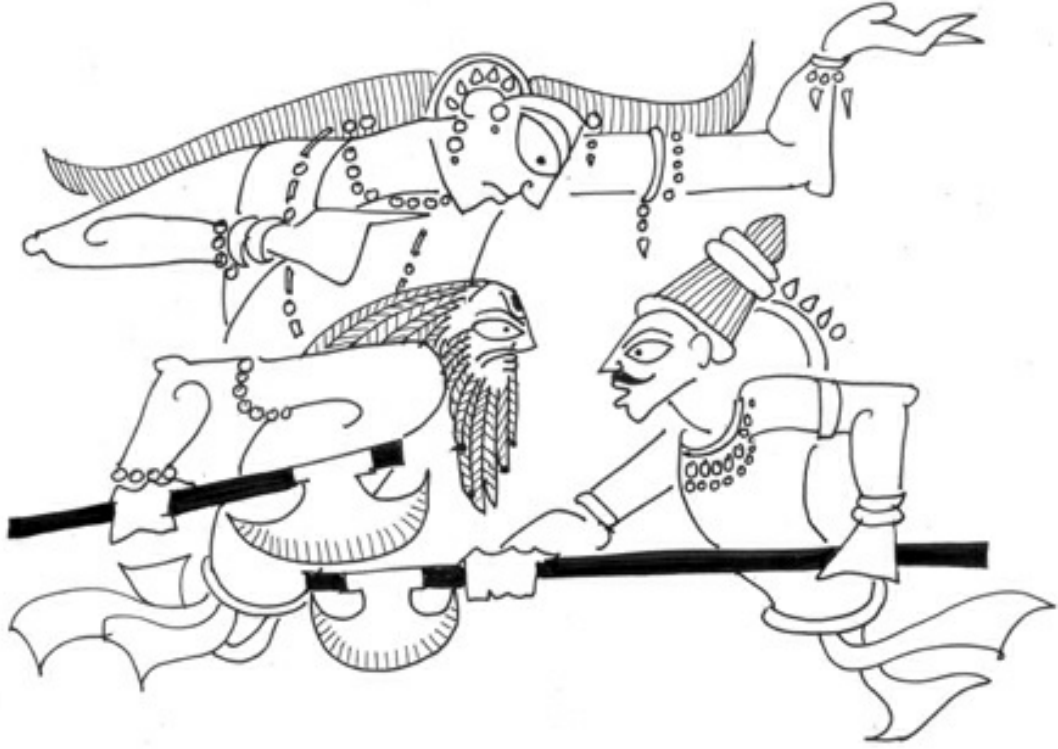
अंबा की व्यथा सुनकर परशुराम इतने विचलित हुए कि उन्होंने तत्काल अपने शिष्य को द्वंद्व युद्ध के लिए ललकार दिया। दोनों के बीच कई दिन लंबा भीषण युद्ध हुआ।

अंततः परशुराम को पीछे हटना पड़ा। उन्होंने कहा, 'भीष्म को कोई भी पराजित नहीं कर सकता और उसकी इच्छा के बिना कोई उसकी हत्या भी नहीं कर सकता। यदि यह युद्ध जारी रहा तो हम दोनों ही ऐसे भयंकर हथियार छोड़ेंगे जिनसे संसार नष्ट हो जाएगा। इसलिए इसे रोक देना ही श्रेयस्कर है।'

घोर निराशा से पीड़ित अंबा ने तभी यह संकल्प किया कि देवता जब तक उसे भीष्म की हत्या करने का उपाय नहीं बता देते तब तक न तो वह कुछ खाएगी और न ही सोएगी।

वह एक पर्वत के शिखर पर अनेक दिन एक टांग पर खड़ी रही। अंततः विनाश के भगवान शिव प्रकट हुए, 'भीष्म की मृत्यु का तुम्हीं कारण बनोगी।' शिव ने उसे वरदान दिया और कहा, 'लेकिन ऐसा तुम अपने अगले जन्म में ही कर पाओगी।' भीष्म की मृत्यु शीघ्र कराने के लिए अंबा ने अग्नि समाधि ले ली। वह पांचाल नरेश द्रुपद के यहां शिखंडी के रूप में जन्म लेगी और भीष्म की मृत्यु का कारण बनके अपनी शपथ पूरी करेगी।

- 15वीं शताब्दी में कवि संजय ने बंगाली भाषा में महाभारत लिखी जिसमें चित्रांगद की मृत्यु राजयक्ष्मा से और विचित्रवीर्य की हत्या भीष्म के पालतू हाथी द्वारा हुई बताई गई है क्योंकि वह भीष्म के निर्देश का उल्लंघन करके उनकी अनुपस्थिति में उनके प्रासाद में घुस गया था।
- विचित्रवीर्य नाम दो शब्दों से बना है। विचित्र अर्थात असामान्य तथा वीर्य अर्थात पौरुष जिससे ऐसा प्रतिध्वनित होता है कि विचित्रवीर्य या तो बेहद कमजोर था अथवा पौरुषहीन या नपुंसक था अथवा उभयलिंगी या समलिंगी था, जिसमें पौरुष की कमी थी और पत्नी के संसर्ग से बचने की चेष्टा करता था।

- अंबा के प्रसंग से यह प्रतिध्वनित होता है कि वैदिक समाज में महिलाओं का सम्मान धीरे-धीरे गिरता जा रहा था। उर्वशी, गंगा एवं सत्यवती जिन्होंने अपने विवाह प्रस्ताव करने वाले पुरुषों के सामने बाकायदा शर्तें रखी थीं उनके विपरीत अंबा और उसकी बहनें बंधक मात्र थीं–पुरस्कार स्वरूप दी जा सकने वाले स्मृति चिह्न। इरावती कर्वे के निबंध संग्रह *युगांत* में महागाथा में परिलक्षित बदलते समय को परिभाषित किया गया है।

विचित्रवीर्य की संतानों का जन्म

विचित्रवीर्य निःसंतान ही काल के गाल में समा गया था।

प्रतापी राजाओं की मां बनने का सत्यवती का सपना चूर-चूर हो रहा था।

परिस्थिति से निराश सत्यवती अंततः भीष्म के पास गई और उन्हें अपनी विधवा पुत्रवधुओं को गर्भवती करने को कहा। 'धर्मशास्त्रों में वर्णित नियोग विधि में ऐसा प्रावधान है कि वे जो भी संतान पैदा करेंगी वो उनके दिवंगत पति की संतान मानी जाएगी। मैं तुमसे वैसा करने का अनुरोध कर रही हूं जो मेरे पुत्र नहीं कर पाए।'

भीष्म ने उत्तर दिया, 'वैसा नियम भले ही हो माता, मगर मैं आपके लिए भी अपने ब्रह्मचर्य का संकल्प नहीं तोडूंगा क्योंकि मैंने यह प्रतिज्ञा आपकी संतुष्टि के लिए ही की थी।'

उद्विग्न सत्यवती ने फिर अपने पहले पुत्र कृष्ण द्वैपायन को बुलावा भेजा जो अपने पिता पराशर के साथ रह रहे थे। तब तक वे व्यास के नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे। व्यास का अर्थ है संकलनकर्ता क्योंकि उन्होंने वेदों को सफलतापूर्वक चार पुस्तकों में संकलित कर दिया था। सत्यवती ने कहा, 'मेरे पुत्र की दोनों पत्नियों को गर्भवती करो।'

व्यास का उत्तर था, 'आपकी यदि ऐसी ही इच्छा है तो मैं वैसा ही कर दूंगा। लेकिन मुझे अपने आपको तैयार करने के लिए कृपया एक वर्ष का समय दीजिए। मैं पिछले चौदह साल से वन में संन्यासी की तरह जीवन व्यतीत कर रहा था। मेरे बालों में लटें पड़ गई हैं और मेरी त्वचा खुरदुरी हो गई है। मुझे इस वीभत्स रूप में देखकर दोनों स्त्रियां डर जाएंगी।'

लेकिन सत्यवती तो अधीर हो चुकी थी। 'तुम ऐसे ही सीधे चले जाओ। वे तुम्हारा स्वागत करेंगी। तथा मैं अब और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकती।' अपनी माता की अवज्ञा के दोष से बचने के लिए व्यास पहले अंबिका के पास गए। वह उनका रूप-रंग देखकर इतनी निराश हुई कि उन्होंने जब उसे छुआ तो उसने अपनी आंखें मूंद लीं। इसीलिए उसकी कोख में व्यास का जो शिशु आया वह दृष्टिहीन पैदा हुआ। उसका नाम धृतराष्ट्र रखा गया।

उसके बाद व्यास अंबालिका के पास गए। व्यास को देखकर वह भयभीत होकर पीली पड़ गई। इस संसर्ग के फलस्वरूप उसकी कोख में जो शिशु आया वह कमजोर और पीतवर्णी पैदा हुआ। इसलिए उसका नाम पांडु रखा गया।

असामान्य पौत्रों के जन्म से निराश सत्यवती ने फिर आदेश किया, 'अंबिका के पास दुबारा जाओ। इस बार वह अपनी आंखें बंद नहीं करेगी।'

व्यास ने फिर उनकी आज्ञा का पालन किया। लेकिन बिस्तर पर अंबिका के बजाय उसकी दासी लेटी थी जिसने निडर होकर व्यास से संसर्ग किया। उसकी कोख में जो शिशु आया वह स्वस्थ एवं बुद्धिमान हुआ। उसका नाम विदुर रखा जाएगा। राजा बनने के सुयोग्य होने के बावजूद उसे दासी पुत्र होने के कारण राजमुकुट नहीं पहनने दिया जाएगा।

विदुर दरअसल मृत्यु के देवता यम का ही अवतार था। जो कि शापित हो गया था। यह घटना कुछ इस प्रकार घटी।
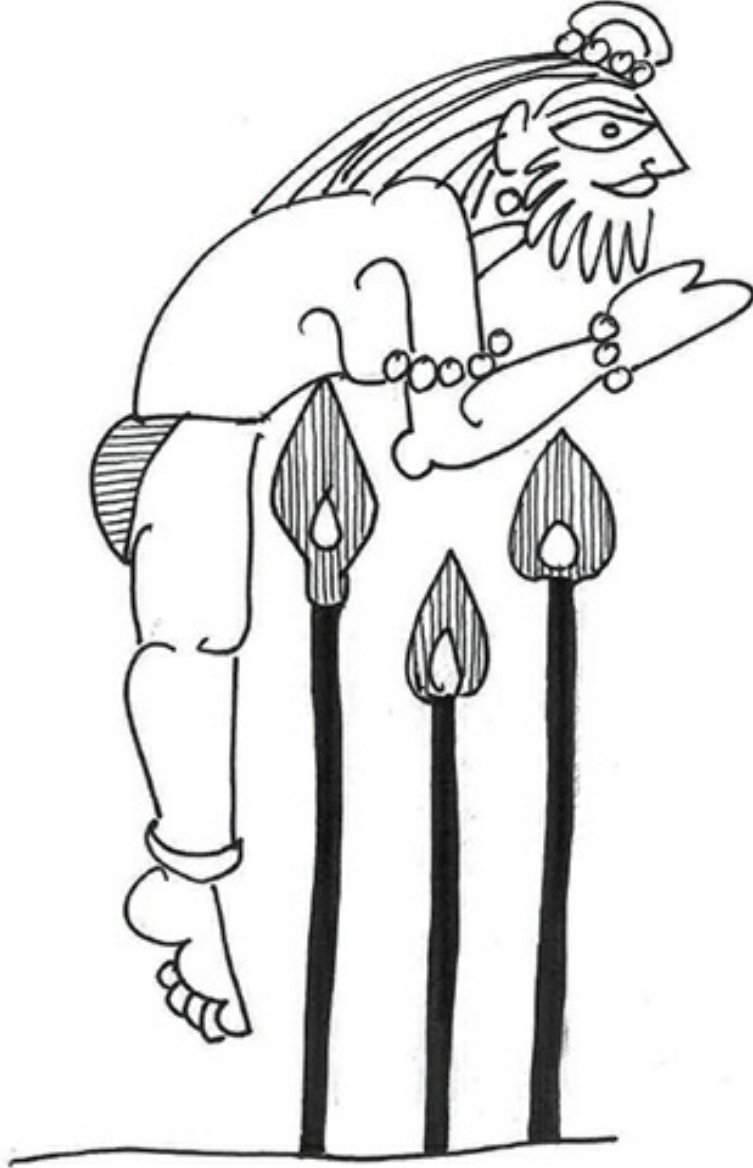
चोरों के गिरोह ने कभी मांडव्य ऋषि के आश्रम में शरण ली थी। ऋषि उस समय ध्यान में लीन थे इसलिए उन्हें, उनकी उपस्थिति का भान ही नहीं हुआ। राजा के सिपाहियों ने जब उन्हें आश्रम से पकड़ा तो मांडव्य ऋषि पर उनकी सहायता करने का आरोप लगाकर उन्हें सजा में यंत्रणा दी गई और उन्हें भाले से बींधकर मार दिया गया। वे जब यम के सामने प्रस्तुत हुए तो उन्होंने कहा कि मैंने आजीवन किसी भी जीव-जंतु को चोट नहीं पहुंचाई फिर मुझे इस प्रकार यंत्रणा क्यों दी गई। यम ने उत्तर दिया, ‘हां आप जब बच्चे थे तब आपने ऐसा किया था। तब आप सींक लेकर उससे कीट-पतंगों को बींधा करते थे। आप यह यंत्रणा उठाकर अपने कर्मों का फल भुगत रहे हैं।’ मांडव्य ने यह कहकर विरोध किया कि बचपन में तो व्यक्ति निश्छल होता है इसलिए तब के अपराधों की सजा देना अन्याय है। यम ने निस्पृह भाव से उत्तर दिया, ‘यही कर्मफल का नियम है।’ इससे रुष्ट होकर मांडव्य ने यम को यह शाप दिया कि उसे मनुष्य योनि में जन्म लेकर

आदर्श शासक के सभी गुणों से परिपूर्ण होने के बावजूद कभी भी राजा बनना नसीब नहीं होगा। और इसीलिए विदुर का जन्म हुआ था।

धृतराष्ट्र, पांडु तथा विदुर का पालन-पोषण भीष्म ने अपने सगे पुत्रों की तरह किया। भाग्य की विडंबना सभी को दृष्टिगोचर थी। भीष्म जिन्होंने अपना परिवार कभी नहीं बनाने की प्रतिज्ञा की थी वही अब अपने पिता के खानदान में उलझ गए थे जिनमें सौतेली मां, दो विधवा भाभियां, उनकी दासी तथा तीन भतीजे शामिल थे।

- भीष्म कुरुवंश के अंतिम उत्तराधिकारी थे। उनके पिता ने सत्यवती से जो पुत्र पैदा किए वे निःसंतान मृत्यु को प्राप्त हुए। उनके बाद राजपरिवार की संतानें असली कुरुवंशी नहीं हैं; वे खानदान की पुत्रवधुओं द्वारा प्रसूत अन्य पुरुषों की संतान हैं।
- व्यास ने प्रकृति प्रदत्त विसंगतियों को दुरुस्त करने में मानवीय नियमों की कमजोरी के प्रति ध्यान आकर्षित किया है। सत्यवती का पुत्र निःसंतान मृत्यु को प्राप्त हो गया लेकिन नियोग विधि से वह मृत्योपरांत भी पिता बन सकता है। इस प्रकार धृतराष्ट्र और पांडु की माताओं को व्यास द्वारा गर्भवती करने के बावजूद वे विचित्रवीर्य के 'पुत्र' कहलाए।
- नियमानुसार विधिसम्मत विवाहित पत्नी की संतानें ही वास्तविक पुत्र हो सकती हैं, रखैल की संतान नहीं। इसलिए सिर्फ पांडु और धृतराष्ट्र ही राजा बनने योग्य हैं, विदुर नहीं। हालांकि विदुर सबसे अधिक योग्य हैं।
- विदुर के पिछले जन्म का प्रसंग यह बताने के लिए उल्लिखित है कि अच्छे लोगों के साथ बुरी घटनाएं क्यों घटती हैं। कर्मफल के नियम की और विस्तृत व्याख्या में जाएं तो इससे पता चलता है कि अनजाने में अथवा नासमझी के दौर में भी किए गए कर्मों का फल वर्तमान जीवन में अथवा अगले जन्म में भी भुगतना ही पड़ता है। उनसे उऋण नहीं हुआ जा सकता।
- मृत्युदेव यम को धर्म भी माना जाता है अर्थात व्यवस्था के देवता। निस्पृह देवता जो मृत्यु एवं भाग्य का लेखा-जोखा रखता है और कर्मफल के नियम को कड़ाई से लागू करता है।

तीसरा अध्याय

जन्म

'जनमेजय तुम्हारे कुटुंब में अपनी पत्नियों से संसर्ग का देवताओं से आग्रह करके नपुंसक पुरुष भी पिता बने।'

सत्यवती की पौत्रवधुएं

हस्तिनापुरी के दक्षिण में यमुना नदी के तट पर यादव परिषद का समृद्ध मथुरा नगरी पर राज था। यादव परिषद के सदस्य शूरसेन के पृथा नाम की पुत्री थी। उस पुत्री को शूरसेन के रिश्ते के भाई कुंतीभोज ने गोद लेकर उसका नाम कुंती रख दिया था।

कुंती की विवाह योग्य आयु होने पर राजा ने स्वयंवर का आयोजन किया। उसने स्वयंवर में उपस्थित राजाओं में से पति के रूप में पांडु का वरण किया।

लगभग उसी समय गांधार की राजकुमारी गांधारी को हस्तिनापुरी लाकर धृतराष्ट्र से उसका विवाह करा दिया गया। विवाह के समय गांधारी को यह बताया ही नहीं गया था कि उसका भावी पति दृष्टिहीन है। इस बात का पता चलने पर उसने, अपने पति का दुःख बांटने के लिए स्वयं भी आंखों पर हमेशा के लिए पट्टी बांध लेने का निर्णय किया।

इसका कारण आज तक नहीं बताया गया कि पांडु के लिए कुंती के रहते दूसरी पत्नी क्यों खरीदी गई थी। हालांकि अनेक विद्वानों को यह शक है कि ऐसा कुंती से संतान पैदा करने में पांडु के अक्षम सिद्ध होने के कारण किया गया था। पांडु की दूसरी पत्नी माद्री थी। वह मद्र देश के राजा शल्य की बहन थी। दूसरी पत्नी को खरीदने की परंपरा सामान्यतः पहली पत्नी में बांझपन का शक होने पर ही लाई जाती थी। लेकिन कुंती के गर्भाधान में सक्षम होने का बाकायदा सबूत थाः उसने शादी से पहले भी चुपचाप एक बच्चे को जन्म दिया था। उसके विवाह पूर्व संबंधों से जुड़ी अफवाहों के कारण उसकी प्रतिष्ठा पर लगे धब्बे ने ही शायद पांडु को दूसरी पत्नी लाने के फैसले के लिए प्रवृत्त किया।

ज्येष्ठ पुत्र होने के बावजूद दृष्टिहीन होने के कारण धृतराष्ट्र को राजसिंहासन पर नहीं बैठने दिया गया। धृतराष्ट्र को नजरअंदाज करके पांडु को राजा घोषित कर दिया गया जैसे देवापि की जगह शांतनु को राजगद्दी सौंपी गई थी। इस निर्णय से दृष्टिहीन युवराज को गहन ईर्ष्या हुई लेकिन उसने कभी अपनी ओर से ऐसी किसी बात का विरोध नहीं किया गया क्योंकि उसे राजकाज के नियमों का भलीभांति ज्ञान था। जहां कुछ नियमों की सहायता से पिता की मृत्यु के बाद भी वह विचित्रवीर्य का वैध पुत्र कहलाया वहीं कुछ अन्य नियमों ने उसके राजा बनने की राह में बाधा डाल दी। रात में अपने बिस्तर पर दृष्टिहीन राजकुमार ने अपनी पत्नी से कहा, 'गांधारी हमें पांडु से पहले ही शीघातिशीघ्र पुत्र पैदा कर लेना चाहिए ताकि मेरे अधिकार को वह दोबारा प्राप्त कर सके।'

- वैदिक साहित्य में पुरुष और स्त्री के विवाह के आठ विभिन्न प्रकार वर्गीकृत किए गए हैं। 1. गांधारी के समान यदि किसी जरूरतमंद व्यक्ति को कन्यादान कर दी जाए, यह सृष्टि के पालक प्रजापति द्वारा नियत पद्धति है। 2. यदि कोई वधू स्वयं के बजाए अपने द्वारा लाए गए दहेज के लिए स्वीकृत की गई हो, यह सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा द्वारा प्रतिपादित पद्धति है हालांकि वह अपनी ही बनाई सृष्टि में फंसे हुए हैं। 3. यदि कोई पुत्री अपने पिता के लिए की गई सेवाओं के बदले शुल्क के रूप में दे दी जाए, यह स्वर्ग के निवासी देवताओं की पद्धति है। 4. यदि कोई पुत्री गाय एवं सांड के साथ पूजा-पाठ के लिए दान कर दी जाए तो यह ऋषि पद्धति है। 5. यदि शकुंतला एवं कुंती के समान कोई युवती अपना पति स्वेच्छा से चुनती है तो यह गांधर्व पध्दति है। 6. यदि माद्री कि तरह किसी स्त्री को खरीदा जाए तो यह संपत्ति को पाताल ले जाने वाले असुरों की पध्दति है। 7. यदि अंबिका एवं अंबालिका की तरह किसी युवती का अपहरण कर लिया जाए तो यह जंगली राक्षसों की पध्दति है। 8. यदि किसी युवती से बलात्कार किया जाए तो यह पिशाचवृत्ति है।
- अपने पति की दृष्टिहीनता को बांटने के लिए गांधारी ने जिस प्रकार अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली उससे उसे सती का दर्जा हासिल हो गया। गाथा में कुछ अंतराल के बाद अपने बलिदान के बदले उसे कुछ अलौकिक शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं। नाट्यकारों की राय में गांधारी ने अपनी आंखों पर पट्टी दरअसल दृष्टिहीन व्यक्ति से अपना विवाह कर दिए जाने के विरोधस्वरूप बांधी थी। शोषण बर्दाश्त करने के बजाए वह अपने-आपको ही विकलांग बना लेती है।
- गुजरात के डूंगरी भीलों के भील भारत ग्रंथ में कुंती और गांधारी को महादेवी शक्ति से जोड़े जाने का प्रसंग है। सात ऋषि कहीं तपस्या कर रहे थे। इसका रहस्य जानने के लिए शिव और शक्ति गरुड़ों के रूप में उस स्थान पर गए लेकिन हवा के दबाव में मादा गरुड़ ऋषियों के त्रिशूल पर गिरकर बिंध गई। ऋषियों ने जब यह देखा तो वे बहुत व्यथित हुए और उन्होंने मृत पक्षी को फिर से जीवित करने के लिए अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के प्रयोग का निर्णय किया। मृत पक्षी में से दो स्त्रियां उभरकर आईं: हड्डियों में से गांधारी तथा मांस में से कुंती।
- नियमानुसार शारीरिक रूप में सक्षम व्यक्ति ही राजा बन सकता है। इसलिए दृष्टिहीन धृतराष्ट्र को नजरअंदाज करके उसके छोटे भाई पांडु को राजा बना दिया गया। विडंबना यह है कि पांडु भी शारीरिक रूप में अक्षम है लेकिन उसकी विकलांगता (नपुंसत्व) दृष्टिहीनता की तरह दिखाई नहीं देती।

कुंती की संतानों का जन्म

अपने दूसरे विवाह के कुछ समय बाद, पांडु कभी आखेट करने गया जिसकी वजह शायद ये थी कि वह गर्भाधान में अति सक्षम माद्री को गर्भवती बनाने में अपनी अक्षमता की कुंठा निकालना चाहता था। क्या वह अपने पीछे अपने पिता की तरह दो निःसंतान विधवाओं को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त होगा?

पांडु का तीर हिरण को जा लगा। पांडु ने नजदीक पहुंचकर देखा कि उसके तीर ने हिरण को हिरणी से संसर्ग करते समय बींधा था। बात बस इतनी ही नहीं थी। वह हिरण और हिरणी दरअसल किंडम ऋषि और उनकी पत्नी थे। ऋषि ने अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के बल पर खुलेआम संसर्ग करने के लिए स्वयं और अपनी पत्नी को पशु योनि में बदल दिया था।
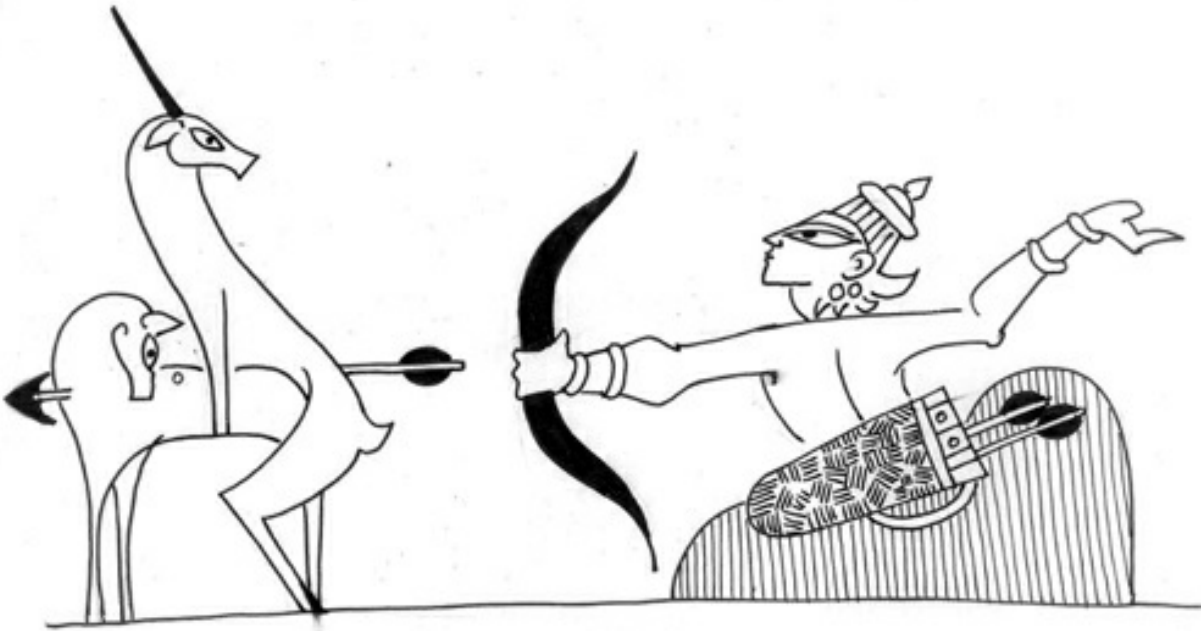
अपनी मृत्यु से पहले किंडम ऋषि ने पांडु को यह शाप दे दिया, 'तुम, जिसने एक पुरुष को एक स्त्री से संसर्ग करने से इतने हिंसक रूप में बाधित किया है। तुम्हें अब संसर्ग का सुख कभी प्राप्त न हो। संसर्ग की नीयत से स्त्री का स्पर्श करते ही तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।'

इस घटना से निराश पांडु को लगा कि संतान पैदा करने में अक्षम पुरुष तो राजा बनने योग्य भी नहीं है। इसलिए उसने हस्तिनापुरी लौटने से इन्कार कर दिया। उसने शतश्रृंग के वन में अन्य ऋषियों के साथ साधु जीवन व्यतीत करने का निर्णय

साधु बनने के पांडु के निर्णय की हस्तिनापुर में जैसे ही भनक लगी उसकी पत्नियां फौरन उसके पास पहुंच गईं। उन्होंने पाया कि वह वन में अपने राजसी वस्त्र छोड़कर पत्तों के वस्त्र बनाकर पहने हुए है और ऋषियों का संग कर रहा है।

पांडु ने कुंती और माद्री से कहा, 'वापस लौट जाओ। मैं तुम लोगों को अब कभी दांपत्य सुख नहीं दे पाऊंगा।' दोनों स्त्रियों ने इसके बावजूद उसके साथ वन में ही रहने की जिद की। क्योंकि

सुख हो या दुख हो पत्नियों का धर्म अपने पति का साथ देने में ही निहित है।

पांडु की अनुपस्थिति में भीष्म के सामने हस्तिनापुर का राजमुकुट धृतराष्ट्र के सिर पर रखने के अलावा कोई चारा नहीं बचा था। यह शायद हस्तिनापुरी के भाग्य में बदा था कि उस पर दृष्टिहीन राजा तथा आंखों पर पट्टी बांधे उसकी रानी शासन करें।

कुछ महीनों के उपरांत ही पांडु को यह समाचार मिला कि धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी गर्भवती है। यह समाचार पाकर वह दुखी हुआ। भाग्य ने उससे तो उसका राजपाट छीन ही लिया साथ ही उसकी ऐसी हालत बना डाली कि वह भावी राजा भी पैदा नहीं कर पाएगा।
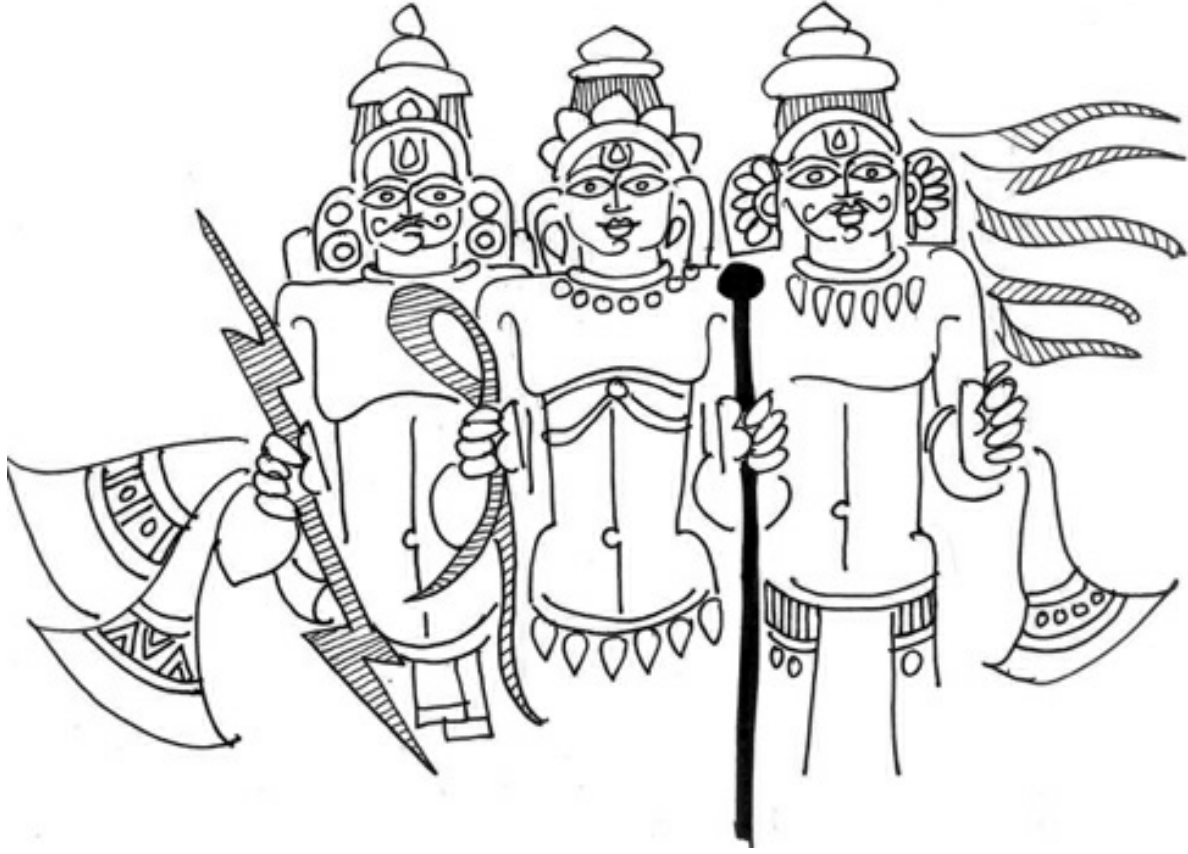
कुंती ने अपने पति को ढाढ़स बंधाया। एक काल ऐसा भी था जब स्त्रियां अपनी मर्जी से किसी भी पुरुष के साथ संसर्ग करने को स्वतंत्र थीं। ऋषि श्वेतकेतु ने इसे समाज के लिए अनिष्टकारी मानते हुए विवाह संबंधी नियम बनाए क्योंकि उन्होंने, अपनी माता द्वारा अन्य ऋषियों के साथ संसर्ग के प्रति अपने पिता उद्दालक को बेपरवाह रहते देखा था। श्वेतकेतु द्वारा विवाह के नियमन के पीछे भावना यह थी कि स्त्रियां अपने पतियों से बंधकर रहें ताकि सभी पुरुषों को यह पता चल सके कि उनका असली पिता कौन है। वे सिर्फ अपने पतियों के शिशुओं का ही गर्भाधान कर सकती थीं और यदि उनके पति उन्हें गर्भवती करने में अक्षम सिद्ध होते तो भी वे अपने पति द्वारा नियत पुरुष से ही संतानोत्पत्ति कर सकती थी। पत्नी द्वारा इस संबंध के फलस्वरूप नियोजित बच्चों को पिता का नाम ही मिलता था। भले ही उन्हें पैदा करने में उसका योगदान हो अथवा

नहीं, इसीलिए बुध ग्रह का पिता बृहस्पति ग्रह ही है भले ही तारा की कोख में उसका गर्भाधान चंद्रमा द्वारा किया गया था। इसीलिए आप विचित्रवीर्य के पुत्र हो भले ही उन्होंने आपकी माता को गर्भवती नहीं किया था।

पांडु ने इस नियम का लाभ उठाने का निर्णय किया। उसने किसी ऋषि को अपनी पत्नियों के पास भेजने की ठान ली थी। तभी कुंती ने पूछा, 'ऋषि क्यों जब मैं देवों का ही आह्वान कर सकती हूं।' पांडु ने उसे प्रश्नवाचक निगाहों से घूरा। कुंती ने बताया, 'मैं जब युवती थी तो ऋषि दुर्वासा मेरे पिता के घर आए। मेरे पिता ने मुझे उनकी सेवा का भार सौंप दिया। मेरी लगन और सेवा से प्रभावित होकर उन्होंने, मुझे यह वरदान दिया कि मैं कभी भी स्वर्ग से किसी भी देवता का आह्वान करके तत्काल संतान प्रसूत कर सकूंगी। शायद उन्होंने यह पहले ही ताड़ लिया था कि मुझे अपने जीवनकाल में ऐसी किसी विधि की आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए आपकी इच्छा हो तो मैं यह विधि अपना सकती हूं और आपके द्वारा प्रस्तावित किसी भी देवता से संतान प्रसूत कर सकती हूं।'

कुंती ने अपने पति को यह नहीं बताया कि उत्सुकतावश एक बार उसने सूर्य देवता का आह्वान करके संतान पैदा की थी। अपने सम्मान की खातिर उसने बच्चे को टोकरी में लेटाकर नदी की धारा में बहा दिया था। इस घटना के पश्चात्ताप की अग्नि में वह आजीवन जलती रही।

अपनी परिस्थिति का हल सुझाने से खुश होकर पांडु ने कहा, 'यम का आह्वान करो, वह धर्म का देवता है और सभी राजाओं का आदर्श है।' कुंती ने वरदान का प्रयोग करके यम का आह्वान किया और संतान प्रसूत कर दी। उसका नामकरण युधिष्ठिर हुआ। वह सभी मनुष्यों से सबसे ईमानदार सिद्ध होगा।

उसके बाद पांडु ने कुंती से वायु देवता के आह्वान का अनुरोध किया, 'क्योंकि वह सभी देवताओं में सबसे बलिष्ठ, हनुमान के पिता हैं।' उनके संसर्ग से पैदा हुई संतान का नाम भीम रखा गया। वह मनुष्यों में सबसे अधिक बलिष्ठ होगा।

कुंती ने उसके बाद देवताओं के राजा और आकाश के शासक इंद्र का आह्वान किया। उनके संसर्ग से प्रसूत पुत्र का नाम अर्जुन रखा गया। वो संसार में सबसे कुशल धनुर्धर सिद्ध होगा और तीर को अपने दाएं एवं बाएं दोनों हाथों से साध सकेगा। कुंती ने चूंकि अपने पति से बिना पूछे ही अपनी मर्जी से इंद्र का आह्वान किया था इसलिए इंद्र का पुत्र अर्जुन उसे सबसे अधिक प्रिय था। सिर्फ उसी को सब पार्थ कहते थे अर्थात पृथा का पुत्र।

पांडु ने अर्जुन के जन्म के बाद कहा, 'और किसी देवता का आह्वान करो।'

कुंती ने उत्तर दिया, 'नहीं मैं चार लोगों का संसर्ग कर चुकी। मैं यदि अब और किसी का आह्वान करूंगी तो मुझे वेश्या माना जाएगा। धर्मशास्त्रों में ऐसा ही उल्लेख है।' पांडु ने सोचा कि कुंती जिन चार लोगों का जिक्र कर रही है उनमें तीन देवता और एक वह खुद रहा होगा। लेकिन कुंती तो विवाहोपरांत उन तीन देवताओं का उल्लेख कर रही थी जिन्होंने उसे तीन पुत्र दिए थे और चौथा देवता वह था जिसने उसे विवाह से पहले ही पुत्र दिया था- ऐसा राज जो उसने किसी को नहीं बताया था।

- किंडम ऋषि की दुर्घटनावश हत्या का प्रसंग ऐसा लगता है कि पांडु के नपुंसत्व को छुपाने अथवा उसकी व्याख्या करने के लिए बाद में जोड़ा गया है।

- श्वेतकेतु को पितृसत्तात्मक समाज का रचयिता माना जा सकता है। उसके द्वारा विवाह को नियमबद्ध करने से पूर्व महिलाओं को पूर्ण यौन स्वतंत्रता थी। स्त्रियां किसी भी पुरुष से संसर्ग कर सकती थीं और जो उसके, इस प्रस्ताव को ठुकराता था उसे नपुंसक माना जाता था। समाज द्वारा औरतों को यह आजादी दिए जाने के पीछे शायद संतान प्रसूति को सबसे अधिक महत्त्व दिए जाने की मानसिकता थी ताकि वंश में आगे पूर्वज फिर से धरती पर जन्म ले सकें। श्वेतकेतु ने स्त्रियों के लिए यौन वर्जना पर इसलिए जोर दिया ताकि सभी बच्चों को अपने जैविक पिता का पता चल सके यदि अपने नपुंसत्व, अनुर्वर अथवा अपनी मृत्यु के कारण कोई पुरुष बच्चे पैदा करने में अक्षम होता था तो अपने पति अथवा ससुराल की अनुमति से वह संतानोत्पत्ति के लिए दूसरे पुरुष के पास जा सकती थी।
- संतान प्रदान करने में पति के विफल होने पर स्त्री उसकी अनुमति से अधिकतम तीन परपुरुषों से ही संसर्ग कर सकती थी। अपने पति को मिलाकर वह स्त्री इस प्रकार अपने जीवनकाल में अधिकतम चार पुरुषों से संसर्ग कर सकती थी। यदि वह पांचवें पुरुष से संबंध बनाती तो उसे वेश्या समझा जाता था। यह नियम महागाथा में तब और भी प्रखर रूप में प्रकट होता है जब कुंती, द्रौपदी से अपने पांचों पुत्रों का विवाह करा देती है।
- वैदिक रीति से विवाह की रस्मों में कहीं-कहीं विवाह के समय युवती सबसे पहले प्रेम के देवता चंद्रमा से ब्याही जाती है, उसके बाद बेहद कामुक विश्ववसु नामक गंधर्व से, उसके बाद अग्नि देवता से जो अपने संपर्क में आने वाली वस्तु व व्यक्ति को साफ करके शुद्ध कर देते हैं और अंततः उसके मनुष्य रूपी पति से उसका विवाह कराया जाता है। इस प्रकार 'चर्तुपुरुष' परंपरा निभाई जाती है। इससे स्पष्ट है कि समाज में हिंदू स्त्रियों के पुनर्विवाह पर रोक लगाने के लिए ही ऐसा किया गया है।
- सरलादास द्वारा ओड़िया महाभारत में भीम के जन्म के समय शेर की गर्जना होती है। कुंती अपने नवजात को वहीं छोड़ डरकर भाग जाती है लेकिन भीम इतना बलिष्ठ है कि वह बाघ के सिर पर लात मारकर उसे पीछे धकेल देता है। और एक बार लात मारकर वह पहाड़ तोड़ देता है। पहाड़ से माफी मांगते हुए कुंती पहाड़ के हरेक टूटे हुए अंग को स्थानीय देव प्रतिमा में बदल देती है।

गांधारी की संतानों का जन्म

गांधारी इस बात को जानकर बहुत नाराज हुई कि कुंती उससे पहले ही मां बन गई। वह उससे बहुत पहले ही गर्भवती हो गई थी लेकिन उसकी गर्भावस्था रहस्यमय तरीके से दो साल लंबी चली।

वो और इंतजार नहीं कर पा रही थी इसलिए उसने ये भयानक निर्णय किया कि वह जबर्दस्ती अपने बच्चों को जन्म देगी।

गांधारी ने अपनी दासियों से लोहे का डंडा लाने को कहा। जब दासियां डंडा ले आई तो उसने, उन्हें वह डंडा अपने पेट पर मारने का आदेश दिया। दासियां हिचकिचाईं। गांधारी चिल्लाई, 'मारो।' दासी ने डरते-डरते उसके आदेश का पालन करते हुए रानी के पेट पर लोहे का डंडा दे मारा। गांधारी बोलती रही, 'और मारो, दोबारा मारो, फिर मारो।' दासियां लोहे के डंडे से उसके पेट को तब तक पीटती रहीं जब तक उसकी कोख हिलने नहीं लगी और उससे गोल मांसपिंड निकलकर बाहर नहीं गिर पड़ा। वह पिंड लोहे की तरह ही ठंडा था।

गांधारी ने पूछा, 'क्या यह रो रहा है? यह बालक है अथवा बालिका?' दासियों ने जब बताया कि उसकी कोख से क्या निकला है तो गांधारी जार-जार रोने लगी। भाग्य ने उस पर भीषण अत्याचार किया था।

उसने व्यास ऋषि को बुलावा भेजा। गांधारी ने उनसे पूछा, 'आपने मुझसे कहा था कि मैं 100 पुत्रों की माता बनूंगी। वे कहां हैं?' गांधारी के दुःख से द्रवित व्यास ने उसकी दासियों से मांसपिंड को सौ टुकड़ों में बांटने और उन टुकड़ों को घी भरे मर्तबानों में डाल देने को कहा। उन्होंने गांधारी को बताया कि यह टुकड़े अगले एक साल तक इसी में रहेंगे और तुम्हारे पुत्रों के रूप में बाहर आएंगे।

गांधारी ने पूछा, 'क्या मेरी कोई पुत्री भी हो सकती है।' व्यास मुस्कराए और दासियों को मांसपिंड को 101 टुकड़ों में बांटने का आदेश दिया।

इस प्रकार गांधारी और धृतराष्ट्र के सौ पुत्र और एक पुत्री पैदा हुए। इन्हीं पुत्रों के समूह को कौरव कहा गया।

इनमें ज्येष्ठ दुर्योधन था। कुंती ने जिस दिन भीम को जन्म दिया उसी दिन उसका मर्तबान भी टूटा और राजप्रासाद के कुत्ते रोने लगे। विदुर ने धृतराष्ट्र को सलाह दी, 'यह बालक दुर्भाग्य का कारण बनेगा, भाई, इसे यहीं समाप्त कर देना ठीक रहेगा।'

गांधारी ने नवजात को छाती से चिपकाकर कहा, 'मुझे कोई चिंता नहीं है। मेरे इस पुत्र का अनिष्ट कोई नहीं करेगा। ये मेरी पहली संतान है, मेरा चहेता।'

उसके दूसरे पुत्र का नाम दुःशासन पड़ा।

पुत्री का नाम दुःशला रखा गया। उसका विवाह सिंधुराज जयद्रथ से हुआ था।

अपनी पत्नी के लंबे चले गर्भाधान काल में धृतराष्ट्र ने किसी दासी का संसर्ग कर लिया था। उससे धृतराष्ट्र का पुत्र युयुत्सु पैदा हुआ। विदुर की तरह ही वह भी बेहद क्षमतावान था लेकिन दासीपुत्र होने के कारण उसका राजा बनना निषिद्ध था।
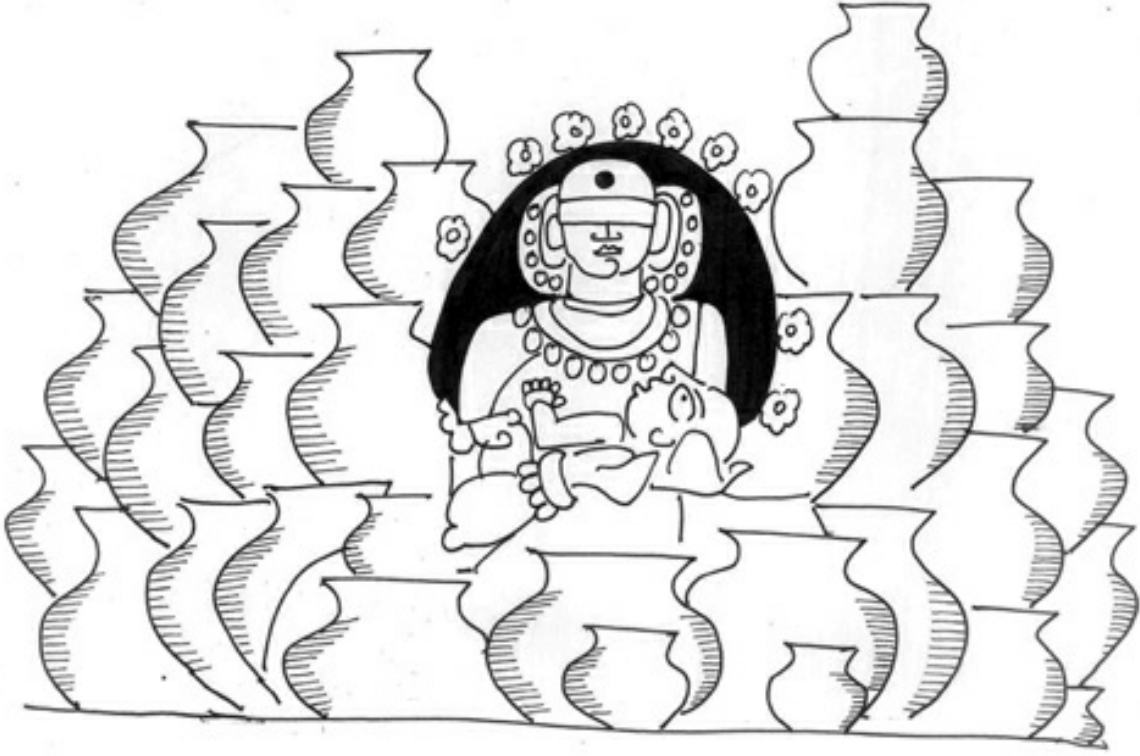
सामान्य धारणा के विपरीत व्यास ने गांधारी और कुंती दोनों को ही महत्त्वाकांक्षी स्त्रियों के रूप में प्रस्तुत किया है जो राजसी घराने में पुत्रों का मूल्य बखूबी समझती थीं।

- वधुओं के लिए पारंपरिक रूप में हिंदू समाज में यही आशीर्वाद दिया जाता है, 'शतपुत्रवती भवः।' गांधारी द्वारा व्यास को वही आशीर्वाद याद दिलाया जाता है। लेकिन उसे पुत्री की उत्कंठा भी रहती है। इस प्रकार कुरु खानदान में 105 पुत्र (100 कौरव एवं 5 पांडव) और एक पुत्री दुःशला हुई। दुःशला पूरे परिवार की इतनी अधिक लाड़ली थी कि उसके पति जयद्रथ द्वारा बार-बार अनैतिक आचरण के बावजूद उसे क्षमा किया जाता रहा।
- विद्वानों को यह संदेह है कि गांधारी की संतानों का चमत्कारिक जन्म कहीं प्राचीन ऋषियों द्वारा सिद्ध तंत्र विद्याओं का परिणाम तो नहीं था। शायद वे गर्भपात के मांसपिंडों को मंत्रपूत घी के मर्तबानों में डालकर अपनी सिद्धि के बल पर हृष्ट-पुष्ट शिशुओं का रूप देने में समर्थ थे। अथवा यह सब कवि की कोरी कल्पना भी हो सकती है। कवि की कोरी कल्पना का विचार दिमाग में इसलिए कौंधता है कि गांधारी की 101 संतानों को सजीव रूप देने के लिए बुलाए गए ऋषि स्वयं व्यास हैं जिन्होंने यह गाथा लिखी है।
- तर्कशील लोगों का मानना है कि गांधारी के मात्रा दो पुत्र थे दुर्योधन एवं दुःशासन क्योंकि महागाथा में उसके 100 पुत्रों में से इन्हीं दो पुत्रों की भूमिका बार-बार और महत्त्वपूर्ण रूप में सामने आती है। वे शायद जुड़वां बच्चे थे, 'दो वर्षीय' गर्भावस्थाकाल का अर्थ शायद 'जुड़वां' की गर्भावस्था ही था।

माद्री की संतानों का जन्म

पांडु ने कुंती से कहा, 'तुम लोगों को चूंकि अन्य पुरुषों के पास नहीं भेजा जा सकता, इसलिए माद्री के लिए भी किसी देव का आह्वान कर दो। उसे भी मातृ सुख दे दो और मुझे और पुत्रों का

पिता बनने का अवसर प्रदान करो।'

कुंती ने आज्ञा का पालन करते हुए माद्री से पूछा, 'कौन से देव का आह्वान करूं?

माद्री ने उत्तर दिया, 'अश्विनी कुमारों का।' तत्काल प्रातःकाल और संध्याकाल के तारों के दोनों देवता साक्षात प्रकट हुए और माद्री को जुड़वां पुत्र प्रदान कर दिए: संसार में सबसे आकर्षक पुरुष नकुल तथा संसार में सबसे ज्ञानी पुरुष सहदेव।

पांडु ने फिर कुंती से आग्रह किया, 'माद्री अभी और देवताओं का संसर्ग कर सकती है, इसलिए किसी और देवता का आह्वान करो।'

लेकिन कुंती ने मना कर दिया। एक ही बार आह्वान में माद्री ने चतुराईपूर्वक जुड़वां देवताओं को बुलाया और एक साथ दो पुत्रों की मां बन गई। उसे यह भय सताने लगा कि यदि उसने फिर आह्वान किया तो माद्री देवताओं के किसी अन्य समूह को बुलाकर कम से कम तीन, चार, पांच और सात पुत्र भी एक साथ प्राप्त कर सकती है। और इसके साथ ही उसके मुकाबले माद्री अधिक पुत्रों की मां बन जाएगी। कुंती भला ऐसा क्यों होने देती, वो किसी भी स्थिति में कनिष्ठ पत्नी को अपने से अधिक पुत्रवान होते और उसके साथ ही अधिक सत्तावान होते नहीं देख सकती थी।

पांडु के पांच पुत्र जिनमें से तीन कुंती के तथा दो माद्री के पुत्र थे, पांडवों के रूप में प्रसिद्ध हुए। सामूहिक रूप में पांच पुत्रों में आदर्श राजा के पांचों गुण विद्यमान थे—ईमानदारी, बल, कौशल, रूप-रंग और बुद्धि।

- कुंती और माद्री को गर्भवती बनाने वाले 'देवता' क्या वास्तविक देव थे अथवा पांडु की कमियों की भरपाई के लिए रस्मी भूमिका निभाने वाले ऋषिगण थे? इस बारे में भैरप्पा के कन्नड़ उपन्यास *पर्व* में उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि सूर्य के साथ कुंती के विवाह पूर्व संसर्ग का प्रसंग भी सच पर पर्दा डालने का प्रयास है क्योंकि उसके पिता ने उसे आदेश दिया था कि मेजबानी के नियमों का पालन करते हुए वह ऋषि दुर्वासा की हरेक कामना पूर्ण करे। महाभारत में कम से कम ऐसे दो प्रसंग हैं जिनमें यौन आवभगत का जिक्र है, जिसके अनुसार मेहमान की आवभगत के लिए मेजबान की पत्नी अथवा पुत्री तक परोस दी जाती थी। पराशर ऋषि के साथ सत्यवती के संसर्ग को भी कभी-कभी यौन आवभगत के रूप में ही परिभाषित किया जाता है। कभी बहुत अच्छी प्रथा समझी जाने वाली इस प्रथा पर समय बीतने के साथ भारी आपत्ति जताई जाने लगी।
- कुंती ने इस आशंका से माद्री का और देवताओं से संसर्ग नहीं होने दिया कि उसके यदि कुंती से अधिक संतान हो गई तो उसका प्रभाव अपेक्षाकृत बढ़ जाएगा। इस लघु प्रसंग के माध्यम से व्यास हमें यह बताना चाहते हैं कि सत्ता की भूख सिर्फ पुरुषों तक सीमित नहीं है। समूची महागाथा में माद्री की संतानें कुंती की संतानों की छत्रछाया में ही प्रतीत होती हैं। इस पहलू को महाभारत के आधुनिक पुनर्कथनों में बहुधा नजरअंदाज कर दिया जाता है जबकि वास्तव में वो राजप्रासाद की राजनीति के दांवपेंच में पारंगत थी। इसीलिए उसने कभी भी अपने विवाह पूर्व राज की किसी को भनक भी नहीं लगने दी। उसी ने अपने पति को उन नियमों की जानकारी दी जिनसे वह पिता बन सकता था और बाद में भी उसने इसके लिए पूरा प्रयास किया कि उसके, अपने और माद्री के पुत्र एकजुट रहें जबकि माद्री का भाई महाभारत में कौरवों के साथ चला गया था।
- पांडु की दो पत्नियों द्वारा आहूत देवता वैदिक काल के आरंभिक देव हैं जिनके नाम थे: यम, इंद्र, वायु तथा अश्विनी कुमार। न तो कुंती ने और न ही माद्री ने शिव अथवा विष्णु अथवा ब्रह्मा का आह्वान किया, जो भगवान के स्वरूप हैं। सर्वसत्ता संपन्न ईश्वर की धारणा हिंदू विचार प्रवाह में बाद की घटना प्रतीत होती है। इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि महागाथा पहली बार वैदिक काल में प्रसूत हुई जिस जमाने में तात्त्विक आत्माओं में आस्था का बोलबाला था। बाद में भक्ति का प्रसार होने अर्थात ईश्वर के प्रति दीवानगी की हद तक समर्पित हो जाने को श्रेष्ठ समझे जाने के कारण इस गाथा में भगवान तथा शिव एवं विष्णु एवं कृष्ण के विचार जोड़े गए।

पांडु की मृत्य

पांडु वन में अपनी दोनों पत्नियों और पांचों पुत्रों तथा अन्य अनेक ऋषियों के साथ आनंदमय जीवन व्यतीत कर रहा था। लेकिन युवा होने के कारण उसका, अपनी पत्नियों से संसर्ग करने का मन भी हो आता था।

एक दिन माद्री द्वारा अपने शरीर पर पहने गए झीने वस्त्रों में से उसे ऐसा लगा मानों उसका शरीर सूर्य की भांति दमक रहा है। उसे माद्री बेहद रूपवान प्रतीत हुई। उसने मोहित होकर माद्री का जैसे ही स्पर्श किया किंडम ऋषि के शाप के फलस्वरूप पांडु की मृत्यु हो गई। इस घटना से अत्यंत विचलित माद्री अपने दोनों पुत्रों को कुंती को सौंपकर स्वयं पांडु के साथ सती हो गई।

उसके बाद वनवासी ऋषियों ने पांडु की विधवा और उसके पांचों पुत्रों को ले जाकर हस्तिनापुर छोड़ दिया ताकि उनका लालन-पालन कुरुओं के राजघराने में राजकुमारों की तरह हो सके।

पांडु को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था लेकिन उसने, अपने पुत्रों के अलावा किसी को भी इस बात का भान नहीं होने दिया। अपने पुत्रों को उसने चुपचाप यह बता दिया था, 'वर्षों लंबे ब्रह्मचर्य तथा वन में ध्यान-पूजन के द्वारा मुझे विशिष्ट आध्यात्मिक शक्तियां एवं ज्ञान प्राप्त हो गया है। यह मेरे शरीर में निहित है। इसलिए मेरी मृत्यु के बाद मेरा मांस खा लेना तो तुमको वह सारा ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। वही तुम्हारी असली विरासत होगी।'

पांडु की मृत्यु के बाद उसके शरीर की चिता पर अंत्येष्टि कर दी गई। इस वजह से उसकी संतानें अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं कर पाईं। लेकिन सहदेव ने देखा कि चींटियां उसके पिता की चिता में से मांस का छोटा सा टुकड़ा ले जा रही थीं। उसने, उस टुकड़े को उठाकर अपने मुंह में डाल लिया। ऐसा करते ही उसे दुनिया का समग्र ज्ञान प्राप्त हो गया—अतीत में क्या हुआ था और भविष्य में क्या होने वाला है।

वह अपनी माता तथा भाइयों को इस बारे में बताने के लिए लपका, लेकिन तभी किसी अजनबी ने उसे रोका और पूछा, 'तुम ईश्वर से दोस्ती करना चाहते हो?'

सहदेव ने कहा, 'हां।'

'फिर अपने ज्ञान को बिना मांगे किसी से भी मत बांटो। और जब कोई सवाल पूछा जाए तो उसका उत्तर भी प्रश्नवाचक दो।' सहदेव ने बाद में दिव्य दृष्टि से यह जान लिया कि वह अजनबी स्वयं कृष्ण थे। सहदेव के पास चुप रहने के अलावा कोई चारा नहीं था। हालांकि उसे सभी घटनाओं का ज्ञान हो जाता था लेकिन उनके बारे में वह कभी किसी को कुछ भी नहीं बता पाया अथवा अवश्यंभावी को टालने के लिए कभी कुछ भी कर नहीं पाया।

उसे धीरे-धीरे यह बात समझ में आई कि भविष्य की जो जानकारी उसे हो जाती है वह प्रकृति की गहन निगरानी एवं विश्लेषण से प्राप्त की जा सकती है। इसलिए उसने विभिन्न तंत्र-मंत्र विद्या संकलित करके मनुष्यों को भविष्यवाणी करने योग्य बनाया।

जहां तक उसका अपना प्रश्न है, सहदेव अपने से सही प्रश्न पूछे जाने का इंतजार करता था। लोगों ने उससे अनेक प्रश्न किए मगर सटीक प्रश्न कभी नहीं किए। इसलिए कुंती के पांच पितृहीन पुत्रों में सबसे छोटा वह हमेशा उद्विग्न और अकेला रहता था।

- महाभारत में पति की चिता पर आत्मदाह कर लेने की विधवा प्रथा अर्थात सती का प्रसंग आता अवश्य है लेकिन ऐसे सभी मामले ऐच्छिक हैं। इस हिंसक प्रथा के अनुगमन के लिए कोई भी स्त्रियों को मजबूर नहीं करता। अंत्येष्टि की वैदिक रस्मों में पति के शव के पास विधवा से लेटने को कहने का प्रसंग तो आता है लेकिन उसके बाद उसे वापस खड़े होकर अपने घर लौट जाने को भी कहा जाता है। उसे पुनर्विवाह अथवा कम से कम पति के परिवार के अन्य पुरुष सदस्यों से संसर्ग का अधिकार भी दिया गया था, वो अन्य व्यक्ति सामान्यतः पति का छोटा भाई होता है। सिकंदर महान के साथ भारत आने वाले यूनानी लेखकों ने भी उत्तर भारत में सती प्रथा का उल्लेख किया था। लगभग 500 सीई के आसपास सामाजिक कर्मकांड नियमावलियों में सती प्रथा शामिल हो गई थी। इसके साथ ही लोककथाओं तथा पूजा-पद्धतियों का भी यह सामान्य विषय बन गया था।
- दक्षिण भारत में सहदेव को ज्योतिष शास्त्र, चेहरा देखकर भाग्य पढ़ने तथा भविष्यवाणी के अन्य प्रकारों में भी पारंगत माना जाता है। वहां आज भी ऐसे व्यक्ति को आपसी बातचीत में 'सहदेव' ही पुकारते हैं जो समूची जानकारी होने के बावजूद उसे कभी जताता नहीं तथा बातों को गुप्त रखता है।

चौथा अध्याय

शिक्षा

'जनमेजय तुम्हारे पूर्वजों ने और गुरु दक्षिण में आधा राज्य देकर शिक्षक को व्यापारी और ब्राह्मण को योद्धा बना दिया था।'

कृपा एवं कृपी

शांतनु को वन में जुड़वां बच्चे–एक बालक एवं एक बालिका–अनाथ अवस्था में मिले। उन्हें शेर की खाल पर लिटाकर उनके पास त्रिशूल एवं एक पात्र रख दिया गया था। उससे यह आभास हुआ कि वे किसी ऋषि की संतान थे। वे ऋषि शारद्वान तथा जनपदी नामक अप्सरा की संतान थे। शांतनु ने उनका नाम कृपा एवं कृपी रखा तथा राजप्रासाद में ही उनका लालन-पाल न किया।

कृपा बड़ा होकर शिक्षक बन गया। भीष्म ने अपने संरक्षण में आए पांडु के पांच पुत्रों तथा धृतराष्ट्र के 100 पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा का भार कृपा को सौंप दिया।

कृपी का विवाह द्रोण से कर दिया गया। द्रोण, भारद्वाज ऋषि के पुत्र थे। द्रोण ऐसे पात्र में पैदा हुए थे जिसमें उनके पिता ने घृताची नामक अप्सरा को देखकर स्खलित होने पर अपना वीर्य जमा कर दिया था। समय बीतने पर कृपी ने अश्वत्थामा नामक पुत्र को जन्म दिया। द्रोण अत्यंत गरीब थे। उनकी गरीबी का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उनके घर में गाय तक नहीं थी। अश्वत्थामा इसीलिए बड़े होते समय दूध का स्वाद ही नहीं जानता था। उसे दूध और चावल के मांड में भी अंतर पता नहीं था।

गरीबी से त्रस्त होकर कृपी ने अंततः द्रोण को एक दिन अपने बचपन के मित्र पांचाल नरेश द्रुपद के पास जाकर गाय मांग लाने को तैयार किया। द्रोण ने अपनी पत्नी को बताया, 'बचपन में हम इतने गहरे दोस्त थे कि उसने अपनी समूची संपत्ति मेरे साथ बांटने का वायदा किया था।'

दुर्भाग्य से द्रोण ने द्रुपद को जब बचपन का वायदा याद दिलाया तो वह उपहासपूर्वक हंसने लगा, 'मित्रता बराबरी के लोगों में होती है। हम तब मित्र थे। अब मैं समृद्ध राजा और तुम गरीब ब्राह्मण हो। हम मित्र कैसे हो सकते हैं। मित्रता के नाम पर गाय लेने का प्रयास मत करो; भिक्षा

मांगो और मैं तुम्हें गाय दान कर दूंगा।'

द्रुपद की बातों से अपमानित और घायल मनोदशा में द्रोण, पांचाल से तत्काल कूच कर गए और मन में यह ठान लिया कि एक दिन द्रुपद को उसके बराबर हैसियत का बनकर दिखाएंगे।

- कृपा, कृपी और द्रोण अवैध संतान हैं। उनका जन्म अप्सराओं द्वारा ऋषियों को अपने रूपजाल में विभ्रमित करके उनकी ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा तुड़वा देने के फलस्वरूप हुआ था। महाभारत में ऐसा अनेक बार हुआ है जबकि उसमें संन्यासी जीवन के बजाय गृहस्थ जीवन को अधिक श्रेष्ठ माना गया है। महागाथा काल उन दोनों मान्यताओं के अनुयायियों के बीच तनाव का काल दर्शाया गया है जो भौतिक सुविधाओं को भोगने के हामी थे और जो उन सुविधाओं के त्याग को ही जीवन का प्रयोजन समझते थे।
- महागाथा के युग में राजाओं द्वारा ऋषियों की देखभाल की परंपरा थी। इसके लिए वे या तो दान करते थे अथवा उनकी सेवाओं के बदले दक्षिणा दे दिया करते थे। द्रुपद द्वारा भी द्रोण को ऋषि पुत्र स मझकर उसे दान देने की बात कही गई। द्रोण इसलिए क्रोधित हैं कि उन्हें मित्रवत एवं बराबरी से आतिथ्य नहीं मिला। इस प्रकार द्रुपद शिष्टाचार (धर्म) का निस्पृह अनुयायी है जबकि द्रोण सामाजिक विभाजन से अछूते मानवीय स्नेह और सम्मान के इच्छुक थे। द्रुपद एवं द्रोण के बीच में विवाद दरअसल दिल और दिमाग के बीच द्वंद्व का था। द्रोण के माध्यम से व्यास ने कामना से पैदा होने वाले विभ्रम को दर्शाया है।
- आइए जरा द्रुपद द्वारा द्रोण से किए गए व्यवहार की गकृष्ण एवं सुदामा के प्रसंग से तुलना की जाए। द्रुपद एवं द्रोण के समान ही वे दोनों भी घनिष्ठ मित्र थे। उनमें से भी एक समृद्ध राजसी व्यक्तित्व तथा दूसरा गरीब ब्राह्मण था। इसके बावजूद द्रुपद के विपरीत कृष्ण द्वारा सुदामा को भरपूर मान और दान दिया गया। कृष्ण के लिए उदारता की भावना धर्म में अंतर्निहित थी। सच्चे प्रेम के बिना नियम-कानून सब व्यर्थ हैं।

गुरु द्रोण

द्रोण ने परशुराम के यहां जाकर उस महान ब्राह्मण योद्धा से युद्ध कौशल सीखा। परशुराम ने

कहा, 'मेरे द्वारा प्रदत्त ज्ञान कभी भी क्षत्रियों को मत देना।' द्रोण ने ऐसा कभी नहीं करने की प्रतिज्ञा की।

लेकिन परशुराम का आश्रम छोड़ते ही द्रोण अपनी प्रतिज्ञा भूल गए। वे सीधे हस्तिनापुरी गए ताकि कुरु राजकुमारों को समर विद्या सिखाकर वे द्रुपद से प्रतिशोध ले सकें।

द्रोण जब हस्तिनापुरी पहुंचे तो देखा कि कुरु राजकुमार किसी कुएं में गिरी अपनी गेंद को बाहर निकालने के लिए परेशान हैं। द्रोण ने राजकुमारों की सहायता का निर्णय किया। उन्होंने घास का तिनका उठाया और उसे कुएं में इतने जोर से फेंका कि वह सीधे गेंद में गड़ गया। फिर उन्होंने घास का और एक तिनका फेंका जो गेंद में गड़े तिनके के ऊपरी सिरे में गड़ गया। उसके बाद उन्होंने घास का तीसरा तिनका फेंका जो कुएं के भीतर घास के दूसरे तिनके में गड़ गया और शीघ्र ही उन्होंने घास के तिनके पर तिनके गड़ा कर उसे ऐसे श्रृंखलाबद्ध कर दिया कि उसके साथ गेंद को कुएं से बाहर खींचा जा सके।

उसके बाद द्रोण ने अपनी अंगूठी कुएं में गिरा दी। उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाकर उसे कुएं में ऐसे छोड़ा कि वह पानी को चीरता हुआ अंगूठी को पिरोते हुए लौटकर कुएं के बाहर आ गया।

अपनी आंखों से देखी गई घटनाओं से चमत्कृत बालक दौड़े-दौड़े राजप्रासाद में पहुंचे और भीष्म को कुएं के पास मिले अजनबी योद्धा ब्राह्मण के कारनामों की जानकारी दी। भीष्म ने कृपा से कहा, 'आओ उसे राज गुरु नियुक्त कर दें।'

कृपा अपने बहनोई की नियुक्ति से अत्यंत प्रसन्न हुए। लेकिन द्रोण ने शर्त रख दी। 'मैं चाहता हूं कि गुरु दक्षिणा के रूप में मेरे शिष्य अपने कौशल का प्रयोग करके पांचाल नरेश द्रुपद को जीवित बंदी बनाएं।'

कुरू राजकुमारों ने कहा, 'ऐसा ही होगा।'

द्रोण ने सौ कौरवों और पांच पांडवों को अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। शीघ्र ही युधिष्ठिर भाला चलाने में, अर्जुन धनुर्विद्या में, भीम, दुर्योधन और दुःशासन गदा चलाने में और नकुल तथा सहदेव तलवारबाजी में प्रवीण हो गए।

समय बीतने के साथ कौरव और पांडव युद्ध कला में निपुण हो गए। द्रोण की गुरु दक्षिणा से उऋण होने का समय निकट आ गया। वे घोड़ों पर सवार होकर पांचाल राज्य में पहुंचे और द्रुपद की गायों को जबरन हांक कर उसे युद्ध की चुनौती दे दी।

द्रुपद जब अपनी गायों को बचाने के लिए अपनी नगरी से सेना सहित आता दिखा तो अर्जुन बोला, 'हमारे गुरु की इच्छा है कि हम द्रुपद को जीवित बंदी बना लें। हमें, उसकी सेना से उलझ कर अपना ध्यान नहीं बंटाना चाहिए। उससे हम थक जाएंगे।' अर्जुन की बात का सार पांडवों को तो समझ में आया मगर दुर्योधन चूंकि पांडवों की सारगर्भित बात से भी कभी सहमत नहीं होता था, इसलिए उसने अपने सौ भाइयों को द्रुपद की सेना से भिड़ जाने का आदेश दे दिया। उन्होंने चढ़ाई कर दी मगर पांडव पीछे ही खड़े रहे।

कौरव इधर पांचाल सेना से भिड़ने में मशगूल थे उधर अर्जुन ने युद्ध के रथ पर चढ़ कर युधिष्ठिर से अनुरोध किया, 'आप हमारे गुरु के पास जाएं। हम चारों पांचाल नरेश को पकड़ कर आपके पास लाते हैं।' अपनी गदा को जंगली हाथी की तरह घुमाते भीम की अगुआई और नकुल तथा सहदेव की तलवारों से रक्षित पहियों वाले अपने रथ को लेकर अर्जुन, पांचाल सेना को चीरते हुए तेजी से सीधे द्रुपद की ओर बढ़ा। कौरवों से निपटने में मशगूल द्रुपद इस हमले से भौंचक्का रह गया। अर्जुन ने उसे संभल कर अपनी रक्षा को उद्धत होने का अवसर दिए बगैर ही झपट कर उसे जमीन पर गिराया और काबू कर लिया। भीम ने उसे रस्से से बांधा और अपने रथ पर बैठा कर पांडव उसे सीधे द्रोण के पास ले गए।

द्रोण ने बेबस द्रुपद से कहा, 'मेरे शिष्य तुम्हें तभी मुक्त करेंगे जब तुम अपने राज्य का आधा भाग इन्हें सौंप दोगे।' उसने फौरन हामी भर दी। उसके बाद द्रोण बोले, 'मेरे शिष्य पांचाल राज्य के आधे गंगा के उत्तर वाले क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं। तुम्हारा राज अब सिर्फ दक्षिणी भाग तक सीमित रह जाएगा।'

कुरू राजकुमारों ने अपने गुरु को पांचाल का विजित क्षेत्र, गुरु दक्षिणा के रूप में सौंप दिया। द्रोण ने उसे मुदित होकर स्वीकार कर लिया। उसके बाद द्रुपद की ओर गरदन घुमाकर राज गुरु बोले, 'अब मैं पांचाल के आधे भाग का अधिपति हूं और तुम बाकी के आधे हिस्से के राजा हो। हम अब बराबर हो गए। क्या अब हम मित्र बन सकते हैं?'

द्रुपद ने अपने दिल में छुपी बदले की आग को दबाते हुए कहा, 'हां'।

- ऋषियों से यह अपेक्षा थी कि वे सिर्फ आध्यात्मिक क्रिया-कलाप में व्यस्त रहें तथा समाज से दूर रहें। आध्यात्मिक क्रिया-कलाप से उन्हें अनेक चमत्कारिक शक्तियां प्राप्त हो जाती थीं। समय बीतने के साथ-साथ भौतिक सुखों की कामना को दबाने में विफल होने पर ऋषिगण भी समाज की मुख्यधारा में शामिल हो गए। इस प्रकार ऋषिगण दो हिस्सों में विभाजित हो गए। उनमें से कुछ तो निर्जन में तपस्या करने में मगन रहे और तपस्वी अथवा योगी कहलाए। कुछ अन्य विषय वासना को अंगीकार करके विद्वान, पुजारी तथा गुरु हो गए, जिन्हें ब्राह्मण कहा गया। पराशर और भारद्वाज तपस्वी थे जबकि कृपा और द्रोण ब्राह्मण की श्रेणी में थे।
- परशुराम जैसे कुछ ऋषियों ने जप-तप के साथ-साथ क्षत्रिय समुदाय के अत्याचारों के विरोध में हथियार भी उठाए। इसके विपरीत शकुंतला के पिता कौशिक जैसे कुछ क्षत्रिय ऋषि बन गए क्योंकि उन्हें यह ज्ञान हो गया था कि सच्ची शक्ति हथियारों में नहीं जप-तप में है। महागाथा का युग दरअसल संक्रमण काल था।
- शिक्षा-दीक्षा में उस समय वैदिक ऋचाएं, कर्मकांड और दर्शन के साथ ही साथ उपवेदों का अध्ययन भी कराया जाता था। जिनमें युद्धकौशल (धनुर्वेद), स्वास्थ्य (आयुर्वेद), नाट्य (गंधर्ववेद), काल गणना (ज्योतिषशास्त्र), अंतरिक्ष (वास्तुशास्त्र) राजकाज (अर्थशास्त्र) शामिल थे।
- शिक्षा-दीक्षा संपन्न होने पर गुरु का आश्रम छोड़ने से पहले शिष्यों द्वारा गुरु दक्षिणा दी जाती थी। गुरु दक्षिणा का अर्थ था, ऐसा शुल्क जिसके बाद शिक्षक के प्रति शिष्य के सभी दायित्व पूरे हो जाते थे। आदर्श परिस्थितियों में गुरु दक्षिणा के रूप में शिक्षक अपने जीवनयापन के लिए आवश्यक दक्षिणा ही स्वीकार करते थे। लेकिन द्रोण ने और भी बहुत कुछ प्राप्त किया।
- वैदिक काल में संपत्ति के तीन रूप थेः पालतू पशु जिनमें गाय, घोड़े और हाथी शामिल थे, भूमि जिसे चरागाह, खेतों तथा फलोद्यानों के रूप में प्रयोग किया जाता था एवं स्वर्ण तथा मणि-मुक्ता। वैदिक काल में अधिकतर युद्ध भी पालतू पशुओं और भूमि पर अधिकार पाने के लिए ही हुए।

महानतम धनुर्धर, अर्जुन

कुरु राजकुमारों को दीक्षित करते हुए द्रोणाचार्य कुछ विशिष्ट कौशल उन्हें सिखाने से हिचक रहे

थे। वो कौशल वे सिर्फ अपने पुत्र अश्वत्थामा को सिखाना चाहते थे। अर्जुन को इस बात का भान हो गया। इसलिए वह द्रोण से चिपक कर रहने लगा। द्रोण जहां भी जाते वह उनके साथ रहता। द्रोण के हर कला-कौशल को सीखने को उद्यत अर्जुन कभी भी पिता-पुत्र को अकेला नहीं छोड़ता था। इससे सिर्फ अश्वत्थामा को कोई विशिष्ट विद्या सिखा पाना द्रोण के लिए दूभर हो गया। इसके परिणामस्वरूप अर्जुन और अश्वत्थामा ने कुछ ऐसी गुप्त विद्याएं सीखीं जिनके बारे में द्रोण के किसी अन्य शिष्य को भनक भी नहीं लग पाई।

नदी में नहाते हुए कभी द्रोण का पांव मगरमच्छ ने अपने मुंह में दबोच लिया, अर्जुन हमेशा की तरह अपने गुरु का अनुगमन कर रहा था, उसने आव देखा न ताव फौरन धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाया और मगरमच्छ को बींध दिया। मगरमच्छ को बींध के उसने द्रोण को बचा लिया। अर्जुन द्वारा अपना पीछा किए जाने से चिढ़ने वाले द्रोण के मन में इस घटना से उसके लिए अगाध स्नेह भर गया। उन्होंने, अर्जुन को विश्व का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाने के निश्चय की घोषणा कर दी। उनके अनुसार वे ऐसा अर्जुन के उपकार के बदले नहीं बल्कि उसके अंदर सुयोग्य शिष्य के सभी गुण–धैर्यवान, दृढ़निश्चयी, अत्यंत मेहनती तथा एकाग्रचित्त–होने के कारण कर रहे थे।
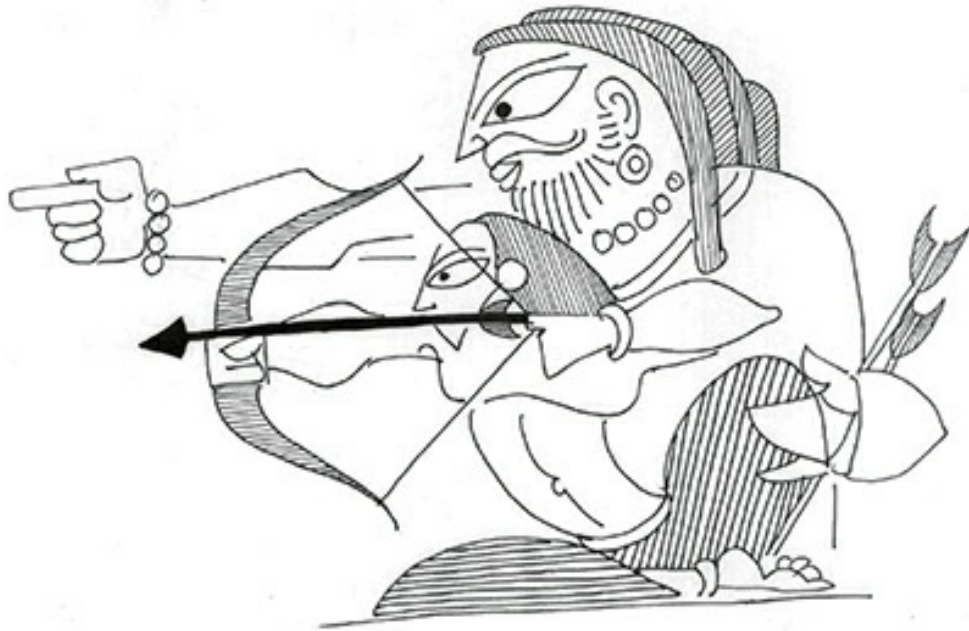
द्रोण के आश्रम में एक रात में इतनी तेज आंधी चली कि सारे दीए बुझने से अंधेरा छा गया। अर्जुन ने महसूस किया कि अंधेरे के बावजूद उसके हाथ भोजन के ग्रास को आसानी से मुंह में ले जा रहे थे। उसने सोचा, 'अगर ऐसा है तो मेरा तीर भी अंधेरे के बावजूद लक्ष्यसंधान कर सकता है।' वह रात में आंखों पर पट्टी बांधकर तीरंदाजी का अभ्यास करने लगा और अपने गुरु को चकित करते हुए उसने बिना देखे अपने तीरों से लक्ष्यसंधान करना शुरू कर दिया। अपने इसी गुण के कारण वह गुडाकेश के रूप में विख्यात हो गया–ऐसा व्यक्ति, जिसने निद्रा पर विजय पा ली थी।

अर्जुन ने अपने दाहिने और बाएं, दोनों हाथों से तीर छोड़ने का अभ्यास किया हुआ था। अपनी

इस विशेषता के कारण वह सव्यसाची के रूप में भी जाना गया।

धनुर्विद्या परीक्षा के दौरान द्रोण ने एक बार अपने शिष्यों से ऊंची दीवार पर रखे भुस भरे मिट्टी के तोते की आंख पर तीर का निशाना साधने को कहा। उन्होंने अपने शिष्यों से पूछा, ‘तुमको क्या दिखाई दे रहा है?’

युधिष्ठिर ने कहा, ‘मुझे तोता दिख रहा है।’

दुर्योधन ने युधिष्ठिर से बेहतर दिखने के लिए कहा, ‘मुझे दीवार के ऊपर रखा भुस भरा तोता दिखाई दे रहा है।’

भीम ने दुर्योधन को नीचा दिखाने के लिए कहा, ‘मुझे बादलों से आच्छादित आकाश के नीचे दीवार के ऊपर रखा भुस भरा तोता दिखाई दे रहा है।’

अर्जुन तो लेकिन एकाग्रचित्त था, ‘मुझे आंख दिखाई दे रही है। सिर्फ आंख।’

यह सुनते ही द्रोण ने अर्जुन से कहा, ‘तीर चलाओ।’ तीर प्रत्यंचा से छूटा और जाहिर है कि उसने लक्ष्यसंधान कर दिया।

- गुरु-शिष्य परंपरा का आविर्भाव भारत में ही हुआ जिसके अंतर्गत शिष्य को गुरुकुल में रहना होता है। गुरु अपने शिष्यों को अपनी ही संतान समझकर शिक्षा-दीक्षा देता है। यह परंपरा आज भी विद्यमान है विशेषकर संगीत और नृत्य विद्या के क्षेत्र में, लेकिन अनेक कला प्रेमियों ने भी यह पाया है कि अनेक गुरु अपनी संतानों के मोह में इस कदर अंधे हैं कि विद्यादान के समय सामान्य शिष्यों से भेदभाव कर डालते हैं। शायद व्यास को भी अपने जीवनकाल में कुछ ऐसा ही कटु अनुभव हुआ था। अर्जुन यदि दृढ़निश्चयी और अद्भुत प्रतिभा का धनी न होता तो शायद द्रोण भी धनुर्विद्या के अनेक राज अपने पुत्र अश्वत्थामा तक ही सीमित रख लेते।
- गुरु-शिष्य परंपरा का आविर्भाव भारत में ही हुआ जिसके अंतर्गत शिष्य को गुरुकुल में रहना होता है। गुरु अपने शिष्यों को अपनी ही संतान समझकर रामायण के नायक राम के बाद अर्जुन को ही भारतीय गाथाओं में सर्वोत्तम धनुर्धर माना गया है। व्यास ने अर्जुन के भीतर प्रतिभा से भी अधिक अपूर्व दृढ़निश्चय और धैर्य का चित्रण किया है।
- धनुष दरअसल एकाग्रता और संतुलन का प्रतीक है। पांच पांडवों में से तीसरा पांडव धनुर्धर है जिससे अपने भाइयों के बीच संतुलन बैठाने में उसकी भूमिका प्रतिध्वनित होती है। उसके दो बड़े भाई राजसी प्राधिकार (युधिष्ठिर), बल (भीम) के प्रतीक हैं जबकि उसके दो छोटे भाई राजसी ठाठ-बाट (नकुल) एवं बुद्धि (सहदेव) के प्रतीक हैं। वह न तो अपने बड़े भाइयों की तरह अधीर है और न ही अपने छोटे भाइयों की तरह निष्क्रिय है।

एकलव्य

एकलव्य निषाद अथवा वनवासी था। वह धनुर्धर बनना चाहता था। उसे कहीं से ये पता चला था कि द्रोण धनुर्विद्या के सर्वश्रेष्ठ गुरु थे। लेकिन उसने जब द्रोण से अपने को शिष्य स्वीकार करने का आग्रह किया तो द्रोण ने उसे यह कहकर टाल दिया कि उनके गुरुकुल में और शिष्यों के लिए जगह नहीं है।

फिर युवा आदिवासी ने पूछा, ‘तब मैं यह विद्या कैसे सीखूं?’

द्रोण ने बिना सोचे-समझे उत्तर दिया, ‘यदि तुम्हारी आस्था मुझमें है तो तुम स्वयं ही सीख जाओगे।’

एकलव्य ने द्रोण की बात को शब्दशः मान लिया। हस्तिनापुरी के पास ही जंगलों के बीच खाली जगह पर उसने द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाई और उसे साक्षी मानकर धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा।

उसके कुछ सप्ताह बाद ही अभ्यास के दौरान किसी कुत्ते के भौंकने से एकलव्य का ध्यान बंटने लगा। उसने आव देखा न ताव कुत्ते की आवाज की दिशा में ताबड़-तोड़ तीर झोंक दिए। एकलव्य की इस प्रतिक्रिया का कमाल यह रहा कि तीर मुंह में भर जाने से कुत्ते का भौंकना तो बंद हो गया लेकिन उसे चोट कतई नहीं आई।

वह कुत्ता दरअसल पांडवों का शिकारी कुत्ता था। अपने कुत्ते का मुंह तीरों से भरा देखकर अर्जुन चकित रह गया। वह कुत्ते को द्रोण के पास ले गया और शिकायती लहज़े में बोला, 'आपने तो मुझे दुनिया का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाने की घोषणा की थी लेकिन जिस किसी ने भी ऐसा अविश्वसनीय कारनामा किया है वो निश्चित ही मुझसे अधिक कुशल है।'

द्रोण ने उस धनुर्धर की ढूंढ़ मचाई और खोजते-खोजते जंगल के बीचों-बीच समतल स्थान पर लगी अपनी प्रतिमा के सामने जा पहुंचे। प्रतिमा के सामने धनुष थामे खड़ा एकलव्य दौड़कर उनके चरणों में नत हो गया। उसने रुंधे गले से कहा, 'आइए।'

द्रोण ने क्रोधित स्वर में पूछा, 'ये तुम्हें किसने सिखाया?'

एकलव्य ने रोमांचित होते हुए उत्तर दिया, 'आपने ही तो, भले ही स्वयं उपस्थित रहकर नहीं बल्कि मुझे स्वयं सीखने का आशीर्वाद और प्रेरणा देकर सिखाया है।'

द्रोण ने अपने साथ आए अर्जुन पर दृष्टि डाली और मन ही मन अर्जुन को संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाने की घोषणा को याद किया। फिर द्रोण ने चतुराईपूर्वक कहा, 'तुमने मेरे कारण जो कुछ भी सीखा है उसके लिए तुम्हें, मुझे गुरु दक्षिणा देनी चाहिए।'

एकलव्य ने हाथ जोड़कर विनत होते हुए कहा, 'आप जो भी चाहें ले लें।'

द्रोण ने ठंडे और भावहीन स्वर में कहा, 'तुम्हारे दाहिने हाथ का अंगूठा। मुझे अपना अंगूठा दे दो।' एकलव्य ने बिना एक क्षण गंवाए चाकू निकाला और अपना अंगूठा काटकर गुरु के चरणों में रख दिया। अपने गुरु की इस क्रूरता से उद्विग्न अर्जुन, हस्तिनापुरी लौट आया। वह यही

सोचता रहा कि अपने दाहिने हाथ के अंगूठे के बिना एकलव्य कभी भी तीर को प्रत्यंचा पर नहीं चढ़ा पाएगा। अर्जुन को उद्विग्न देखकर द्रोण बोले, 'यह सामाजिक संतुलन के लिए आवश्यक था–हम हर किसी को धनुर्धर बनने की अनुमति नहीं दे सकते। अब धनुर्विद्या में तुमसे अधिक पारंगत कोई नहीं बचा।' अर्जुन ने कोई प्रतिक्रिया नहीं जताई।

- व्यास ने अर्जुन का चित्रण अत्यंत असुरक्षित और प्रतिद्वंद्विताग्रस्त युवक के रूप में किया है। एकलव्य का कटा हुआ अंगूठा दुनिया में उसके सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का मखौल उड़ा रहा है। व्यास ने प्रसंग के माध्यम से यह भी जताने की कोशिश की है कि महान, दूसरों से श्रेष्ठ होने पर ही नहीं बल्कि अपने से श्रेष्ठ लोगों का अहित करके भी बना जा सकता है।
- वर्णधर्म के अनुसार पुत्र से पिता के अनुसरण की आशा की जाती है। इस मान्यता के अनुरूप द्रोण को भी अपने पिता की तरह ब्राह्मण अथवा ऋषि होना चाहिए था, लेकिन वह अपने निश्चय से योद्धा बन जाते हैं और उनका पुत्र भी वैसा ही बनता है। वर्ण धर्म को खुद नकारने के बावजूद एकलव्य द्वारा धनुष थामने के विरुद्ध उनका ये तर्क ढकोसला लगता है कि नीच जातियों को धनुर्धर बनने के लिए प्रेरित करने से समाज में वर्णप्रथा नष्ट हो जाएगी।
- महाभारत में वैदिक समाज के प्राचीन चतुर्वर्णीय ढांचे- ब्राह्मण (पुजारी), क्षत्रिय (योद्धा), वैश्य (व्यापारी) तथा शूद्र (सेवक) का कोई उल्लेख नहीं है। इसके बजाय इसमें त्रिस्तरीय समाज दिखाई पड़ता है जिसमें राजन्यों अथवा क्षत्रियों (योद्धा, राजा, शासक) पर ऋषियों अथवा ब्राह्मणों (पुजारी, गुरु, दिव्य शक्तिधारी) की देखभाल का जिम्मा है तथा आम जनता–ग्वालों, किसानों, मछुआरों, रथचालकों, कुम्हारों, बढ़इयों आदि पर उनका शासन है। निषाद अथवा वनवासी इस समाज से इतर थे जिन्हें उपेक्षा के भाव से देखा जाता था। इससे समाज के अंतिम पायदान पर अथवा उससे इतर जी रहे लोगों के लिए पूर्वाग्रह स्पष्ट परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए उनके धनुर्विद्या सीखने पर प्रतिबंध था।
- वैदिक सभ्यता में धनुष सर्वोच्च हथियार था। वह एकाग्रता और संतुलन का प्रतीक था। वह कामना, लगन तथा महत्त्वाकांक्षा का प्रतिनिधित्व भी करता था। राजा के राज्याभिषेक के दौरान उसे धनुष भी थमाया जाता था। धनुर्विद्या की प्रतियोगिताओं में पुरस्कारस्वरूप स्त्रियां दी जाती थीं। सभी देवताओं के हाथ में धनुष रहता था।

दीक्षांत समारोह

द्रोण ने हस्तिनापुरी की जनता के सामने अपने विद्यार्थियों का कौशल प्रदर्शित करने के लिए स्पर्धा आयोजित की।

सर्वश्रेष्ठ शिष्य सर्वविदित है कि अर्जुन ही था जो अपने धनुष से एक साथ अनेक तीर छोड़ सकता था और उसका निशाना अचूक था। इस राजसी धनुर्धर की सभी ने सराहना की और कुंती गर्व से गद्गद् हो गई। अर्जुन के सर्वश्रेष्ठ घोषित होने और चारों ओर उसकी जय-जयकार से कौरवों को बहुत ईर्ष्या हुई।

स्पर्धा चल ही रही थी कि अचानक और एक धनुर्धर उठ खड़ा हुआ। उसके सीने पर चमकदार कवच और उसके कानों में रत्नजटित कुंडल थे। अपना परिचय कर्ण के रूप में कराते हुए उसने उद्घोषणा की, 'मैं अर्जुन के बराबर ही नहीं, उससे बेहतर धनुष कौशल दिखा सकता हूं।'

द्रोण ने उसे अपना दावा सिद्ध करने की चुनौती दी। कर्ण ने अर्जुन के सभी कौशलों को दोहराया ही नहीं बल्कि उससे बेहतर प्रदर्शन किया और जनता उसकी जय-जयकार करने लगी। जनता ने कहा, 'यह अर्जुन के समान ही महान है, बल्कि उससे भी अधिक कुशल है।' पांडव तब तक सबके आकर्षण का केंद्र बने हुए थे मगर उसके बाद उनका आभामंडल सिकुड़ गया।

अचानक राजसी अस्तबल का मुखिया अधिरथ स्पर्धा स्थल के बीचों-बीच दौड़ता हुआ आया

और उसने कर्ण का स्नेहपूर्वक आलिंगन किया। उसने गर्वपूर्वक कहा, 'मेरे बेटे, मेरे बेटे, तुमने मुझे गौरवान्वित किया है।'

यह देखकर भीम चिल्लाया, 'क्या! यह व्यक्ति रथचालक का पुत्र है, इसकी धनुर्विद्या स्पर्धा में क्षत्रियों को ललकारने की हिम्मत कैसे हुई?'

कर्ण असमंजस में पड़ गया, भीम के कटु शब्द उसे हजारों मधुमक्खियों के दंश की तरह लगे। क्या उसकी कुशलता में कोई कमी थी? उसके जन्म कुल का क्या महत्त्व है?

तभी दुर्योधन ने कर्ण का साथ दिया। उसने कहा, 'इसमें कोई शक नहीं कि योग्यता जन्मकुल से अधिक महत्त्वपूर्ण है, कर्ण अपनी योग्यता से क्षत्रिय ही है। हमें उसे क्षत्रियोचित सम्मान देना चाहिए।'

इस पर युधिष्ठिर ने खड़े होकर कहा, 'नहीं, धर्मानुसार पुत्र को अपने पिता का कर्म ही अपनाना चाहिए। कर्ण का पिता रथचालक है। इसलिए उसे क्षत्रिय नहीं माना जा सकता।' कर्ण यह कहना चाहता था कि रथचालक ने तो सिर्फ उसका लालन-पालन किया है।

लेकिन तब लोग पूछेंगे कि उसका वास्तविक पिता कौन है और वह निरुत्तर हो जाएगा। क्योंकि वो तो अनाथ था, जन्मोपरांत उसकी मां ने उसे त्याग दिया था, अधिरथ को वह नदी पर तैरती टोकरी के भीतर मिला था।

कर्ण ने अपमान का घूंट पीकर चुप्पी साध ली। दुर्योधन ने कर्ण के गले में हाथ डाला और कहा, 'यह व्यक्ति महान धनुर्धर है, मैं इसका अपमान नहीं होने दूंगा, मैं इससे मित्रता की घोषणा करता हूं। यह मेरे भाइयों से भी अधिक मेरे दिल के करीब रहेगा। यदि कोई इसका अपमान करेगा

तो वो मेरा अपमान होगा।' अपने पिता की ओर गर्दन घुमाकर उसने कहा, 'पिताश्री, यदि आप इसे महारथी घोषित कर दें तो दोबारा इसका कोई अपमान नहीं करेगा।' धृतराष्ट्र चूंकि अपने पुत्र की कोई बात नहीं टालता था इसलिए उसने कर्ण को तत्काल अंगराज घोषित कर दिया।

इस स्नेह से अभिभूत होकर कर्ण का गला रुंध गया। आज तक किसी ने उसका इतनी गहराई से पक्ष नहीं लिया था। वह दुर्योधन का हमेशा के लिए ऋणी हो गया। उसने शपथ ली कि वह अपने जीवन की अंतिम घड़ी तक कौरवों का मित्र बना रहेगा।

पांडवों ने धर्मशास्त्रों का उल्लेख करते हुए विरोध प्रदर्शित किया। कौरवों ने यह सोचकर कि यदि कर्ण उनके साथ रहा तो वह पांडवों के समान ही शक्तिशाली हो जाएंगे, पांडवों से बहस की।

भीष्म ने घर की लड़ाई का भांडा चौराहे पर फूटने की नौबत को भांप लिया। एक ओर पांच पांडव थे और दूसरी ओर एक सौ कौरव और उनका नया मित्र कर्ण। कर्ण के लिए अपने भतीजों के पुत्रों के बीच अशोभनीय वाद-विवाद होते देखकर वे अपमानित महसूस कर रहे थे। कौरव और पांडवों के बीच हाथापाई की नौबत आती तभी राजसी महिलाओं के विशिष्ट मंडप से रोने की आवाज आई। कुंती बेहोश हो गई थीं। सब लोग उन्हें उठाने के लिए दौड़े। इस व्यतिक्रम का लाभ उठाकर भीष्म ने स्पर्धा की समाप्ति की औपचारिक घोषणा कर दी और राजकुमारों को राजप्रासाद लौट जाने का निर्देश दिया।

अपने प्रपौत्रों को गली के कुत्तों की तरह एक-दूसरे पर टूट पड़ने को उतारु देखकर सत्यवती ने अचानक निर्णय किया, 'मुझे ऐसा लग रहा है कि जिस परिवार को बनाने में मैंने इतनी मेहनत की वह शीघ्र ही अपने को नष्ट कर लेगा। मैं ऐसा होते हुए नहीं देख सकती। इसलिए मैं वनगमन करूंगी।'

अंबिका और अंबालिका ने भी अपनी सास के साथ ही जाने का निर्णय किया। कुंती एवं गांधारी तथा उनके पुत्रों के बीच विवाद असहनीय हो रहा था। ऐसे समय में राजप्रासाद छोड़ देना ही हितकर था।

- कर्ण के साथ आने से दुर्योधन भी युधिष्ठिर के समान शक्तिशाली हो जाता। युधिष्ठिर के पास तो अर्जुन था लेकिन दुर्योधन के पास कोई भी धनुर्धर नहीं था। कर्ण को बराबरी से सम्मान देकर उसने यह कमी दूर कर ली थी। व्यास ने यह कभी स्पष्ट नहीं किया कि दुर्योधन, कर्ण का इस्तेमाल कर रहा था अथवा सचमुच उससे प्रभावित हुआ था।
- अर्जुन तो इंद्र का पुत्र है जो स्वर्ग और वर्षा का अधिशासी देवता है। कर्ण, सूर्य देवता का पुत्र है। इंद्र और सूर्य की पुरानी लाग-डाट थी क्योंकि वैदिक उत्तराधिकार क्रम में दोनों ही एक-दूसरे के मुकाबले श्रेष्ठता का दम भरते थे। रामायण की महागाथा में यह प्रतिद्वंद्विता बालि और सुग्रीव के बीच संघर्ष के रूप में प्रकट होती है। बालि दरअसल इंद्र का पुत्र है और सुग्रीव, सूर्य का पुत्र है।
- राम के रूप में भगवान बालि के बजाय सुग्रीव का साथ देते हैं। महाभारत में भगवान अपने साथी बदल लेते हैं और सूर्य पुत्र कर्ण की जगह इंद्र पुत्र अर्जुन को वरीयता देते हैं। इस प्रकार अपने दो जीवनकाल में दो भगवानों के बीच संतुलन स्थापित हो जाता है।
- कर्ण ऐसे पुरुष का प्रतीक है जो समाज द्वारा थोपी हुई सामाजिक मान्यताओं के आगे झुकने को तैयार नहीं है।

कर्ण की कथा

स्पर्धा के दौरान कुंती के बेहोश हो जाने का कारण दरअसल उसके द्वारा कवच और कुंडल युक्त

युवा को अपने प्रथम पुत्र के रूप में पहचान लिया जाना था। चूंकि वह शादी के पहले ही पैदा हो गया था इसलिए अपनी मान-प्रतिष्ठा बचाने के लिए उसे अनाथ छोड़ दिया गया था।

उसकी सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ऋषि ने कुंती को ऐसा वरदान दिया था जिससे वह किसी भी देवता का आह्वान करके उससे संतान पैदा कर सकती थी। ऐसा कुंती से कुवांरेपन के दौरान ही हो गया था। देवताओं के आह्वान के लिए दुर्वासा प्रदत्त मंत्र की परीक्षा करने की उत्सुकता में कुंती ने परिणाम का अनुमान लगाए बगैर सूर्य देवता का आह्वान कर लिया था। सूर्य देव ने प्रकट होकर उसे पुत्र भी दे दिया। वह शिशु जब पैदा हुआ तो उसके दोनों कानों में कुंडल तथा उसके सीने पर कवच चढ़ा हुआ था। कुंती ने घबराकर बच्चे को टोकरी में रखा और उसे नदी की धारा में प्रवाहित कर दिया।

वह टोकरी कुरु घराने के रथचालक अधिरथ को बहती मिल गई। वह तथा उसकी पत्नी राधा निःसंतान थे। इसलिए उन्होंने उस अनाथ बच्चे का अपनी संतान के रूप में लालन-पालन किया।

समय बीतने के साथ कर्ण बड़ा हुआ तो उसके भीतर योद्धा बनने की इच्छा बलवती हुई। उसने द्रोण से अपना गुरु बनने का आग्रह भी किया लेकिन द्रोण ने उसे युद्ध कौशल सिखाने से इन्कार कर दिया। उससे कहा गया, 'अपने पिता की वृत्ति ही अपना लो।' लेकिन उसकी माता राधा ने उसे अपनी इच्छा पूरी करने के लिए प्रोत्साहित किया। धनुर्विद्या सीखने के लिए आतुर कर्ण सीधे द्रोण के गुरु परशुराम के पास ब्राह्मण वेश धारण करके गया क्योंकि परशुराम क्षत्रियों के मुकाबले के लिए ब्राह्मणों को शस्त्रविद्या सिखाने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। परशुराम ने कर्ण को दीक्षा देना स्वीकार कर लिया और सीखने की उसकी ललक से अत्यंत प्रसन्न हुए। कर्ण शीघ्र ही परशुराम का सर्वश्रेष्ठ शिष्य बन गया और युद्धकौशल में पारंगत हो गया।

एक बार परशुराम कभी कर्ण की गोद में सिर रखकर गहरी नींद सो गए। वे जब नींद से उठे तो उन्होंने देखा कि कर्ण की जंघा खून से लथपथ थी। वहां उसकी त्वचा में किसी कीड़े ने काट लिया था। यह देखकर परशुराम ने पूछा, 'इसकी पीड़ा असह्य हुई होगी। तुम चिल्लाए क्यों नहीं अथवा कीड़े को हटाने के लिए हिले क्यों नहीं?'

कर्ण ने उत्तर दिया, 'मैं आपकी नींद में खलल नहीं डालना चाहता था। इसलिए मैंने बिना हिले पीड़ा सह ली।' उसे लग रहा था कि गुरु उसकी इस बात से प्रसन्न होंगे।

इस बात से प्रभावित होने के बजाए परशुराम का क्रोध सातवें आसमान पर पहुंच गया। विस्मय से आंखें फैलाते हुए वे बोले, 'तुम भले ही कितना भी जताओ, तुम ब्राह्मण नहीं हो सकते। इतने तीव्र दर्द को चुपचाप सहने की शक्ति अथवा बेवकूफी किसी क्षत्रिय में ही हो सकती है। मुझे सच-सच बताओ कि तुम हो कौन?'

यह पता चलते ही कि वह अपने गुरु को गुमराह नहीं कर सकता कर्ण, परशुराम के चरणों में गिर पड़ा और उसने बताया, 'मेरा लालन-पालन तो रथचालक ने किया है लेकिन मुझे यह नहीं पता कि मेरा वंश क्या है?'

'तुम झूठ बोल रहे हो। तुम योद्धा के पुत्र हो। तुम क्षत्रिय हो और इसीलिए तुम्हारे भीतर इतनी शक्ति भरी हुई है। तुमने मुझे धोखा देकर मेरे से शिक्षा-दीक्षा पाई है इसलिए जिस दिन तुम्हें इसकी सबसे अधिक आवश्यकता होगी उस दिन तुम सब कुछ भूल जाओगे।' यह शाप देकर परशुराम ने कर्ण को अपने आश्रम से भगा दिया।

- कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि कर्ण प्रेम संबंध से पैदा हुई संतान थी। ऐसी संतान जो सूर्यवंशी राजकुमार के साथ विवाहपूर्व संसर्ग से पैदा हुई थी इसलिए सूर्य देवता का संदर्भ गाथा में डाला गया। यह कथा सुनाने का उद्देश्य युवतियों को विवाह पूर्व अवैध संबंध बनाने से हतोत्साहित करना है।
- क्षत्रियों से परशुराम के मन में घृणा किंवदंती है। उन्हें विष्णु का अवतार माना जाता है और उन्होंने अपने शक्तिशाली परशु से अनेक योद्धाओं को वंश सहित समूल नष्ट किया था क्योंकि योद्धा समाज पर आधिपत्य जमाने के लिए अपनी सैन्य शक्ति का दुरुपयोग कर रहे थे। उन्होंने क्षत्रियों की ताकत को संतुलित करने के लिए अनेक ब्राह्मणों को युद्धकौशल सिखाया। परशुराम का प्रसंग ऐसे काल से आया है जबकि ऋषियों और राजाओं के बीच संघर्ष अपने चरम

पर था।

- वर्ण धर्म के अनुसार समाज में यथास्थिति बनाए रखने के लिए पुरुष को अपने पिता का काम-धंधा ही अपनाना चाहिए और पिता वह व्यक्ति है जो अपनी संतान को जन्म देने वाली स्त्री से विवाह करता है। पांडव अपनी जन्मदाता माता कुंती से विवाह करने वाले क्षत्रिय कुल के पांडु की संतान होने के कारण योद्धा हैं। कर्ण को चूंकि यह पता नहीं था कि उसकी जन्मदाता माता कौन है और उससे विवाह करने वाले पुरुष को भी वह नहीं जानता था और इसलिए उसे यह भी नहीं पता था कि वह किस काम-धंधे को अपनाए। इसलिए उसने, अपने भीतर योद्धा बनने की बलवती इच्छा का अनुसरण किया।
- व्यास इस गाथा में पाठकों का ध्यान बार-बार निजी उत्कंठा तथा पिता द्वारा अपनी संतानों पर थोपे गए पारिवारिक कर्त्तव्य के बीच संघर्ष के खतरों की ओर आकर्षित करते हैं। अपनी इच्छा के कारण ही कर्ण अपने को गोद लेने वाले पिता की भांति रथचालक बनने से इन्कार करता है। प्रतिशोध की आग में जलने के कारण द्रोण अपने प्राकृतिक पिता की भांति पुजारी नहीं बनते। कृष्ण क्षत्रिय परिवार में जन्म लेने के बावजूद ग्वाले अथवा सारथि के रूप में पहचाना जाना अधिक पसंद करते हैं। क्योंकि महत्त्व काम-धंधे का नहीं; महत्त्व दरअसल उसके पीछे छिपी मंशा का है।
- इस महागाथा के इंडोनेशियाई संस्करण में कर्ण का जन्म कुंती के कान में से होना बताया गया है। इसीलिए उसका नाम कर्ण पड़ा जिसका मतलब है कान। इसीलिए पांडु से विवाह के समय भी कुंती को कुवांरी कन्या माना गया।

पांचवां अध्याय

दूर रहो

'जनमेजय, राक्षसों और नागों तथा गंधर्वों ने तुम्हारे परिवार का अस्तित्व बचाने में योगदान किया।'
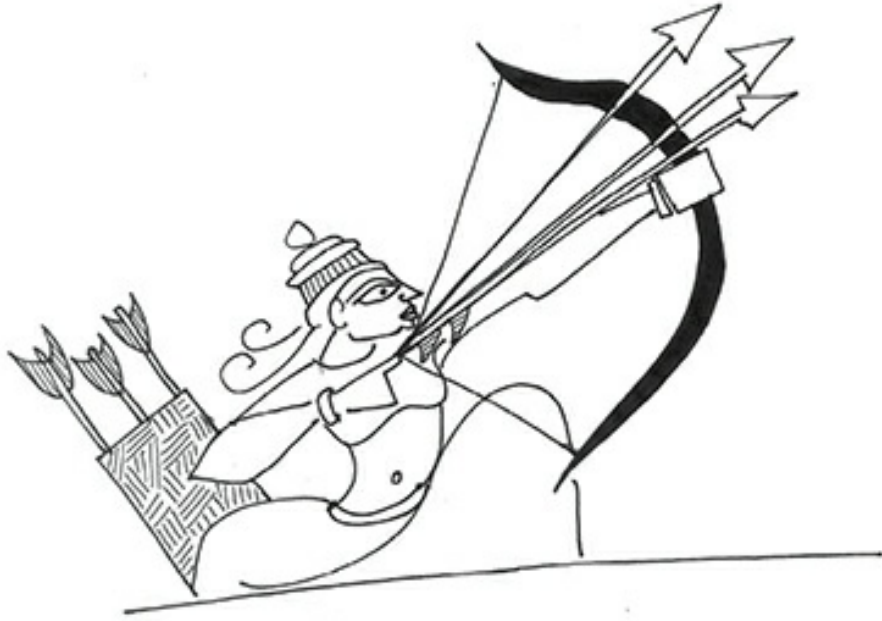
भीम एवं नाग

अपने पांचों पुत्रों सहित कुंती के हस्तिनापुरी लौटने के बाद से गांधारी के सौ पुत्रों के मन में यह डर बैठ गया था कि उन्हें अपनी विरासत में से अपने चचेरे भाइयों को भी हिस्सा देना पड़ेगा।

दुर्योधन ने विदुर से एक दिन कहा, 'लेकिन वे पांडु के वास्तविक पुत्र नहीं हैं। उन्हें नियोग के नियम के अनुरूप अन्य पुरुषों की मदद से पैदा किया गया था। बस हमारी रगों में ही असली राजसी रक्त है।' इसका उत्तर विदुर ने कुछ इस तरह दिया, 'नहीं, प्रतीप एवं शांतनु का रक्त सिर्फ भीष्म के ही शरीर में है। पांडु और धृतराष्ट्र में से किसी की भी रगों में मूल रक्त नहीं है। वे काशी की राजकुमारियों की कोख में रोपित व्यास के बीज से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए तुम्हारा तर्क निराधार है। इसके अलावा पांडु का राज्याभिषेक तुम्हारे पिता से पहले हुआ था।'

दुर्योधन ने विरोध जताया, 'लेकिन मेरे पिता बड़े हैं।'

'इस तर्क को मानें तो अगला राजा युधिष्ठिर को बनाया जाना चाहिए क्योंकि वही विचित्रवीर्य का ज्येष्ठ पौत्र है।'

इस प्रकार दुर्योधन की बोलती तो बंद हो गई लेकिन उसके मन में से अपने चचेरे भाइयों के प्रति नफरत नहीं निकल पाई। ये घृणा दोनों ही ओर व्याप्त थी।

पांडवों को कौरवों से इसलिए डर लगता था कि दरबार में उनकी आवाज की कोई कीमत नहीं थी; उनकी माता विधवा थीं और पिता की मृत्यु हो चुकी थी। वे सभी दृष्टिहीन नरेश और उनकी आंख ढंकी पत्नी के रहमो-करम पर निर्भर थे।

भीम बहुधा कौरवों को तंग करता था। वो, उन्हें हाथों में सिर से ऊपर उठाकर भूमि पर पटक देता था अथवा वे जिस पेड़ पर चढ़े होते थे उसे तब तक हिलाता रहता था जब तक वे फलों की भांति धरती पर टपक नहीं पड़ते थे।

एक दिन भीम की हरकतों से दुःखी होकर कौरवों ने उसे जहर खिला देने का तय किया। उन्होंने जहर बुझी मिठाई उसे खिला दी। जहर के कारण बेहोश हो जाने पर उन्होंने, उसके हाथ-पैर बांधकर उसे नदी में फेंक दिया।

भीम तो डूब ही जाता लेकिन नदी में नागों का वास था। उनके मुखिया आर्यक ने भीम को बचाया और अपने नागों से उसके शरीर से जहर खींच निकालने का निर्देश दिया। आर्यक उसके बाद भीम को नागों की नगरी भोगवती ले गया और उसे नागराज वासुकि के दरबार में प्रस्तुत किया।

वासुकि ने भीम का स्वागत करते हुए कहा, 'तुम्हारी माता कुंती यदु की वंशज हैं और यदु महान नागवंशी धूम्रवर्ण के दामाद थे। इसलिए तुम्हारी नसों में नाग रक्त विद्यमान है। तुम हमारे संबंधी हो।' नागों ने भीम के लिए नृत्य प्रदर्शन किया और उसे स्वादिष्ट भोजन कराया। उन्होंने उसे ऐसी दवा भी पिलाई जिससे भविष्य में संसार का कोई भी विष उसे प्रभावित नहीं कर पाएगा।

इस प्रकार जान बचने और स्वस्थ होने पर भीम अपने घर लौट आया जिससे उसकी माता आरै भाइ अत्यतं प्रसत्र हुए लेकिन कौरवों को इससे आरै अधिक ईर्ष्या हुई।

- राजा किसको बनना चाहिए? ज्येष्ठ पुत्र को अथवा सुयोग्य पुत्र को? मूल रक्त संबंधी संतान अथवा उपयुक्त क्षमताओं से युक्त कोई भी व्यक्ति? व्यास ने संपूर्ण महागाथा में इस विषय को बार-बार छेड़ा है।
- नाग अथवा फनवाले सर्प नदियों के भीतर, पाताल में रहते थे, जिसे रसातल भी कहते हैं, जहां रत्नजटित भोगवती नगरी थी और उसके शासक महान नागराज वासुकि थे। अत्यंत जहरीले होने के अलावा वे ऐसी मणियों के रक्षक भी थे जो हरेक मनोकामना पूरी कर देती थीं, हरेक बीमारी से स्वस्थ कर देती थीं, मृतकों को पुनर्जीवित कर देती थीं,

बांझ को गर्भधारण की क्षमता देती थीं, संतान प्रदान करती थी और सौभाग्यदायक थीं।

- नृतत्व शास्त्रियों की धारणा है कि महागाथा में उद्धृत नाग दरअसल बसे हुए कृषक समुदाय थे जो नागपूजक थे, जिन्हें वे उर्वर क्षमता के संरक्षक मानते थे। आज भी संतान तथा अच्छी फसल पाने के लिए नागों की पूजा की जाती है।
- तमिलनाडु की लोककथा के अनुसार समूचे कुरु घराने ने यह मान लिया था कि भीम डूब गया था और उसका शव पानी में बह गया था। इसलिए उन्होंने, उसकी मृत्यु का शोक मनाया और पखवाड़ा बीतने पर मृत्युभोज का आयोजन भी किया, ताकि शोक कार्य संपन्न हो सके। उस दिन पकाने के लिए तमाम सब्जियां काट लिए जाने और मसाले तैयार हो जाने के बाद नदी से अचानक भीम निकलकर आया तो उसकी मां और उसके भाई बेहद प्रसन्न हुए। सब्जियों और मसालों के सदुपयोग के लिए भीम ने अपने नवजीवन की खुशी में कुछ अलग प्रकार का विशेष खाना पका दिया। उसने सभी सब्जियों तथा मसालों को मिलाकर पकाया और उसमें नारियल का दूध मिला दिया जिससे मशहूर तमिल व्यंजन 'अवियल' अर्थात मिश्रण पक कर तैयार हो गया। यह व्यंजन वैदिक काल के अन्य व्यंजनों से एकदम अलग था क्योंकि तब सब्जियों को मिलाकर पकाना प्रतिबंधित था।
- महागाथा के कुछ लोक संस्करणों में यह प्रसंग भी है कि नागलोक में प्रवास के दौरान भीम को पत्नी प्रदान की गई थी। नागकन्या से उन्हें पुत्र की प्राप्ति भी हुई जिसने कुरुक्षेत्र का युद्ध भी लड़ा था। इस पुत्र का नाम ओडिशा में प्रचलित लोक संस्करणों के अनुसार बिलालसेन था और राजस्थानी संस्करण के अनुसार बर्बरीक था।

लाक्षागृह

कुरु घराना स्पष्ट रूप में दो विरोधी खेमों में बंट गया था: पांडव और कौरव। हरेक खेमे का मत था कि वे ही सिंहासन के असली उत्तराधिकारी थे।

युधिष्ठिर, प्रतिष्ठित राजा का ज्येष्ठ पुत्र था, विचित्रवीर्य का पहला पौत्र। पांडवों की नजर में उनके ताऊ प्रतीकात्मक राजा ही थे। लेकिन कौरव ऐसा मानते थे कि उनके पिता से अन्याय हुआ था और विचित्रवीर्य के ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते राजसिंहासन के वही असली उत्तराधिकारी थे।

दुर्योधन अपने-आपको अपने 99 भाइयों के बावजूद पांडवों से कमजोर समझता था। युधिष्ठिर के साथ उसके अलावा अर्जुन के रूप में श्रेष्ठ धनुर्धर, भीम के रूप में अति बलशाली योद्धा तथा सहदेव के रूप में सुयोग्य सलाहकार मौजूद था। दुर्योधन के पास दुःशासन के अलावा कौन है? कर्ण से मित्रता के बाद परिस्थिति बदल गई: कर्ण भी अर्जुन के समान कुशल धनुर्धर था। और विचार-विमर्श के लिए उसके पास, उसका मामा शकुनि था।

राजप्रासाद के भीतर चचेरे-तहेरे इन दोनों भाइयों के खेमों के बीच छोटी-छोटी बातों पर बड़ा झगड़ा होने लगा। कुंती और गांधारी ने अपने-अपने पुत्रों को सब्र से काम लेने की सलाह दी लेकिन उनके कान पर जूं तक नहीं रेंगी। कभी-कभी तो इस अदावत में दोनों की मां भी शामिल हो जाया करती थीं।

कुंती ने तभी अपने पुत्रों की भलाई के लिए गज पूजा का आयोजन किया। उसने शहर के कुम्हारों को मिट्टी के हाथी बनाकर लाने को कहा। गांधारी को जब इसकी भनक लगी तो उसने भी अपने पुत्रों के लिए गज पूजा आयोजित कर डाली, लेकिन कुंती को नीचा दिखाने के लिए उसने नगर के सुनारों को सोने के हाथी बनाने को कहा। इस घटना से कुंती को राजप्रासाद में अपनी अपेक्षाकृत कम हैसियत का गहन अहसास हुआ। वह पूर्व राजा की पराश्रित विधवा थीं। अपनी माता के चेहरे पर मुस्कान लौटाने के लिए अर्जुन ने कहा, 'मैं अपने पिता इंद्र से आपके द्वारा आयोजित पूजा के लिए उनका ऐरावत हाथी भेजने का अनुरोध करूंगा।' इंद्र इस बात के लिए राजी भी हो गए लेकिन उन्होंने, अर्जुन को इसमें अपनी समस्या बताई। उन्होंने अर्जुन से

कहा कि स्वर्ग में रहने वाला हाथी, धरती पर उतरकर कैसे आएगा? अर्जुन ने अपना धनुष उठाकर धुआंधार तीर छोड़े और स्वर्ग से पृथ्वी तक उनका पुल बना दिया। कुंती की पूजा के लिए ऐरावत के स्वर्ग से उतरकर हस्तिनापुरी आने को समूचे संसार ने विस्मयपूर्वक देखा।

जनता यह समझ नहीं पा रही थी कि किसको राजा बनना चाहिए। आरंभ में उन्हें युधिष्ठिर पसंद थे क्योंकि वह ईमानदार, विनम्र तथा दयालु थे। उनके साथ चार भाई थे जिनमें एक महाबली, एक अतिकुशल, एक सुदर्शन तथा एक बुद्धिमान था। किसी भी राज्य को इससे अधिक और क्या चाहिए? लेकिन उन्हें दुर्योधन से भी सहानुभूति होती थी जिसके पिता दृष्टिहीन और माता भी आंखें ढंके रहती थीं, जिसके मित्र कर्ण से पांडवों ने दुर्व्यवहार किया था जबकि वह बलशाली ही नहीं दानवीर भी था।

विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा, 'इनका विवाह होने पर अन्य राज्यों की स्त्रियां जब इस घराने में आएंगी तो स्थिति और भी बिगड़ेगी। इसलिए भलाई इसी में है कि पांडु की पत्नी तथा पुत्रों के लिए अलग घर का निर्माण कर दिया जाए।' धृतराष्ट्र ने सहमति जताते हुए कुंती और उनके पुत्रों के लिए वारणावत में नया प्रासाद बनाने की आज्ञा दे दी।

विदुर जब इस नए प्रासाद में पहुंचे तो वे यह देखकर बहुत घबराए कि उसकी इमारत, छत आदि सभी कुछ लाख तथा अन्य ज्वलनशील पदार्थों से बनाए गए थे।

विदुर, कुंती के पास गए और बोले, 'मेरा भाई आपकी तथा आपके पुत्रों की हत्या करना चाहता है। वह आपको उपहार में नया प्रासाद देगा—ऐसा उपहार जिसके लिए आप मना नहीं कर सकतीं। उसमें, आपके सपरिवार प्रवेश करते ही उसकी योजना वहां आग लगा देने की है। लेकिन घबराने की कोई बात नहीं है, आप सब सुरक्षित रहेंगे। मैंने प्रासाद के नीचे सुरंग बना दी है जो दूर वन में पहुंचती है। संदेह से बचने के लिए उपहार को स्वीकार करें और फिर अपनी जान बचाकर सुरंग से बाहर निकल जाएं। आपके वहां से लौटने पर आपका नैतिक बल कई गुना बढ़ जाएगा और आपकी संतानों को विरासत में उनका हिस्सा मिलने में इससे भारी सहायता मिलेगी।'
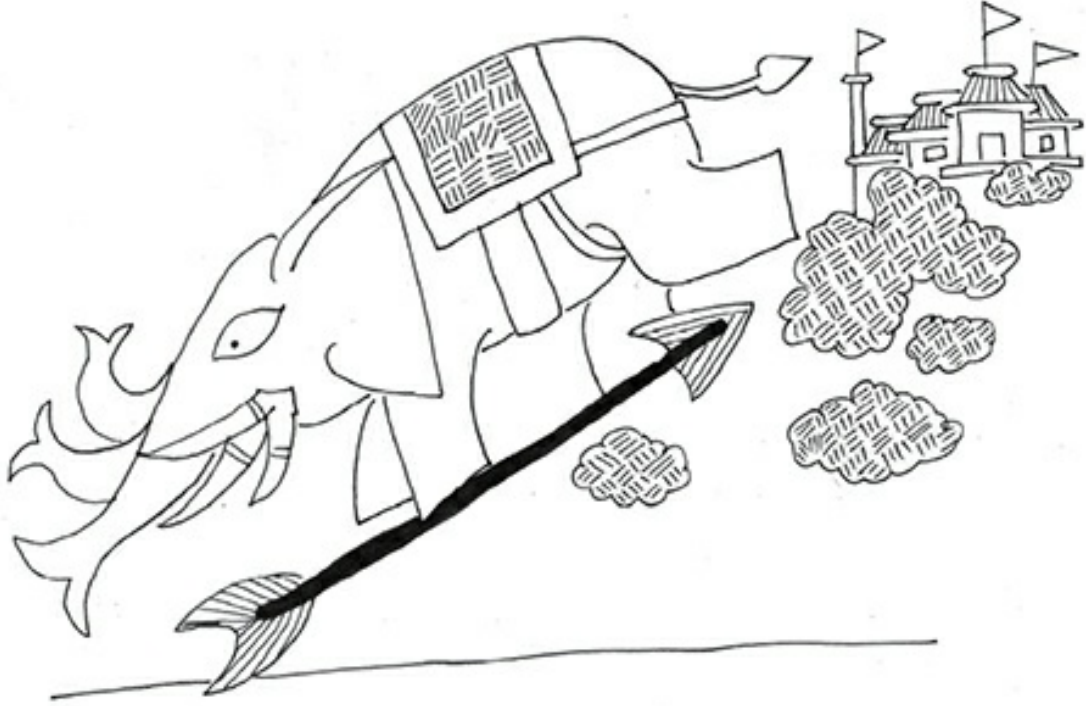
योजना के अनुरूप पांडवों और उनकी माता को वह प्रासाद सौंप दिया गया और उसमें, उनके प्रवेश की पहली रात में ही आग लगा दी गई। पांडव वहां से अपनी माता समेत सुरक्षित बाहर निकल तो गए लेकिन इस घटना से वे मन ही मन विचलित हो गए। पारिवारिक विवाद में अचानक अत्यंत गंभीर प्रसंग आ गया था।

लपटें शांत होने पर एक स्त्री तथा पांच युवकों के जले हुए शव वहां से निकले। उन्हें देखकर सबने यह सोचा कि यह कुंती और उसके पुत्रों के अवशेष थे। धृतराष्ट्र ने उनके लिए खूब आंसू बहाए। गांधारी भी उनके लिए रोई। दुर्योधन और दुःशासन ने भी टसुए बहाए। भीष्म और द्रोण के दुःख का तो पारावार ही नहीं रहा।

विदुर भी शोकमग्न होने का बहाना करते रहे क्योंकि उनको तो पता था कि छह जनों के अवशेष कुंती और उसकी संतानों की जगह नशा कराकर वहां बैठाए गए छह लोगों के हैं। वह लगातार यह सोचते रहे कि घराने के भीतर इस भयावह षड्यंत्र की जानकारी किस-किसको थी। कौन सचमुच रो रहा था और कौन टसुए बहा रहा था?

- हाथियों के लिए प्रतिस्पर्धा का किस्सा कर्नाटक में होने वाले गज महोत्सव से प्रेरित है। इससे स्पष्ट है कि प्रतिद्वंद्विता पुत्रों के बीच सीमित नहीं थी बल्कि कुंती एवं गांधारी भी एक-दूसरे से होड़ करती थीं और अपने पुत्रों को यशस्वी बना देखना चाहती थी।
- कुंती के विदुर से संबंधों के बारे में भी बहुत से उद्धरण हैं। विदुर को यम का रूप बताया गया है। वे, पांडु की आज्ञा से कुंती को गर्भवती करने के लिए आहूत प्रथम देवता थे। इस प्रकार युधिष्ठिर, यम के पुत्र हैं और विदुर को अपने पिता तुल्य मानते हैं। तर्कशील विश्लेषकों का मत है कि पांडु ने विदुर की भूमिका अपने छोटे भाई की होने के कारण ही उन्हें अपनी पत्नी को गर्भवती करने के लिए सबसे पहले बुलवाया था। इससे कुंती और नके पुत्रों के प्रति विदुर की स्नेह भावना का कारण स्पष्ट हो जाता है।
- लाक्षागृह के प्रसंग में कौरव और उनके दृष्टिहीन पिता को महागाथा का खलनायक दर्शाया गया है। इस एक शर्मनाक हरकत से उनके लिए सारी सहानुभूति खत्म हो जाती है।
- मेरठ जिले में हस्तिनापुरी के नजदीक बरनावा नामक जगह को ही वारणावतमाना जाता है जहां पांडवों के लिए लाख का प्रासाद निर्मित किया गया था।

बकासुर का वध

कुंती ने एक बार कहा, 'विदुर के अलावा प्रासाद में किसी को हमारी परवाह नहीं है, भीष्म और द्रोण निर्लिप्त दिखने की कोशिश करते हैं और विदुर खुलेआम हमारा साथ दे नहीं सकते। हमें अपना पालन-पोषण खुद ही करना पड़ेगा। हमें तब तक अज्ञातवास में रहना चाहिए जब तक हमारे साथ कुछ शक्तिशाली लोग न जुड़ जाएं।' पांडवों ने अपनी मां से सहमति जताई।

इसीलिए वे गरीब ब्राह्मणों का रूप धरकर विधवा तथा उसके पांच पुत्रों ने वन में शरण ली। वे किसी एक स्थान पर जानबूझ कर लंबे समय तक नहीं रुकते थे। जंगल-जंगल चलते जाते थे और सोचते थे कि पता नहीं जीवन कब तक ऐसे ही अनिश्चित रहेगा। क्या वे ऐसा ही जीवन जीने के योग्य थे? बेघर, जड़ों से दूर, देवताओं की संतान। पांडव बहुधा अपनी मां को रोते हुए देखते थे और इस सोच में पड़ जाते थे कि अपनी मां के चेहरे पर मुस्कान कैसे लौटाएं।

सब लोग जब चलते-चलते थक जाते थे तो भीम समूचे परिवार को अपने बाजुओं पर बैठा लिया

करता थाः अपनी माता को कमर पर, नकुल और सहदेव को अपने कंधों पर तथा युधिष्ठिर और अर्जुन को अपने बाजुओं पर अथवा कूल्हों पर। इस रूप में उसे देखने वाले राहगीर सिर्फ उसके बल से ही नहीं बल्कि अपने परिवार के लिए समर्पण से भी अत्यंत प्रभावित होते थे।

जंगलों में घूमना जब असह्य हो गया तो पांडवों ने गांवों में शरण मांगनी शुरू की लेकिन वे एक जगह पर कभी भी लंबे समय तक नहीं रुके क्योंकि वे सबकी नजरों से बचे रहना चाहते थे अपने बारे में पता चल जाने पर वे हमेशा मार दिए जाने की आशंका से ग्रस्त रहते थे।

जंगल में घूमते हुए पांडव सारा दिन भोजन की खोज में व्यस्त रहते थे, वे घर-घर भिक्षा भी मांगते थे, दिन भर में जमा किए गए भोजन को कुंती शाम को बांटती थीं जिसमें से आधा भीम को सौंप दिया जाता था और बाकी अन्य चारों में बांटती थी। वे स्वयं जूठन से पेट भर लेती थीं।

एकचक्र गांव में कुंती और उनके पुत्रों को युवा ब्राह्मण दंपती ने शरण दी। एक रात उन्होंने पत्नी का आर्त्तनाद सुना, ‘मुझे यह पता है कि राक्षस का पेट भरने की आज तुम्हारी बारी है। लेकिन यदि तुम गए तो वह अवश्य ही तुम्हें खा जाएगा और मैं दूसरों की मोहताज, असहाय विधवा रह जाऊंगी क्योंकि मेरे पास अपना अथवा अपनी पुत्री का पेट भरने का कोई सहारा नहीं है।’ अपने दयालु मेजबानों के लिए दुःखी होते हुए कुंती ने ब्राह्मण से पूछा कि समस्या क्या है? तब उन्हें पता चला कि पूरा गांव भयभीत है। बक नामक राक्षस गांव के आसपास रहता है और भूख लगने पर गांव पर हमला करता है, झोपड़ियां तहस-नहस कर देता है और अपने सामने पड़ने वाले हर जीव-जंतु को मार डालता है। उसके हमले से घबराकर गांव वालों ने राक्षस से समझौता कर लिया हैः अचानक गांव पर हमला करने और भारी नुकसान करने के बजाय वे हर पखवाड़े उसके लिए बैलगाड़ी भरकर खाने की वस्तुएं भिजवा देंगे। उसे जी भरकर खाने-पीने की चीज़ें ही नहीं बल्कि बैल और बैलगाड़ी हांकने वाले पुरुष या स्त्री को भी निगल जाने की छूट होगी। गांव के हरेक परिवार को बारी-बारी से हर पखवाड़े राक्षस के लिए भोजन ले जाना पड़ता

था। इस प्रकार सभी गांववालों ने अपने कष्टों को भी आपस में बांट लिया था। अबकी बार ब्राह्मण दंपती को राक्षस के पास जाना था।

कुंती ने ब्राह्मण दंपती से कहा, 'डरो मत, इस घर ने हमें शरण दी है तो आप लोगों की रक्षा करना हमारा दायित्व है। आपके पति की जगह मेरा एक पुत्र जाएगा। मेरे पांच पुत्र हैं; मैं एक का बलिदान कर सकती हूं।' ब्राह्मण दंपती ने इसका विरोध किया, 'लेकिन आप तो हमारे मेहमान हैं।' इसके बावजूद कुंती ने सोच लिया था। उन्होंने भीम से कहा कि वह बक के लिए बैलगाड़ी भरकर खाने की चीजें ले जाए। कुंती के इस बलिदान से ब्राह्मण दंपती भावुक हो गया। कुंती ने जब भीम को बक के पास रवाना किया तो बाकी पांडव मंद-मंद मुस्करा रहे थे। उनकी मां ने ऐसा पैंतरा चला था जिससे गांव को राक्षस के त्रास से मुक्ति मिल जाए और उनके भूख से विह्वल पुत्र को भी भरपेट खाना मिल जाएगा।

उधर भीम ने जंगल में प्रवेश करते ही बैलगाड़ी एक तरफ लगाई और खाने पर टूट पड़ा। बक के कानों में जब चबाने और चूसने की आवाज आई तो वो क्रोध से पगला गया। वो बैलगाड़ी तक आया और देखा कि भीम उसके खाने की वस्तुएं गपागप खा रहा है। गुस्से के मारे वो भीम पर झपटा लेकिन भीम ने उसकी गर्दन पकड़कर उसे एक हाथ से बैलगाड़ी के नीचे दबा लिया और दूसरे हाथ से भोजन करता रहा। भरपेट खाना खा लेने के बाद भीम ने लंबी डकार ली और फिर बक की ओर देखा। दोनों में जंगली सांडों के समान भीषण युद्ध हुआ। एक-दूसरे पर उनके प्रहारों से धरती डोलने लगी और पेड़ हिलने लगे।

लंबे द्वंद्व के बाद भीम ने बक की गर्दन तोड़ दी।

अगली सुबह गांववालों ने देखा कि बक का शव लदी बैलगाड़ी गांव में प्रविष्ट हो रही है। विधवा और उनके अन्य पुत्रों का कहीं कोई अता-पता नहीं था। गांववालों ने अपने दुख से मुक्ति दिलाने के लिए उन रहस्यमय अजनबियों का धन्यवाद किया। 'वे अवश्य बहुरूपिए क्षत्रिय होने

चाहिए। क्या ये क्षत्रिय धर्म ही नहीं है कि बिना किसी पुरस्कार अथवा श्रेय की कामना के कमजोर की रक्षा की जाए?'

- महाभारत की केंद्रीय सांस्कृतिक भूमिका वाले भारत के दूरदराज ग्रामीण क्षेत्रों, आदिवासी समुदायों और दक्षिण मध्य एशिया के भी क्षेत्रों में गदाधारी भीम सबसे लोकप्रिय पांडव हैं। वो महान योद्धा हैं जिन्होंने अनेक राक्षस योद्धाओं को परास्त करके संसार को अधिक सुरक्षित बनाया। ग्रामीणजन शायद उनके सरल स्वभाव से प्रभावित हुए होंगे। वो अपनी धुन में मस्त सीधे-सादे थे जो जरा सी गलत बात पर क्रोधित हो जाते थे। उन्हें भोजन सबसे प्रिय था और दानवों से लड़ना उनका शौक था। धनुर्धर अभिजात वर्ग की पहली पसंद एकाग्रचित्त और अत्यंत असुरक्षित अर्जुन के उलट वे आम लोगों के नायक थे।
- ओडिशा और मध्य प्रदेश के कौंध जैसे अनेक आदिवासी समूहों के बीच भीम को धरती पर सभ्यता का प्रवर्तक माना जाता है। उनकी पूजा पेड़ के नीचे देवता के रूप में की जाती है और आदिवासी राजकुमारी रूपी को उनकी पत्नी माना जाता है।
- कमजोर ग्रामीणों पर आधिपत्य जमाने के लिए बक अपने बल का दुरूपयोग करता है। वो मत्स्य न्याय का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें बड़ी मछली अर्थात अधिक शक्तिशाली, छोटी मछली अर्थात अपने से कमजोर को खा जाती है। जंगल के कानून की यह भारतीय परिभाषा है। सभ्य समाज में ऐसी प्रथा वर्जित है। इसीलिए वैदिक विद्वानों की निगाह में बक जंगली है। उनके हिसाब से निस्सहाय की सहायता करने वाला ही सच्चा आर्य अथवा सज्जन व्यक्ति है। वे भीम के गुणों को इसीलिए सराहनीय मानते हैं।

हिडिंब एवं हिडिंबी

बक की हत्या के उपरांत वन में लौटने पर पांडवों एवं उनकी माता ने जंगलों के बीच खुली जगह पर विश्राम का निर्णय किया। वहां उन पर हिडिंब नामक राक्षस ने अचानक हमला कर दिया। हिडिंब दरअसल बक का भाई था और भीम द्वारा उसकी हत्या किए जाने से नाराज था।

जबर्दस्त द्वंद्व युद्ध के बाद भीम ने हिडिंब को काबू करके उसे मार दिया। युद्धस्थल के पास ही झाड़ियों में हिडिंब की बहन हिडिंबी छिपी हुई थी। उसने अपनी आंखों से अपने भाई की हत्या होते देखी लेकिन उससे क्रोधित होने के बजाय वह भीम की शक्ति और युद्धकौशल के प्रति आकर्षित हो गई और उसने मन ही मन भीम का अपने पति के रूप में वरण कर लिया। अपनी मायावी शक्तियों का प्रयोग करके वह भीम, उसकी माता और भाइयों को बेहद रमणीक स्थान पर ले गई और उन्हें खाना, वस्त्र एवं आश्रय दिया। उसकी आवभगत से संतुष्ट होकर कुंती ने हिडिंबी को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार कर लिया।

समय बीतने के साथ ही हिडिंबी ने भीम के पुत्र घटोत्कच को जन्म दिया।

कुंती ने अपने दूसरे पुत्र को अपनी पत्नी और बच्चे के साथ गृहस्थी में रमते हुए देखा तो उन्हें ये भय सताने लगा कि कहीं भीम अपने भाइयों से विमुख न हो जाए। इसलिए उन्होंने एक दिन भीम को बुलाया और कहा, 'हमारे भाग्य में कुछ और बदा है। राक्षसों की संगत नहीं। अब यहां से निकलने का समय आ गया है।'

भीम ने अपनी माता की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए भारी मन से अपनी पत्नी और पुत्र को अलविदा कह दिया। पांडवों के वहां से निकलते समय हिडिंबी के शिशु रूपी पुत्र ने पुरुषोचित स्वर में कहा, 'पिताजी, आपको कभी भी मेरी आवश्यकता पड़े तो मुझे बस याद कर लीजिएगा और मैं वहां पहुंच जाऊंगा।' यह सुनकर भीम मुस्कुराया और उसने प्यार से अपने पुत्र का गाल सहलाया, पत्नी को कातर निगाहों से देखा और उसके बाद अपनी माता और भाइयों के पीछे-पीछे राक्षस नगरी से विदा हो गया।

- हिमाचल प्रदेश में हिडिंबी नाम की ग्राम देवी है जिससे अनुमान लगता है कि राक्षसजन शायद वनवासी आदिवासी थे जो वैदिक संस्कृति से विमुख थे इसलिए उन्हें जंगली और हेय माना जाता था। उन्हें जंगली इसलिए भी माना जाता था क्योंकि वे सिर्फ ताकत के बलबूते जिंदा थे और बुद्धि और चातुर्य के मुकाबले शक्ति को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। भीम की पत्नी बन जाने से हिडिंबी ने शायद अपनी राक्षसी प्रवृत्ति को त्याग दिया था इसलिए वह पूजी जाने लगी थी।
- राक्षस एवं असुर शब्दों का प्रयोग हालांकि पर्यायवाची रूप में किया जाता है लेकिन उनमें अंतर किया जाना आवश्यक है। राक्षस तो जंगल में रहते हैं जबकि असुर पाताल में रहते हैं। पुराणों में असुरों के देवताओं से युद्ध और राक्षसों द्वारा मनुष्यों को सताए जाने का वर्णन है।
- हिडिंबी द्वारा अपने भाई के हत्यारे को अपना पति बना लिए जाने से प्रतीत होता है कि राक्षस ताकतवर के अनुगमन करने की जंगली प्रथा का पालन करते थे।
- कुंती अपने दूसरे पुत्र भीम के राक्षस स्त्री से संबंध बन जाने से परेशान थीं। वह इस संबंध को एक सीमा तक ही बर्दाश्त कर पाती हैं लेकिन उसके बाद अपने पुत्र को प्रस्थान का आदेश देती हैं क्योंकि उसका भविष्य जंगल में नहीं बल्कि राजप्रासाद में निहित था। उन्हें ये भय सताता है कि हिडिंबी द्वारा भीम को गृहस्थी में रमा देने से परिवार की एकता को नुकसान हो सकता है।

अंगारपर्ण नामक गंधर्व

जलाशय से पानी निकालते समय एक दिन पांडवों पर अंगारपर्ण नामक गंधर्व ने आक्रमण कर दिया। उसने जलाशय को अपना बताते हुए उनसे वहां से चले जाने को कहा। पांडवों ने इसका विरोध किया और दोनों पक्षों के बीच भीषण युद्ध छिड़ गया। युद्ध के दौरान अर्जुन को अग्नि बाण छोड़ना पड़ा। बाण लगते ही गंधर्व का रथ आग की लपटों से घिर गया। कुछ ही देर में अंगारपर्ण अचेत हो गया और अर्जुन ने उसे बंदी बना लिया।

गंधर्व की पत्नी कुंभीनाशी ने अर्जुन से उसे छोड़ देने की याचना की। युधिष्ठिर ने आदेश दिया, 'इसे छोड़ दो।' अर्जुन ने आज्ञा का पालन किया। पांडवों के इस उपकार के बदले गंधर्व ने उन्हें 100 अश्व भेंट किए। उसने, उन्हें अनेक किस्से भी सुनाए।

उनमें से एक किस्सा ऋषि वशिष्ठ के पुत्र शक्तृ का भी था। शक्तृ एक दिन किसी संकरे पुल से गुजर रहा था तभी उसने देखा कि कालमाशपद नामक राजा उसका रास्ता रोके खड़ा है। राजा द्वारा उसे निकलने का रास्ता देने से इन्कार करने पर क्रोधित होकर उसने राजा को राक्षस बन जाने का शाप दे दिया। शाप का प्रभाव तत्काल हुआ लेकिन उससे शक्तृ का ही सबसे अधिक अहित हुआ। राक्षस बनते ही कालमाशपद की मानवभक्षण की इच्छा जागृत हुई और उसने शक्तृ को ही चबा डाला। अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर वशिष्ठ दुःख से इतने अधिक विह्वल हो गए कि उन्होंने आत्महत्या का प्रयास किया। इसके लिए वह पहले अग्नि में कूदे फिर खाई में कूदे और फिर नदी में भी कूदे लेकिन अग्नि, धरती तथा जल तीनों ने ही वशिष्ठ को नुकसान नहीं होने दिया। इन सभी तत्त्वों ने ऋषि से कहा, 'जीवित रहो, अपने पौत्र के लिए जिओ जो अपनी मां की कोख में अभी अजन्मा है।' समय बीतने पर वशिष्ठ की विधवा पुत्रवधू ने पराशर को जन्म दिया जिसके लालन-पालन में रमकर वशिष्ठ जीवित रहे। पराशर ने बड़े होने पर ऐसे यज्ञ के आयोजन का निश्चय किया जिससे उनके पिता के हत्यारे कालमाशपद सहित सभी मानवभक्षी राक्षसों का अंत निश्चित था। वशिष्ठ ने कहा, 'रुको।' उन्होंने समझाया, 'उसे माफ कर दो क्योंकि तुम्हारे पिता ने ही क्रोधित होकर राजा को शाप दिया था और उसी शाप के फलस्वरूप तुम्हारे पिता की जान चली गई। उसी प्रकार तुम्हारी इस बदले की कार्रवाई का कोई ठोस परिणाम नहीं निकलेगा बल्कि इससे बदले की आग का अंतहीन सिलसिला शुरू हो जाएगा। अपने दिल को टटोलकर उसे माफ कर दो। राक्षसों को शांतिपूर्वक रहने दो। और तुम भी अपना जीवन शांतिपूर्वक बिताओ।'

पराशर को अपने पितामह के इन शब्दों में छिपा भलाई का संदेश समझ में आया और उन्होंने राक्षसों के विनाश के लिए आयोजित यज्ञ समाप्त कर दिया। यही पराशर, व्यास के पिता थे जो बाद में पांडु के पिता बने।

पांडवों को यह समझ में आ गया कि गंधर्व ने उन्हें यह किस्सा इसलिए सुनाया है क्योंकि उसे, उनके हृदय में अपने ताऊ के पुत्रों के विरुद्ध क्रोध का अनुमान हो गया था।

उन्होंने गंधर्व को बताया, 'हम पांडव हैं जिनका कौरवों ने घोर अहित किया है।' उन्होंने गंधर्व को अपने पिता की मृत्यु से लेकर अपने ताऊ द्वारा विश्वासघात तक अपनी सारी व्यथा सुनाते हुए कहा, 'इतना अधिक अन्याय झेलने के बाद किसी को क्षमा करना कठिन है।'

इस पर गंधर्व ने जवाब दिया, 'क्रोध त्याग दीजिए। इसके बजाए अपने भविष्य निर्माण में जुट जाइए। आपके पास अब मेरे घोड़े हैं। अब अपने लिए कोई ऋषि ढूंढ़िए और पत्नी भी। और उसके बाद समुचित स्थान देखकर अपना राज्य स्थापित कीजिए और राजा बन जाइए।'

- गंधर्व भी राक्षसों के समान ही वनवासी जीव हैं। लेकिन वह अधिक सुसंस्कृत प्रतीत होते हैं। वे यात्र के लिए उड़न रथों का और लड़ाई के लिए धनुष का प्रयोग भी करते हैं। शायद अवैदिक प्रजातियों को आकर्षक पाए जाने पर देवताओं अथवा देवताओं के समकक्ष तथा अनाकर्षक पाए जाने पर दानव की श्रेणी में वर्गीकृत किया गया था।
- महागाथा में अंगारपर्ण कहते हैं कि वे पांडवों पर आक्रमण इसलिए कर पाए क्योंकि उन्होंने जीवन में तब तक शिष्यत्त्व का सिर्फ एक चरण ही पूरा किया था और पति एवं गृहस्थ के अगले चरण में वे प्रविष्ट नहीं हुए थे। इस प्रकार व्यास, विवाह के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। वैदिक काल में आश्रम धर्म के अनुसार मनुष्य का शिष्यत्त्व का काल उसके विवाह के उपरांत ही समाप्त होता था। जबकि उसका गृहस्थकाल उसके पुत्र द्वारा संतान प्राप्ति के बाद समाप्त होता था।
- वशिष्ठ एवं पराशर का किस्सा इस स्थान पर शायद जानबूझकर सुनाया गया है। गंधर्व को पांडवों के भीतर धधक रही क्रोध की ज्वाला का अनुमान लग गया था। कौरवों के विरुद्ध उनका क्रोध भले ही कितना भी न्यायपूर्ण हो लेकिन वह उससे असहमत था। इस क्रोध से सिर्फ और अधिक पीड़ा एवं कष्ट ही पैदा होगा।
- संकरे पुल पर दो व्यक्तियों के आमने-सामने गुजरने तथा उनमें से कौन किसको निकलने का रास्ता देगा के प्रतीक का प्रयोग धर्म का प्राण मानी जाने वाली उदारता तथा अधर्म का मूल समझी जाने वाली जिद को व्याख्यायित करने के लिए गढ़ा गया है।
- अश्व भारतीय उपमहाद्वीप के मूल पशु नहीं हैं। गंधर्व द्वारा पांडवों को अश्व भेंट किए जाने के प्रसंग से प्रतीत होता है कि उन्होंने कहीं उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र में शरण प्राप्त की थी जहां से व्यापारी मध्य एशिया एवं अरब देशों से अश्व भारत में लाते थे।

छठा अध्याय

विवाह

‘जनमेजय तुम्हारे कुटुंब में, माता ने अपने पुत्रों को एक ही पत्नी को आपस में बांट लेने का आदेश दिया।’

शिव द्वारा प्रदत्त संतान

गंधर्व द्वारा निर्देशित पांडव पांचाल के आगे स्थित वन में चले गए। वहां पर उन्हें धौम्य ऋषि मिले जिन्होंने उनका परिचय प्राप्त करने के बाद उनका गुरु बनने का आग्रह स्वीकार कर लिया।

धौम्य की पहली सलाह थी, 'पुत्रवधू के बिना कुंती की गृहस्थी अधूरी है। आओ उसे ढूंढ़ा जाए। आओ हम द्रुपद के दरबार में चलते हैं जहां धनुष की निशानेबाजी की प्रतियोगिता आयोजित की गई है। विजेता का उनकी पुत्री द्रौपदी से विवाह होगा।'

धौम्य ने इसके बाद उन्हें द्रुपद के द्रौपदी का पिता बनने का किस्सा सुनाया।

द्रोण के शिष्यों के हाथों अपनी हार से अपमानित द्रुपद ने सृष्टि के देवता शिव की तपस्या की और द्रोण एवं उनके संरक्षक कुरु वंश के विनाश का वरदान मांगा। उसने कातर होकर गुहार लगाई, 'एक पुत्र द्रोण की हत्या के लिए। एक पुत्र भीष्म की हत्या के लिए। कुरु वंश में विवाह करके उसे विभाजित करने के लिए एक पुत्री भी प्रदान कीजिए।'

शिव ने कहा, 'तथास्तु।'

समय बीतने पर द्रुपद की पत्नी ने एक पुत्री को जन्म दिया। देवदूतों ने कहा कि आगे जाकर वह पुरुष का शरीर ग्रहण कर लेगी। उन्होंने बताया, 'यह मनु के पुत्र सुद्युम्न के इला नामक स्त्री में परिवर्तित हो जाने के समान ही लिंग परिवर्तन होगा। इस प्रकार वह भीष्म की मृत्यु का कारण बनेगी।' उन्होंने यह आकाशवाणी भी की कि द्रुपद की पुत्री के रूप में दरअसल अंबा का पुनर्जन्म हुआ है।

लेकिन द्रुपद इस संतान से संतुष्ट नहीं हुआ इसलिए उसने याज एवं उपयाज नामक ऋषियों की सहायता मांगी। इन ऋषियों को ऐसी दिव्य औषधि बनाने में महारत हासिल थी जिसे खाने पर स्त्री संतान प्राप्त कर सकती थी। दोनों ऋषियों ने महायज्ञ आयोजित किया लेकिन द्रुपद की पत्नी को जब वह दिव्य औषधि खिलाने का समय आया तो वह स्नान में व्यस्त थी। याज एवं उपयाज ने उसकी प्रतीक्षा न करते हुए दिव्य औषधि को यज्ञ कुंड में डाल दिया।

अग्नि के बीच से दो संतान प्रकट हुई: एक पुरुष धृष्टद्युम्न जो बाद में द्रोण का वध करेगा और द्रौपदी नामक स्त्री जो कुरु वंश में विवाह करके उसे विभाजित करेगी।

इस प्रकार शिव ने द्रुपद को तीन संतान प्रदान कीं। एक पुत्री जो बाद में पुत्र में परिवर्तित हो जाएगी और उसके बाद जुड़वां, एक पुत्र जो जन्मना पुरुष तथा एक पुत्री जन्मना स्त्री थी। पहली संतान द्वारा भीष्म का वध तथा द्वितीय संतान द्वारा द्रोण का वध किया जाना था। तीसरी संतान के भविष्य में कुरु वंश में फूट डालना निहित था।

द्रुपद दुनिया के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन को अपनी पुत्री देना चाहता था लेकिन चूंकि सबको यह विश्वास था कि अर्जुन अपने भाइयों एवं अपनी माता के साथ वारणावत में लाक्षागृह के अग्निकांड में भस्म हो चुका है इसलिए द्रुपद के सामने अपनी बेटी के लिए द्वितीय सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर ढूंढ़ने के लिए धनुष की निशानेबाजी प्रतियोगिता आयोजित करने के अलावा कोई चारा नहीं था।

- वैदिक काल में सभी राजाओं द्वारा राजर्षि की नियुक्ति की प्रथा थी जो उन्हें रीति-रिवाज, अध्यात्म, तंत्र-मंत्र के साथ-साथ राजनैतिक सलाह भी प्रदान करता था और राजगुरु कहलाता था। देवताओं के राजा इंद्र के गुरु बृहस्पति थे। असुरों के राजा बालि के गुरु शुक्र थे। पांडवों का भी चूंकि राजा बनना तय था इसलिए उन्हें अपने साथ गुरु की

नियुक्ति की सलाह दी गई। इसे राज्य एवं धर्म के बीच गठबंधन की आरंभिक सूरत माना जा सकता है।

- महाभारत वैष्णव ग्रंथ है क्योंकि इसमें विष्णु के गुणों का बखान है। विष्णु विश्वनियंता ईश्वर का स्वरूप हैं। शिव, ईश्वर के वैरागी स्वरूप हैं और वे ऐसे प्रतीक के रूप में महागाथा में प्रकट होते हैं जिनका आह्वान अंबा, द्रुप्र द तथा बाद में अर्जुन जैसे प्रतिशोध से जलते चरित्र करते दिखाए गए हैं।
- शिव को अर्धनारीश्वर माना गया है। ईश्वर का ऐसा स्वरूप जिनके आधे शरीर में नारी व्याप्त है। उनके सौजन्य से उत्पन्न संतान में पुरुष एवं स्त्री दोनों के ही गुण पाए जाते हैं। द्रुपद की पहली पुत्री शिखंडी बड़ी होकर पुरुष का शरीर प्राप्त कर लेती है। अगली बार दिव्य औषधि छिटक कर दो संतान प्रदान करती है-एक पूर्ण पुरुष तथा दूसरी पूर्ण स्त्री। धृष्टद्युम्न का चित्रण अत्यंत हिंसक पुरुष के रूप में है जबकि उसकी जुड़वां बहन द्रौपदी का चित्रण अत्यंत ऐंद्रिक स्त्री के रूप में है।
- यहां इस बात पर ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि राक्षस स्त्री हिडिंबी को न तो कुंती और न ही धौम्य पुत्रवधू मान पाते हैं। इससे नस्लवादी रुझान का बोध होता है।

द्रौपदी का स्वयंवर

धौम्य ने पांडवों को सलाह दी, 'द्रुपद की पुत्री के स्वयंवर में ब्राह्मण वेश में जाओ और देखो कि वहां क्या होता है? यदि उसकी रचना अर्जुन की पत्नी बनने के लिए हुई है तो संसार में वैसा होने से कोई नहीं रोक सकता।'

धौम्य के पीछे-पीछे पांडव द्रुपद के दरबार में पहुंच गए। वे चूंकि ब्राह्मण वेश में थे इसलिए प्रतियोगिता में शामिल नहीं हो सकते थे। वे ऋषियों, तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए निर्धारित मंडप में बैठकर क्षत्रियों की प्रतियोगिता देखने लगे। सभी प्रतियोगियों से छत से लटके पहिए पर घूमती मछली की आंख को उसके प्रतिबिंब को तेल के कड़ाह में देखकर धनुष से बींधने की चुनौती दी गई थी। यह ऐसी कठिन चुनौती थी जिसके बारे में सबकी राय यही थी कि उसे यदि अर्जुन जीवित होता तो वही विजित कर सकता था।

समूचे भारतवर्ष से अनेक धनुर्धर आए और उन्होंने अपना हाथ आजमाया। उनमें से कुछ तो प्रतियोगिता के लिए रखे गए विशाल धनुष की प्रत्यंचा भी नहीं चढ़ा पाए। कुछ अन्य मछली का

प्रतिबिंब देखने की कोशिश में तेल के कड़ाह में ही गिर पड़े। बाकी मछली की आंख के बजाए इधर-उधर तीर मारकर प्रस्थान कर गए।

दुर्योधन, कलिंग की राजकुमारी भानुमति से पहले ही विवाहित होने के कारण इस प्रतियोगिता में शामिल नहीं हो पाया। उसने अपनी पत्नी से यह वायदा किया हुआ था कि वह कभी भी और किसी से विवाह नहीं करेगा। इसलिए उसने, अपने स्थान पर अपने मित्र कर्ण को भेजा था।

कर्ण ने जैसे ही निशाना साधने की कोशिश की द्रौपदी अपने स्थान से उठ खड़ी हुई और बोली, 'नहीं, रथचालक का पुत्र विवाह करके मेरा हाथ थामने की कल्पना भी नहीं कर सकता।' इस प्रकार सार्वजनिक अपमान से आहत कर्ण पीछे हट गया।

सभी क्षत्रियों द्वारा प्रयास करने और विफल रहने के कारण द्रुपद ने ब्राह्मणों को प्रतियोगिता में शामिल होने का निमंत्रण दिया। अर्जुन फुर्ती से उठा, धनुष उठाया, घूमती मछली की आंख के प्रतिबिंब की ओर देखा तथा तीर छोड़ दिया। तीर ने लक्ष्य वेध दिया और वहां उपस्थित जनसमुदाय ने जोरदार हर्षध्वनि की। इस बात से सभी आश्चर्यचकित थे कि क्षत्रिय कैसे विफल हो गए और ब्राह्मण कैसे सफल हो गया?

वहां उपस्थित क्षत्रियों में शामिल कुछ लोगों ने द्रौपदी का हाथ थामने से अर्जुन को रोकने की कोशिश की लेकिन धनुर्धर ब्राह्मण की रक्षा के लिए सन्नद्ध उसके चार अत्यंत बलिष्ठ भाइयों को देखकर वे पीछे हट गए।

- स्वयंवर के दौरान वैसे तो आदर्श प्रथा यही है कि युवती वहां उपस्थित पुरुषों में से स्वयं अपने पति का वरण करे। लेकिन समय बीतने के साथ-साथ स्त्रियों से यह अधिकार वापस ले लिया गया था। स्वयंवर भी धनुर्विद्या प्रतियोगिता बन गया और वधू को विजेता के लिए पुरस्कार बना दिया गया। इसके बावजूद स्वयंवर के लिए प्रस्तुत युवती को यह अधिकार था कि वह किसी को भी प्रतियोगिता में शामिल होने के अयोग्य घोषित कर सकती थी जिस प्रकार द्रौपदी ने कर्ण को घोषित किया।
- गुजरात की लोककथा में वर्णन है कि मगध का सम्राट जरासंध भी द्रौपदी के स्वयंवर में शामिल होना चाहता था। लेकिन जब उसने जनता के बीच यह कानाफूसी सुनी, 'यदि वह हारा तो सब उसका मखौल उड़ाएंगे कि उसने अपना सार्वजनिक अपमान करवाया। यदि वह विजयी रहा तब भी उसका मखौल उड़ेगा कि उसने इतनी कम उम्र की युवती को पत्नी बना लिया।' इस प्रकार जीवन में ऐसी परिस्थितियां भी आ जाती हैं जब आपकी जीत किसी भी प्रकार संभव नहीं हो पाती।
- द्रौपदी कर्ण को उसकी सर्वविदित सामाजिक हैसियत के कारण ठुकराती है जबकि सब इस बात से अनभिज्ञ थे कि वो क्षत्रिय था। जब कोई भी क्षत्रिय लक्ष्य संधान नहीं कर पाता तो द्रुपद परिस्थिति से समझौता करके ब्राह्मणों को भी प्रतियोगिता में शामिल कर लेता है। द्रौपदी भी अपने पिता के समझौते को स्वीकार करके ब्राह्मण से विवाह कर लेती है जो बाद में छद्मवेशी क्षत्रिय निकलता है। इसके माध्यम से व्यास परोक्ष वास्तविक सत्य के बजाए बाह्य प्रत्यक्ष सत्य के आधार पर व्यवहार की भूल की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं।

साझा पत्नी

अर्जुन ने कहा, 'माता देखो मैं प्रतियोगिता में क्या जीतकर लाया हूं।'

कुंती ने बिना पीछे देखे ही कहा, 'यह चाहे कुछ भी हो अपने भाइयों के साथ बराबर-बराबर साझा कर लो।'

अर्जुन ने तब जवाब दिया, 'लेकिन यह तो स्त्री है।'

कुंती ने कौतूहल से पीछे मुड़कर देखा तो अर्जुन के साथ रूपवती द्रौपदी को खड़ा पाया। उन्हें ये आभास भी हो गया कि उनके सभी पुत्र उसके लिए लालायित हैं। इस भय से कि कहीं स्त्री के कारण उनके पुत्रों की एकता खटाई में न पड़ जाए उन्होंने कहा, 'यदि यह धर्मानुसार है और तुम मेरे सच्चे पुत्र हो तो जो मैंने कहा है उसका पालन करो।'

ऐसा करना धर्मानुसार ही था। युधिष्ठिर ने विदुला का प्रसंग सुनाया जिसने प्राचीन कथाओं के अनुसार दस प्रचेत भाइयों से विवाह किया था। इस संदर्भ में द्रौपदी का पांच पांडवों की सामूहिक पत्नी बनना तय ही हो गया था। अपने पूर्व जन्म में द्रौपदी ने भगवान शिव का आह्वान करके उनसे ऐसा पति पाने की इच्छा जताई जो ईमानदार हो, शक्तिशाली हो, कुशल हो, खूबसूरत हो और ज्ञानी हो। इस पर शिव ने कहा था, 'तुम्हें अपनी इच्छानुसार सभी पांच पुरुष मिलेंगे क्योंकि ईश्वर को छोड़ दें तो किसी एक मनुष्य में तो इतने सारे गुण एकसाथ विद्यमान होना असंभव है।'

अन्य पूर्व जन्म में द्रौपदी दरअसल मौद्गल्य ऋषि की पत्नी नालायनी थी। ऋषि को ऐसी बुरी बीमारी थी जिसके कारण वे सारा दिन खांसते और थूकते रहते थे।

उनकी त्वचा पर चकत्ते और घाव हो गए थे। उसके बावजूद नालायनी उनके प्रति समर्पित पत्नी के रूप में उनकी मनोयोग से सेवा करती थी। उसकी निरंतर सेवा से अभिभूत ऋषि ने उससे वरदान मांगने को कहा। नालायनी ने उनसे अनुरोध किया कि वे अपनी तपस्या के बल पर उसकी सभी यौन उत्कंठाओं को पूरा करें। वरदान के अनुरूप मौद्गल्य ऋषि ने कुछ मानव, कुछ दिव्य, मगर सभी अत्यंत खूबसूरत और विभिन्न पुरुषों का रूप धारण करके उससे अनेक मुद्राओं में यौन संबंध स्थापित किया। अनेक वर्ष तक यौन सुख भोगने के बाद मौद्गल्य ने दुनिया को त्यागने का निर्णय किया। लेकिन नालायनी संतुष्ट नहीं थी। उसने पूछा, 'आपके जाने के बाद मुझसे प्यार कौन करेगा?' उसकी निरंकुश कामेच्छा से त्रस्त होकर ऋषि ने उसे शाप दे दिया कि अगले जन्म में उसे अनेक पुरुषों की साझा पत्नी बनना पड़ेगा।

अपने पूर्व जन्मों में सभी पांडवों ने इंद्र के रूप में कार्य किया था और उन्होंने सिर्फ अपने बूते अपनी पत्नी शची तथा अपनी मायावी नगरी अमरावती की रक्षा की थी। लेकिन अपने वर्तमान जन्म में वे सब मिलकर भी अपनी पत्नी अथवा अपने राज्य की रक्षा नहीं कर पाएंगे। क्योंकि यह संसार के जीवनकाल के तीन चौथाइवें चरण के तीसरे अर्थात द्वापर युग का अंतिम काल था।

- व्यास यह कभी स्पष्ट नहीं करते कि कुंती इस बात का भान होने के बाद भी अपने बयान को रद्द क्यों नहीं करतीं कि अर्जुन जिस पुरस्कार का उल्लेख कर रहा है वो कोई वस्तु नहीं बल्कि स्त्री है। कुंती ये बात भलीभांति जानती हैं कि उनकी शक्ति का एकमात्र स्रोत उनके पुत्रों की एकता में ही निहित है। इसीलिए वे इस बात पर जोर देती हैं कि उनके पुत्र एक ही स्त्री से विवाह करें अन्यथा यदि द्रौपदी से सिर्फ अर्जुन ही विवाह करेगा तो भाइयों के बीच यौन ईर्ष्या उनमें फूट डाल देगी।
- भारत के दक्षिण में टोडा और उत्तराखंड में कुछ पहाड़ी प्रजातियों के बीच संपत्ति का बटवारा रोकने के लिए बहुपति प्रथा जीवित है। घर में हमेशा एक ही रसोई और एक ही पुत्रवधू होती है। पुत्रों को यह आजादी रहती है कि वे आपस में एक ही पत्नी को भोगें अथवा संन्यास ग्रहण कर लें या फिर किसी रखैल अथवा वेश्या के पास जाकर वासना मिटाएं जिनका खानदानी संपत्ति पर कोई कानूनी हक नहीं होता।
- नालायनी की कहानी में मलयालम साहित्य में अनेक उतार-चढ़ाव मिलते हैं। उदाहरण के लिए 16वीं सदी की भारतम् पट्टू तथा 18वीं सदी की नालायनी चरित्रम्। उनके माध्यम से द्रौपदी के बहुपतियों से संबंध को व्याख्यायित करने की कोशिश की गई, जिससे अनेक लोग असहमत दिखते हैं।

सातवां अध्याय

मैत्री

'जनमेजय, इस धरा पर कृष्ण के रूप में अवतरित हुए ईश्वर ने तुम्हारे परिवार की सुरक्षा स्वयं करने के लिए अपने को सबसे प्रिय अपनी प्रेयसी और संगीत दोनों को तिलांजलि दी।'

कृष्ण का प्रवेश

द्रौपदी का जिस प्रकार पांडवों से विवाह किया गया उसी प्रकार कुंती के घर में कोई अजनबी प्रविष्ट हुआ। वह कृष्णवर्णीय एवं अत्यंत सुदर्शन पुरुष था जिसकी आंखें तेजस्वी एवं चमकीली तथा मुस्कान आकर्षक थी। उसने चटख पीली धोती पहन रखी थी। उसके गले में सुगंधित जंगली फूलों की माला तथा सिर पर मोर मुकुट था।

कुंती को साष्टांग प्रणाम करते हुए उस अजनबी ने सबको प्रभावित करने वाले धीमे एवं मीठे सुर में कहा, 'मैं कृष्ण हूं। आपके भाई वासुदेव का पुत्र। आपके पिता शूरसेन, जिन्होंने आपको, कुंतीभोज को गोद दे दिया था, मेरे दादा हैं। हम दोनों की नसों में यदु एवं नागवंश का रक्त बह रहा है। आपके पुत्र मेरे फुफेरे भाई हैं।'

कृष्ण का जन्म कुंती की जन्मस्थली मथुरा में विपत्तिकाल में हुआ था। शूरसेन द्वारा कुंती को गोद भेज देने के कुछ ही समय बाद शूरसेन के युवा भतीजे और उग्रसेन के पुत्र कंस ने यादव शासन परिषद को धता बताने का दुस्साहस करते हुए अपने ससुर एवं मगध के शक्तिशाली सम्राट जरासंध के समर्थन से स्वयं को मथुरा का तानाशाह घोषित कर दिया। अपने सभी विरोधियों की उसने हत्या कर दी अथवा उन्हें कैद करके बंदीगृह में डाल दिया।

कंस की कनिष्ठ बहन देवकी का विवाह कुंती के भाई वासुदेव से हुआ था। विवाह संस्कार के दौरान ही ये आकाशवाणी हुई कि इस विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली आठवीं संतान कंस की हत्या कर देगी। इससे भयभीत होकर कंस हाथोंहाथ अपनी बहन की हत्या करने पर उतारू हो गया, मगर उसे इस शर्त पर देवकी को ज़िंदा रहने देने के लिए मनाया जा सका कि वासुदेव आठवीं संतान पैदा होते ही लाकर उसे सौंप देंगे।

देवकी द्वारा अपने पहले बच्चे को जन्म देते ही कंस को ये चिंता सताने लगी कि यदि वासुदेव द्वारा उसे सौंपी गई संतान आठवीं न हुई तो क्या होगा? इसलिए उसने, देवकी के हरेक बच्चे को पैदा होते ही मार डालने की ठान ली। वो गुस्से में देवकी के शयनकक्ष में घुसा और उसने नवजात शिशु को उसके पांवों से पकड़ कर उसका सिर पथरीले फर्श पर पटक दिया।

इस आघात से आहत देवकी ने और अधिक संतान पैदा करने से इन्कार कर दिया। इस पर वासुदेव ने उसे समझा-बुझा कर मनाया, 'आठवें बच्चे द्वारा मथुरा को कंस के अत्याचारों से बचाने देने के लिए सात बच्चों का बलिदान आवश्यक है।'

इस प्रकार वो घड़ी टल गई। देवकी संतान पैदा करती रही और कंस, उनके जन्म लेते ही उनकी हत्या करता रहा।

देवकी और वासुदेव की छह संतानों की इसी तरह हत्या कर दी गई। ऋषियों ने बताया, 'आपकी संतानों को जन्म लेते ही मृत्यु का दंश इसलिए झेलना पड़ रहा है क्योंकि उन्होंने पूर्व

जन्म में अपने दुर्व्यवहार से ऋषियों का अपमान किया था। और आपको, अपनी संतान पैदा होते ही उनकी हत्या देखने का त्रास इसलिए झेलना पड़ रहा है क्योंकि अपने पूर्व जन्म में आपने, अपने यज्ञ के लिए ऋषियों की गाय चुराई थी। सभी कष्टों का मूल कर्मों में है। लेकिन भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है, आपकी सातवीं एवं आठवीं संतान आपके हर्ष का कारण बनेंगी। सातवीं ईश्वर की परछाई होगी। आठवीं संतान स्वयं ईश्वर का अवतार होगी।'

ऐसा ही हुआ भी। देवकी द्वारा सातवीं संतान का गर्भाधान करते ही परिस्थितियां बदलने लगीं। योगमाया नामक देवी ने अपनी दिव्य शक्ति के माध्यम से देवकी की सातवीं संतान को वासुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में पहुंचा दिया। रोहिणी अपने भाई नंद के साथ यमुना पार स्थित गायपालक गांव गोकुल में थीं। इस प्रकार एक कोख में गर्भाधान से आया और दूसरी कोख से पैदा हुआ शिशु बलराम था जो चांद की तरह शुभ्र-धवल, हाथियों के झुंड की तरह बलवान था। कंस को बताया गया था कि भयभीत देवकी की सातवीं संतान का गर्भपात से निधन हो गया था।

बलराम आदि-अनंत-शेष का अवतार थे। शेषनाग, जिसके हजारों मुख वाले फन की छाया में उसकी कुंडली पर ब्रह्मांड के नियंता विष्णु विश्राम करते थे। कुछ लोगों का अनुमान है कि वे स्वयं विष्णु का ही अवतार थे जिनका जन्म भगवान द्वारा अपने सीने से एक सफेद बाल को तोड़कर देवकी की कोख में आरोपित करने से हुआ था।

भगवान ने अपने सीने के एक काले बाल को भी तोड़कर देवकी की कोख में आरोपित किया जिससे उनकी आठवीं संतान का गर्भाधान हुआ।

वो अपनी मां की कोख से नौ माह बाद काली अंधेरी, तूफानी, कृष्ण पक्ष में अष्टमी की रात को पैदा हुआ जबकि तेज हवा ने मथुरा में सारे दीप बुझा दिए थे।

शिशु सबसे काली रात के समान कृष्णवर्णी और कमल के फूल के लिए सूर्य के समान आकर्षक था।

योगमाया ने समूची नगरी को नींद में सुला दिया और वासुदेव से शिशु को टोकरी में रख कर नगरी से बाहर यमुनापार गोकुल ले जाने को कहा। वासुदेव ने देवकी के कातर आग्रह की अनदेखी करके योगमाया की आज्ञा का पालन किया।

गोकुल में गायों के घेर में उन्हें नंद की पत्नी यशोदा अपने अंक में नवजात कन्या को समेटे सोती हुई मिली। वासुदेव ने शिशुओं की अदला-बदली की और यशोदा की पुत्री को लेकर मथुरा लौट आए।

अगले दिन कंस, देवकी की कोठरी में आ घुसा और पल भर आश्चर्यचकित नजरों से उसने कन्या शिशु को देखा और फिर देवकी की आठवीं संतान को उसका सिर पथरीले फर्श पर पटकने की मंशा से उसने उठाया। लेकिन ये क्या, वो कन्या तो उसके हाथों से फिसल कर आकाश की ओर उछली और अष्टभुजा देवी में बदल गई। हरेक भुजा में दिव्यास्त्र धारण किए देवी ने आकाश में उड़ते हुए ये आकाशवाणी की कि कंस की हत्या करने वाला जीवित है। और कंस को आकाशवाणी के अनुसार अपनी जान से हाथ धोने ही पड़ेंगे।

- कृष्ण कोई सामान्य चरित्र नहीं थे। वो तो हिंदुओं के लिए भगवान थे, विष्णु, जो धर्म की पुनर्स्थापना के लिए वैकुंठ से आकर अवतरित हुए थे। वो कृष्णावतार से पहले परशुराम और राम के रूप में भी अवतरित हुए थे।
- द्रौपदी के स्वयंवर के समय कृष्ण का महाभारत में आगमन महत्वपूर्ण है; वो संसार की प्रतीक है जिसकी रक्षा करना भगवान का दायित्व है। कृष्ण का आगमन द्रौपदी द्वारा कर्ण को ठुकराने के बाद और उसकी जगह ऐसे ब्राह्मण का वरण करने के समय होता है जो अंततः ब्राह्मणरूपी क्षत्रिय सिद्ध होता है। उसे न सिर्फ इस बहुरूपिए से बल्कि उसके चार अन्य भाइयों से भी विवाह करना पड़ता है। कृष्ण को उसके निर्णय के परिणाम का पूर्वाभास था। ये पति उसे अंततः जुए में हार जाने वाले थे। वे इसलिए, उसकी रक्षा के लिए उसके जीवन का अंग बन जाते हैं।
- कृष्ण का जीवन चरित सबसे पहले व्यास के पुत्र शुक द्वारा राजा परीक्षित को उनकी मृत्यु से सात दिन पूर्व सुनाया गया था। इस वर्णन से परीक्षित को अपने जीवन का सच समझने में सहायता मिलती है। इसका पुनः वर्णन निमिषा वन में महाभारत के कथावाचक उग्रश्रवा द्वारा किया जाता है। इस वर्णन को हरिवंश अर्थात हरि के वंश की कथा कहा जाता है। हरि दरअसल विष्णु एवं कृष्ण का ही उपनाम है।
- कंस अपने भाग्य के लेखे को मिटाने के लिए संघर्षरत है। कहीं-कहीं यह भी उल्लेख मिलता है कि कंस का जन्म बलात्कार के फलस्वरूप हुआ था। उसका पिता यदुवंशी नहीं बल्कि कोई गंधर्व था। श्वेतकेतु द्वारा प्रतिपादित नियमों के अनुसार जैसे पांडवों को पांडु पुत्र माना गया उसी तरह कंस को भी यदुवंशी माना जाना चाहिए था। लेकिन उसे, वैसा नहीं माना गया। उसे अवैध संतान मानकर मथुरा की जनता द्वारा समाज से बहिष्कृत किया गया जिसने उसके मन में उनके प्रति घृणा भर दी। उसे चूंकि यादव नहीं माना गया, इसलिए उसने भी कभी मुकुट नहीं पहनने की यादवों की प्राचीन परंपरा का पालन नहीं किया। यादवों के प्रति जो नफरत उसके मन में थी उसी ने उसके मन में मथुरा का तानाशाह बनने की उत्कंठा जगाई।
- कुछ अन्य परंपराओं के अनुसार कंस ने देवकी की जिस कन्या को पटक कर मारने की कोशिश की थी वही बाद में देवकी की सबसे छोटी संतान सुभद्रा के रूप में पैदा हुई। कुछ अन्य परंपराओं में उसका पुनर्जन्म द्रौपदी के रूप में बताया गया है। सुभद्रा और द्रौपदी दोनों का ही विवाह अर्जुन से हुआ था। अर्जुन एवं कृष्ण को विष्णु के अवतार दो प्राचीन ऋषियों नर एवं नारायण का अवतार माना जाता है। इस प्रकार सुभद्रा एवं द्रौपदी दोनों ही किसी न किसी प्रकार देवी से संबंधित हैं।

गोशालाओं का गोकुल

कृष्ण इसी दौरान गोकुल के गोपालक गोप एवं गोपियों के बीच बड़ा हो गया। गोरे नंद एवं गोरी यशोदा के यहां यह श्यामवर्ण पुत्र कैसे पैदा हो गया? इस पर आश्चर्य करने के बावजूद उसके वंश

पर किसी ने कोई संदेह नहीं किया। इसका कारण शायद यशोदा का अनेक वर्ष तक निस्संतान रहना था।

कृष्ण के आते ही गोकुल में सब कुछ बदल गया। उसका जीवन उसके जन्म से ही रोमांच से भरपूर था। कंस ने अपने भावी हत्यारे से छुटकारा पाने के लिए पूतना नामक दाई को मथुरा के आसपास सभी नवजात बच्चों को अपनी छाती का जहरीला दूध पिला कर मार डालने के लिए भेजा। लेकिन कृष्ण ने जब पूतना की छाती में दांत गड़ाए तो दूध ही नहीं बल्कि उसके प्राण भी पी गया।

तृणवर्त नामक राक्षस ने हवा का बवंडर बन कर उस पालने को उलटने की कोशिश की जिसमें कृष्ण सोया हुआ था। कृष्ण ने उसकी गर्दन दबोच कर उसका ऐसा दम घोंटा कि बवंडर ताजी हवा में बदल गया और उसके झोकों ने कृष्ण को सुला दिया।

एक अन्य दानव ने बैलगाड़ी का पहिया बनकर कृष्ण को कुचलने की कोशिश की लेकिन कृष्ण ने अपने छोटे से पांव से ठोकर मारकर उसके चिथड़े उड़ा दिए।

पूतना, बवडंर और पहिए की घटनाओं ने यशोदा को इतना अधिक डरा दिया कि वो समूचे गांव को गोकुल से हटाकर यमुना की धार के और आगे की ओर गोवर्धन पर्वत की जड़ में तुलसी वन के पास शुभ स्थान पर यमुना किनारे बसाने की जिद करने लगीं।

गोपालकों की इस नई बसाहट का नाम वृंदावन पड़ा। यहां पर कृष्ण माखन प्रेमी के रूप में बड़ा होने लगा। वो शैतान था और गोपियों को हैरान करने में उसे बड़ा मजा आता था। वह गोपियों द्वारा बिलोए गए माखन की मटकी को छींके से उतार कर चुरा लेता था, हैरान गोपियों ने उसे रोकने की कोशिश की। उसे दंडित करवाने का भी प्रयास किया लेकिन वह उन्हें, हमेशा ही चकमा दे जाता था।

कृष्ण के बड़े होने पर उसे गायों को चराने की जिम्मेदारी दी गई। वह अन्य गोपों तथा अपने भाई के साथ चरागाह जाने लगा, वहां उसने उन सब का अपनी बांसुरी की धुनों से मनोरंजन

किया। साथ ही गायों को अनेक विपदाओं से भी बचाया जिनमें जंगल की आग, विशाल बक, जंगली भैंसा, भूखा अजगर और पांच फनों वाला कालिया नाग भी शामिल था। कालिया ने अपने जहर से अपने आसपास यमुना का पानी जहरीला कर दिया था।

कृष्ण के भाई बलराम फलों के बागीचों की रखवाली और ताड़ के पेड़ों की बंदरों से सुरक्षा करते थे। उन्होंने अपने हल से यमुना को खींच कर नहरें बना दीं ताकि खेतों एवं गांव को पानी मिल सके।

साल बीतने के साथ ही कृष्ण, ऋषियों के अंधविश्वासपूर्ण कर्मकांड का विरोध और दान एवं समर्पण के कार्य करने लगे, ऐसे कार्य उन्हें अंततः कंस के मुकाबले की ओर ले जा रहे थे।

कंस हर वर्ष महायज्ञ करता था जिसमें वर्षा के देवता इंद्र को प्रसन्न करने के लिए घी की आहूति दिया करता था। कृष्ण ने इस प्रथा को विरोध किया। उन्होंने पूछा, 'इंद्र की पूजा क्यों करें? हमें इसके बजाए गोवर्धन पर्वत को पूजना चाहिए क्योंकि उसी से टकराकर बादल वर्षा करते हैं।' गांव वाले जब यज्ञ के लिए घी नहीं भेजकर गोवर्धन पर्वत की पूजा करने लगे तो इंद्र अत्यंत नाराज हो गए। उन्होंने गांव को बाढ़ में डुबोने के लिए मूसलाधार बारिश कर दी। कृष्ण ने तब अपनी कन्नी उंगली से गोवर्धन पर्वत को ऊंचा उठाकर उसकी छत बना दी और गांववालों को उसके नीचे शरण दे दी ताकि वे वर्षा के प्रकोप से सुरक्षित रह सकें। यह देखकर इंद्र समझ गए कि कृष्ण कोई सामान्य युवक नहीं था। वो तो धरती पर ईश्वर का अवतार थे। इस घटना की सूचना पाकर कंस विचलित हो गया। कृष्ण कोई गोपालकों का सामान्य बालक नहीं था। वो तो उसकी बहन का लापता बेटा था, उसका कथित भावी हत्यारा।

- गोपालकों के गांव में कृष्ण का जीवनवृत्त महाभारत के संलग्नक हरिवंश में वर्णित है। जिसे बाद में भागवत पुराण और उसके भी बाद ब्रह्मवैवर्त सूत्र में विस्तृत बताया गया है। इन्हें पांचवी, दसवीं, तथा पंद्रहवी शताब्दि में लिखा गया था।
- हिंदू धर्म में गाय सबसे पवित्र प्रतीक है। इसे अतीत के वैदिक काल की विरासत बताना ही यथेष्ट होगा, क्योंकि तब

आजीविका का एकमात्र साधन गाय ही थी अथवा इसे प्रतीकात्मक रूप में भूमि का पर्यायवाची भी समझा जा सकता है। विष्णु के प्रसंगों से आच्छादित विष्णु पुराण में पृथ्वी, ईश्वर के सामने गाय के रूप में प्रकट होती है और संरक्षण की गुहार लगाती है। वे पृथ्वी के गोपालक बनने का वचन देते हैं। पृथ्वी तथा मानव संस्कृति के बीच संतुलन बैठाने के लिए सभ्यता की संहिता अर्थात धर्म की स्थापना करते हैं। इस संहिता को जब भी तोड़ा जाता है विष्णु उतर कर पृथ्वी पर अवतार लेते हैं। शास्त्रों के अनुसार इन अवतारों में सबसे महान कृष्णावतार है। कृष्ण, गोपालकों एवं गोपियों से प्यार करते हैं और उन्हें हरेक विपदा से बचाते हैं।

- हलधर बलराम को भी आदि शेष अर्थात काल के नाग का अवतार माना जाता है जिनकी कुंडली पर विष्णु आराम करते हैं, इससे नागपूजक प्रजातियों एवं कृषि के बीच निकट संबंध का आभास होता है।
- कृष्ण के प्रवेश से आकाशवासी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ के आयोजन की वैदिक मानसिकता के बजाय पृथ्वी पर स्थित देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के वास्ते पूजा पद्धति के पालन की शुरुआत होती है।
- कृष्ण, गोपालक देवता हैं जब कि बलराम कृषक देवता हैं, कृष्ण चक्र अर्थात पहियाधारी हैं जिसकी गाड़ी को बैल एवं अश्व चलाते हैं। बलराम हलधर हैं। समय आने पर बैलगाड़ी का पहिया प्रसिद्ध सुदर्शन चक्र बन जाता है अर्थात विष्णु की तश्तरी तथा हल विष्णु का दंड अथवा गदा बन जाता है जिसे कौमुदकी कहते हैं।

मथुरा में वापसी

यमुना किनारे गांव के बाहर वन में सुगंधित फूलों से आच्छादित पौधों एवं पेड़ों के मधुवन नामक झुरमुट में कृष्ण रोज रात को खड़े होकर मुरली बजाते हैं। मुरली की धुन को सुन कर गांव की सभी गोपियां पूरे परिवार को सोता छोड़कर मधुवन पहुंच कर कृष्ण को घेर कर नाचती हैं। यह उनकी गुप्त प्रसन्नता थी। रात का अंधेरा और जंगली पशु भी उन्हें भयभीत नहीं कर पाते। वे कृष्ण के सान्निध्य में अपने को सुरक्षित एवं उनकी चहेती समझती हैं।
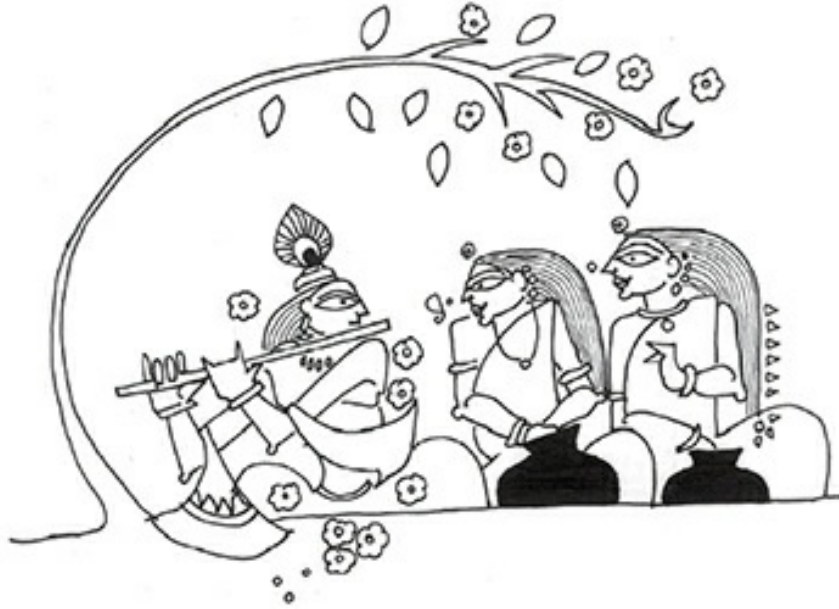
कृष्ण ने एक बार उनके नहाते समय गोपियों के कपड़े चुरा उन्हें निर्वस्त्र ही पानी से बाहर आने को मजबूर कर दिया था। उन्होंने ऐसा अत्यंत लजाते हुए किया था, लेकिन कृष्ण की आंखों में उन्हें लेशमात्र भी वासना नहीं दिखी, बल्कि उनमें तो स्नेह उमड़ रहा था। उनके व्यक्तित्व की

प्रशंसा का भाव था। उनकी शारीरिक बनावट नहीं, उनका चिकना बदन नहीं, अथवा गहने या कपड़े नहीं बल्कि उनका हृदय, वो, उन्हें उनकी तमाम कमियों के बावजूद चाहते थे। गोपियों को ऐसा निरापद अनुभव उससे पहले कभी नहीं हुआ था।

मधुवन में कृष्ण उन सबके साथ नृत्य करते थे। यदि वे, उन पर अधिकार जताने अथवा उनका ध्यान सिर्फ अपने पर केंद्रित करवाने की कोशिश करतीं तो वो सिरे से गायब हो जाते, जिससे गोपियां विरह और दुख में डूब जातीं। इससे उन्हें यह अनुभूति हुई कि प्रेम सभी में बराबर बांटने में ही मोक्ष है।

गोपियों के साथ कृष्ण का यह अद्भुत संबंध कंस द्वारा वृंदावन में रथ भेजे जाने के साथ ही समाप्त हो गया। उसमें बैठ कर कृष्ण को मथुरा में मल्ल युद्ध में भाग लेने जाना था। कृष्ण को जाने देने के अलावा नंद के सामने कोई चारा नहीं था। लेकिन उन्होंने बलराम को उनके साथ भेज दिया।

वृंदावन के गोप और गोपियां यह समाचार सुनकर इतने अधिक विह्वल हुए कि दुख से अपनी छाती पीटकर रोने लगे। वे कृष्ण को मथुरा ले जाने वाले रथ की राह रोकने के लिए रास्ते पर लेट गए। इसका कारण उनका कृष्ण से सिर्फ लगाव ही नहीं था बल्कि वो ये तथ्य समझते थे कि उनके बिना गांव सूना हो जाएगा, जीवन बदल जाएगा।

कृष्ण के मथुरा में प्रवेश करते ही उनके सुदर्शन एवं बलिष्ठ रूप को देखकर यादव उन पर न्योछावर हो गए। कृष्ण ने अचानक देखा कि कंस का धोबी उन्हें देख कर गालियां बक रहा है

तो उन्होंने निडरता से उसका वध कर दिया। उसके बाद उन्होंने वहां प्रदर्शित राजसी धनुष को एक ही झटके में तोड़ डाला तथा अपनी राह रोकने आ रहे मदमस्त शाही हाथी को काबू कर लिया। कृष्ण और बलराम ने उसके बाद अखाड़े में मथुरा के सभी पहलवानों को पराजित कर दिया। इनमें वहां के नामी-गिरामी पहलवान भी शामिल थे। यह देखकर मथुरावासियों ने उन दोनों गोपालकों का खूब जयकार किया, जिससे कंस गुस्से में आपे से बाहर हो गया। कंस ने अपने गुर्गों को कृष्ण तथा उनका जयकार करने वाले सभी लोगों की हत्या का आदेश दिया। यह सुनते ही कृष्ण तेजी से कंस पर झपटे और आनन-फानन में गला घोंटकर उसका वध कर दिया।

- कृष्ण का रंग पक्का होने और उनके वैदिक यज्ञ पद्धति से असहमत होने से ऐसा प्रतिध्वनित होता है कि वे शायद अवैदिक पशुपालक समुदायों के देवता थे।
- तत्वमीमांसा के लिहाज से कृष्ण का पक्का रंग उनके दुनियादार स्वभाव (वह सभी रंगों को सोखता है) का प्रतीक है जबकि बलराम का गोरा रंग उनके संसार को त्यागने के स्वभाव (वो सभी रंगों को वापस प्रतिबिंबित कर देता है) का प्रतीक है। उन दोनों के मध्य उनकी छोटी बहन सुभद्रा है वह कृष्ण के बाद देवकी की कोख से पैदा हुई। उसे भी द्रौपदी की भांति पृथ्वी देवी का स्वरूप माना जाता है।
- कृष्ण द्वारा स्त्रियों के कपड़े चुराने के वृत्तांत को महागाथा में आगे द्रौपदी के चीरहरण की घटना की तुलना में और उसके विपरीत भी समझा जाना चाहिए। दोनों ही घटनाओं में स्त्रियों को उनके वस्त्रों से वंचित करने का प्रयास हुआ, लेकिन कृष्ण द्वारा गोपियों को हैरान करने में जहां प्रेम और प्रसन्नता का पुट है, वहीं द्रौपदी के प्रसंग में अपमान एवं भय निहित है। इसका निहितार्थ यह है कि व्यवहार से अधिक उसके पीछे छिपी मंशा महत्वपूर्ण है।
- ओडिशा में पुरी स्थित भगवान जगन्नाथ संबंधी लोक कथाओं में ऐसा वर्णन है कि कृष्ण को बचाने के लिए बलिदान की गई यशोदा की पुत्री ने द्रुपद के यहां अग्निकुंड से पुनर्जन्म लिया था। इसके अनुसार द्रौपदी को कृष्ण की बहन मानना चाहिए। कृष्ण ने अपना गांव उसे ही बचाने के लिए छोड़ा, कृष्ण ने कंस के खात्मे के बाद अपने गांव में ही लौट आने का वचन दिया था लेकिन कृष्ण को कौरवों का विनाश करना था। गोपियों से किया गया वायदा तोड़ने के बावजूद वे पापी शासकों का अब भी विनाश कर रहे हैं।
- हर वर्ष भीषण गर्मी के दौरान पुरी में श्रद्धालु रथयात्रा निकालते हैं जिसमें कृष्ण, उनके बड़े भाई बलभद्र और उनकी बहन सुभद्रा को रथारूढ़ करके उनका नगर दर्शन कराया जाता है। इसके माध्यम से भगवान कृष्ण को यह याद दिलाया जाता है कि उन्हें मधुवन में उनकी प्रतीक्षा कर रही प्रेयसी राधा के पास लौटना है।

- कृष्ण प्रिया गोपियों में राधा नामक गोपी भी शामिल थी जो उन्हें सर्वाधिक प्रिय थी। उसका नाम भागवत जैसे आरंभिक पुराणों में कहीं नहीं आता लेकिन ब्रह्मवैवर्त जैसे बाद में रचे गए पुराणों में उसका संदर्भ है। जयदेव की काव्य रचना गीत गोविंद में राधा एवं कृष्ण का संबंध अलग रूप में प्रस्तुत किया गया है। बारहवीं सदी (सीई) की इस रचना में इन दोनों का गुप्त मिलन रात्रि में, गांव के बाहर वर्णित है जो नितांत चोरी-छिपे, शृंगारिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अलौकिक है। कालांतर में राधा स्वयं देवी रूप में पूजी गई। उसे बलिदान, समर्पण एवं निरपेक्ष प्रेम का प्रतीक माना जाता है।

द्वारका को पलायन

कंस के वध के बाद कृष्ण को यादवों का मुक्तिदाता माना गया। तभी वासुदेव एवं देवकी के पुत्र के रूप में उनकी असली पहचान भी उद्घाटित हुई। इसके साथ ही कृष्ण का ग्वालरूप समाप्त हुआ। उन्हें यदुवंशी क्षत्रिय के रूप में पहचान मिली।

संदीपन ऋषि द्वारा अस्त्र-शस्त्र विद्या में दीक्षित किए जाने के बाद कृष्ण को शासक यादव परिषद के सदस्य के रूप में स्वीकृति मिली। परिषद को कंस वध के बाद पुनः स्थापित किया गया था।

हालांकि कृष्ण का यदुवंशी रूप सर्वस्वीकृत नहीं हुआ। प्रसेनजित नामक यादव की आखेट के दौरान मृत्यु के बाद स्यामंतक मणि उसके गले में से गायब हो जाने पर अनेक लोगों ने कृष्ण पर उसे चुराने का आरोप लगा दिया। क्योंकि वे तो पहले से ही माखनचोर और वृंदावन के गोप और गोपियों के दिल चुराने वाले के रूप में विख्यात थे।

कृष्ण ये सिद्ध करने में सफल रहे कि शेर द्वारा प्रसेनजित की हत्या के बाद मणि को रीछ उठाकर जंगल में ले गया था। भूल सुधार के रूप में प्रसेनजित के भाई शूरजित ने अपनी पुत्री सत्यभामा को कृष्ण से ब्याह दिया। इस संयोग से यादव परिषद में कृष्ण की स्थिति सुदृढ़ हो गई।

लेकिन स्थिति अनुमान के अनुसार अनुकूल भी न थी।

मगध सम्राट जरासंध को यह बात बहुत नागवार लगी कि अपने दामाद के हत्यारे गोपालक को दंडित करने के बजाए यादवों ने उसका विवाह अपनी एक पुत्री से करवाकर अपनी बिरादरी में शामिल कर लिया।

उसने अपनी सेना को मथुरा पर चढ़ाई करके उसे नेस्तनाबूद करने का आदेश दिया। जरासंध की सेना ने मथुरा पर सत्रह बार आक्रमण किया लेकिन कृष्ण और बलराम ने बहादुरी से उनका मुकाबला किया और यादवों की विजय सुनिश्चित की।

लेकिन अठाहरवीं बार जरासंध की सेना ने कालयवन के सेनापतित्व में आक्रमण किया और विजय हासिल की। इसका कारण यह था कि मथुरा नगरी के भाग्य में कालयवन के हाथों नष्ट होना बदा था।

जरासंध के सैनिक जिस समय नगरी को आग लगा रहे थे तभी कृष्ण ने सूझ-बूझ को बहादुरी से भी श्रेष्ठ मानते हुए स्वयं सहित सारे यादवों को मथुरा नगरी से भाग जाने के लिए संगठित किया। युद्ध के मैदान से भाग जाने की इस हरकत के कारण ही कृष्ण का नाम रणछोड़ राय भी पड़ा।

कृष्ण और यादव नदी के सपाट मैदानों से दूर रेगिस्तान और पर्वतों के पार पश्चिम में समुद्र की ओर निकल गए। वे अंततः द्वारका नामक द्वीप पर पहुंचे।

द्वारका पर रेवत का शासन था। बहुत समय पहले वह सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा के स्थान पर अपनी बेटी रेवती के लिए योग्य वर की तलाश में पहुंच गया था। दुर्भाग्य से उसको यह भान नहीं हुआ कि ब्रह्मा के साथ एक दिन भी पृथ्वी पर एक हजार वर्षों के बराबर है। वह अपनी पुत्री के साथ जब पृथ्वी पर लौटा तो सारी मानव जाति का आकार सिकुड़कर छोटा हो गया था तथा उसकी लंबी-चौड़ी बेटी से विवाह के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ।

कृष्ण के भाई बलराम ने रेवती के कंधे पर अपना हल टिकाकर उसे जबरदस्ती नीचे झुकाया ताकि उसका मुखड़ा देख सके। बलराम के ऐसा करते ही रेवती का आकार-प्रकार घट गया। इससे अत्यंत प्रसन्न होकर रेवत ने बलराम से अनुरोध किया कि वो रेवती से विवाह कर लें। बलराम ने उसका अनुरोध मान लिया और उनके अहसान के बदले रेवत ने यादवों को अपने द्वीप पर बस जाने की अनुमति दे दी।

यादवों के इस नए द्वीपीय घर की सुरक्षा के लिए कृष्ण ने आस-पास के राज्यों की अनेक स्त्रियों से विवाह कर लिया। उनमें रुक्मिणी भी शामिल थी। वो विदर्भ की राजकुमारी थी और उसने कृष्ण से अपने भाई द्वारा उसे शादी के लिए मजबूर किए जाने से बचाने का आग्रह किया था। रुक्मिणी के भाई रुक्मि ने उसका विवाह चेदिराज शिशुपाल से तय कर दिया था। कृष्ण ने उसका शिशुपाल के सामने ही अपहरण कर लिया।

शिशुपाल भी कंस के समान ही जरासंध का सहयोगी था। उसने मगध सम्राट को तत्काल सूचित किया कि मथुरा के ध्वस्त हो जाने के बावजूद कृष्ण जीवित था और यादवों के साथ द्वारका द्वीप में सुरक्षित बस गया था। जरासंध कुंठाग्रस्त हुआ और मन मसोस कर रह गया।

कृष्ण ने उसके बाद अन्य अनेक राजकुमारियों से विवाह किया। उनमें अवंति, कौशल, मद्र तथा कैकेय की राजकुमारियां शामिल थीं। विवाह के माध्यम से राजनैतिक गठबंधन स्थापित करने की इसी इच्छा को लिए कृष्ण, द्रुपद के दरबार में जा पहुंचे। वहीं पर उनकी पांडवों से पहली बार मुलाकात हुई जो उनकी बुआ के पुत्र थे और जिन्हें वारणावत अग्निकांड के बाद मृत समझ लिया गया था।

- कालयवन नाम का अर्थ है श्यामवर्णी यूनानी जिससे उसके हिंद-यूनानी मूल का आभास होता है। मकदूनिया के सिकंदर के आक्रमण के बाद उत्तर भारत के इतिहास में हिंद-यूनानियों की बड़ी भूमिका है। यह 300 बीसीई से 300 सीई के बीच का काल खंड है और लगभग उसी दौरान महाभारत अपने अंतिम परिणाम को प्राप्त हो रहा था। कृष्ण वृत्तांत का अनेक यूनानी घटनाओं से निकट संबंध है। यूनानी नायक के समान ही कृष्ण भी बचपन में मौत के मुंह से बचते हैं और युवक के रूप में लौट कर अपने परिवार से हुए अन्याय का प्रतिशोध लेते हैं। अपनी शासक परिषद तथा राजतंत्र से परहेज के कारण मथुरा पर यूनानी राजनैतिक प्रणाली का गहरा प्रभाव दिखता है। चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने कृष्ण की तुलना यूनानी नायक हेराक्लीज से की थी।
- गंगा के मैदानी क्षेत्र में स्थित मथुरा नगरी के नष्ट हो जाने के बाद यादवों के अरब सागर के द्वीप में पलायन के वृत्तांत से भारी उलटफेर की अवधि का आभास होता है। कृष्ण और बलराम दोनों द्वारा विभिन्न राजकुमारियों से विवाह के द्वारा अपनी जाति की राजनीतिक स्थिति मजबूत की गई और अपनी कीर्ति पताका फिर से फहराई गई।
- द्वारका नगरी को द्वारावती भी कहा जाता था। यादवों को द्वीप का अधिकार स्थानीय राजकुमारी रेवती का बलराम से विवाह करवाकर मिला था।

कृष्ण की वंशावली
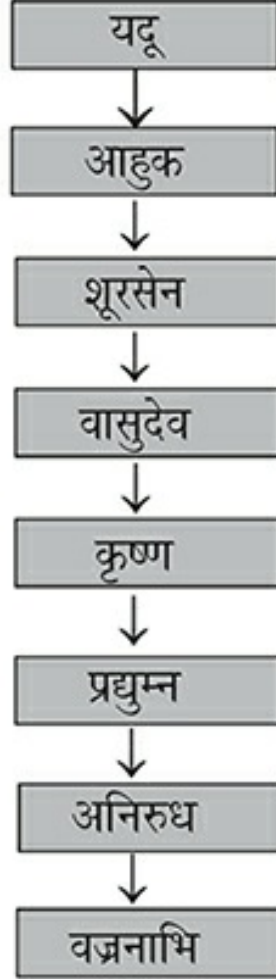
आठवां अध्याय

विभाजन

‘जनमेजय, तुम्हारे कुटुंबियों ने अपना नगर बसाने के लिए वन का विनाश किया, अनगिनत पशु-पक्षियों को मार डाला।’

कुरू राज्य का विभाजन

पांडव जिन्होंने कृष्ण को द्रुपद की पुत्री के स्वयंवर में देखा था, कुछ शंकित हुए। उन्होंने पूछा, 'तुमने प्रतियोगिता में भाग क्यों नही लिया?' कृष्ण निरुत्तर रहे। वे बस मुस्कुरा कर रह गए।

कुंती ने कृष्ण को छाती से लगाया और यादों के भंवर में डूबकर रोने लगीः यादवों के बीच अपना बचपन, कुंतीभोज द्वारा उन्हें गोद लिया जाना, दुर्वासा तथा सूर्य के साथ उनका संपर्क, पांडु से उनका विवाह, देवताओं के सहयोग से उनकी संतानों का जन्म, उनका विधवा होना उनकी संतानों के साथ उनका हस्तिनापुरी लौटना और अंततः, उनके तथा उनके पुत्रों के प्राण हरने का प्रयास। कृष्ण ने अपनी बुआ को ये कहकर सांत्वना दी, 'आपने अपने भाग्य का निर्भयता से सामना किया और अपने निर्णयों से उस पर विजय प्राप्त की।'

कुंती ने कहा, 'हां, मैंने ऐसा किया।' कृष्ण की नरम सांत्वनापूर्ण वाणी से उनके चेहरे पर मुस्कान लौट आई। उनके भाग्य में ऐसा ही जीवनयापन लिखा था। और इसी जीवन की बदौलत उनका विचित्र, सांत्वनापूर्ण भतीजा उन्हें मिला था। लेकिन क्यों?

शायद उनके मन में द्वंद्व को समझते हुए उन्होंने कहा, 'अब आप हस्तिनापुर जाकर अपने जीवित होने के बारे में बताएं। वे दोबारा आपके अनिष्ट का साहस नहीं करेंगे। क्योंकि अब आपके पुत्रों का विवाह समर्थ, द्रुपद की पुत्री से हो गया है। वे आपसे समझौते की हरसंभव कोशिश करेंगे।'

कुंती ने पूछा, 'क्या वे मेरे पुत्रों को हस्तिनापुरी का सिंहासन सौंप देंगे?'

कृष्ण ने जवाब दिया, 'मुझे ऐसा नहीं लगता। लेकिन इसका और उपाय भी है।'

समूची नगरी यह पता चलने पर खुशी से झूम उठी कि पांडव उस जानलेवा अग्निकांड में जीवित बच गए हैं और द्रुपद के दामादों के रूप में पहले से कहीं अधिक ताकतवर होकर वापस आ रहे हैं।

धृतराष्ट्र, गांधारी, भीष्म, द्रोण, विदुर एवं कौरवों ने अत्यधिक स्नेह और अपनेपन से उनका स्वागत किया।

पांडव यही सोचने लगे कि उनके बीच में से आखिर किसने उनकी हत्या का षड्यंत्र रचा था?

दुर्योधन? दुःशासन? अथवा कहीं स्वयं भीष्म ने ही तो नहीं जो परिवार में विवाद को समाप्त करवाने के लिए हमेशा बड़े से बड़ा त्याग करने को तत्पर रहते थे! अथवा द्रोण या उनका पुत्र अश्वत्थामा जो हमेशा दुर्योधन को खुश करने में लगा रहता था? अथवा वो कर्ण था जिसने अपने को अपमानित करने के लिए पांडवों को कभी माफ नहीं किया था। अथवा वो अपने पुत्रों की तरफ से आंखें मूंदे रहने वाले धृतराष्ट्र थे?

विदुर ने धृतराष्ट्र को यह सलाह दी कि चिमगोइयों पर लगाम लगाने तथा समूचे संसार को यह जताने के लिए कि वे अपने भाई के पुत्रों से अपने पुत्रों जितना ही स्नेह करते हैं, उन्हें सिंहासन त्याग कर युधिष्ठिर को राजपाट सौंप देना चाहिए। धृतराष्ट्र ऐसा करने के लिए तैयार नहीं थे, 'तब मेरे पुत्रों का क्या होगा? वे कभी भी पांडवों के मातहत नहीं बनेंगे। शायद हमें पांडवों से ही पूछना चाहिए कि शांति स्थापना के लिए वे दुर्योधन को राजा के रूप में स्वीकार कर लें?'

यह जानते हुए कि पांडव इसके लिए कभी राजी नहीं होंगे कृष्ण ने विदुर को सुझाव दिया कि शांति स्थापित करने का एकमात्र उपाय यही है कि राज्य का विभाजन कर दिया जाए। इसका भीष्म ने आरंभ में कड़ा विरोध किया। बाद में यह समझ में आने पर कि इसके अलावा कोई चारा नहीं है, वे इसके लिए तैयार हो गए।

सार्वजनिक समारोह में धृतराष्ट्र ने पांडवों को खांडवप्रस्थ नामक वन सौंप दिया। कुरू कुनबे के बुजुर्गों ने पांडवों को आशीर्वाद देते हुए कहा, 'वहां अपना घर बसाओ। शांति को प्राप्त करो।'

- द्रौपदी के अपने साथ आते ही पांडव अपने भाग को पुनः पाने में कामयाब हो गए। द्रौपदी के प्रवेश के साथ कुरू राज्य का भी बंटवारा हो गया। उसके कदम पड़ते ही इस प्रकार सौभाग्य तो आया मगर कुटुंब बिखर भी गया।
- वैदिक काल में राजनैतिक गठबंधन के लिए विवाह की संस्था के प्रयोग की प्रथा बहुत प्रचलित थी। अपने जीवन में द्रौपदी के आने तक पांडव सत्ताहीन थे। ताकतवर द्रुपद के श्वसुर बनते ही वे सौदेबाजी की स्थिति पा गए। कृष्ण उन्हें इस तथ्य का अहसास करवाते हैं।
- महाभारत में चूंकि तहेरे-चचेरे भाइयों द्वारा आपस में परिवार की संपत्ति बांट लेने का संदर्भ है इसलिए उसे कभी भी पारंपरिक हिंदू घरों में नहीं पढ़ा जाता। दरअसल उसे अपशकुनी माना जाता है। लोग रामायण को पढ़ना पसंद करते हैं क्योंकि उसमें भाई अपना उत्तराधिकार खुशी-खुशी एक-दूसरे को सौंप देते हैं।
- व्यास ने यह कभी स्पष्ट नहीं किया कि कृष्ण ने द्रौपदी के स्वयंवर में भाग नहीं लेने का निर्णय क्यों किया। द्रौपदी निस्संदेह इस संसार की प्रतीक है जिसे बचाने को ईश्वर स्वयं अवतरित हुए हैं। ठीक वैसे ही जैसे सीता तब संसार की प्रतीक थी जब भगवान स्वयं राम के रूप में अवतरित हुए थे। इसलिए कृष्ण द्वारा उसका पति नहीं बनने के निर्णय के पीछे कोई न कोई कारण रहा होगा। द्रौपदी ने अत्यंत क्षमतावान कर्ण को स्वयंवर में भाग लेने से इसलिए प्रतिबंधित कर दिया था कि उसका लालन-पालन रथचालक ने किया था। इस जातीय पूर्वाग्रह को जता कर उसने अनजाने में कृष्ण को भी ठुकरा दिया था जिनकी परवरिश निचले तबके के समझे जाने वाले ग्वालों ने की थी। द्रौपदी पूर्वाग्रहग्रस्त संसार का प्रतीक है। संसार भले भगवान से विमुख होकर त्रास पाए, जैसा द्रौपदी ने अनजाने में किया था मगर भगवान संसार से कभी विमुख नहीं होते।
- गुजरात की लोककथा के अनुसार कुरू राज्य के बंटवारे से भीष्म अत्यधिक दुखी हुए। वे यह बरदाश्त ही नहीं कर पाए और हस्तिनापुरी के लोगों की राय जानने के लिए उनके बीच गए कि वे इसके पक्ष में थे अथवा विपक्ष में। नगरी के बुजुर्गों ने उनसे कहा, 'आपने, अपने पिता के लिए ब्रह्मचर्य का संकल्प करते हुए क्या हमसे पूछा था? फिर अब उस बेवकूफीपूर्ण संकल्प के दुष्परिणाम सामने आने पर हमारी सलाह क्यों मांग रहे हो? अपने द्वारा बनाई गई इस अव्यवस्था का दायित्व भी आप ही उठाओ।'

खांडवप्रस्थ दहन

खांडवप्रस्थ पशु-पक्षियों से आच्छादित विशाल वन था। उसमें नाग एवं राक्षस भी रहते थे। कृष्ण ने कहा, 'इसे जला कर खाक कर दो।'

युधिष्ठिर ने प्रतिवाद किया, 'क्या और कोई तरीका नहीं है?'

कृष्ण ने पूछा, 'क्या वन को नष्ट किए बिना कोई खेत अथवा फलों का बागीचा, या बागीचा अथवा नगर बना सकता है?'

मोटे ब्राह्मण का वेश धारण करके अग्नि देवता पांडवों के पास आए और बोले, 'मुझे समर्पित इतने सारे घी ने मुझे बीमार कर दिया है। मुझे पूरा भरोसा है कि किसी नई वस्तु अथवा स्थान को जलाकर मैं अवश्य स्वस्थ हो जाऊंगा।'

समय पर अग्नि के आ पहुंचने से पांडवों को खांडवप्रस्थ जलाने का बहाना ही मिल गया। सब कुछ आग में स्वाहा होने लगा। पेड़, जड़ी-बूटियां, झाड़ियां, घास का हरेक तृण। पशु-पक्षी क्रंदन करते हुए लपटों से बचने की कोशिश करने लगे। कृष्ण ने कहा, 'उन सबको मार दो।'

अर्जुन ने पूछा, 'क्यों?'

'ताकि जिस जमीन को तुम अपनी बता रहे हो उस पर दावा करने वाला कोई जीवित ही न बचे। मिल्कियत का मूल्य समझो। बसाहट का बोझ उठाओ।'

'हम कब रुकें?'

कृष्ण ने कहा, 'जब तुम्हारी आवश्यकताएं पूरी हो जाएं और लालच में फंसने से पहले, रुकने की घड़ी को पहचानना ही अच्छे राजा की निशानी है।'

उसके बाद भीषण संहार हुआ। अर्जुन और कृष्ण तथा अन्य पांडव भी अपने-अपने रथों पर सवार होकर आग की लपटों से बचकर भाग रहे जीवों का संहार करते रहे।

हिरण, व्याघ्र, बंदर, सांप, कछुए, कबूतर, तोते, मधुमक्खियों का झुंड और चींटियों की लकीर भी, तथा सभी निवासरत नाग एवं राक्षस। सर्वस्व।

नागों ने अपने मित्र इंद्र से गुहार लगाई जिसने गरज के साथ बारिश करवा दी। कृष्ण ने जैसे ही वर्षा को गिरते देखा तत्काल अर्जुन को निर्देश दिया कि वो अपने बाणों से आसमान में ऐसी बाधा बना दे कि बारिश की एक बूंद भी पृथ्वी पर न आ सके। इस प्रकार बाणों की छतरी तले दावानल चलता रहा।

अनेक दिन तक जलने के बाद अग्नि की वन की खुराक पूरी हुई और उसका तेज भी वापस आ गया। इस अहसान के बदले अग्नि ने अर्जुन को गांडीव नामक शक्तिशाली धनुष और कृष्ण को सुदर्शन नामक चक्र भेंट किया। अग्नि ने अपने पावन धाम की ओर लौटने से पहले कहा, 'इन शस्त्रों से पृथ्वी पर धर्म की स्थापना एवं रक्षा करो।'

जबरदस्त आग में एक दानव के अलावा कुछ भी नहीं बचा। उसका नाम था मय दानव। वह लपटों के बीच से किसी तरह बच निकला था और उसने पांडवों से जान बख्शने की गुहार लगाई। उसने कहा, 'मुझ पर दया करो जिसके बदले में मैं तुमको महान नगरी का निर्माण करके दूंगा क्योंकि मैं ही दानवों का वास्तुकार हूं।' पांडवों ने कृष्ण की ओर देखा जिन्होंने सिर हिलाकर हामी भर दी।
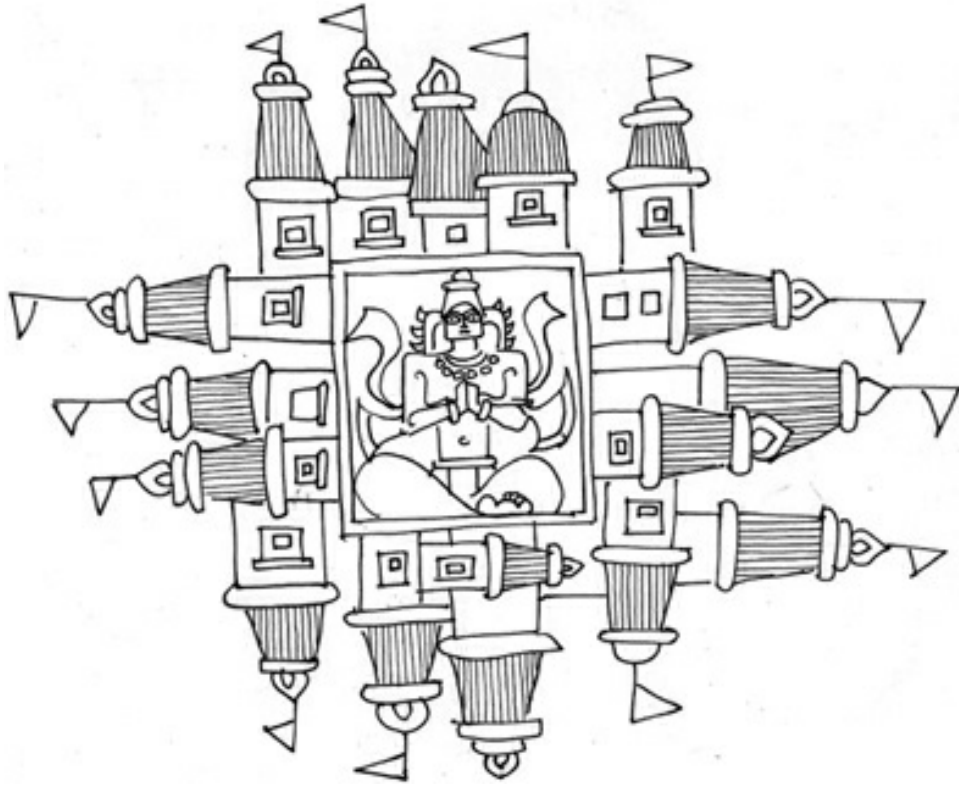
और इस प्रकार जंगल को जलाकर साफ की गई जमीन पर मय ने पांडवों के लिए विशाल नगरी का निर्माण आरंभ कर दिया। पांडवों ने पृथ्वी पर स्वर्ग स्थापित करने के निश्चय के साथ इसका नाम इंद्र की नगरी इंद्रप्रस्थ रखा। अपने को जीवनदान देने के लिए मय ने अर्जुन को व्यक्तिगत भेंटस्वरूप देवदत्त नामक शंख भी दिया।

इंद्रप्रस्थ, शीघ्र ही समूचे भारतवर्ष की ईर्ष्या का कारण बन गया। अपने खेतों, और फलोद्यानों और चरागाहों एवं बाजारों तथा नदियों के नौवहन ठिकानों की बदौलत ये समृद्ध नगरी बन गया। यहां पर चारों ओर से आकर ब्राह्मणों, क्षत्रियों, कृषकों, पशुपालकों और कारीगरों ने बसेरा कर लिया। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों की सहायता से इसमें धर्म संहिता बनाई और लागू की। सभी पुरुषों को समाज में अपने पिता की भूमिका तथा जीवन की दशा के हिसाब से तय अपना काम करना होता था। सभी स्त्रियों को अपने पिता, भाइयों, पति तथा पुत्रों की देखभाल तथा उनके लिए निर्धारित काम करने में उनकी सहायता करने का दायित्व दिया गया।

पांडवों के सलाहकार उनके गुरु धौम्य थे। उन्होंने एकचक्र वन में उन्हें भीषण गरीबी में पिसने से लेकर उनके अच्छे दिनों तक हरेक स्थिति देखी थी।

- यह दिलचस्प है कि देव अर्थात परंपरागत रूप से देवता माने जाने वाले इंद्र ने पांडवों का विरोध किया जबकि असुर परंपरागत रूप से दानव माने जाने वाले मय ने पांडवों का साथ दिया। आकाशवासी देवों के राजा और वर्षा के देवता इंद्र ने जहां अपनी बसावट उजड़ने से परेशान नागों को बचाने का प्रयास किया वहीं पृथ्वी पर बैठने वाले देव अग्नि, नागों तथा उनके बसेरों को लील गए। इस प्रकार मानवों, देवों, असुरों और नागों के बीच बड़े पेचीदा संबंध रहे।
- देवों और असुरों के यहां महान वास्तुकार थे जिन्होंने वास्तु शास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर विशाल नगरियों को

निर्माण किया था। देवों के यहां यह कार्य विश्वकर्मा ने किया जबकि असुरों के लिए इस कार्य को मय ने अंजाम दिया। पांडवों द्वारा मय की सहायता लेने से यह आभास मिलता है कि असुरों के प्रति हालांकि उनकी दानवी प्रवृत्तियों के कारण भय लगता था लेकिन अनुकूल परिस्थितियों में उन्हें सहयोगी भी बना लिया जाता था। मय का अर्थ है मायावी अर्थात जादूगर जिससे यह प्रतिध्वनित होता है कि राजप्रासाद के निर्माण में उसने जिस तकनीक का प्रयोग किया था, वह मायावी समझी जाती थी।

- वैदिक युग में अस्त्र-शस्त्र चूंकि क्षत्रियों की पहचान से जुड़े थे इसलिए उनका बाकायदा नामकरण किया गया था और उनके प्रति सम्मान जताया जाता था। अर्जुन के धनुष का नाम गांडीव तथा कृष्ण के चक्र का नाम सुदर्शन कहलाया। कृष्ण के पास अन्य हथियार भी थे—नंदक नामक तलवार, कौमुदकी नामक गदा तथा सारंग नाम धनुष। बलराम अपनी गदा को सुनंदा कहते थे।
- ऐसी धारणा है कि इंद्रप्रस्थ आधुनिक दिल्ली के निकट यमुना तट पर स्थित था। हस्तिनापुरी उससे उत्तर दिशा में कुछ आगे गंगा तट पर स्थित थी। कुरूक्षेत्र आधुनिक हरियाणा राज्य में ऊसर जमीन पर स्थित था।
- अपना तेज लौटाने के एवज में अग्नि देव ने अर्जुन को अनेक अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए। इन्हीं में प्रसिद्ध धनुष गांडीव तथा शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा बलाहक नामक चार घोड़ों द्वारा खींचा जाने वाला रथ भी शामिल था।

द्रौपदी की साझेदारी

सभी पांचों पांडव द्रौपदी से समान प्रेम करते थे। ये किसी महान विभीषिका को निमंत्रण दे सकता था। क्योंकि समय बीतने पर उनके भीतर एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या तथा अधिकार जताने की मनोवृत्ति पैदा हो सकती थी।

कृष्ण ने पांडवों को तिलोत्तमा का वृत्तांत सुनाया। तिलोत्तमा अप्सरा थी जिसे देवताओं ने दो असुर भाइयों शुंड व उपशुंड के मध्य झगड़ा कराने तथा अंततः उनके विनाश के लिए भेजा था। उसे देखते ही दोनों भाइयों में उससे विवाह की इच्छा बलवती हो गई। तिलोत्तमा ने मोहक मुस्कान फेंकते हुए कहा, 'मैं आप दोनों में से उसी से विवाह करूंगी जो अधिक बलवान है।' दोनों भाइयों ने उसे पाने के लिए द्वंद्व युद्ध का निर्णय किया। और दोनों ही समान रूप में ताकतवर थे इसलिए उन्होंने युद्ध में एक दूसरे को मार दिया।

कृष्ण ने पांडवों से कहा, 'शुंड व उपशुंड की तरह यदि तुम लोग एक-दूसरे का वध नहीं करना चाहते तो तुम लोगों को आपस में यह निर्णय करना चाहिए कि द्रौपदी पूरे एक साल एक भाई के साथ संसर्ग करेगी। वर्ष समाप्त होते ही तुम लोगों को उसे, अपने अन्य भाइयों के पास जाने देना होगा और उसके पास चार वर्ष बाद ही दोबारा जाने का उपक्रम करना। जो भाई प्रतिबंधित अवधि में द्रौपदी के कक्ष के जाएगा उसे एक साल का वनवास भुगतना होगा।'

पांडव इसके लिए सहमत हो गए। हरेक भाई को द्रौपदी के कक्ष में एक साल तक नियमित जाने का अवसर मिला और उसने हरेक की कर्तव्यपरायणता से सेवा की। ऐसा माना जाता है कि अपने अगले पति के पास जाने से पहले वो आग पर चलकर अपना कौमार्य पुनः प्राप्त कर लेती थी।

द्रौपदी ने युधिष्ठिर की ईमानदारी, भीम की शक्ति, अर्जुन के कौशल, नकुल के रूप और सहदेव के ज्ञान का भरपूर आनंद प्राप्त किया। उसने, अपने हरेक पति से एक एक पुत्र भी पैदा किया। इस प्रकार वह पांच पुत्रों की माता बनी।

पांडवों को द्रौपदी के संसर्ग से निसर्ग की चार वर्षीय अवधि में अपना अकेलापन मिटाने के लिए अन्य स्त्रियों से विवाह करने की अनुमति भी थी। लेकिन इन पत्नियों में से किसी को भी इंद्रप्रस्थ में रहने की अनुमति नहीं थी। यह मांग द्रौपदी ने की थी और इसे पांडवों ने स्वीकार कर

लिया था।

पांडवों की गायों को एक दिन चोर हांक कर ले जा रहे थे। ग्वालों ने उन्हें रोकने के लिए अर्जुन से सहायता मांगी। इसके लिए अर्जुन अपना धनुष लेने राजप्रासाद में गया। उसने, अपना धनुष चारों ओर ढूंढ़ा लेकिन वो, उसे कहीं नहीं मिला। अंततः उसने धनुष को ऐसी एकमात्र जगह ढूंढ़ने का निश्चय किया जहां उसने अभी तक दस्तक नहीं दी थी: द्रौपदी के शयन कक्ष में। वो जैसे ही वहां घुसा, उसे युधिष्ठिर और द्रौपदी आलिंगनबद्ध मिले।

इसके प्रायश्चितस्वरूप अर्जुन को दंड के रूप में एक साल के लिए वनवास करना पड़ा। वो तीर्थ यात्र पर निकल गया।

- द्रौपदी ने पांडवों को पांच पुत्र दिए। उनके नाम थेः युधिष्ठिर का पुत्रः प्रतिविंध्य, भीम का पुत्र शतसोम, अर्जुन का पुत्र शूर्तकीर्ति, नकुल का पुत्र शतनीक तथा सहदेव का पुत्र श्रुतसेन।
- पांडवों में से हरेक की द्रौपदी के अलावा भी पत्नियां थीं। युधिष्टिर ने शैव्य जनजाति के गोवसन की पुत्री देविका से विवाह रचाया था। उसे देविका से यौद्धेय नामक पुत्र प्राप्त हुआ। भीम ने काशी नरेश की पुत्री वालंधरा से विवाह किया था। वालंधरा से उसे सवांग नामक पुत्र प्राप्त हुआ। नकुल ने चेदि की राजकुमारी करेणुमति से विवाह किया था। उससे नकुल को नीरमित्र नामक पुत्र प्राप्त हुआ। सहदेव ने मद्र नरेश द्युतिमत की पुत्री विजया से विवाह किया था। विजया से उसे सुहोत्र नामक पुत्र प्राप्त हुआ।
- पंजाबी लोककथा में कुत्तों द्वारा सार्वजनिक रूप में यौन संबंध बनाने के कारण को द्रौपदी की वैवाहिक व्यवस्था से जोड़ा गया है। पांडवों में से जो भी द्रौपदी के कक्ष में जाता था वो अपने अन्य भाइयों को अपनी उपस्थिति जताने के लिए उसके कक्ष के बाहर अपनी चरण पादुकाएं छोड़ देता था। अर्जुन जब अपना धनुष ढूंढ़ते हुए द्रौपदी के कक्ष में घुसा तो युधिष्ठिर को वहां पा कर बहुत शर्मिंदा हुआ। इसका कारण यह था कि युधिष्ठिर की चरण पादुकाए कुत्ता उठा कर ले गया था। इससे कुपित होकर द्रौपदी ने कुत्ते को शाप दिया कि उसके लिए, अपने दूसरे पति के सामने अपने यौन क्षणों के सार्वजनिक होने की नौबत चूंकि कुत्ते के कारण आई इसलिए भविष्य में सभी कुत्ते सिर्फ सार्वजनिक रूप में ही यौन संबंध बनाएंगे और बेशर्म कहलाएंगे।
- ओड़िया महाभारत में अग्निदेव अचानक युधिष्ठिर से मिलने की मांग कर देते हैं। उस समय दुर्भाग्य से राजा युधिष्ठिर द्रौपदी के कक्ष में व्यस्त थे। इससे कुपित होकर अग्नि चेतावनी देता है कि यदि राजा उससे तुरंत आकर नहीं मिले तो वह इंद्रप्रस्थ नगरी का विनाश कर देगा। इससे बचने के लिए अर्जुन को अपनी बारी न होते हुए भी मजबूरी में द्रौपदी के कक्ष में घुसना पड़ता है जिसका परिणाम उसे लंबे वनवास के रूप में भुगतना पड़ा।

उलूपी एंव चित्रांगदा

अपनी यात्राओं के दौरान अर्जुन ने झीलों और पर्वत शिखरों के अलावा नदी के किनारों पर स्थित अनेक पवित्र स्थानों के दर्शन किए।

ऐसी ही एक झील में अर्जुन पर पांच मगरमच्छ झपट पड़े लेकिन उसने, उनसे द्वंद्व युद्ध करके उन सब का वध कर दिया। तभी मगरमच्छ अचानक पांच अप्सराओं में बदल गए। 'हमें दरअसल किसी ऋषि ने अपना ध्यान भंग होने पर मगरमच्छ बन जाने का शाप दिया था। हमें यह भी बताया गया था कि कोई क्षत्रिय हमारा उद्धार करेगा। तुम्हीं वह क्षत्रिय हो। धन्यवाद।'

अन्य अवसर पर अर्जुन को किसी ने नदी तल की ओर खींचा जहां उसे उलूपी नामक नाग स्त्री ने अपनी बांहों में भर लिया। उसने अनुरोध किया, 'मेरा पति नहीं है। मुझे अपना लो, मुझ से प्यार करो।'

अर्जुन ने उसका अनुरोध ठुकरा दिया। उसने शास्त्रों का उल्लेख करते हुए कहा, 'अपने पास कामेच्छा से परिपूर्ण स्वेच्छा से आने वाली स्त्री को ठुकराना अधर्म है।' अर्जुन के पास, उसके साथ संसर्ग करने के अलावा कोई चारा नहीं था। उसके बाद वह अपने रास्ते चला गया। वह इस विचित्र मुलाकात को भूल भी गया।

उलूपी के साथ अपने संसर्ग से अर्जुन, इरावण नामक युवा क्षत्रिय का पिता बना जो वर्षों बाद कुरुक्षेत्र के महायुद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

अर्जुन उसके बाद मणिपुर साम्राज्य में आया जिसकी राजकुमारी के बारे में उसने सुना था कि वह महान योद्धा स्त्री चित्रांगदा है।

चित्रांगदा ने अर्जुन के बारे में अनेक बड़ी-बड़ी बातें सुन रखी थीं। और उससे मिले बिना ही वह उससे प्रेम करने लगी थी। उसे यह भय सता रहा था कि अर्जुन उसके पुरुषोचित शरीर को देखकर उससे दूर भाग जाएगा। शिव ने उसकी तपस्या से प्रभावित होकर चित्रांगदा को लजीली

युवती बना दिया। अपने नए रूप में जब वह अर्जुन से मिली तब भी उसने, उस पर कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि अर्जुन ऐसी अनेक युवतियों से मिल चुका था। उसकी आंखें तो पुरुषोचित कदकाठी वाली महान क्षत्रिय स्त्री चित्रांगदा को ढूंढ़ रही थीं। चित्रांगदा को जब अर्जुन की इच्छा का पता चला तो उसने शिव से उसकी मूल आकृति लौटाने को कहा। अर्जुन ने उसके मूल रूप में चित्रांगदा को देखा तो अनायास उससे प्रेम कर बैठा।

अर्जुन ने मणिपुर के सम्राट से पूछा, 'क्या मैं आपकी पुत्री से विवाह कर लूं?'

सम्राट ने उत्तर दिया, 'हां आप ऐसा कर सकते हैं, लेकिन उसके द्वारा प्रसूत पुत्र को आपको मुझे गोद देना होगा।'

अर्जुन ने कहा, 'ऐसा ही होगा।'

कालांतर में चित्रांगदा ने अर्जुन के पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम बब्रुवाहन रखा गया। वह अपने पिता के जीवन में कुरुक्षेत्र युद्ध के अंतिम दिनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

- अपने वनवास के दौरान अर्जुन ने अनेक स्त्रियों ने प्रेम किया और अनेक अन्य स्त्रियों ने उससे प्रेम किया। उनमें से कुछ स्त्रियों से उसने विवाह किया और कुछ अन्य से नहीं किया। व्यास ने इनमें से मात्रा तीन स्त्रियों: उलूपी, चित्रांगदा एवं सुभद्रा का उल्लेख किया है। तमिल लोक कथाओं में अर्जुन द्वारा देवताओं एवं असुरों की पुत्रियों से भी प्रेम संबंध स्थापित करने का उल्लेख है।
- अर्जुन की अनेक पत्नियों में अमेजन की रानी आयली भी थी। आयली से उसने, उसके सोते समय सर्प बनकर उसके बिस्तर में घुसकर संसर्ग किया था। तमिल लोक कथा में ऐसा उल्लेख है कि अर्जुन ने आयली से प्रेम संबंध बनाने के

लिए सर्प का रूप और कृष्ण ने सपेरे का रूप अपनाया था।

- रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 19वीं सदी में *चित्रांगदा* नाम से ही नृत्य नाटिका लिखी है। उनकी चित्रांगदा महाभारत में उल्लिखित मणिपुर की राजकुमारी से भिन्न है। वह विदुषी एवं सक्षम स्त्री है। जो प्रेम की प्यासी है। वह उद्घोषित करती है, 'मेरी वासना का पुष्प फलीभूत होने से पहले कभी भी धूल में नहीं मिलेगा।' इसलिए जब यह पुरुषोचित क्षत्रिय राजकुमारी अर्जुन द्वारा ठुकरा दी गई, तब वह अर्जुन को पाने के लिए बेझिझक प्रेम के देवता मदन के साथ षड्यंत्र करती है और स्वयं अनिंद्य सुंदरी का रूप धारण करती है। अर्जुन, जो सिर्फ सौंदर्य भोगते-भोगते ऊब चुका था और उसने जिस राजकुमारी चित्रांगदा की वीरता के अनेक वृत्तांत सुन रखे थे, उसे पाने की कामना करने लगा। राजकुमारी तब अर्जुन को अपनी वास्तविकता का दर्शन कराती है। उसके शब्द किसी कामातुर स्त्री की सबसे सुंदर उद्घोषणाओं में शामिल हैं, 'मैं फूलों की तरह समूची सुंदर नहीं हूं, जिन्हें मैं पूजा में चढ़ाती हूं। मुझ में अनेक कमियां तथा धब्बे हैं। मैं संसार के लंबे पथ की यात्री हूं, मेरी पोशाक गंदी है, और मेरे पांव कांटों से लहूलुहान हैं। मैं फूलों जैसी सुंदरता, जीवन की क्षणिक उज्ज्वलकमनीयता कहां से पाऊं? मैं तुम्हारे पास गर्वपूर्वक जो भेंट लाई हूं वो स्त्री का हृदय है। यहां धूल की पुत्री की सभी पीड़ा एवं खुशियां, आशाएं एवं भय तथा लाज जमा हैं; यहां प्रेम उमड़ रहा है और अविनाशी जीवन की ओर बढ़ने को संघर्षरत है। इसमें ऐसी अनगढ़ता छिपी है जो फिर भी दयालु एवं श्रीसंपन्न है।'

सुभद्रा का अपहरण

अर्जुन अंततः यादवों की प्रसिद्ध बंदरगाह नगरी द्वारावती अथवा द्वारका पहुंच गया। वह कृष्ण की सलाह पर नगरी में साधु के वेश में प्रविष्ट हुआ।

कृष्ण को इस बात का भान था कि उनकी बहन सुभद्रा, अर्जुन से गुपचुप प्रेम करती है हालांकि उनके बड़े भाई बलराम ने सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से तय कर रखा था। इसलिए उन्होंने, अर्जुन को अपनी बहन को भगा ले जाने के लिए प्रोत्साहित किया। सुभद्रा तो इसके लिए पहले से ही तैयार थी। ये समझ में आते ही कि साधुवेश में नगरी में आया व्यक्ति उसका प्रेमी ही है, वो अर्जुन के रथ पर सवार होकर उसके साथ भाग गई। संसार को यह जताने के लिए कि वह स्वेच्छा से यह कार्य कर रही है, उसने घोड़ों की रास अपने हाथों में थाम रखी थी।

यह जानकर कि सुभद्रा किसी साधु के साथ भाग गई है, बलराम आपे से बाहर हो गए। वे क्रोध से तब और भी आगबबूला हुए जब उन्हें पता चला कि वह साधु वेशधारी अर्जुन ही था।

बलराम क्रोधित होकर चीखे, 'मैं उनके पीछे जाकर उसे वापस घर लाऊंगा।'

कृष्ण ने पूछा, 'क्यों? क्या आपको दिखाई नहीं दे रहा है कि वो, उससे प्रेम करती है? उसका अपहरण नहीं किया गया। जरा देखिए तो कि उन दोनों को नगरी से बाहर ले जाने वाले रथ की रास थामे वो कितना अधिक मुस्करा रही है।'

बलराम ने आखिरकार झिझकते हुए यह स्वीकार कर ही लिया कि उसे, अपना बाकी जीवन किसके साथ बिताना है इसका निर्णय सुभद्रा को स्वयं ही करना था।

सुभद्रा के साथ इंद्रप्रस्थ के द्वार पर पहुंच कर अर्जुन असमंजस में पड़ गया। द्रौपदी ने यह पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि उसके अलावा किसी भी पांडव की कोई भी पत्नी उसकी नगरी में नहीं रहेगी। फिर सुभद्रा को कहां ले जाऊं? वो द्वारका तो नहीं लौट सकती थी। अपने असमंजस को दूर करने के लिए नवदंपती ने कृष्ण से सलाह मांगी।

कृष्ण की सलाह के अनुसार सुभद्रा ने गोपी के वेश में द्रौपदी के कक्ष में प्रवेश किया तथा अपने एवं अपने पति को शरण देने की गुहार लगाई। उसने अपनी पहचान छिपाते हुए कहा, 'मैं उसके साथ घर छोड़कर आ गई हूं और मुझे यह डर लग रहा है कि उसकी पिछली पत्नी मुझे, मेरे पति के साथ नहीं रहने देगी।'

द्रौपदी ने स्नेहपूर्वक जवाब दिया, 'निश्चिंत रहो, तुम मेरे साथ रह जाओ। तुम्हें मैं अपनी बहन के समान मानूंगी।'

सुभद्रा ने यह सुनकर नीची नजरों से द्रौपदी की प्रतिक्रिया के प्रति घबराते हुए कहा, 'मैं तुम्हारी बहन के समान ही हूं। मैं कृष्ण की बहन हूं। और अर्जुन मेरा पति है।'

द्रौपदी ने ठगा हुआ तो महसूस किया लेकिन फिर सुभद्रा को माफ कर दिया और उसे इंद्रप्रस्थ में ही रहने की अनुमति दे दी। उसने अपने से अलगाव के चार साल के दौरान उसे अर्जुन से संसर्ग की अनुमति भी दे दी। कालांतर में अर्जुन और सुभद्रा के संसर्ग से एक पुत्र पैदा हुआ।

उसका नाम अभिमन्यु था।

- इंडोनेशिया में यह धारणा है कि अर्जुन ने द्रौपदी के अलावा सात अन्य स्त्रियों से विवाह किया था। उनमें सबसे महत्वपूर्ण स्त्रियां थीं कृष्ण की बहन सुंबद्रा, और द्रौपदी की बहन श्रीकंडी (शिखंडी?) थीं। सुंबद्रा स्वभाव से घुलमिल जाने वाली और सज्जन थी। शिखंडी फुर्तीली एवं अतिकुशल धनुर्धर थी। श्रीकंडी बाद में कुरुक्षेत्र के युद्ध में शामिल होती है और भीष्म की मृत्यु का कारण बनती है। बाद में दुर्योधन की पत्नी बनने वाली स्त्री भी अर्जुन से प्रेम करती थी लेकिन उसने यह सोचा कि अपने तहेरे भाई के लिए पहले ही चुनी जा चुकी स्त्री से विवाह करना असंगत होगा। अर्जुन के इस पक्ष का संस्कृत महाभारत में कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसके बजाए उसमें अर्जुन को दुर्योधन की पसंद की वस्तुओं एवं व्यक्तियों को कब्जाने में आनंद पाते हुए चित्रित किया गया है।
- विचित्र प्रसंग के अनुसार, जो सिर्फ ओड़िया महाभारत में ही उल्लिखित है, अर्जुन के वनवास के दौरान कृष्ण उससे चाल, चलते हैं। वे उसके पास नबगुंजर नामक दानव के रूप में जाते हैं। इस प्राणि में नौ प्राणियों के गुण शामिल थे- सर्प, अश्व, वृषभ, व्याघ्र, गज, मोर, मुर्गा तथा मनुष्य। उससे भयभीत होने के बजाय अर्जुन उस प्राणी के मानवहस्त में कमल का फूल देख कर पहचान जाता है कि वो तो कृष्ण हैं। इस प्रसंग से महत्वपूर्ण हिंदू दर्शन का संदेश निकलता हैः मानवीय बुद्धि को जो कुछ समझ में न आए उससे भयभीत नहीं होना चाहिए क्योंकि वह भी ईश्वर प्रदत्त ही होता है।
- बलराम द्वारा दुर्योधन एवं भीम दोनों को ही गदा युद्ध कौशल का प्रशिक्षण दिया जाता है। लेकिन वह हमेशा दुर्योधन पर अधिक ध्यान देते हैं। इसका कारण कभी व्याख्यायित नहीं किया गया। क्या यह दो भाइयों के बीच प्रतिद्वंद्विता है, क्योंकि कृष्ण हमेशा पांडवों का पक्ष लेते थे?
- तमिल परंपरा में द्रौपदी, देवी का स्वरूप है और मुत्तल रवुत्तन उसका राजसी चौकीदार एवं द्वारपाल है। उसका राजा के रूप में उल्लेख है, जिसकी पुत्री का विवाह युधिष्ठिर से हुआ था। चूंकि यह सर्वविदित था कि द्रौपदी अपने पांच पतियों में से किसी की भी अन्य पत्नी को राजप्रसाद में रहने नहीं देगी। इसलिए अपनी पुत्री को इसकी अनुमति दिलाने के लिए मुत्तल हमेशा के लिए द्रौपदी का सेवक बनने के लिए स्वयं को प्रस्तुत करता है।

गया का वध

गया नामक गंधर्व कभी द्वारका के ऊपर से उड़ कर जा रहा था, तभी उसने नीचे की ओर थूक दिया। कुछ जगह उसे असुर भी बताया गया है। उसका थूक कृष्ण के सिर पर आ गिरा। इस पर क्रोध से आगबबूला कृष्ण ने अपना इस प्रकार अपमान करने वाले का सिर, धड़ से उड़ा देने की शपथ ली। उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र उठाए और रथ पर चढ़ कर गया का पीछा करने लगे।

भय से कांपते हुए गया इंद्रप्रस्थ की ओर दौड़ा और सुभद्रा के पांवों में जा गिरा, 'बचा लो मुझे बचा लो, ओ सज्जन स्त्री, मुझे उस क्रोधित क्षत्रिय से बचा लो जो दुर्घटनावश हुए अपराध के लिए मेरा सिर काटने आ रहा है।' गया पर दया दिखाते हुए सुभद्रा बोली, 'डरो मत, मेरा पति अर्जुन इस पृथ्वी का महानतम योद्धा है। वह तुम्हारी रक्षा करेगा।' गया मुस्कुराया। उसकी जान जो बच गई थी।

उसके थोड़ी ही देर बाद क्रोध से तमतमाए कृष्ण इंद्रप्रस्थ के द्वार पर पहुंचे और गया से सामने आने को कहा जिसे, उन्होंने नगरी में प्रविष्ट होते हुए देखा था। सुभद्रा को तब यह भान हुआ कि क्रोध से पगलाया हुआ और गया का सिर काटने को उद्धत क्षत्रिय और कोई नहीं बल्कि उसका अपना भाई था, लेकिन वह अपने वचन से पलट नहीं सकती थी।

उसने कहा, 'अर्जुन ने इसकी रक्षा का संकल्प किया हैः आप, इस पर वार नहीं कर सकते।'

कृष्ण ने उत्तर दिया, 'मैंने भी इसकी हत्या की शपथ ली है। मुझे कोई नहीं रोक सकता।'

इस प्रकार कृष्ण और अर्जुन आमने-सामने डट गए। अर्जुन के हाथ में उसका गांडीव था

जबकि कृष्ण की उंगली पर प्राणांतक सुदर्शन चक्र घूम रहा था। गया सुभद्रा के चरणों में पड़ा भय से थर-थर कांप रहा था। स्थिति बेहद तनावपूर्ण थी। कोई भी अपने वचन से पीछे हटने को तैयार नहीं था। दोनों क्षत्रियों ने कहा, 'अपने वचन की लाज रखना धर्म का मूल सिद्धांत है।' अर्जुन यदि कृष्ण पर वार करता तो समूचा जगत नष्ट हो जाता और यदि अर्जुन पर कृष्ण द्वारा वार किया जाता तो पांडव समाप्त हो जाते, जिससे संसार में सारी आशाएं समाप्त हो जातीं।

स्वर्ग से यह द्वंद्व देखकर देवगण इतने अधिक परेशान हो गए कि उन्होंने सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा तथा संसार के विध्वंसक शिव से मध्यस्थता की प्रार्थना की। रचयिता और विध्वंसक, दोनों ही लड़ाई पर उतारू कृष्ण एवं अर्जुन के बीच में आ खड़े हुए। उन्होंने कहा, 'रुक जाओ। तुम्हारे युद्ध से समूचे संसार को खतरा है।'

अर्जुन की ओर देखते हुए ब्रह्मा ने कहा, 'कृष्ण को गया का शिरोच्छेद कर के अपनी शपथ निभाने दो। उसके बाद मैं स्वयं गया को पुनर्जीवित कर दूंगा ताकि तुम्हारा वचन भी पूरा हो जाए। इस प्रकार तुम दोनों ही अपनी शपथ को निभा सकोगे।' परिस्थिति की गंभीरता को भांपते हुए अर्जुन ने अपना धनुष नीचे कर दिया और कृष्ण को गया का शिरोच्छेद करने दियाः ब्रह्म ने उसके बाद गया को पुनर्जीवित कर दिया।

गया ने अर्जुन का धन्यवाद किया एवं ऐसा ब्रह्मांडीय वितंडा पैदा करने के लिए कृष्ण से क्षमायाचना की।

- अर्जुन एवं कृष्ण के बीच विवाद पैदा करने वाले गया के वृत्तांत को कर्नाटक की लोक नाट्य शैली यक्षगान द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसे 17वीं शताब्दि में हालेमक्की राम ने लिखा था। यह प्राचीन संस्कृत गाथा में शामिल नहीं है।
- इस प्रसंग से यह संदेश मिलता है कि कभी-कभी अच्छी नीयत भी मैत्री संबंधों में दरार डाल देती है तथा लोग, मित्रता का अपने फायदे के लिए दुरुपयोग कर सकते हैं।

नर एवं नारायण

अर्जुन ने एक दिन नदी किनारे घूमते हुए कहा, 'मैंने सुना है कि अयोध्या के राम महान धनुर्धर थे। अपने बाणों से मैं ऐसा पुल भी बना चुका हूं जिससे इंद्र के हाथी उतर कर धरती पर आए थे। निस्संदेह राम अपनी पत्नी सीता को जिसे राक्षसराज रावण ने हर लिया था, वापस लाने के लिए समुद्र के आरपार बाणों का पुल बनाने में सक्षम रहे होंगे। उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया? क्या वह मेरे जितने सक्षम धर्नुधर नहीं थे?'

राम के सेवक और उन्हें समर्पित वानरराज हनुमान ने अर्जुन की यह उक्ति सुन ली। उन्हें अर्जुन द्वारा यह आत्मश्लाघा नागवार लगी। वे पेड़ से छलांग लगाकर नीचे आए और अर्जुन से बोले, 'बाणों का पुल वानरों का बोझ कभी नहीं उठा सकता था। इसीलिए उन्हें पत्थरों को मिलाकर पुल बनाना पड़ा। तुम इस नदी के आरपार बाणों का पुल बनाने का प्रयास करो और देखो कि क्या वो एक वानर का बोझ भी सहन कर पाएगा।'

हनुमान को पहचानने में असमर्थ अर्जुन ने सोचा कि वानर उन पर व्यंग्य कस रहा है, इसलिए उसने नदी के ऊपर बाणों का पुल बना दिया। हनुमान ने उस पर एक पैर रखा और पुल तत्काल टूट गया। हनुमान जोर से हंसे और अर्जुन का मखौल उड़ाया, 'तुम्हें अच्छी तरह से याद है कि तुमने इंद्र के गजों के लिए स्वर्ग से धरती तक पुल बनाया था?'

अर्जुन ने स्वयं को इतना अधिक अपमानित महसूस किया कि उसके मन में आत्महत्या का विचार आ गया।

तभी वहां से गुजर रहे किसी ऋषि ने कहा, 'बाणों का दोबारा पुल बनाओ। इस बार तुम बाण छोड़ते समय 'राम-कृष्ण-हरि' जपते जाना और फिर अंतर स्वयं देख लेना।'

अर्जुन ने उनके कहे अनुसार ही किया। अबकी बार वानर ने जब उस पर पांव रखा तो पुल ज्यों

का त्यों रहा। हनुमान ने तब अपने वास्तविक रूप में प्रगट होकर पुल पर नृत्य किया: उसका तब भी कुछ नहीं बिगड़ा! हनुमान ने तब अपना आकार बढ़ाया और पर्वताकार बन गए लेकिन पुल उनके भारी दबाव के बावजूद नहीं टूटा।

ऋषि ने कहा, 'यह राम के नाम का ही प्रताप था कि लंका के तट तक बना पत्थरों का पुल वानरों के भारी वजन के बावजूद नहीं टूटा, उसी प्रकार कृष्ण के नाम की बदौलत बाणों का यह पुल हनुमान का वजन उठा पाया है। इस जगत में सिर्फ शक्ति से काम नहीं चलता: दिव्य आशिर्वाद भी आवश्यक है। कृष्ण ही राम हैं एवं वे दोनों ही हरि अथवा विष्णु हैं। यह बात हमेशा याद रखना। कृष्ण के बिना तुम्हारा अस्तित्व नहीं है। तुम नर हो और वे नारायण हैं।'

अर्जुन ने ऋषि को झुक कर प्रणाम किया और फिर अपने दंभ के लिए क्षमा याचना करते हुए हनुमान के चरणों में लोट गया। उसने तब, हनुमान से पूछा, 'इस का क्या अर्थ है- मैं नर हूं एवं कृष्ण नारायण हैं?'

हनुमान ने उत्तर दिया, 'यह रहस्य तुम्हारे सामने शीघ्र ही उद्घाटित हो जाएगा।'

कुछ दिनों के बाद किसी ब्राह्मण ने अर्जुन से अपनी संतानों को बचाने का अनुरोध किया। 'वे पैदा होते ही गायब हो जाते हैं। मेरी पत्नी अब फिर से गर्भवती है और उसकी प्रसूति होने ही वाली है। मुझे भय है कि मैं इस संतान को भी खो बैठूंगा।'

अर्जुन ने ब्राह्मण को आश्वस्त किया कि वो अपने शक्तिशाली धनुष गांडीव से उसकी संतानों की रक्षा करेगा, फिर भले ही उसके लिए, उसे मृत्यु के देवता यम का सामना क्यों न करना पड़े? उसकी इस मुहिम में कृष्ण ने भी उसका साथ दिया। अर्जुन ने संकल्प किया, 'यदि मैं इसमें सफल नहीं होता तो आत्मदाह कर लूंगा।'

ब्राह्मण की पत्नी का प्रसूति काल शुरू होते ही अर्जुन ने ब्राह्मण की झोंपड़ी के ऊपर बाणों का कवच बना दिया और स्वयं दरवाजे पर खड़े होकर पहरा देने लगा। 'अब मैं देखता हूं कि कौन भीतर घुसकर बच्चे का ले जाएगा।'

कुछ ही मिनट के बाद शिशु पैदा हो गया। अर्जुन और कृष्ण ने बच्चे को रोते हुए सुना, तभी रोने का सुर थम गया। ब्राह्मण चिल्लाया बच्चा गायब हो गया, 'हे अर्जुन तुम विफल हो गए!'

ये कैसे घटित हो गया? झोपड़ी में कोई नहीं घुस पाया? न भगवान, न दानव और न ही

मनुष्य? निराश अर्जुन ने वहीं और तभी आत्महत्या का निर्णय किया। लेकिन कृष्ण ने उसे रोक दिया। उन्होंने कहा, 'ऐसा भीषण निर्णय करने से पहले तुम्हें कुछ देखना पड़ेगा।'

अर्जुन रथ पर चढ़ा और कृष्ण ने रास थाम ली। दोनों साथ-साथ क्षितिज की ओर बढ़ चले। यह लंबी यात्रा थी। अर्जुन को महसूस हुआ कि रथ धरती से ऊपर उठा हुआ था। रथ, आकाश में उड़ने लगा और वे पर्वतों तथा नदियों को तेजी से बहुत पीछे छोड़ चुके थे। शीघ्र ही रथ समुद्र के ऊपर से उड़ने लगा। सब कुछ धुंधला पड़ गया था। गति बढ़ने के साथ ही आकाश भी पीछे छूटने लगा। कृष्ण सीधे सामने नजरें जमाए हुए थे। आकाश इतना अधिक काला पड़ गया कि तारे भी दिखने बंद हो गए। कृष्ण ने अपना सुदर्शन चक्र आगे छोड़ दिया और वो रथ के आगे-आगे रास्ते को प्रकाशित करने लगा। अर्जुन ने पाया कि वे खारे पानी के महासागर को पार कर चुके थे। वे सर्पों, विशालकाय मछलियों और विचित्र मायावी जीवों से भरे ताजे पानी के महासागर के ऊपर उड़ रहे थे। उसके बाद वे आग उगलते मगरमच्छों से भरे आग के महासागर के ऊपर से गुजरे। उसके बाद वे गंदगी के महासागर तथा अंततः क्षीरसागर के ऊपर पहुंचे।

वहां दूध के समुद्र के बीच अर्जुन को नयनाभिराम दृश्य दिखाई दिया। उसने देखा कि कोई दिव्य व्यक्तित्व विशालकाय हजारों फन वाले नाग की कुंडलियों पर विश्राम कर रहा है। उस व्यक्ति की मुस्कान सौम्य तथा चार भुजाएं थीं, जिनमें उन्होंने शंख, चक्र, गदा तथा कमल थाम रखा था। यह विष्णु थे। नागराज आदि-अनंत-शेष थे, काल सर्प। विष्णु के चरणों में संपदा और सौभाग्य की देवी लक्ष्मी बैठी हुई थीं। उनकी जिह्वा पर बुद्धि की देवी सरस्वती विराजमान थीं। यह भगवान थे। भगवान जो ब्रह्मांड को गतिमान रखते हैं। भगवान जो समय एवं अंतरिक्ष को मोड़ सकते हैं तथा असंभव को संभव कर सकते हैं। अपनी माता की कोख से बाहर आने वाले शिशुओं को पल भर में गायब कर सकते हैं।

इस दिव्य दृश्य से विह्वल होकर अर्जुन ने साष्टांग दंडवत प्रणाम किया। वह जब खड़ा हुआ तो

उसने देखा कि विष्णु ने अपनी भुजाओं में अनेक शिशु उठा रखे थे। 'ये ब्राह्मण की संतान हैं।' मैं इन्हें यहां इस लिए लाया कि तुम इनके पीछे यहां आ सको और अपने अस्तित्व का वास्तविक प्रयोजन जान सको।'

अर्जुन की समझ में कुछ भी नहीं आया। कृष्ण मुस्कुराए और उन्होंने समझाया, 'कभी तुम नर थे और मैं नारायण था। हमने मिलकर अनेक दानवों से युद्ध किया और अनेक युद्ध जीते। अब हम अर्जुन एवं कृष्ण हैं। हमें पृथ्वी पर धर्म की पुनर्स्थापना के लिए अवतरित किया गया है।' विष्णु ने अर्जुन को बताया, 'कृष्ण बुद्धि हैं। तुम कार्य हो। एक के बिना दूसरा बेकार है। तुम अपने सभी युद्ध तभी जीत पाओगे जब तुम साथ-साथ रहोगे।'

- यह वृत्तांत भागवत तथा अन्य पुराणों से उद्धृत हैं जिनमें कृष्ण को ईश्वर माना गया है।
- सर्वशक्तिमान भगवान की धारणा हिंदू धर्म के इतिहास में बहुत बाद में पैदा हुई। आरंभिक वैदिक शास्त्रों को अनीश्वरवादी ग्रंथों के रूप में व्याख्यायित करना ही उचित है। उनमें प्राकृतिक आत्माओं तथा ब्रह्मांड की शक्तियों के अनेक ऐसे संदर्भ हैं जिन्हें कर्मकांड के द्वारा आहूत किया जा सकता है, लेकिन ईश्वर का कहीं कोई स्पष्ट उद्धरण नहीं मिलता। अधिक से अधिक उपनिषदों में भगवान को आत्मा से जोड़ा गया है। बौद्ध धर्म जैसे नास्तिक, मठ प्रधान मतों के उभार के साथ ही संसार (पुनर्जन्म की बारंबारता), कर्म (पूर्व कर्मों का प्रभाव) तथा मोक्ष (मुक्ति) जैसे विचार प्रचलित हुए। उनका मुकाबला करने के लिए भगवान का विचार सबसे पहले भागवत संप्रदाय द्वारा प्रचारित किया और ये मुख्य धारा को अधिकाधिक स्वीकार्य होता गया। लोगों को व्यक्तिगत भगवान के विचार में अत्यधिक शांति मिलती है जिनकी कृपा को भक्ति द्वारा पाया जा सकता है तथा जिससे कर्मों एवं संसार के बंधनों से छुटकारा मिल सकता है। महाभारत, ऐसे एकदम आरंभिक हिंदू शास्त्रों में शामिल है जिनमें व्यक्तिगत मानवरूपी भगवान की अवधारणा की पुष्टि की गई है। ऐसा भगवान जो मानवीय परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील है। महाभारत में पृथ्वी पर विष्णु के अवतार कृष्ण की उपस्थिति ने उसे पवित्र ग्रंथ बना दिया है।
- लोक मान्यता के अनुसार पुरुषों के स्तन सीने से चिपके हुए हैं क्योंकि उनके भीतर भी कहीं न कहीं स्त्री उपस्थित है। अर्जुन के केवल दो नहीं बल्कि केवल एक ही स्तन का निशान था क्योंकि वो सामान्य पुरुषों से अधिक पौरुषेय था। कृष्ण के सीने पर स्तन का निशान ही नहीं था, क्योंकि वे पूर्ण पुरुष थे।
- नर एवं नारायण दो अविभाज्य ऋषि थे। वे हिमालय में बदरी अथवा बेर के पेड़ के नीचे रहते थे। उनका नाम महागाथा में अर्जुन एवं कृष्ण के पूर्व जन्म के अवतारों के रूप में बार-बार आता है। क्षत्रिय संन्यासी के रूप में चित्रित इन दोनों को विष्णु का आरंभिक पुजारी माना जाता है, जिनकी पहचान बाद में विष्णु के साथ की ही बनी। तत्वमीमांसा के संदर्भ में कहें तो नर का अर्थ है मानव और नारायण का अर्थ भगवान है। अर्जुन और कृष्ण का आपसी संबंध मनुष्य एवं ईश्वर का है, जो अविभाज्य है।

- अर्जुन एवं कृष्ण को नर एवं नारायण से जोड़कर व्यास ने उन्हें भाग्य के अधीन कर दिया। उनका जन्म सामान्य नहीं है बल्कि वे विशिष्ट उद्देश्य के लिए पैदा हुए हैं।

नवां अध्याय

राजतिलक

'जनमेजय, तुम्हारे पूर्वज के राजतिलक के पहले एवं उस दौरान भी राजाओं का वध हुआ था।'

जरासंध का वध

अर्जुन के तीर्थयात्रा से वापिस आने पर युधिष्ठिर ने राजा बनने की इच्छा जताई। उन्होंने कहा, 'मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूं।'

लेकिन उसकी सफलता के लिए पृथ्वी के अन्य राजाओं का उसमें भाग लेना आवश्यक था, जिससे उनकी संप्रभुता की प्रतीकात्मक पुष्टि हो जाती।

कृष्ण ने कहा, 'उसके लिए पहले आपको सिद्ध करना होगा कि आप राजमुकुट पहनने के लायक हैं। और राजगद्दी पर अपने दावे को सर्वमान्य बनाने के लिए अपनी सत्ता को सिद्ध करने का सर्वोत्तम उपाय जरासंध को अपने अधीन करना है।'

युधिष्ठिर के मुंह से अनायास निकला, 'मगधराज, मथुरा के विनाशकर्ता!' उनकी आवाज से मन का संशय परिलक्षित हुआ क्योंकि जरासंध का दबदबा समूचे भारतवर्ष में व्याप्त था। ऐसी किंवदंती थी कि जरासंध ने सौ राजाओं को बंदी बना रखा था और वो मानव बलि का आयोजन करने वाला था। युधिष्ठिर ने फिर कहा, 'मेरी सेना तो उनके पासंग भी नहीं है।'

कृष्ण कुटिलतापूर्वक मुस्कराते हुए बोले, 'कुशाग्र मस्तिष्क के आगे शक्तिशाली पुट्ठे लाचार साबित होते हैं। हम उसकी नगरी में ब्राह्मण के वेश में चलते हैं। मेजबानी के नियम के अनुसार वो हमारी बात नहीं टाल पाएगा। तब हम उससे द्वंद्व की इच्छा प्रकट करेंगे। मृत्युपर्यंत मल्ल युद्ध।'

कृष्ण की योजना से पांडव बहुत प्रभावित हुए। वे जानते थे कि कृष्ण और जरासंध की पुरानी लाग-डांट है। इस योजना का पांडवों और यादवों दोनों को ही लाभ मिलेगा। यादवों को मथुरा का विध्वंस करने वाले व्यक्ति से मुक्ति मिलेगी और पांडव स्वयं को राजा घोषित करने तथा कृष्ण के उपकार का बदला चुकाने में सफल होंगे जिसने उनकी, इतनी अधिक सहायता की थी।

अनुमान के अनुसार जरासंध ने उन तीनों ब्राह्मणों का स्वागत-सत्कार किया जो हस्तिनापुरी से वहां आए थे। मेजबानी का धर्म निभाते हुए उसने, उनकी हरेक इच्छा पूरी करने का वचन दिया। उसने कहा, 'जो मांगेंगे वही वस्तु आपकी होगी।

तीनों ब्राह्मणों ने उससे कहा, 'हमें आपसे मृत्यपर्यंत मल्ल युद्ध करना है।'

जरासंध को तत्काल ये भान हो गया कि ये तो ब्राह्मण नहीं बल्कि उनके वेश में क्षित्रय हैं। उसे छला गया था लेकिन अपने वचन से पीछे हटना उसकी शान के खिलाफ था। वो बोला, 'मुझे संदेह है कि आपमें कृष्ण भी शामिल है, कायर जो उसकी नगरी मथुरा को मेरे द्वारा जला कर खाक कर दिए जाने के बाद द्वारका की ओर भाग गया था। एवं अन्य दो पांडव होंगे जिनके साथ उसने शक्तिशाली गठबंधन कर लिया था।' अर्जुन की ओर देखते हुए उसने कहा, 'तुम तो दुबले-पतले हो और मल्ल युद्ध के लायक ही नहीं हो। क्योंकि तुम्हारी भुजाओं पर बने निशान बता रहे हैं कि तुम धनुर्धर हो। तुम अवश्य अर्जुन हो।' उसके बाद वो भीम से मुखातिब हुआ, 'तुम बलिष्ठ एवं विशालकाय हो। योग्य विरोधी। मुझे संदेह है कि तुम भीम हो।' उसके बाद उसने कृष्ण की ओर मुंह घुमाया, 'तुम पक्के रंग के हो और तुम्हारी आंखों में शरारत छिपी है। तुम वही युवक होंगे जिसने मेरे दामाद की हत्या की थी। मैं तुम से यहां भीम से निपटने के बाद हिसाब बराबर करूंगा।'

भीम जैसे ही मल्ल युद्ध के अखाड़े में जाने लगा कृष्ण ने एक पत्ती उठाई, उसे उसकी रीढ़ के पास से दो टुकड़ों में तोड़ा और बोले, 'जरासंध को मारने का एकमात्र उपाय उसके धड़ को दो लंबे हिस्सों में चीरना है, जैसे मैंने इस पत्ती को चीर दिया है। उसके निःसंतान पिता ने अपने को संतान प्राप्ति कराने वाले दिव्य रसायन को अपनी दोनों पत्नियों को बराबर मात्रा में पिला दिया था। उसके परिणामस्वरूप दोनों पत्नियों ने आधे-आधे बच्चे को जन्म दिया। उन दोनों आधे-आधे बच्चों को जरा नामक दानवी ने आपस में जोड़ दिया। वही आजतक उसकी रक्षा करके उसे अजेय बनाए हुए है। उसका वध किसी भी अस्त्र -शस्त्र से नहीं किया जा सकता। उसे दो हिस्सों में चीर देने पर ही उसका वध संभव है।'

भीम को शीघ्र ही ये आभास हो गया कि जरासंध सचमुच अजेय प्रतिद्वंद्वी था। जिन शक्तिशाली घूंसों से उसने बक एवं हिडिंब जैसे दानवों का वध किया था, मगध सम्राट पर बेअसर साबित हो रहे थे। वे घंटों जंगली हाथियों के समान लड़ते रहे। अंततः भीम ने जरासंध को पृथ्वी पर पटक कर दबोच लिया और उसकी एक टांग पकड़ कर उसने पूरा जोर लगाकर उसके धड़ को बीच में से

चीर दिया। दर्शकों ने भीम का जयकार किया।

लेकिन तभी अचानक वहां सन्नाटा पसर गया। ये देख कर सब भौंचक्के रह गए कि बायां धड़ अपने-आप खिसक दाहिने धड़ से जुड़ गया और जरासंध स्वस्थ उठ खड़ा हुआ। भीम ने असमंजस में कृष्ण की ओर देखा। कृष्ण ने तत्काल दूसरी पत्ती उठाई और उसकी रीढ़ से उसे दो हिस्सों में विभाजित करके अबकी उसके बाएं हिस्से को दाहिनी ओर तथा दाहिने हिस्से को बाई ओर फेंक दिया। इसमें निहित संदेश भीम की समझ में आ गया।

दोनों फिर से द्वंद्व करने लगे। इस बार युद्ध इतना भीषण हुआ कि अखाड़े के खंभे हिलने लगे और देवता आकाश से भीम का उत्साहवर्धन करने लगे। अनेक घंटे लंबी मशक्कत के बाद भीम को फिर से जरासंध को पृथ्वी पर गिरा कर दबोचने में सफलता मिली। उसने जरासंध की टांग पर अपनी टांग रखकर उसकी दूसरी टांग को खींचा और उसे फिर बीच में से चीर दिया। उसके बाद उसके धड़ के बाएं हिस्से को उसने दाहिनी ओर तथा दाएं हिस्से को बाई ओर उछाल कर दूर फेंक दिया।

इस प्रकार वो जरासंध का वध करने में सफल रहा। इसी के साथ कृष्ण को यादवों की नगरी मथुरा का विध्वंस करने वाले व्यक्ति से छुटकारा पाने का संतोष मिला। अब भारतवर्ष में युधिष्ठिर के राजा बनने को चुनौती देने वाला कोई भी राजा नहीं बचा था। इस प्रकार पांडवों द्वारा निर्मित इंद्रप्रस्थ नगरी प्रभुतासंपन्न राज्य बन पाई।

- राजसूय यज्ञ से राज्य को उसकी संप्रभुता प्राप्त हो जाती थी। इस दर्जे को पाने के लिए राज्य के शासक को अपनी सैन्य शक्ति सिद्ध करनी पड़ती थी, ताकि अन्य राजा उसे अपने बराबर मान सकें। राजसूय करके युधिष्ठिर ने अपने ताऊ से अपने सभी संबंध तोड़ कर संसार के सामने अपने स्वायत्त हो जाने की उद्घोषणा कर दी थी।
- पांडवों की सहायता करते हुए कृष्ण उनका प्रयोग अपने शत्रु जरासंध को पराजित करने के लिए भी करते हैं। जरासंध की सेना के हाथों मथुरा के विध्वंस के समय कृष्ण के पलायन कर जाने के कारण उनका रणछोड़ राय जैसा उपहासजनक नाम भी पड़ा अर्थात युद्ध के समय पीठ दिखाकर भाग जाने वाला व्यक्ति।
- जैन परंपरा में संसार में एक युग के दौरान 63 महाकीर्तिमान विभूतियां पैदा होती हैं। इन्हें शलाका पुरुष कहा जाता

है। इनमें 24 संत अथवा तीर्थंकर, 12 सम्राट अथवा चक्रवर्ती और तीन योद्धाओं वाले नौ समूह होते हैं। इन योद्धाओं में शांतिकामी बलदेव न्यायकामी मगर हिंसक वासुदेव तथा पापी प्रतिवासुदेव शामिल थे। कृष्ण और जरासंध को वासुदेव एवं प्रतिवासुदेव माना जाता है जिनके भाग्य में आपस में लड़ना ही बदा था। कृष्ण के बड़े भाई बलराम सज्जन पुरुष बलदेव हैं जिन्हें युद्ध के बजाए शांति पसंद है। जैन शास्त्रों के अनुसार संसार के अगले जीवन चक्र में बलराम द्वारा तीर्थंकर के रूप में पुनर्जन्म लिया जाएगा। ऐसा कृष्ण के पुनर्जन्म के पहले ही हो जाएगा। तीर्थंकर के रूप में पुनर्जन्म उनके द्वारा अहिंसा के जैन सिद्धांत के पालन को पसंद करने के कारण होगा।

दुर्योधन का तालाब में गिरना

युधिष्ठिर का राजतिलक अत्यंत भव्य रहा, जिसमें चारों दिशाओं से आकर राजा शामिल हुए। अतिथियों में राक्षस, देवता, असुर, यक्ष, नाग एवं गंधर्व शामिल थे। दुर्योधन एवं शिशुपाल भी आए।

दुर्योधन, मय दानव द्वारा निर्मित इस महान नगरी का अवलोकन करने निकल गया। उसने प्रासादों की भव्यता को निहारा, सड़कों की व्यवस्था, खूबसूरत बागीचों एवं फलोद्यानों को सराहा, उसने महसूस किया कि मुख्य प्रासाद ऐसी तकनीक से बनाया गया है कि उसके बरामदों में हर समय ठंडी बयार चलती रहती है। साथ ही उसकी सभी दीवारें सूर्य की रोशनी को वापस कर देती हैं। कवियों ने पांडवों के इस विशाल प्रासाद की इंद्र की सभा नगरी अमरावती से और साम्राज्य की स्वर्ग से तुलना की थी। यह देख कर दुर्योधन ईर्ष्या से जल उठा।

दुर्योधन, प्रासाद की छत पर बनी चित्रकारी को निहारता बरामदे में ज्यों ही आगे बढ़ा उसका पांव फिसला और वह सरोवर में गिर पड़ा।

वहां से निकल रही द्रौपदी यह देखकर बरबस ठहाका मार कर हंस दी। उसके मुंह से निकला, 'अंधे माता-पिता का अंधा पुत्र।'

यह सुनकर दुर्योधन मन ही मन अत्यंत क्रोधित हुआ और उसने शपथ ली कि इसका बदला

वह द्रौपदी की दुर्दशा पर ऐसे ही हंस कर लेगा।

- अनेक वृत्तांतों में दुर्योधन के माता-पिता के प्रति द्रौपदी की व्यंग्योक्ति को बाद में उसकी दुर्दशा का कारण बताया गया है। इस घटना को दरअसल किसी की शारीरिक विकलांगता पर व्यंग्य से बचने की नसीहत देने के लिए उद्धृत किया गया है।
- इंद्रप्रस्थ का मायावी प्रासाद वहां आने वाले सभी राजाओं के मन में ईर्ष्या जगाता था। दुर्योधन विशेषकर परेशान हुआ। उसे बार-बार यही बात कचोटने लगी कि उसके चचेरे भाइयों ने कंगाल होते हुए भी बेहद आकर्षक नगरी बसा ली है, जबकि वो सारे साधन होने के बावजूद जीवन में कोई उपलब्धि हासिल नहीं कर पाया। युधिष्ठिर के राजतिलक में तो उसकी ईर्ष्या का पारावार नहीं रहा।
- लंका नरेश तथा राक्षसों के मुखिया विभीषण ने युधिष्ठिर को प्रणाम करने से इन्कार कर दिया। उसका तर्क था कि वह अयोध्या के राजा राम के अलावा किसी के आगे शीश नहीं नवाएगा, जिन्होंने, उसके भाई रावण का वध किया था और वे धरती पर विष्णु का अवतार थे। लेकिन धरती पर विष्णु के ही अवतार कृष्ण ने जब ये कहते हुए युधिष्ठिर को दंडवत प्रणाम किया कि धरती पर धर्म की रक्षा करने वाला राजा उनके लिए अयोध्या के राजा राम के समान है, तो विभीषण ने भी अपना निर्णय बदल कर युधिष्ठिर को दंडवत प्रणाम किया।

शिशुपाल का वध

भारत वर्ष के सभी राजाओं की उपस्थिति में युधिष्ठिर के सिर पर ब्राह्मणों ने जल, दूध एवं शहद प्रक्षालित किया। इस प्रकार उन्हें सम्राट घोषित किया गया। उसके चारों ओर चार भाई खड़े थे और उनके वामांग में उनकी सामूहिक पत्नी इंद्रप्रस्थ की सम्राज्ञी विराजमान थी। उनके ससुर द्रुपद और उनके मामा शल्य तथा उनके ममेरे भाइ कृष्ण एवं बलराम उनके लिए अत्यतं प्रसन्नता महससू कर रहे थे। दुर्योधन एवं कर्ण, शाल्व और शिशुपाल जैसे अन्य अतिथियों के मन में ईर्ष्या सुलग रही थी।

समारोह के दौरान ब्राह्मणों ने पांडवों को वहां उपस्थित सभी अतिथियों के मध्य विशिष्ट अतिथि चुनने को कहा। पांडवों ने कृष्ण को चुना क्योंकि उनके सहयोग के बिना वे, वो सब कुछ प्राप्त नहीं कर सकते थे जो आज उनके पास था। कृष्ण को सम्मानपूर्वक ऊंचे सिंहासन पर बैठाकर पांचों पांडवों तथा उनकी पत्नी ने उन्हें विभिन्न उपहार अर्पित किए।

अचानक चेदिराज शिशुपाल भरी सभा में खड़े होकर इसका विरोध करने लगा, ‘यहां सैकड़ों राजा जमा हैं फिर भी पांडवों ने कृष्ण को सम्मानित किया।’

वो यादव, जिस के पूर्वज यदु को उसके पिता ने यह कह कर ठुकरा दिया था कि वो कभी राजा नहीं बन सकता, जिसका लालन-पालन सामान्य गोपालकों ने किया, जिसका अपना सारा बचपन पशुओं का शिकार और गोपियों के साथ नृत्य करते बीता, जिसने अपनी मां के सगे भाई का वध किया, जो पीठ दिखाकर कायरों की तरह युद्ध से भागा और जरासंध को अपनी नगरी का विध्वंस करने दिया, जो अपने राज्य पर अन्य राजाओं के आक्रमण से बचने के लिए अनेक राजकुमारियों के साथ भाग चुका तथा जिसने न जाने कितनी राजकुमारियों का अपहरण किया।

शिशुपाल की इस बकवास ने पांडवों को इतना अधिक क्रोधित किया कि उसे रोकने के लिए उन्होंने शस्त्र उठा लिए। जवाब में शिशुपाल की रक्षा के लिए वहां जमा कुछ अन्य राजाओं ने भी शस्त्र उठाए, क्योंकि शिशुपाल का एक भी कथन झूठा नहीं था। युधिष्ठिर के राज दरबार के रणक्षेत्र में बदल जाने की नौबत आ गई। ऐसी तनावपूर्ण परिस्थिति में कृष्ण बोले, 'शिशुपाल एवं मेरे बीच की बात है। वो, जो कुछ कह रहा है उसे कहने दो। वो मेरा फुफेरा भाई है, मेरे पिता की बहन का पुत्र, जैसे पांडव मेरे भाई हैं।'

कृष्ण ने वहां जमा अतिथियों को ये नहीं बताया कि शिशुपाल के जन्म के समय यह आकाशवाणी हुई थी कि कृष्ण ही शिशुपाल का वध करेगा। शिशुपाल को बचाने के लिए उसकी मां ने कृष्ण से याचना की थी कि वो उसके पुत्र की सभी गलतियों को क्षमा कर दे। कृष्ण ने उन्हें वचन दिया था, 'मैं उसकी 100 गलतियां क्षमा कर दूंगा, मगर उससे अधिक नहीं।'

शिशुपाल की मुहिम जारी रही। वो कृष्ण का अपमान करता रहा। कृष्ण, उसके द्वारा किए गए हरेक अपमान का घूंट पीते रहे।

सौवीं बार अपने अपमान पर वे उठ कर खड़े हुए और हाथ उठाकर बोले 'बस, भ्राता तुम मेरा सौ बार अपमान कर चुके, तुम्हारी माता को दिए गए वचन के अनुसार मैंने हरेक बार तुम्हें क्षमा कर दिया। लेकिन अब और ऐसा मत करो। यदि तुमने दोबारा मेरा अपमान किया तो मैं तुम्हारा वध कर दूंगा।'

शिशुपाल ने तब भी परवाह नहीं की। उसे, कृष्ण से घृणा थी। कृष्ण ने खड़े होकर अपना हाथ ऊपर उठाया। कृष्ण सामान्य ग्वाले थे और वो चेदि नरेश था, उसके बावजूद समस्त भारतवर्ष में कृष्ण का अधिक सम्मान था। वे, उससे अधिक लोकप्रिय थे। कृष्ण ने उसकी प्रेयसी रुक्मिणी का उसकी आंखों के सामने अपहरण कर के उससे विवाह कर लिया था। कृष्ण की पहल पर ही जरासंध का वध हुआ था जिसे शिशुपाल अपने पिता के समान मानता था और कृष्ण को ही पांडवों ने विशिष्ट अतिथि बना दिया था। क्रोध एवं ईर्ष्या से जलते हुए शिशुपाल ने फिर से कृष्ण का अपमान किया। यह एक सौ एक बार अपमान था।

उस विशाल दरबार में किसी की पलक झपकने से पहले ही कृष्ण ने अपना सुदर्शन चक्र चला कर शिशुपाल का सिर उसके धड़ से अलग कर दिया। उसका सिर जमीन पर गिरते ही वहां जमा राजाओं में अफरा-तफरी मच गई। 'क्या पांडव इसी प्रकार अपने अतिथियों की आवभगत करते हैं? उन्होंने सामान्य ग्वाले को राजा का वध करने दिया। आइए हम यहां से चले जाएं। युधिष्ठिर, राजा भले ही हो लेकिन वो हमारे द्वारा सम्मान का पात्र नहीं है।' ऐसा बोलते हुए भारतवर्ष के अनेक नरेश, सभा से उठ कर चले गए। युधिष्ठिर के राजतिलक का भव्य समारोह इस प्रकार जबरदस्त अपशकुन के साथ संपन्न हो गया।
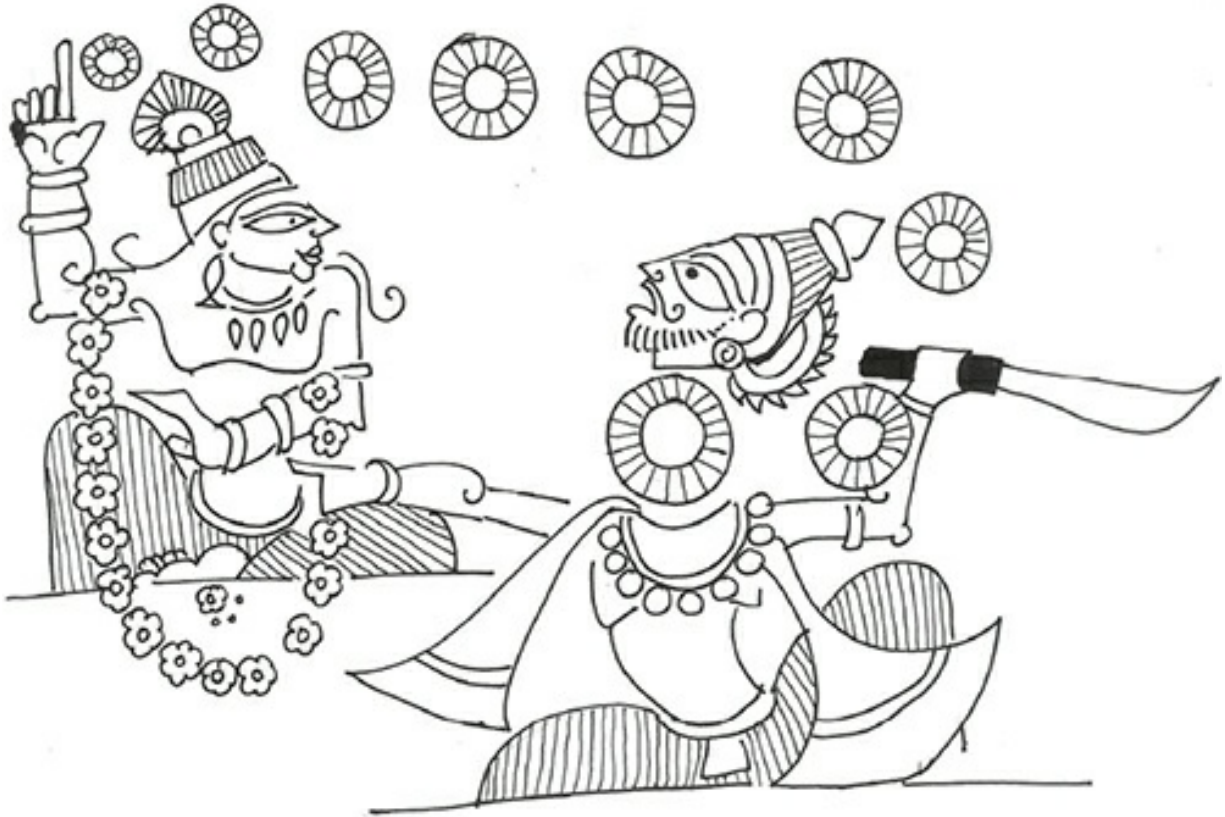
सभा छोड़ कर बाहर निकल जाने वाले राजाओं में शिशुपाल के मित्र और जरासंध के सहयोगी शाल्व तथा दंतवक्र भी शामिल थे। उन्होंने कृष्ण को सबक सिखाने के लिए अपनी-अपनी सेनाएं लेकर द्वारका पर आक्रमण कर दिया। इसके कारण कृष्ण को इंद्रप्रस्थ छोड़कर अपनी नगरी की

रक्षा के लिए दौड़ना पड़ा।

- भागवत पुराण के अनुसार शिशुपाल एवं दंतवक्र अपने पूर्व जन्म में जय एवं विजय थे। वे विष्णु के द्वारपाल थे, जिन्होंने चार ऋषियों-सनत कुमारों को वैकुंठ में प्रवेश करने से रोक दिया था। ऋषियों ने इससे कुपित होकर उन्हें शाप दे दिया कि उन्हें भगवान से दूर तीन बार जन्म लेना पड़ेगा। हर बार जन्म लेने पर उन्होंने भयावह कार्य किए जिनसे मजबूर होकर विष्णु को स्वयं पृथ्वी पर आकर उनका वध करना पड़ा। उनका पहला जन्म हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु नामक असुर भाइयों के रूप में हुआ। उनके अत्याचारों से धरती पर त्राहि-त्राहि मचने पर विष्णु ने सूअर एवं नर व्याघ्र के मिलेजुले रूप में नृसिंह अवतार लेकर उनका वध किया। दूसरी बार वे राक्षस बंधुओं, रावण एवं कुंभकर्ण के रूप में जन्मे और विष्णु ने राम के अवतार रूप में उनका वध किया। उनका तीसरा जन्म शिशुपाल एवं दंतवक्र (कुछ लोग उनका जन्म कंस एवं शिशुपाल के रूप में भी मानते हैं) के रूप में हुआ जिन्हें विष्णु ने कृष्ण के अवतार रूप में जान से मारा। इस प्रकार शिशुपाल का वध पूर्व निर्धारित था।
- अपने पुत्र शिशुपाल की जान बचाने के लिए उसकी माता ने कृष्ण से यह वरदान लिया था कि वे उसके पुत्र के सौ अपराध क्षमा कर देंगे। लेकिन उन्होंने, अपने पुत्र को यह बताने की चिंता नहीं की कि वो कोई अपराध न करे। इस प्रकार व्यास, मनुष्यों की इस स्थायी प्रवृत्ति की ओर इंगित करते हैं कि वे आमूल-चूल सुधार पर जोर देने के बजाए ऊपरी उपायों द्वारा समस्या सुलझाना चाहते हैं।
- एक लोक कथा में यह वर्णन है कि शिशुपाल पर सुदर्शन चक्र चलाते समय कृष्ण की उंगली जख्मी हो जाती है और उससे रक्त टपकने लगता है। उसे रोकने के लिए द्रौपदी तत्काल अपने उत्तरीय की कत्तर फाड़कर कृष्ण की जख्मी उंगली पर लपेट देती है। उसके द्वारा वस्त्र दिए जाने पर कृष्ण ने वचन दिया कि जिस दिन द्रौपदी को वस्त्र की आवश्यकता पड़ेगी वे स्वयं प्रदान करेंगे। जब द्रौपदी का कौरवों ने चीरहरण किया तो कृष्ण ने अपना वचन बखूबी निभाया।
- युधिष्ठिर के राजतिलक के अवसर पर अनेक अपशकुन हुए। इससे पहले मगध सम्राट जरासंध का वध हुआ। समारोह के दौरान और एक राजा दुर्योधन का अपमान हुआ और अंततः उसी बीच और एक राजा शिशुपाल का वध हुआ, जिससे सभी नरेशों में अफरातफरी मच गई।

दसवां अध्याय

द्यूतक्रीड़ा

'जनमेजय तुम्हारे पूर्वज अपने साम्राज्य एवं अपनी पत्नी को जायदाद समझ कर द्यूतक्रीड़ा में दांव पर लगाकर हार गए।'
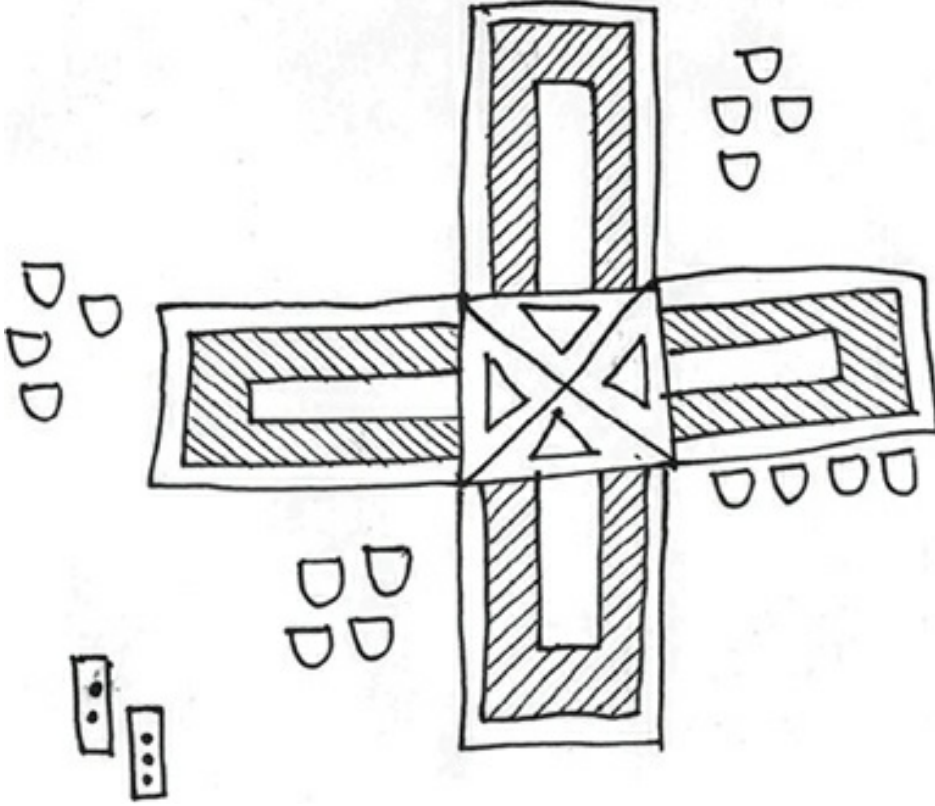
शकुनि का षड्यंत्र

दुर्योधन, इंद्रप्रस्थ से ईर्ष्या की आग में जलते हुए अपमानित मन से लौटा। 'पांडव कंगाल थे और अब वे राजा बन गए। उनका साम्राज्य मेरे राज्य से अधिक संपन्न है तथा उनका यश भी चारों ओर फैल गया।' अपने चचेरे भाइयों की तुलना में उसे अपना छोटापन फिर से सालने लगा।

यह देख कर गांधारी के भाई शकुनि ने ऐसा षड्यंत्र रचा कि दुर्योधन का मन फिर हल्का हो गया। 'युधिष्ठिर भले ही महान हो मगर उसमें एक बड़ी कमजोरी है। उसे द्यूतक्रीड़ा बहुत प्रिय है। उसे पांसा चौपड़ खेलने के लिए आमंत्रित करो। वो हालांकि एकदम लचर जुआरी है, मगर वो अवश्य आएगा। वो मना नहीं कर पाएगा। अपनी ओर से मुझे पांसा फेंकने देना। मैं ही जीतूंगा और हरेक दांव जीतने पर हम पांडवों से एक-एक करके उनका सब कुछ छीन लेंगे। क्रीड़ा समाप्त होने तक तुम इंद्रप्रस्थ के सम्राट होंगे और पांडव सब कुछ गंवा कर भिखारी बन जाएंगे।'

यह सुनकर दुर्योधन की खुशी का पारावार नहीं रहा। लेकिन वो, ये बात नहीं भांप पाया कि उसका मामा कुरू वंश को नष्ट करने के घिनौने खेल की चाल चल रहा है।

वर्षों पूर्व कौरव एवं पांडव जब बच्चे थे, वे मिलकर खेल रहे थे। वो खेल हमेशा के समान उनके बीच लड़ाई के साथ ही खत्म हुआ, कौरवों ने पांडवों को गाली दी, 'तुम वेश्या की संतान हो', क्योंकि यह बात उन्हें पता थी कि पांडव अपनी माता के पति की संतान नहीं थे।

पांडवों ने इसका ये कह कर प्रतिवाद किया, 'तुम तो विधवा की संतान हो।'

कौरवों को ये सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ। उनकी माता तो किसी भी प्रकार से विधवा नहीं थी। वे रोते-रोते भीष्म के पास पहुंचे और उनसे पूरी घटना बयान की। भीष्म ने इसकी जांच का निर्णय किया और अपने जासूस गांधार राज्य की ओर रवाना कर दिए।

जासूसों ने पता लगाया कि गांधारी के पैदा होने पर ज्योतिषियों ने यह भविष्यवाणी की थी कि उसके पहले पति का जीवन अत्यल्प समय में पूरा हो जाएगा जबकि उसके, दूसरे पति का दीर्घ जीवन होगा। उनके पिता सुवल ने तब अपनी पुत्री का 'विवाह' किसी बकरे से करवा दिया। 'विवाह' के उपरांत उस बकरे का वध कर दिया गया। तकनीकी रूप में गांधारी इसके बाद विधवा हो गई थी।

ज्योतिषियों द्वारा ये बताए जाने पर कि कौरव दरअसल वही बच्चे थे जिनका जन्म बकरे के संसर्ग से होता, यदि उसका वध न किया जाता, भीष्म गुस्से में अपना होश खो बैठे। 'सुवल ने मुझसे छल किया है। मेरे महान कुटुंब में पुत्रवधू के रूप में विधवा आ गई। संसार को यदि यह बात पता चल गई तो समूचा भारतवर्ष मुझ पर हंसेगा। मैं सुवल के समूचे परिवार को मार कर यह रहस्य उन्हीं के साथ मिटा दूंगा।'

भीष्म ने सुवल और उसके पुत्रों को तहखाने में कैद कर दिया। उन्हें खाने के लिए रोज बस

एक मुट्ठी चावल दिया जाता। सुवल ने अपने पुत्रों से कहा, 'भीष्म को ये पता है कि किसी परिवार की हत्या करना अधर्म है। इसलिए उन्होंने धर्म संहिता का पालन करते हुए ही हमारी हत्या का यह उपाय किया है। वे हमें रोज भोजन देते हैं, लेकिन उसकी मात्रा इतनी अल्प है कि भूख से बेहाल होकर हम मर ही जाएंगे। हम कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि और खाना मांगना अधर्म है। जैसे खाना परोसे जाते समय पुत्री के घर से भाग जाना भी अधर्म है।' दिन बीतने के साथ-साथ परिस्थिति बिगड़ने लगी।
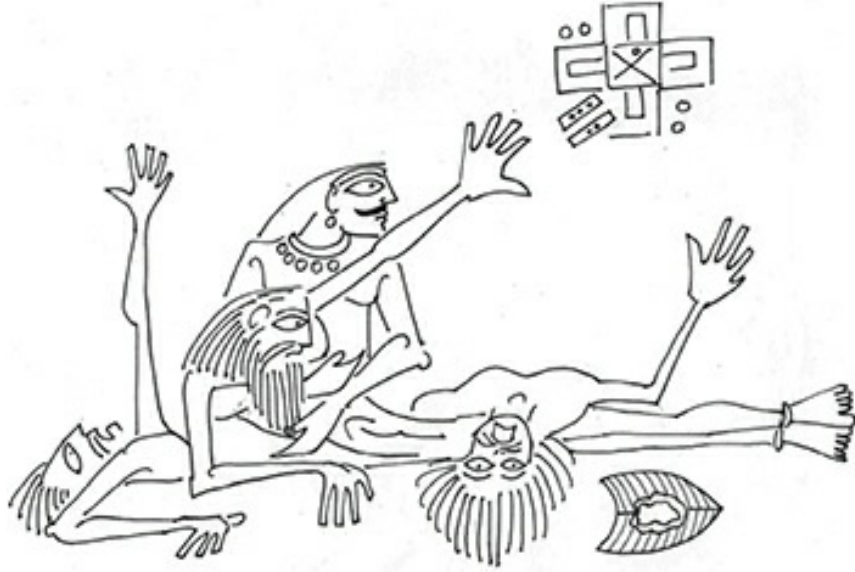
गांधारी के भाई उस अल्प भोजन को छीनने के लिए आपस में लड़ने लगे। भूख से विह्वल सुवल को एक युक्ति सूझी, 'हममें से सिर्फ एक व्यक्ति ही भोजन करेः वही जो सबसे बुद्धिमान है। सिर्फ उसी को जीवित रह कर भीष्म द्वारा हमसे किए गए अन्याय को याद रखना होगा। उसी को प्रतिशोध लेने के लिए जीवित रहने दिया जाए।'

सबसे छाटे पत्रु शकुनि को इसके लिए चुना गया आरै उसे ही पूरा भाजे नकरने दिया गया। उसने, अपनी आंखों से अपने परिवार को तिल-तिल कर भूख से मरते देखा।

सुवल ने मरने से पहले शकुनि के पैर पर सोंटे से वार करके उसका टखना तोड़ दिया। 'अब से तुम हमेशा लंगड़ा कर चलोगे और जब-जब तुम लंगड़ाओगे तब-तब अपने परिवार पर कौरवों के अत्याचार को याद करना, उन्हें कभी क्षमा मत करना।'

सुवल ने पांसों के खेल के लिए शकुनि का रूझान देखा था। उसने अंतिम सांस लेते समय अपने पुत्र को बताया, 'मेरी मृत्यु के बाद मेरी उंगलियों की हड्डी लेकर उसके पांसे बना लेना। उनमें मेरा रोष भरा होगा और तुम जो दांव लगाओगे वो उसके अनुसार ही परिणाम देंगे। उससे पांसों का खेल हमेशा तुम ही जीतोगे।'

- पांडवों की समृद्धि के प्रति दुर्योधन की ईर्ष्या ही महाभारत नामक त्रासदी का मूल कारण है। ऐसा नहीं था कि उसे किसी चीज की कमी थी, लेकिन उसके दुःख का कारण उसके चचेरे भाइयों का उससे अधिक साधन संपन्न बन

जाना था।

- शकुनि के परिवार का प्रसंग अनेक लोक परंपराओं में उद्धृत है। कुछ अन्य कथाओं में भीष्म नहीं बल्कि दुर्योधन को शकुनि के पिता एवं भाइयों की हत्या के लिए जिम्मेदार बताया गया है। इस वृत्तांत का लक्ष्य सबको यह याद दिलाना है कि लोगों के बारे में उनका पक्ष जाने बिना राय नहीं बनानी चाहिए। बुरे से बुरे, खलनायक का अपना पक्ष होता है और उसी से उसकी हरकतें संचालित होती हैं।
- कथा के अन्य संस्करणों के अनुसार सुवल को उसके पुत्रों सहित बंदी बनाने का कारण उसके द्वारा दृष्टिहीन व्यक्ति से गांधारी के विवाह से इन्कार करना है। इस प्रकार अंबिका और अंबालिका के समान ही गांधारी भी जबदस्ती की शिकार है और शकुनि भी उसी प्रकार पीड़ित है।
- गांधारी एवं बकरे का प्रसंग महाभारत के जैन पुनर्कथ्यों में वर्णित है।
- गाथा काल में ऐसा प्रतीत होता है कि परिवार की राजनीति में माता के परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। शकुनि जहां कौरवों का मामा है वहीं कृष्ण भी पांडवों का ममेरा भाई है।
- महाभारत में सभी प्रकार के पतन का कारण लालच बताया गया है। विष्णु पुराण में विस्तार से बताई गई महाभारत की ही कथा के अनुसार विष्णु, पृथ्वी पर छोटी सी मछली के रूप में अवतरित होकर प्रथम पुरुष मनु से अपने-आप को बड़ी मछली से बचाने को कहते हैं। बड़ी मछली द्वारा छोटी को खा जाने की धारणा को 'मत्स्य न्याय' कहते हैं जो जंगल के कानून का प्रतीक है। छोटी मछली को बचाने का वचन देकर, मनु, दरअसल, सभ्यता की संहिता अथवा 'धर्म' की स्थापना करते हैं, जिसके अंतर्गत कमजोर भी निडर होकर जी सकते हैं। मनु उस छोटी सी मछली को किसी बर्तन में रख लेते हैं। लेकिन कुछ दिनों के बाद मछली का आकार बढ़ जाता है और वह बर्तन उसके लिए छोटा पड़ने लगता है। इसलिए मनु उसे तालाब में छोड़ देते हैं। मछली कुछ समय बाद इतनी अधिक बड़ी हो जाती है कि उसके लिए तालाब भी छोटा पड़ता है। मनु उसे नदी में छोड़ देते हैं। समय बीतने के साथ नदी भी मछली के लिए छोटी पड़ने लगती है। उसके बाद मछली को समुद्र में छोड़ दिया जाता है। अंततः मछली इतनी बड़ी हो जाती है कि उसके लिए समुद्र भी छोटा पड़ने लगता है। यह देख कर बादल फटते हैं और ऐसी मूसलाधार बारिश होती है कि समूची पृथ्वी जलाप्लावित हो जाती है। मछली इस परिस्थिति को निस्पृह भाव से प्रलय अर्थात सृष्टि का अंत घोषित कर देती है। कथा के अंत में विराट मछली जो विष्णु का अवतार थी, नाव को धकेलती हुई मनु एवं उसके परिवार को जलप्लावन के बीच से सुरक्षित निकाल लाती है। कथा का आखिरी भाग नोआज आर्क नामक यूनानी कथा के समान ही है। इसके माध्यम से विष्णु को जगत का खेवनहार स्थापित किया गया है। आरंभिक भाग में सृष्टि के उत्पन्न एवं उसका अंत होने का वर्णन है। सृष्टि का आरंभ छोटी मछली को बड़ी मछली के आतंक से मुक्ति दिलाने के साथ होता है। लेकिन जब बड़ी मछली अपनी जलराशि से लगातार बड़ी होती जाती है तो सृष्टि समाप्त हो जाती है।

द्यूत प्रतियोगिता

पांडवों को कौरवों से हस्तिनापुरी आकर पांसों की बाजी खेलने अर्थात द्यूत प्रतियोगिता का निमंत्रण मिलता है। युधिष्ठिर ने निमंत्रण इस कारण से स्वीकार कर लिया कि उसे ठुकराना अशिष्टता मानी जाएगी, हालांकि स्वीकृति का असली कारण युधिष्ठिर का द्यूत प्रेमी होना था।

कृष्ण को कौरवों द्वारा निमंत्रण देने अथवा पांसों के खेल के लिए पांडवों के राजी हो जाने का भान ही नहीं हुआ। वह तो शाल्व एवं दंतवक्र के आक्रमण से द्वारका को मुक्त कराने के लिए डटे हुए थे। इन दोनों ने शिशुपाल एवं जरासंध की हत्या से क्षुब्ध होकर द्वारका पर आक्रमण किया था।

प्रतियोगिता के दिन द्रौपदी को माहवारी हो रही थी, इसलिए वो स्त्रियों के प्रासाद में कोने के कक्ष में परंपरानुसार अकेली आराम कर रही थी।

कृष्ण से बिना बात किए और अपने साथ द्रौपदी के चलने का इंतजार किए बिना ही पांडव द्यूतक्रीड़ा के आगार में घुस गए।
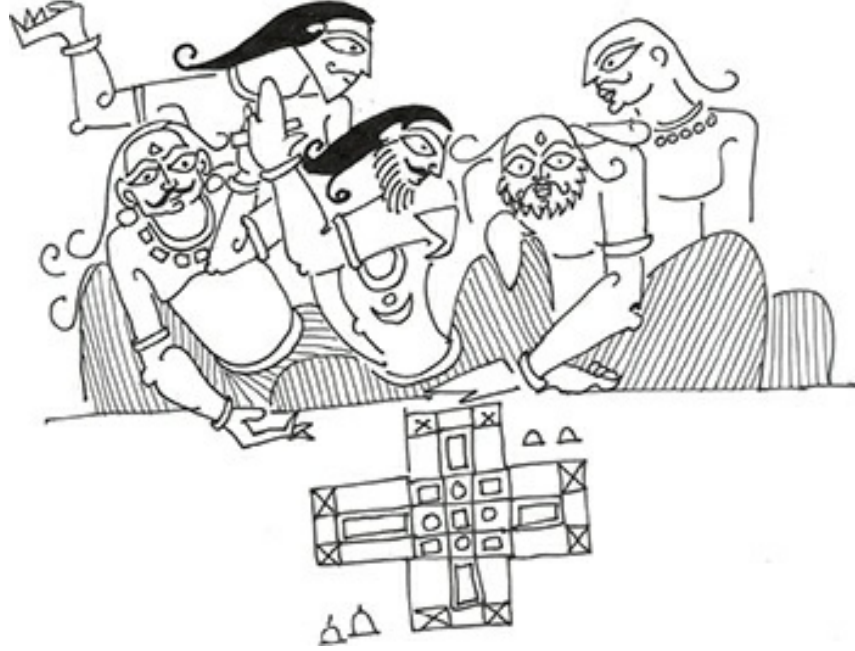
पांडवों की ओर से युधिष्ठिर एवं कौरवों के लिए शकुनि ने पांसे फेंकने शुरू किए। तब द्यूतक्रीड़ा चौपड़ पर खेली जाती थी, जिसमें पांसे फेंककर उनके अनुसार गोटियां आगे बढ़ाई जाती हैं। प्रतिद्वंद्वी की गोटियां मार कर जो प्रतियोगी पहले अपनी गोटियां पुगा लेता, वही बाजी का विजेता घोषित होता। इसमें भाग्य एवं कौशल दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। ये कौशल दरअसल प्रतिद्वंद्वी की गोटी मारने के हिसाब से पांसे फेंकने में निहित है। खेल को दिलचस्प बनाने के लिए हरेक दांव के पहले ही दांव पर लगाई जाने वाली वस्तु तय कर ली जाती थी।

आरंभ में दांव पर छोटी-छोटी वस्तुएं जैसे छतरी, गले का हार आदि ही लगाए गए। हर बार शकुनि ही पांसे फेंकता था तथा फेंकने से पहले ही बोलता था, 'लो यह बाजी भी मैंने ही जीती।' युधिष्ठिर एक के बाद बाजियां हारने लगे, हर हार के साथ अपना हारा हुआ माल वापस पाने के लिए उनकी अगला दांव लगाने की इच्छा बलवती हो जाती। इसलिए हरेक बाजी के साथ दांव का मूल्य बढ़ता चला गया। हरेक बाजी पर पांसे फेंकते समय शकुनि यही दोहराता, 'लो मैं जीत गया।'

युधिष्ठिर ने अपना स्वर्णजटित रथ दांव पर लगाया तब भी शकुनि ने यही कह कर, 'लो मैं जीत गया।' पांसे फेंके और बाजी उसकी हो गई।

युधिष्ठिर ने अपने राजकोष में जमा सभी जवाहरात दांव पर लगाए। शकुनि ने फिर पांसे अपनी हथेलियों के बीच घुमा कर कहा, 'लो मैं जीत गया।'

युधिष्ठिर ने अपनी सारी दासियों को दांव पर लगा दिया, शकुनि ने फिर अपनी हथेलियों के बीच पांसे घुमाए और कहा, 'लो मैं जीत गया।'

युधिष्ठिर ने अपने सारे दासों को दांव पर लगाया, शकुनि ने फिर अपनी हथेलियों के बीच पांसे घुमाए और कहा, 'लो मैं जीत गया।'

युधिष्ठिर अपने हाथी, फिर अपने घोड़े, फिर अपनी गाय, फिर अपनी भेड़-बकरियों को दांव पर लगाता चला गया। हर बार शकुनि ने अपने पांसे घुमाए और कहा, 'लो मैं जीत गया।'

एक के बाद एक दांव हारने पर पांडवों को संदेह हुआ कि पांसों में कुछ न कुछ हेराफरी है, लेकिन वे अपने संदेह को सच सिद्ध नहीं कर पाए।

दिन ज्यों-ज्यों बीतता गया, पांडव अपनी सारी संपत्ति हारते चले गए। अपना स्वर्ण और अनाज, अपने दुधारू पशु और जमीन, अपने शरीर पर पहने आभूषण एवं हीरे जवाहरात भी हार गए। पांडव भाइयों ने निवेदन किया 'रुक जाइए। पीछे हटना कोई शर्म की बात नहीं है। मथुरा को सत्रह बार आक्रमण से बचाने के बाद कृष्ण भी तो पीछे हट गए थे।' लेकिन युधिष्ठिर ने उनकी एक नहीं मानी और खेलते गए। उन्हें न जाने क्यों यह विश्वास था कि अगली ही बाजी में वे तब तक हारा हुआ अपना सारा माल जीत लेंगे। कौरव अपनी खीसें निपोरते हुए युधिष्ठिर को प्रोत्साहित करते चले गए।
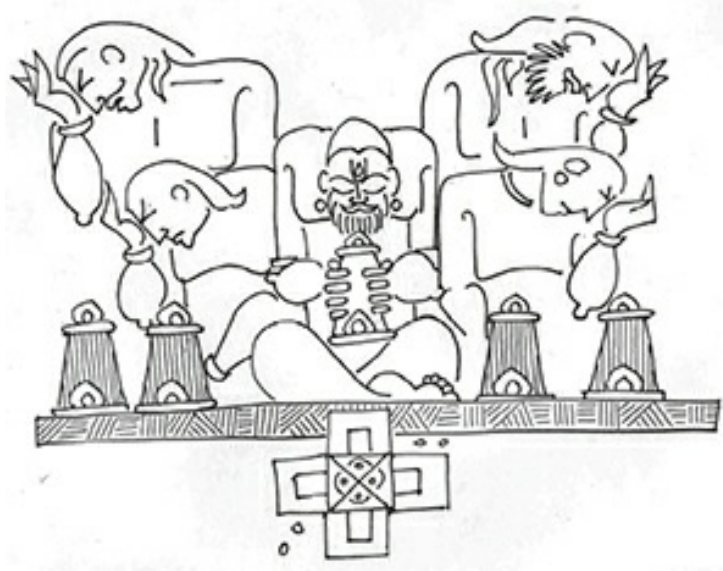
भीष्म, विदुर, द्रोण एवं कृपा चुपचाप मन मसोस कर यह सब देखते रहे। विदुर से रहा न गया तो बोले, 'क्या हमें इस पागलपन को रोकना नहीं चाहिए।' दृष्टिहीन धृतराष्ट्र ने इससे इन्कार कर दिया। वो बाजी दर बाजी जीतते अपने पुत्रों को तो रोक नहीं सकते थे और युधिष्ठिर को रोकना उनके लिए श्रेयस्कर नहीं था। इसका कारण यह था कि युधिष्ठिर अब स्वायत्त सम्राट थे और स्वयं निर्णय करने में सक्षम थे।

ग्यारहवीं बाजी में अपनी सारी संपत्ति गंवाने के बाद युधिष्ठिर ने असंभव कर दिखाया, अगली बाजी में उन्होंने, अपने भाइयों को ही दांव पर लगाना आरंभ कर दिया। पहले वह सुदर्शन नकुल को दांव में हार गए, उसके बाद विद्वान सहदेव, उसके बाद बलशाली भीम और अंततः अर्जुन को एक के बाद एक बाजी में हारते चले गए। फिर उन्होंने खुद को ही दांव पर लगाया और हर गए। उसके बावजूद युधिष्ठिर नहीं रुके।

उन्होंने अचानक कहा, 'मैं अब हमारी पत्नी को दांव पर लगाता हूं।' द्यूतागार में सबकी सांसें थम गईं। दुर्योधन मुस्कुराया और दांव को स्वीकार कर लिया। शकुनि ने सत्रहवीं बार पांसों को घुमाया और बोला, 'लो मैं जीत गया।'

- वैदिक काल में पांसों के माध्यम से द्यूत क्रीड़ा के निमंत्रण को कर्त्तव्य समान पवित्र कार्य माना जाता था। ठीक उसी प्रकार, जैसे कोई भी राजा मल्ल युद्ध अथवा युद्ध की ललकार की अनदेखी नहीं कर सकता था वैसे ही द्यूत क्रीड़ा का निमंत्रण भी ठुकराया नहीं जा सकता था। द्यूतक्रीड़ा के परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता था कि उसे खेलने वाला राजा कितना बुद्धिमान एवं भाग्यशाली था। कृष्ण बुद्धि तथा द्रौपदी सौभाग्य का प्रतीक है। लेकिन पांडवों के साथ तो द्यूतागार में प्रविष्ट होते समय दोनों में से कोई भी नहीं था।
- महाभारत में यह अकेला अवसर है कि पांडवों ने स्वयं निर्णय किया–बिना माता, बिना मित्र, बिना पत्नी से सलाह किए। और इसी में उनका बंटाधार हो गया।
- द्यूतक्रीड़ा में पांसे फेंकना भाग्य का प्रतीक है, जबकि चौपड़ पर गोटियों को चलना स्वेच्छा का प्रतीक है। इस प्रकार वैदिक द्यूतक्रीड़ा सिर्फ खेल नहीं बल्कि भाग्य एवं स्वेच्छा द्वारा नियंत्रित समूचे जीवन को प्रतिध्वनित करती है। यह प्रसवन शक्ति संबंधी संस्कारों में शामिल था। यह माना जाता है कि जीवन के खेल में भाग्य और मृत्यु के देवता यम पांसे फेंकते थे और जीवन एवं वासना के देवता, कामदेव के निर्देशानुसार मनुष्यों के पास गोटियां चलने की शक्ति थी।
- भारत सभी प्रकार के चौपड़ के खेलों की जन्म स्थली है: पूर्णतया भाग्य पर आश्रित जैसे सांप-सीढ़ी, भाग्य एवं कौशल के मिश्रण पर आधारित पांसों का खेल चौसर तथा सरासर कौशल पर आधारित शतरंज का खेल।
- हिंदू लोग जीवन को मानव प्रतिपादित नियमों पर आधारित खेल अथवा लीला मानते हैं। इन नियमों से ही विजेता एवं पराजित तय होते हैं। जीत कर हम प्रसन्न होते हैं एवं पराजित होने का दुख मनाते हैं। पांसों के खेल को अपनी गाथा का अपरिहार्य अंश बनाकर व्यास हमें यह आभास कराते हैं कि अंततः समूचा जीवन प्रतियोगिता ही है।
- यहां इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि युधिष्ठिर सबसे पहले दांव पर अपने सौतले भाइयों, नकुल एवं सहदेव को लगाते हैं। उन्हें हारने के बाद ही वे, अपने सगे भाइयों को दांव पर लगाते हैं। क्या उन्होंने अपने दो प्रकार के भाइयों के बीच भेदभाव किया था? इस तथ्य पर अफसोस ही किया जा सकता है।

द्रौपदी का चीरहरण

द्वारपाल प्रतिकामी ने द्रौपदी को बताया कि उनके पति उन्हें पांसों के खेल में हार चुके हैं और उनके नए मालिक अब कौरव हैं जिन्होंने उन्हें द्यूतागार में बुलाया है। 'मेरे जुआरी पति से पूछो कि पहले उसने स्वयं को दांव पर लगाया था अथवा मुझे?

क्योंकि यदि उन्होंने पहले अपने को दांव पर लगाया और खुद को हार भी गए तो फिर मेरे पर उनका कोई अधिकार कैसे बचा?'

द्रौपदी के प्रश्न पर दुर्योधन उत्तेजित हो उठा, उसे लगा कि द्रौपदी सहित किसी भी स्त्री के प्रति जवाबदेह होना उसका अपमान है।

उन्होंने, द्वारपाल को उसे बुलाने के लिए दोबारा भेजा। इस बार द्रौपदी ने कहा, 'जाकर बुजुर्गों से पूछो कि क्या पांसों के खेल में किसी स्त्री को, वह भी राजघराने की पुत्र वधू को, दांव पर लगाकर उसे हार जाना क्या नैतिक रूप में उपयुक्त है।'

द्रौपदी के प्रश्नों ने दुर्योधन को क्रोध में आपे से बाहर कर दिया, उसने कहा, 'वो फालतू बोलती है।' दुःशासन की ओर गर्दन घुमाकर उसने कहा, 'जाओ और उसे लेकर आओ, जरूरत पड़े तो जबरदस्ती लाओ।'

पूर्ण आज्ञाकारी दुःशासन दनदनाता हुआ स्त्रियों के प्रासाद में जा घुसा जहां द्रौपदी माहवारी के कारण एकांत में खून से सना एक ही वस्त्र पहने और बाल खोले बैठी थी। उसकी हिमाकत देख कर द्रौपदी भौंचक्की रह गई लेकिन उसके द्वारा विरोध जताने से पहले ही दुःशासन ने उसके खुले बाल अपनी मुठ्ठी में दबोचे और उसे घसीटते हुए बरामदे से होकर द्यूतागार की ओर ले जाने लगा। द्रौपदी ने पांव पटके और खंभों को पकड़ने की कोशिश की लेकिन दुःशासन के उद्दाम जोर के आगे उसकी एक नहीं चली। वो रोई-चीखी मगर प्रासाद के बरामदे में खड़ी औरतें भयभीत

होकर पीछे हट गई। द्यूतागार में सबने ऐसा दृश्य देखा जो अकल्पनीय था। लगभग अर्धनग्न, खुले बाल लिए द्रौपदी को फर्श पर दुर्योधन के कदमों में धकेल दिया गया। वहां बैठे योद्धाओं में से एक भी द्रौपदी को संभालने के लिए आगे नहीं आया। ज्येष्ठ सदस्यों को तो जैसे काठ मार गया था और पांडवों ने शर्म के मारे अपनी आंखें नीची कर लीं। द्रौपदी ने चीत्कार किया, 'लाज की खातिर रुक जाओ! मैं पांचाल नरेश की पुत्री, तुम्हारी भाभी, राजा की पुत्रवधू हूं।' लेकिन किसी ने मुंह नहीं खोला।

दुर्योधन, जो द्रौपदी के घमंड से नफरत करता था, बोला 'तेरे सब पति बेकार हैं। वो, तेरी रक्षा नहीं कर सकते। वो अपना साम्राज्य भी दांव पर लगाकर हार चुके हैं। वे अपने अस्त्र-शस्त्र, अपने-आपको और तुझे भी हार चुके हैं। इसलिए मेरे पास आ, मेरी जंघा पर बैठ, मैं तेरा ख्याल रखूंगा।' इसके बाद उसने अपनी बाईं जांघ उघाड़ कर द्रौपदी का कामुक नजरों से मखौल उड़ाया। दुर्योधन की इस अश्लील हरकत से द्रौपदी को वितृष्णा हो गई, और वहां उपस्थित क्षत्रियों के मौन से वो दहल गई। सभी टकटकी लगाए चुपचाप बैठे थे।

उसने कातर होकर पूछा, 'किसी स्त्री से ऐसा बरताव क्या धर्म है।'

कौरवों में कनिष्ठ विकर्ण ने कहा, 'युधिष्ठिर पहले ही स्वयं को दांव पर लगाकर हार चुके थे। इसलिए उनका किसी पर कोई भी अधिकार नहीं बचा था और वे द्रौपदी को भी दांव पर नहीं लगा सकते थे।'

कर्ण ने इस पर प्रतिवाद किया, 'छोटे राजकुमार, तुम किस के साथ हो? तुम्हारे भाइयों ने कोई भी कानून नहीं तोड़ा। जब कोई व्यक्ति स्वयं को द्यूतक्रीड़ा में हार जाता है तो उसका मालिक ही उसकी पत्नी सहित सारी चीजों का मालिक हो जाता है, इसका प्रकार अपने पतियों के गुलाम बनते ही द्रौपदी भी कौरवों की दासी बन गई। इसके बावजूद उस पर तरस खाकर द्रौपदी पर

अलग से दांव लगाने दिया गया, हालांकि इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। अपनी अपरिपक्वता में तुमने अपने निर्णय पर भावनाओं को हावी होने दिया।' फिर वो द्रौपदी की ओर देखते हुए बोला, 'प्राचीन नियमों के अनुसार कोई भी स्त्री अपने पति की आज्ञा पाकर चार पुरुषों से संसर्ग कर सकती है, लेकिन तुम्हारे तो पांच पति हैं। इसका अर्थ है कि वेश्या हो, सार्वजनिक भोग्या, अपने मालिक की मर्जी तुम्हें माननी पड़ेगी।' उल्लेखनीय है कि कर्ण को द्रौपदी ने अपने स्वयंवर में भाग लेने के अयोग्य घोषित कर दिया था।

दुर्योधन ने दर्प से अट्टहास लगा कर कहा, 'हम, तुम्हारे साथ मनमानी कर सकते हैं। मेरा आदेश है कि मेरे सभी छह दासों के वस्त्र उतार लिए जाएं। पांडवों ने सिर झुका कर उसकी आज्ञा का पालन किया। अपने शरीर के ऊपरी व निचले हिस्से से वस्त्र उतारने लगे। द्रौपदी उनके दुर्भाग्य पर बिलख उठी। दुर्योधन ने द्रौपदी की ओर इशारा करके कहा, 'इसके भी उतारो। दुःशासन इसको भी वस्त्रहीन कर दो। संसार को हमारी नई दासी का अप्रतिम सौंदर्य देखने दो।'

दुर्योधन के निर्देशों से सभी अवाक रह गए। कोई भी उठकर कुछ नहीं बोलाः पांडवों की तो कुछ बोलने अथवा विरोध करने की हैसियत ही नहीं थी और ज्येष्ठजनों को लगा कि दुर्योधन धर्मानुसार आचरण कर रहा था। धृतराष्ट्र ने राजा होने के बावजूद कुछ इसलिए नहीं कहा कि वो अपने पुत्रों से अत्यंत प्रेम करता था और उनमें कोई दोष ही उसे महसूस नहीं होता था। भीष्म, द्रोण एवं कृपा अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने में लगे थे। किसी नियम का उल्लंघन ही नहीं हुआ था तो उन्हें विरोध करने का कोई कारण नहीं सूझा।

द्रौपदी ये समझ गई कि वो निपट अकेली एवं असहाय थी। दुःशासन ने जैसे ही उसका चीर

पकड़ कर खींचना शुरू किया, उसने अपने दोनों हाथ स्वर्ग की ओर ऊपर उठाकर याचना की, 'मेरी रक्षा करो, प्रभु, अब बस आप ही मेरे तारणहार हो।'

उसका क्रंदन वैकुंठ तक पहुंचा। द्यूतागार के खंभे भी रोने लगे। आकाश पर अंधेरा छा गया। शर्म के मारे सूर्य भी छिप गया। तभी, कुछ हुआ–कुछ सचमुच चमत्कार। दुःशासन जैसे-जैसे द्रौपदी का चीरहरण करता गया वैसे-वैसे उसका चीर बढ़ कर उसके शरीर को ढंकता गया। द्रौपदी के शरीर से खिंचे चीर का ढेर जमीन से ऊंचा उठता गया मगर दुःशासन उसे निर्वस्त्र नहीं कर पाया। उसकी अस्मिता बरकरार रही। ये तो अविश्वसनीय था। निस्संदेह यह चमत्कार था, तर्क, अंतरिक्ष एवं काल की अवहेलना करता ईश्वरीय कृत्य। ईश्वर, द्रौपदी के साथ एवं कौरवों के विरुद्ध थे। मनुष्य से निराश होकर भगवान स्वयं उठ खड़े हुए।

- विवस्त्र रूप में भगवती का अवतार काली कहलाता है। रक्त पिपासु एवं उत्कट, किसी बेतरतीब जंगल के समान। वस्त्रों से शृंगारित भगवती का रूप गौरी कहलाता है। व्यवस्थित फलोउद्यान अथवा खेत के समान कोमल। द्रौपदी को विवस्त्र करने का प्रयास महज किसी स्त्री का चीरहरण नहीं था, यह तो समूची सभ्यता का तिरोहित हो जाना, खेतों से जंगली युग में वापसी, गौरी से काली की ओर पलायन है, जब धर्म को छोड़ कर मत्स्य न्याय का बोलबाला हो ताकि कमजोर पर शक्तिशाली हावी हो सके।
- अपने-आपको दांव में हारने के बाद क्या कोई व्यक्ति अपनी पत्नी पर दांव लगा सकता है जैसे बाल की खाल निकालने वाले तर्क दरअसल इस मूल मुद्दे से ध्यान भटकाने वाले हैं कि किसी स्त्री को चल संपत्ति की तरह दांव पर लगा दिया गया और आप हैं कि उसके पीछे कानूनी नुक्ता ढूंढ़ रहे हैं। यही हालात की त्रासदी है।
  किसी लोक कथा के वृत्तांत के अनुसार कृष्ण कभी पांडव भाइयों के साथ किसी नदी में नहा रहे थे तभी उनका अधोवस्त्र तेज बहाव के साथ निकल कर पानी में बह गया। द्रौपदी ने उनकी लाज बचाने के लिए अपने शरीर से वस्त्र उतार कर उन्हें ढंकने को दे दिया। कृष्ण ने उस उपकार का ऋण कौरवों द्वारा द्रौपदी के चीरहरण के दौरान उसकी सहायता करके उतारा।

अंतिम बाजी

द्रौपदी ने क्रोध से लाल-पीली होते हुए कहा, 'कौरवों को अपने अपमान के लिए मैं कभी भी क्षमा नहीं करूंगी। मैं जब तक अपने बालों को दुःशासन के खून से धो नहीं लेती, तब तक इन्हें बांधूंगी भी नहीं।'

भीम अब और चुप रह कर बरदाश्त नहीं कर पाया, 'और मैं एक-एक कौरव को मारूंगा, दुःशासन का खून पियूंगा तथा दुर्योधन की जंघा को तोड़ूंगा, जिसके माध्यम से उसने मेरी पत्नी का अपमान किया।' उसकी आवाज की गरज से आगार में रखे पांसे कांपने लगे और चौपड़ में से आग की लपटें लपलपाने लगीं।

आगार के बाहर कुत्ते रोने लगे, गधे रेंकने लगे। बिल्लियां पिपियाने लगीं। यह सुनकर धृतराष्ट्र मन ही मन भयभीत हो गए। विदुर ने अपने भाई से कहा, 'भगवान तुमसे और तुम्हारे पुत्रों से क्रोधित हैं। परिस्थिति को और अधिक बिगड़ने से बचाने के लिए इस पागलपन को रोको।'

दृष्टिहीन राजा चिल्लाए, 'रुक जाओ, द्रौपदी, अपनी जीभ पर आए हुए शाप को रोक लो।' उसके बाद वो कांपते कदमों से द्रौपदी की ओर आए और बोले, 'मुझ पर लानत है कि मैंने परिस्थिति को इतना अधिक बिगड़ने दिया। मुझ पर लानत है कि मैंने ये घृणित खेल जारी रहने

दिया। मुझ पर लानत है कि मैंने इसका आनंद उठाया। मैं बूढ़ा और दृष्टिहीन तथा बेवकूफ हूं। मेरी खातिर उन्हें क्षमा कर दो। मैं तुम्हें तीन वरदान देता हूं। उन्हें मांग कर यहां से शांतिपूर्वक चली जाओ।'

द्रौपदी, सिसकना बंद करके बोली, 'पहले वरदान के अंतर्गत मुझे अपने पतियों की मुक्ति चाहिए और दूसरे में मैं चाहती हूं कि उनकी सभी वस्तुएं उन्हें वापस दे दी जाएं।'

'और तीसरा वरदान? कुछ अपने लिए भी मांगो?'

द्रौपदी ने कहा, 'कुछ भी नहीं। क्षत्रिय की पत्नी के लिए लालच करना शोभनीय नहीं है।'

पांडव जैसे ही मुक्त हुए और अपने शस्त्र बटोर कर अपनी पत्नी के साथ वहां से जाने लगे, कर्ण तिरस्कारपूर्वक हंसा और चिल्लाया, 'डूबते हुए पांडवों ने द्रौपदी रूपी तिनके का सहारा लेकर जान बचाई है। उन्हें लाज नहीं आती? स्त्री की आड़ में बच रहे हैं? प्रतियोगिता में हारी जा चुकी वस्तुओं को वापस अर्जित करने के बजाय दान में पाकर जा रहे हैं।'

फिर कौरव चीख उठे, 'युधिष्ठिर, लौट कर आ जाओ और एक अंतिम बाजी लगा लो। एक बाजी, बस एक बाजी और तुम जो कुछ भी हारे हो, उसे फिर से जीतकर ले जाओ, विशेषकर अपनी इज्जत।'

युधिष्ठिर ने अपने भाइयों की अनिच्छा के बावजूद खेलने की इच्छा से पूछा, 'और यदि मैं हार गया तो?' 'बारह वर्ष का वनवास, जो कुछ तुम्हारे तन व हाथ में है, उसी के साथ, उस अवधि में इंद्रप्रस्थ पर भी तुम्हारा कोई अधिकार नहीं होगा, ऊपर से तेरहवां वर्ष अज्ञातवास में बिताना होगा। यदि अज्ञातवास में तुम लोग पहचान लिए गए तो तुम्हें दोबारा बारह वर्ष वनवास में ही बिताने होंगे।'

युधिष्ठिर ने प्रतियोगिता की शर्त मान कर द्यूत पीठ की ओर कदम बढ़ाए। उनके भाइयों ने विरोध किया, उनकी पत्नी ने उनसे रुकने की गुहार लगाई। लेकिन युधिष्ठिर ने अनुरोध ठुकरा दिया, 'मैं ये अंतिम बाजी अवश्य जीतूंगा।'

पांसे दोबारा हथेलियों के बीच घुमाए गए। और शकुनि फिर से बोला, 'लो, मैं जीत गया।'

पांडवों के लिए अब अपनी नगरी छोड़कर तेरह साल की लंबी अवधि के लिए वन गमन अपरिहार्य हो गया। बिना कुछ भी बोले, युधिष्ठिर ने राजा को शीश नवाया और राज परिवार के सभी सदस्यों से विदा लेकर अपनी पत्नी तथा भाइयों के साथ वहां से बाहर निकल गए। उनके पास बस उनके तन पर पहने कपड़े तथा अस्त्र-शस्त्र ही थे।

धृतराष्ट्र को उनके रथचालक, संजय ने बताया कि राज प्रसाद से निकलते समय युधिष्ठिर ने अपनी आंखें कपड़े से ढंक लीं ताकि उनकी क्रोध से जलती आंखों के दृष्टिपात से हस्तिनापुरी जलकर भस्म न हो जाए। भीम ने अपने बाजू फड़काए जो हरेक कौरव की हड्डियां तोड़ने के लिए मचल रहे थे, अर्जुन ने मुट्ठी भर रेत उठाई और उसकी लकीर बनाता हुआ निकल गया जो इस बात का प्रतीक थी कि अपने परिवार से दगा करने वालों पर लाखों बाणों की वर्षा होगी, नकुल ने अपने शरीर पर मिट्टी पोत ली ताकि कोई भी सुंदरी उसके पीछे-पीछे जंगल में न चली आए, सहदेव ने शर्म से आहत होकर अपने मुंह पर कालिख पोत ली, और द्रौपदी ने अपने खुले बालों को मुंह पर लहराने देकर ऐसा विकराल रूप बनाया जिससे उस नगरी की स्त्रियां अपने भविष्य की आशंका से कांप उठें।

उनके वहां से निकलते समय कुंती भी दौड़ कर अपने पुत्रों के पीछे हो लीं। विदुर उनके पीछे दौड़े। युधिष्ठिर रुक कर अपनी मां के गले लगे लेकिन साथ ही उनसे वहीं रुक जाने का अनुरोध किया, 'मेरे प्रति दुर्योधन के मनोभाव कैसे भी हों, मगर वो आपसे दुर्व्यवहार नहीं करेगा। आप यहीं मेरे ताऊ-चाचा एवं उनकी पत्नियों तथा अपने भतीजों के साथ रुक जाइए। यहीं हमारी प्रतीक्षा कीजिए, हम वनवास से लौटकर आएंगे।'

कुंती ने छाती पर पत्थर रख कर अपने पुत्रों को विदा किया। अपनी पुत्रवधू को डबडबाई आंखों से विदा करते हुए रूंधे गले से बोलीं, 'मेरे पुत्रों का ध्यान रखना। सहदेव का विशेष ख्याल रखना, वो संवेदनशील है तथा अपने पर आई विपदा को शायद आसानी से बरदाश्त न कर पाए।'

कुंती और विदुर ने फिर अपने उन छह बच्चों को नगर द्वार से बाहर निकल कर दक्षिणी छोर की ओर जाते देखा। नगर के अनेक नागरिक उनके पीछे-पीछे गए। उन्होंने पांडवों को गंगा नदी

में स्नान करते देखा और उसके पास खड़े होकर उन्हें पार जाते देखा। उसके आगे ही वन था। आने वाले लंबे समय तक वहीं अब उनका बसेरा होना था।

- धृतराष्ट्र ने अंततः मध्यस्थता क्यों की? क्या उन्हें सब कुछ होने के बाद सद्बुद्धि आ गई थी? क्या उनका मन अंततः चारों ओर से अपशकुन होने के आभास से अपने पुत्रों की उनके दुष्कर्मों से रक्षा करने के लिए व्याकुल हो गया था? अथवा ऐसा गांधारी एवं कौरवों की पत्नियों सहित राजपरिवार की पत्नियों द्वारा घोर विरोध के कारण हुआ था। व्यास ने ये प्रश्न स्पष्ट न करते हुए पाठकों के अनुमान के लिए यूं ही छोड़ दिया। राज परिवार की स्त्रियों द्वारा विरोध का प्रसंग कुछ लोक कथाओं में वर्णित है।
- द्रौपदी की दक्षिण भारत में विकराल कुआंरी देवी के रूप में पूजा होती है, जिसे उसके पांच पतियों ने अपमानित कराया। अठारह दिन तक चलने वाले उत्सवों में महाभारत के समूचे प्रकरण का मंचन किया जाता है जिसके अंत में युवक आग पर चल कर देवी से हुए अन्याय का सामूहिक प्रायश्चित करते हैं। बंगलूर में खड्ग उत्सव के दौरान किसी पुरुष को स्त्री रूप में अलंकृत करके नगर में घुमाया जाता है जिसकी रक्षा के लिए खड्ग अर्थात तलवार लिए वीर युवक उसे घेरे रहते हैं जिन्हें वीर कुमार ही पुकारा जाता है। स्त्री वेशधारी युवक को युधिष्ठिर का प्रतीक माना जाता है, जो पांडवों में ज्येष्ठ था। इस प्रथा का अर्थ यह लगाया जाता है कि युधिष्ठिर इसके माध्यम से अपमानित होकर प्रायश्चित करता है। इसके लिए वह नगर यात्रा के दौरान अपनी देवीस्वरूपा पत्नी से सार्वजनिक क्षमा याचना तथा अपनी प्रजा पर कृपा करने का आग्रह करता है।
- पांडवों के वनगमन के दौरान ऐसी मान्यता है कि चंद्र ग्रहण भी हुआ था। विदुर ने इसका वर्णन सभा पर्व में किया है।
- भील भारत भी महाभारत का ही संस्करण है। यह गुजरात राज्य के उत्तरी क्षेत्र स्थित डूंगरी भील समुदाय में प्रचलित है। वे स्वयं को राजपूतों का वंशज मानते हैं। भील भारत में पांडवों से उनके विशिष्ट शक्तिशाली यज्ञ से पूर्व, ‘स्त्री द्वारा बेचे गए पुरुष’ को ढूंढ़ कर लाने का दायित्व भीम उठाता है। पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा लेने के बावजूद उसे कोई भी ऐसा पुरुष नहीं मिलता। वो जितने भी पुरुषों से मिला, सभी की स्त्रियों ने उसे बताया कि वो तो उसका पति है। वो स्त्रियां भीम को बताती हैं कि पति तो मणि के समान है जो स्त्री का श्रृंगार एवं शोभा है। इसलिए दुधारू पशु के समान उसकी खरीद-फरोख्त नहीं की जा सकती। अंततः भीम को तवायफ के पास जाना पड़ता है, जिसके अनेक ग्राहक हैं। वे सब उसके पीछे लगे रहते हैं, मगर वो किसी की परवाह नहीं करती। वो पांडवों का यज्ञ संपन्न कराने के लिए स्वेच्छा से कोई पुरुष, भीम को बेच देती है। डॉ. भगवानदास पटेल द्वारा संकलित ये प्रसंग द्रौपदी को द्यूतक्रीड़ा में उन पांडवों द्वारा दांव पर लगाने, जिन पर उसकी रक्षा का भार था, की प्रतिक्रिया संबंधी लोक कथा में वर्णित किया गया प्रतीत होता है। उन्होंने द्रौपदी को अपनी पत्नी नहीं बल्कि चल संपत्ति की तरह दांव पर लगा दिया था।

ग्यारहवां अध्याय

निर्वासन

'जनमेजय, कभी समृद्ध रहे तुम्हारे पूर्वजों को वन में गरीबी में जीवनयापन करते हुए बार-बार अपमानित एवं पराजित होना पड़ा।'

कृष्ण की पांडवों से मुलाकात

हस्तिनापुरी में चल रही द्यूत प्रतियोगिता और पांडवों द्वारा उसमें अपना सर्वस्व गंवाने से अनभिज्ञ कृष्ण अपनी दूरदराज बसी द्वारका नगरी की रक्षा करने में व्यस्त थे। द्वारका पर शिशुपाल के सहयोगियों शाल्व एवं दंतवक्र ने आक्रमण कर दिया था। उन्हें धता बताने के बाद कृष्ण हस्तिनापुरी के लिए रवाना हुए। लेकिन उनके, वहां पहुंचने से पहले ही प्रतियोगिता समाप्त हो चुकी थी जिसमें पांडव अपना सर्वस्व हार गए थे।

कृष्ण को उनके फुफेरे भाई और उनकी रानी नगरी से दूर काम्यक वन में कंदराओं के जमघट के पास मिले। वहां ऋषिगण अवसादग्रस्त पांडव को समझाने-बुझाने के प्रयास में लगे हुए थे। कुछ दिन पहले तक अनाज और स्वर्ण के ढेरों तथा गायों और घोड़ों के झुंडों से घिरे राजसी ठाठ-बाट भोग रहे पांडवों के हाथ अब एकदम खाली थे।

कृष्ण को अपनी ओर आते हुए सबसे पहले द्रौपदी ने देखा। आसपास बैठे लोगों की उपस्थिति से बेखबर द्रौपदी उन्हें देखते ही दौड़कर उनसे लिपट गई और उसके भीतर अब तक रुके आंसुओं का सैलाब बह निकला। पांडव भी उसके पीछे-पीछे दौड़कर कृष्ण के गले लग गए। कृष्ण को देखकर उन्हें ऐसा लगा कि उनके साथ हुआ समूचा अन्याय शायद किसी न किसी तरह अब दूर हो जाएगा।

भीम ने उद्धत हो कर कहा, 'हमारे हथियार अब भी हमारे पास हैं। आओ फौरन हस्तिनापुरी चलें और कौरवों का विनाश कर दें।'

कृष्ण ने पूछा, 'तुमने प्रतियोगिता हार जाने पर तेरह साल वनवास झेलने की शर्त क्या नहीं मानी थी?'

युधिष्ठिर ने कहा, 'हां, मानी थी।'

'तो फिर अपना वचन निभाओ।'

अर्जुन चिल्लाया, 'उन्होंने, हमें जाल में फंसाया है। शकुनि ने पांसों में हेराफेरी की। वनवास भले हो न हो, दुर्योधन अब इंद्रप्रस्थ को कभी भी अपने हाथ से निकलने नहीं देगा।'

स्थितप्रज्ञ कृष्ण ने भाइयों के भीतर उबलते क्रोध को महसूस करते हुए कहा, 'वो सब हिसाब-किताब अब तेरह वर्ष बाद होगा।'

भीम ने तर्क दिया, 'पांसों का खेल तो युधिष्ठिर ने खेला था। हमने नहीं, हम बाकी लोगों को तो लड़कर अपना राजपाट वापस पा लेने दो।'

कृष्ण ने भीम की ओर कड़ाई से देखा, 'ऐसी हालत के लिए अकेले उसे दोष मत दो। तुमने, उसे अपनी ओर से भी खेलने दिया। इस हालत के तुम भी उसके बराबर ही दोषी हो। तुममें से किसी को भी द्यूतक्रीड़ा में शामिल होने का निमंत्रण स्वीकारने को किसी ने मजबूर नहीं किया

था। किसी ने भी अपनी पत्नी को ही दांव पर लगा देने का दबाव नहीं डाला था। तुमने, अपनी शान की खातिर खेल को अधूरा नहीं छोड़ा। तुम बिना कुछ सोचे-समझे दांव लगाते चले गए। तुम पांचों ही हारे हो। तुम पांचों ही भाइयों को अपना वचन निभाना होगा और वनवास का दुःख चुपचाप भोगना पड़ेगा। अपने वचन का पालन करना ही धर्म है।'

कृष्ण को ऐसा कहते देख द्रौपदी की सिसकियां बेकाबू हो गईं। उसके खुले केश किसी निर्द्वंद्व परदे की तरह हिलते और प्रतिशोध का एलान करते उसकी एड़ियों तक लहरा रहे थे। उसने कहा, 'निस्संदेह मैं तो अपने साथ हुए दुराचार के लिए जिम्मेदार नहीं हूं।'

कृष्ण ने द्रौपदी की ओर अत्यंत संवेदनापूर्वक देखा, 'ईश्वर तुमसे घृणा नहीं करते द्रौपदी, लेकिन कर्ण को जातीय आधार पर ठुकराने की जिम्मेदार तो तुम्हीं हो। वो तो महान क्षत्रिय है और वो द्यूतक्रीड़ा में तुम्हें कभी भी दांव पर नहीं लगाता। लेकिन तुमने उसके बजाए ब्राह्मण का वरण किया जो अंततः राजकुमार निकला, जिसने तुम्हें अपने भाइयों के साथ साझा किया, लेकिन वो तुम्हारी रक्षा नहीं कर पाया, इसलिए तुम्हारी यह गत बनी है–निस्सहाय, अपमानित एवं निपट अकेली, ऐसी परिस्थिति में फंस गई, जिसके निर्माण में तुम अनभिज्ञता में सहायक बनीं। इसका दायित्व अपने ऊपर लो।'

कृष्ण द्वारा कटु सत्य कहने पर द्रौपदी एकदम पस्त हो गई। कृष्ण भी उससे लिपट गए, और उसके साथ रोए, उस की दुर्दशा पर भी रोए। उन्होंने फिर उसे ढाढ़स बंधाया, 'तुम्हारे से दुराचार करने वालों के पास, द्रौपदी, ऐसे दुर्व्यवहार से बाज आने का भी विकल्प था। तुम्हारे आसपास बैठे लोग चाहते तो तुम्हारी सहायता भी कर सकते थे, लेकिन उन्होंने, तुमसे दुराचार किया, ज्येष्ठजन इसका विरोध कर सकते थे, लेकिन वे न्याय शास्त्र में उलझ कर ख़ामोश रहे। इसका खामियाजा उनमें से हरेक भुगतेगा, फिर वो चाहे अपराधी हों अथवा अपराध के मूक दर्शक। जैसे आज तुम रो रही हो वैसे ही उनकी विधवा रोएंगी। इस ओर से निश्चिंत रहो।'

अपने बच्चों के प्रति द्रौपदी की चिंता को भांपते हुए, कृष्ण ने कहा, 'उनकी चिंता मत करो, उन्हें अर्थात सुभद्रा एवं सुभद्रा के पुत्र को मैं द्वारका में शरण दूंगा। वहां उनका लालन-पालन, मेरी

पत्नियों द्वारा मेरे अपने पुत्रों की परवरिश के समान ही होगा।'

- दोनों ही भारतीय महागाथाओं महाभारत एवं रामायण में वन का दो रूपों में उल्लेख है: भौतिक वास्तविकता तथा मस्तिष्क के अज्ञात, अदम्य मर्म के लिए अलंकार के रूप में भी। इन दोनों ही धरातलों की खोज का साहस सबसे पहले ऋषियों ने जुटाया। उन्होंने ही गुफाओं एवं जल स्रोतों को जोड़ने वाली पगडंडियां बनाई, जिनमें यायावर शरण पाते हैं। उन्हें वन्य पशुओं तथा असुरों से बचाने के लिए क्षत्रिय उनके साथ जाते थे अथवा उनके पीछे जाते थे। इस प्रकार वैदिक प्रणाली, जगत के अबूझ धरातलों तक पहुंची, वनों को भी अधिकृत करके मानव जाति के लिए सुरक्षित बनाया गया, जिनमें निर्बलतम प्राणी भी चैन से जी सकें। राजनीतिक संदर्भ में इस को कथित आर्यों की चढ़ाई के रूप में भी देखा जाता है कि वेद के अनुयायियों ने इसी प्रकार भारत में अपना सिक्का जमाया। तत्वज्ञान की दृष्टि से इसे मस्तिष्क को धीरे-धीरे शांत करके सांसारिक प्रयोजनों में प्रवृत्त करने की कवायद के रूप में भी देखा जा सकता है।
- रामायण के समान ही महाभारत में भी वनवास का आरंभ त्रासदी के रूप में तथा अंत अनेक नए अनुभव एवं ज्ञान बटोरने के रूप में होता है। इन अनुभवों के सहारे पांडव बेहतर मनुष्य और उसकी बदौलत अधिक संजीदा राजा सिद्ध होते हैं।
- पांडवों का तो जन्म भी वन में ही हुआ था। लाक्षागृह के भस्म होने के बाद भी उन्होंने जंगल में ही शरण ली थी। द्यूतक्रीड़ा में हारने के बाद वे दोबारा वनवास करते हैं। इनके उलट कौरवों का समूचा जीवन राजप्रासाद में कटता है। इससे कौरवों के सौभाग्यशाली तथा पांडवों के भाग्यहीन होने का पता चलता है। पांडवों को समृद्ध बनने के लिए अपनी मेधा, शक्ति तथा एकता पर निर्भर रहना पड़ता है।

द्रौपदी का पात्र

पांडवों के राजर्षि धौम्य भी उनके पीछे-पीछे वन में ही आ गए थे। हस्तिनापुरी के अनेक ब्राह्मण भी कौरवों के दुर्व्यवहार से तंग आकर धौम्य के साथ वनगमन कर गए थे। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, 'आपका साम्राज्य भले ही छिन गया हो, मगर आप, आज भी हमारे राजा हैं।' हमेशा की तरह हमें, आपके लिए यज्ञ करने दीजिए, हमें देवों का आह्वान करके आपका दुर्भाग्य दूर करने दीजिए।'

ब्राहमणों को अपने पति के चारों और बैठा देखकर द्रौपदी को निराशा होने लगी। वो रोने लगी, 'इंद्रप्रस्थ में जब वे मेरे घर पर आते थे, तो कभी भी भोजन किए बिना नहीं गए थे। यहां मेरे पास, उनकी आवभगत के लिए कुछ भी नहीं है। आह, कैसी शर्मनाक स्थिति है।'

कृष्ण की नजर अचानक पांडवों को घेरकर बैठे ब्राहमणों पर पड़ी। वे, यह ताड़ गए कि उनमें से अनेक दुर्योधन के इशारे पर वहां आए हुए थे। कृष्ण ने दिव्य दृष्टि से देखा कि वहां वे सिर्फ इसलिए आए हैं कि पांडवों को यह अहसास करवा के नीचा दिखा सकें कि वे अतिथियों की आवभगत भी नहीं कर सकते। ऐसा करके वे कौरवों की कृपा पाना चाहते थे। और पांडवों को तो चिंता निस्संदेह घेरे हुए थी। पांचों भाई बेर और फल इकट्ठा करने के लिए जंगल की खाक छानते रहते थे, लेकिन उनके हाथ कभी भी भरपूर मात्रा में सबके लायक खाद्य सामग्री नहीं लगती थी।

तभी कृष्ण ने द्रौपदी से पूछा, 'मैं इतनी दूर से तुमसे मिलने आता हूं। तुम क्या खाना भी नहीं खिलाओगी? तुम्हारी मेजबानी तो मशहूर थी, उसे अब क्या हो गया?' द्रौपदी को लगा कि कृष्ण उसके दुर्भाग्य पर हंस रहे थे। उसके गालों पर आंसू बह निकले। कृष्ण ने उसकी ठुड्डी पकड़ कर उसका सिर उठाया और स्नेहसिक्त मुस्कान बिखेरते हुए उसकी आंखों में झांक कर बोले, 'कुछ न कुछ तो पक्का होगा?'

द्रौपदी ने अपने आंसू पोंछे। उसे, ये समझ में आ गया कि उसके मित्र के मन में कोई योजना है। वो सोचने लगी। उसने कहा, 'आधा बेर। मेरे पास बस वही है। आप जब आए तब मैं उसे ही खा रही थी।'

कृष्ण बोले, 'उसी से काम बन जाएगा।' द्रौपदी के चेहरे पर आशा की चमक आ गई। उसने अपने वस्त्र में लगी गांठ को खोलकर उसमें बंधा बेर कृष्ण को सौंप दिया। कृष्ण ने खूब स्वाद लेकर उसे खाया और संतुष्ट होकर डकार भी ले डाली, जिस पर द्रौपदी को हंसी आ गई।

कृष्ण के डकार लेते ही सभी ब्राह्मणों को अपना पेट इतना भरा हुआ लगने लगा, मानो उन्होंने छप्पन व्यंजनों वाला भोज किया हो। उन्हें अपना पेट इतना अधिक भरा हुआ लगने लगा कि उनके लिए बैठना भी मुहाल हो गया। वे सभी खड़े होकर संतुष्टिपूर्वक डकार लेने लगे। वे एक-दूसरे से कहने लगे, 'हमने भोजन किया भी नहीं और हमारा पेट इतना भर गया।' उन्हें समझ में आ गया कि पांडवों पर देवताओं का वरदहस्त है; किसी ने भी हालांकि भोजन नहीं किया, फिर उनकी चौखट से कोई भी भूखा नहीं लौटा। उन्होंने पांडवों और द्रौपदी को भरपूर आशीर्वाद दिया।

कृष्ण ने तब युधिष्ठिर को सलाह दी कि ऐसी अपमानजनक स्थिति से बचने के लिए उन्हें सूर्यदेव की प्रार्थना करनी चाहिए। उनकी प्रार्थना पर सूर्यदेव ने उन्हें अक्षय पात्र दिया, 'इसे ले जाकर द्रौपदी को दे दो। आपके सभी अतिथियों के भोजन करने, आपके द्वारा भोजन करने और द्रौपदी के भी खाना खाने तक इसमें खाद्य सामग्री विद्यमान रहेगी।'

अक्षय पात्र मिलने से द्रौपदी निश्चिंत हुई। उसने सूर्य को नमस्कार और कृष्ण का धन्यवाद किया। इस प्रकार अपने फुफेरे भाइयों की खुराक का प्रबंध करके कृष्ण, द्वारका लौट गए।

- क्षत्रियों के लिए यह बात अपनी आन की थी कि अपने घर पर आने वाले हरेक व्यक्ति को वे नाश्ता एवं भरपेट खाना

खिला कर भेजें। यह आतिथ्य-सत्कार का संस्कार था। भारत के अनेक घरों में यह परंपरा आज भी चली आ रही है। घर पर आने वाले हरेक व्यक्ति को कम से कम जलपान अथवा चाय या फिर नाश्ता करवा के तो भेजा ही जाए।

- द्रौपदी का पात्र देवी लक्ष्मी के अक्षय पात्र और यूनानी कोर्नुकोपिया अर्थात ऐसे शोभा पात्र के समान है जो हमेशा खाने-पीने की चीजों से लबालब रहता है। भारत भर में 'द्रौपदी का पात्र' मुहावरे का अर्थ ही हमेशा भोजन से लबालब रसोई से लगाया जाता है जिसमें हमेशा स्वादिष्ट एवं उच्च कोटि के भोज्य पदार्थों की भरमार हो और जिसमें से सभी अतिथियों, सेवकों तथा परिवारजनों को भरपेट खिलाया जा सके। ऐसी रसोई दरअसल कुशल गृहिणी की पहचान से ही जोड़ दी गई है।
- द्रौपदी ने हालांकि सूर्य पुत्र कर्ण को जातीय आधार पर अपमानित किया था मगर, उसके बावजूद सूर्य ने द्रौपदी को दिव्य खाद्य पात्र देकर उपकृत किया। यह महागाथा में 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' का सटीक उदाहरण है।

कौरवों की शरारत

दुर्योधन को पांडवों के वनवास से भी संतोष नहीं हुआ। 'वे वनगमन तो कर चुके। लेकिन अंततः वापस लौट कर आएंगे ही। उनकी वापसी रोकने के लिए हमें वन में जाके उनका वन्य पशुओं के समान वध कर देना चाहिए। उसके बाद मैं हमेशा निर्भय हो कर जीऊंगा?'

दुःशासन, शकुनि एवं कर्ण ने दुर्योधन से सहमति जताई। लेकिन उनके कुविचार पर अमल से पहले ही व्यास तमतमाते हुए हस्तिनापुरी पहुंचे और दृष्टिहीन राजा एवं उनकी आंखों पर पट्टी बांधे पत्नी को डांटा, 'अपने पुत्रों को रोको, क्या वे कुरु के यश को पहले ही बड़ा कलंक नहीं लगा चुके? अब वो तुम्हारे भतीजों का शिकार करने के कुत्सित मंसूबे बांध रहे हैं।'

विदुर ने भी सहमति जताई, 'ये तो अत्यंत लज्जाजनक है।' उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा, 'आप तो सम्राट हैं और अपने ही भतीजों पर ऐसा अत्याचार होने दे रहे हैं। आप स्थिति को अब भी संभाल सकते हैं। उन्हें वापस बुला लीजिए। कहिए कि यह उनकी भारी भूल थी। अपने पुत्रों को उनकी नीचता के लिए प्रताड़ित कीजिए। कुटुंब को विनाश से बचाइए।'

अपने भाई द्वारा आलोचना से चिढ़ कर धृतराष्ट्र ने उनकी बात काटी, 'पांडवों की यदि इतनी ही चिंता है तो आप, उनके पास चले क्यों नहीं जाते। आप यहां मेरे साथ क्यों बैठे हैं?'

विदुर ने कहा, 'मैं जाऊंगा।' वे उठे और राजप्रासाद तथा नगरी से बाहर निकल गए। वे सीधे काम्यक वन की ओर गए। वे इतने व्यग्र थे कि उन्होंने मुड़कर एक बार भी अपने भाई को नहीं देखा।

विदुर के निकलते ही धृतराष्ट्र को अपने रूखेपन पर शर्म आई। 'मैंने ये क्या किया? ऐसा व्यवहार मैं अपने उस भाई से कैसे कर सकता हूं, जो सदैव मेरी भलाई का ही सोचता है!'

उन्होंने तत्काल विदुर के पीछे सेवक को दौड़ाया, 'वो जब तक वापस आने को राजी नहीं हो जाएं, तब तक लौटकर मत आना।'

सेवक को विदुर आखिर पांडवों के साथ मिले। वे लोग गंगातट पर स्थित बरगद के विशाल वृक्ष की छांव में बैठे थे। सेवक ने उनसे कहा, 'वापस आ जाइए। राजा जी को अपने व्यवहार पर पछतावा हो रहा है।' लेकिन विदुर अपनी बात पर डटे रहे।

युधिष्ठिर को ज्ञात था कि दोनों भाइयों के बीच कितना अधिक प्रेम है। उन्होंने विदुर से कहा, 'राजप्रासाद में तर्कसंगत बात सिर्फ आप ही कर पाते हैं। इस विपत्तिकाल में उन्हें आपकी सहायता चाहिए। आप, उनकी राजनीति से भले ही सहमत न हों, फिर भी ऐसे क्षणों में उनका साथ मत छोड़िए। उनका साथ दीजिए। हमसे अधिक उन्हें, आपकी आवश्यकता है।'

विदुर अपने कमजोर तथा दृष्टिहीन भाई के बारे में सोच कर बैठे-बैठे रोने लगे। फिर उन्होंने, अपने भतीजों तथा द्रौपदी को आशीर्वाद दिया तथा राजप्रासाद की ओर लौट गए।

विदुर के साथ मैत्रेय ऋषि भी राजा से मिलने आए। कौरव जब उन्हें प्रणाम करने आए तो ऋषि बोले, 'दृष्टिहीन सम्राट के पुत्रों सावधान हो जाओ। पांडु पुत्रों की शक्तियों से सावधान रहो। तुमने, उन्हें नगर से दूर भले भेज दिया हो, मगर वे तो वन में भी इतना यश बटोर रहे हैं जिसकी कौरव बस कल्पना ही कर सकते हैं।'

मैत्रेय ने धृतराष्ट्र और उनके सौ पुत्रों को आगे बताया कि पांडव जब काम्यक वन में प्रविष्ट हुए तो उनका रास्ता किरमिर नामक राक्षस ने रोक लिया।

राजप्रासाद की घटनाओं से पस्त पांडवों ने फिर भी निडर होकर उसका सामना किया। भीम ने उस पर अपनी गदा से वार किया और ग्वाले द्वारा शरारती बछड़े को धरती पर गिराकर उसे दबोच लेने के समान ही उसे दबोच लिया। उसके बाद भीम ने किरमिर की गर्दन तोड़ दी। किरमिर के वध की सूचना समूचे वन में फैल गई। ये सूचना पाकर किरमिर के हाथों अरसे से सताए जा रहे ऋषिगण, पांडवों से मिलकर उनका धन्यवाद करने तथा उन्हें आशीर्वाद देने के लिए दौड़ पड़े।

मैत्रेय ने कहा, 'सूर्य के प्रकाश को कोई भी नहीं ढंक सकता। उसी प्रकार पांडवों के यश को कोई नहीं मिटा सकता। इसलिए वनवास में उन्हें शांतिपूर्वक रहने दें।'

यह सुनकर दुर्योधन ने शिकार पर जाने का अपना कार्यक्रम रद्द कर दिया। उसने अपनी नाक बचाने के लिए दलील ये दी, 'विदुर ने उन्हें, हमारे षड्यंत्र की जानकारी दे दी होगी। इसलिए वे सावधान हो गए होंगे। हमें बाद में इसे अंजाम देना चाहिए। तब उन्हें इसकी भनक भी नहीं लगेगी।'

मैत्रेय ऋषि के प्रस्थान के बाद कर्ण उठकर दुर्योधन के पास गया और फुसफुसा कर बोला, 'पांडवों की सारी संपत्ति अब चूंकि तुम्हारे पास आ गई है तो चलो अपने विशाल राज्य का दौरा करो तथा अपनी सभी गायों की गिनती कर लो। और रास्ते में हम पांडवों का हालचाल भी जान सकते हैं। मैं समझ गया कि तुम उनका वध नहीं करोगे, मगर उनकी दुर्दशा पर हंस तो सकते

हो?'

दुर्योधन ने पूछा, 'क्या तुम वन जाकर परपीड़न सुख लेने का सुझाव दे रहे हो?' कर्ण मुस्कराया, दुशासन और शकुनि ने भी वैसा ही किया। दुर्योधन यह सोचकर हंसा कि उसका मखौल उड़ाने वाली द्रौपदी की हंसी उड़ाने में उसे कितना अधिक आनंद आएगा। भीम को भिखारी के रूप में जीते देखकर कितना सुख मिलेगा? इस बारे में धृतराष्ट्र को मनाने में भी देर नहीं लगी।'

इस प्रकार अश्वों तथा गजों एवं पत्नियों के लिए पालकियों के प्रबंध सहित समूची हस्तिनापुरी एवं इंद्रप्रस्थ में कुरु वंश के पास कुल गायों की गणना के लिए भव्य जुलूस निकाला गया। इसमें सेवक, संगीतज्ञ, नर्तक, बावर्ची एवं दास आदि विभिन्न लोग शामिल थे। ये घोष यात्रा थी।

यह यात्रा चूंकि पांडवों की दुर्दशा देखकर सुखी होने के लिए आरंभ की गई थी, इसलिए कौरवों का लाव-लश्कर सीधे उस वन के बाहर जाकर रुका जिसमें पांडव वनवास कर रहे थे। वहां पर शिविर लगाने में भारी कोलाहल हुआ। तंबू गाड़ने, भोजन पकाने और संगीतज्ञों द्वारा आगंतुकों के मनोरंजन की तैयारी आदि के कारण वहां भारी चहल-पहल रही।

अचानक इतने कोलाहल का कारण जानने के लिए भेजे गए भीम को ये सब देखकर बहुत क्रोध आया और वो पांव पटकता हुआ युधिष्ठिर के पास लौटा। उसने बताया, 'उन्होंने हमारी ओर आने वाली हवा की दिशा में शिविर लगाया है तथा बड़े-बड़े भांडों में खाना पका रहे हैं, ताकि हवा के साथ आने वाली अपने प्रिय व्यंजनों की खुशबू से मैं विचलित होऊं। यह हमारे दुर्भाग्य का मखौल उड़ाने की घृणित साजिश है।'

अर्जुन ने कर्ण को अपने धनुष की प्रत्यंचा को दुरुस्त करते देखकर धीमे से कहा, 'मुझे लगता है कि उनका आखेट के लिए जाने का कार्यक्रम होगा और हम उनके शिकार होंगे।'

युधिष्ठर ने कहा, 'अपनी कल्पना की उड़ान पर लगाम कस के होश में आओ। वे हमें उत्तेजित करने का प्रयास कर सकते हैं, मगर हमें उत्तेजित नहीं होना है। हम पहले भी उनके जाल में फंस चुके हैं। हम अबकी बार वो गलती नहीं दोहराएंगे।'

अचानक कौरवों के शिविर से जोरदार चीख उभरी। गप्पों और नृत्यों की आवाज थम गई। हवा में सैकड़ों तीरों की सनसनाहट गूंजने लगी। ये तीर आसमान से आ रहे थे। नकुल और सहदेव को परिस्थिति की थाह पाने के लिए भेजा गया।

उन्होंने लौटकर बताया, 'गंधर्वों ने कौरवों पर आक्रमण करके उन्हें बंदी बना लिया है। ये वही गंधर्व हैं जो वारणावत में लाक्षागृह अग्निकांड के बाद जंगल में हमसे टकराए थे। उन्होंने सारे कौरवों तथा कर्ण और शकुनि एवं उनके सभी दास-दासियों के हाथ-पैर बांध कर मुंह में कपड़ा ठूंस दिया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वो उन सब की हत्या कर देंगे।'

युधिष्ठिर ने कहा, 'हमें उनको बचाना चाहिए।'

द्रौपदी और भीम एवं अर्जुन ने भी उसकी तरफ पलट कर अविश्वास के भाव से पूछा, 'क्यों? उन्हें उनके हाल पर छोड़ दो।'

इस पर युधिष्ठिर बोला, 'असहाय की सहायता करना ही तो धर्म है। वे अभी असहाय हैं। हमें उनकी सहायता करनी चाहिए। अन्यथा हममें और उनमें कोई अंतर नहीं बचेगा।'

भीम ने अत्यंत हिचकिचाते हुए अपनी गदा उठाई। अर्जुन ने अपना धनुष उठाया तथा युधिष्ठिर के निर्देशों का पालन करने लगे। उन्होंने कौरवों के शिविर पर जाकर गंधर्वों को ललकारा। छुटपुट लड़ाई के बाद गंधर्व वहां से भाग गए। उसके बाद पांडवों ने कौरवों को मुक्त कर दिया।

इस प्रकार पांडवों की खिल्ली उड़ाने के इरादे से निकले कौरव उनकी सदाशयता के आगे स्वयं नीचा देखकर हस्तिनापुरी वापिस आ गए। कर्ण को सबसे ज्यादा अपमान लगा, क्योंकि अर्जुन ने उसकी आंखों के सामने उन्हीं गंधर्वों को हराया, जिन्होंने, उसे हराया था। दुर्योधन ने तय किया कि वो वन में पांडवों से कोई छेड़छाड़ नहीं करेगा। 'हम अब उन्हें वनवास के बाद अज्ञातवास के तेरहवें वर्ष में ढूंढ़ निकालेंगे और उन्हें फिर से वनवास में धकेल देंगे।'

इस बीच वन में गंधर्वों ने पांडवों से अत्यंत स्नेहपूर्वक आलिंगन करके क्षमा मांगी और उन्हें बताया कि वे देवराज इंद्र के निर्देश पर वहां कौरवों को सबक सिखाने आए थे।

- अपना जीवन बचाने के लिए दुर्योधन, पांडवों का ऋणी हो जाता है। कृष्ण, उसे उऋण होने के लिए वो पांच स्वर्णिम बाण लाकर देने को कहते हैं जो भीष्म के पास हैं। दुर्योधन इन स्वर्णिम बाणों को चुराकर कृष्ण को सौंप देता है। उसे यह पता ही नहीं था कि इन बाणों में पांच पांडवों के वध की शक्ति थी। यह प्रसंग महाप्रतापी भीष्म से पांडवों की रक्षा के लिए कृष्ण द्वारा किए गए उपायों संबंधी लोक कथा में वर्णित है।
- केरल के थैयम नर्तक वनवासी पांडवों के विनाश के लिए कौरवों द्वारा काले जादू का सहारा लेने की कथा सुनाते हैं। उनका हरेक वार कृष्ण की कृपा से अथवा द्रौपदी की शक्ति से बेकार जाता है।
- केरल में ही कथकली नृत्य नाटिका में हमें यह बताया जाता है कि किरमिर राक्षस की बहन सिंहिका भी थी। भीम के हाथों से किरमिर की मृत्यु की सूचना पाकर वो द्रौपदी की हत्या का निश्चय कर लेती है। सुंदरी का रूप धर कर वो वन में पांडवों की पत्नी से मित्रता कर लेती है फिर उसने द्रौपदी को दुर्गा का गुप्त मंदिर दिखाने के बहाने अपने साथ ले जा कर उसकी बलि चढ़ाने का षड्यंत्र रचा, लेकिन द्रौपदी ने उसे समय रहते पहचान कर अपने पतियों को बुला लिया और उन्होंने सिंहिका की नाक काटकर उसे वहां से भगा दिया।

- कुछ जगह यह भी उल्लेख है कि सौभाग्य की देवी लक्ष्मी हमेशा दुर्योधन के कंधे पर बैठी रहती थीं। इसीलिए वह हमेशा ऐश्वर्य का उपभोग करता रहा। लक्ष्मी ने जब द्रौपदी का रूप धरकर पांडवों के जीवन में प्रवेश किया तो वह उसे दांव पर लगाकर जुए में हार गए।
- गायों की समारोहपूर्वक गणना के अभियान के प्रसंग से यह प्रतिध्वनित होता है कि महाभारत में वर्णित समाज अपने गुजारे के लिए दुधारु पशुओं पर निर्भर था। नगरों का निर्माण मुख्यतः गायों तथा चरागाहों के संरक्षण के लिए किया गया था। वैदिक नगरियां शायद दक्षिण अफ्रीकी जुलू प्रजाति के काल की तरह थीं जहां गायों के घेर के चारों तरफ आवास बनाए जाते थे। गायों को सवेरे ही चराई के लिए छोड़ दिया जाता था और गोधूलि वेला में वे अपने थान पर लौट आती थीं। उनकी देखभाल ग्वाले करते थे तथा उनकी रक्षा क्षत्रियों के जिम्मे थी। गायों को चुराने के लिए मारे गए छापे बहुधा युद्ध में बदल जाते थे। शांतिकाल में पुरुष अपनी गायों को जुए में दांव पर लगाते थे।
- पांडव अभी वन में ही थे कि कर्ण ने दुर्योधन को अश्वमेध यज्ञ करने के लिए प्रोत्साहित किया। उसके पीछे पृथ्वी के सभी राजाओं को अपनी मुट्ठी में करने की योजना थी ताकि यदि कभी पांडवों से युद्ध करना पड़े तो सभी राजा, कौरवों के साथ खड़े हों।
- हिंदी में बहुधा नकारात्मक अर्थ में प्रयुक्त मुहावरा, 'चांडाल चौकड़ी' दरअसल महाभारत के चार प्रमुख खलनायकों: दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि से ही उत्पन्न हुआ है।

जयद्रथ

कुछ दिन बाद ही पांडव जब दोपहर को वन में गए हुए थे, द्रौपदी को अचानक अपने निवास के लिए प्रयुक्त गुफा के मुहाने पर जयद्रथ खड़ा दिखाई दिया। वो सिंधु नरेश था और उसकी शादी कौरवों की इकलौती बहन दुःशला से हुई थी।

द्रौपदी ने उसे आसन प्रदान करके जलपान के लिए जल तथा फल परोसे मगर मन ही मन आशंकित रही कि वो अचानक यहां किस प्रयोजन से आया है। उसे लगा कि वो शायद उनसे सहानुभूति तथा भाईचारा जताने आया होगा। शायद वो, ये स्पष्ट करना चाहता था कि वो कौरवों की हरकतों से सहमत नहीं था, अथवा वो यहां उनकी दुर्दशा से खुश होने आया था? वो बोली, 'मेरे पति बस आते ही होंगे।' मगर ये क्या, वो तो अपनी वासना से चमकती आंखें, उसकी आंखों में डालकर बोला, 'वो न ही आएं तो अच्छा है, मैं तो तुमसे मिलने आया था।' द्रौपदी भौंचक्की रह गई। जयद्रथ ने अपनी रौ में उसके सामने एक बक्सा खोल दिया। उसके भीतर सुरुचिपूर्ण कपड़े, महंगे हीरे-जवाहरात तथा सौंदर्य प्रसाधन थे। उन्हें दिखाते हुए वो बोला, 'तुम्हारे लिए। और यदि तुम मेरे साथ सिंधु राज्य में चलो तो और बहुत सारा।'

द्रौपदी उसकी ये धृष्टता देखकर सन्न रह गई, 'मैं इंद्रप्रस्थ की महारानी और पांडवों की पत्नी हूं। और मुझसे, तुम ऐसे बात कर रहे हो? तुम्हारा साहस कैसे हुआ?'

जयद्रथ व्यंग्यपूर्वक हंसा, 'तुम्हारा कोई साम्राज्य नहीं है और इसलिए किसी की भी रानी नहीं हो। तुम तो भिखारी हो। पांच भाइयों की रखैल जिसका भरे दरबार में कौरवों ने चीरहरण किया। मैं तो तुम्हें अच्छी जिंदगी देने आया था। मेरे राजप्रासाद में मेरी रखैल बनकर रहना।' सिंधुराज ने ये कहते-कहते द्रौपदी का हाथ पकड़ा और उसे अपने रथ की ओर खींचा।
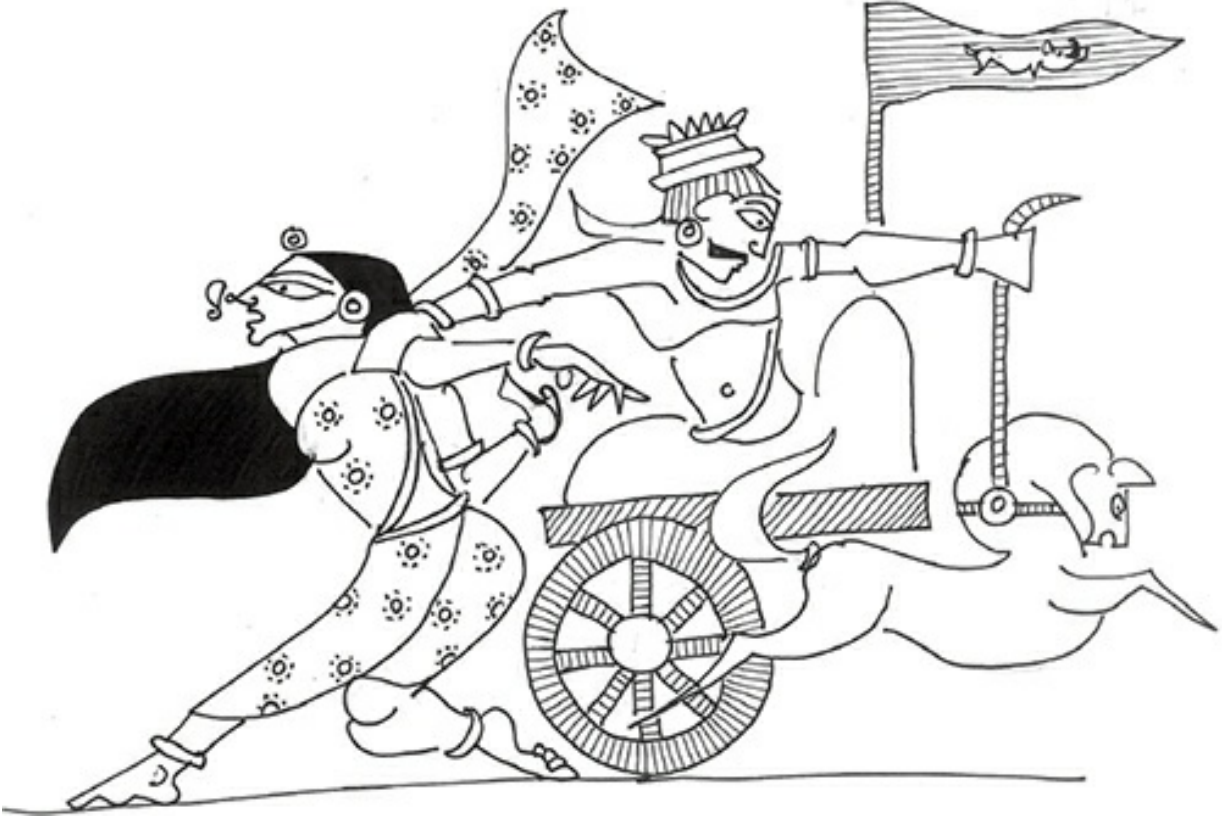
द्रौपदी चिल्लाई, 'मेरे पति तेरी हत्या कर देंगे।' जयद्रथ ने उसे गोद में उठाकर रथ पर पटका और रथ लेकर हवा हो गया।

आसपास रह रहे ऋषियों ने जब यह सब होते देखा तो दौड़े-दौड़े भीम और अर्जुन के पास पहुंचे और उन्हें पूरा किस्सा सुनाया। दोनों भाई तत्काल रथ के पहियों के निशान के सहारे द्रौपदी को बचाने दौड़े। उन्होंने पत्नी के अपहर्ता को शीघ्र ही जा पकड़ा। अर्जुन ने अपने बाणों से उसके रथ के पहिए तोड़ दिए। उसके बाद भीम ने जयद्रथ को धर लिया और उसकी इतनी अधिक पिटाई की कि वो गंभीर रूप में घायल हो गया।

युधिष्ठिर यदि समय पर वहां न पहुंचते तो जयद्रथ की हत्या निश्चित थी। 'नहीं इसका वध मत करो, ये तो हमारी इकलौती बहन का पति है। इसकी घृणित हरकतों के लिए उसे विधवापन का दंश मत दो।'

पांडवों और द्रौपदी को युधिष्ठिर का तर्क सही लगा और क्रोध से पगलाए तथा बदला लेने पर उद्धत होने के बावजूद उन्होंने जयद्रथ को क्षमा करके उसे वहां से चले जाने दिया।

जयद्रथ ज्यों ही उठकर प्रस्थान कर रहा था कि भीम ने उसके बाल नोच लिए। उसके सिर पर भीम ने बस पांच जगह बालों के छोटे-छोटे गुच्छे छोड़ दिए ताकि वो याद रखे कि उसकी जान पांच पांडवों ने बख्शी थी।

- पारिवारिक जीवन के बुरे, ढंके-छिपे राज से व्यास अपरिचित नहीं थे। जयद्रथ ने हालांकि द्रौपदी से दुराचार किया था, फिर भी चूंकि वो उसकी ननद दुःशला का पति था इसलिए उसे क्षमा करने के लिए द्रौपदी को मजबूर किया गया।

- व्यास बार-बार ये सवाल करते हैं कि कोई स्त्री पत्नी कैसे बनती है? निष्कर्ष ये निकलता है कि यह सभ्य समाज है, जिसमें वैवाहिक शुचिता के अपने नियम हैं। उनके पालन से ही कोई स्त्री, पत्नी बनती है। लेकिन वन में ऐसा कोई नियम नहीं है। क्या कोई स्त्री तब भी पत्नी बन सकती है? जयद्रथ के प्रसंग ये स्पष्ट प्रतिध्वनित होता है कि कोई समाज अथवा वन, किसी भी स्त्री को पत्नी नहीं बना सकता। मनुष्य अपनी इच्छा एवं अनुशासन से ही ऐसा कर सकता है।
- द्रौपदी के प्रति पुरुषों के आकर्षित होने के प्रसंग महाभारत में बार-बार आते हैं। जयद्रथ के अलावा भी अनेक पुरुष उससे रागात्मक लगाव रखते हैं। महागाथा में आगे कीचक का प्रसंग है। दौपदी को उसके अवांछित आकर्षण से बचना होता है। कीचक, मत्स्यराज विराट का साला था।

राम की कथा

कौरवों और उनके संबंधियों से परेशान होकर पांडवों ने वन में और गहन प्रवेश का निर्णय किया। वे काम्यक वन को छोड़कर और भी सघन द्वैत वन में घुस गए। उन्होंने गुफाओं में बसेरा कर लिया, लेकिन साथ ही ये भी तय किया कि एक ही स्थान पर अब अधिक समय नहीं रहेंगे।

दिन एक-एक करके बीत रहे थे और पांडवों के पास बातें करने के अलावा कोई भी काम नहीं था। भीम गुस्से से दांत किटकिटाता और भुनभुनाता रहता। तेरह साल तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने की बात उसके गले नहीं उतर रही थी। ‘मुझे तो लगता है कि हमें लड़ कर अपना अधिकार वापस पा लेना चाहिए।’ द्रौपदी अपने भाग्य पर तरस खाती और अपने पतियों को कोसती रही। लेकिन तमाम घटनाओं से अविचलित युधिष्ठिर का निस्पृह भाव जारी रहा। उन्होंने भाइयों से धैर्य एवं शांति बनाए रखने को कहा।

भीम ने उनसे पूछा, ‘क्या आप क्रोधित नहीं हो? क्या आप अपमानित नहीं हो? क्या आप उत्तेजित नहीं हो? कौरवों से, भाग्य से, ईश्वर से?’

युधिष्ठिर ने जवाब दिया, ‘नहीं, बाह्य कारणों पर दोष क्यों मढ़ें, जबकि मूल कारण हमारा मोह है। इसलिए आगे से हमें अपनी भावनाओं को नियंत्रित करना होगा। हमें सही बात से संचालित होना होगा। हमें धर्मानुकूल आचरण करना चाहिए।’

अपने तर्क के बावजूद अपने भाइयों एवं अपनी पत्नी के मन में घुमड़ रहे असंतोष का युधिष्ठिर को भलीभांति अनुमान था। इसके कारण वो हमेशा शर्मिंदा तथा अपराधबोध से ग्रस्त रहते थे।

अपने परिवार की प्रतिष्ठा को कलंकित करने के अपराधबोध से एक दिन युधिष्ठिर इतने त्रस्त हो गए कि रोने लगे। ‘निस्संदेह संसार में मुझसे अधिक दुख किसी अन्य पुरुष ने नहीं झेला होगा।’

ऋषि मार्कंडेय ने युधिष्ठिर को ऐसा कहते सुना तो बोले, ‘नहीं, ये सत्य नहीं है। संसार में राम भी हुए हैं, जिन्होंने इससे भी कहीं अधिक दुख झेला था। तुम्हारा वनवास तो तेरह वर्ष का ही है। लेकिन वे तो चौदह साल वनवासी रहे। तुमने तो ये कष्ट अपने कर्मों से ओढ़ा है मगर उन्होंने तो धर्मानुसार अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के कारण दुख झेला था।’ द्रौपदी और भीम पर दृष्टिपात करते हुए वे बोले, ‘तुम्हारे भाई तो कोई अन्य विकल्प न होने कारण वनवास, झेल रहे हैं लेकिन राम के भाई लक्ष्मण ने तो अपने मन में उनके लिए प्रेम एवं स्नेह होने के कारण स्वेच्छा से वो कष्ट उठाया था।’

ऋषि मार्कंडेय ने उसके बाद युधिष्ठिर को रामोपाख्यान अर्थात अयोध्या के युवराज राम की

कथा सुनाई।

अयोध्या के राजा दशरथ की तीन रानियां और चार पुत्र थे। राम ज्येष्ठ पुत्र थे। राम के राजतिलक की पूर्व संध्या को दशरथ की दूसरी रानी कैकेयी ने उन्हें बहुत समय पहले दिया गया वरदान याद दिलाया जो रणक्षेत्र में उन्होंने अपनी रानी द्वारा उनकी जान बचाने से खुश होकर दिया था। 'राम को साधु की तरह चौदह वर्ष का वनवास देकर उसकी जगह मेरे बेटे भरत को अयोध्या की राजगद्दी सौंप दीजिए।'

वरदान से चूंकि मुकरा नहीं जा सकता था, इसलिए दशरथ को राम से चौदह वर्ष के वनवास के लिए अयोध्या से चले जाने और भरत को राजमुकुट सौंपने को कहना पड़ा। राम चूंकि आज्ञाकारी पुत्र थे, इसलिए उन्होंने बिना कोई विरोध जताए पिता की आज्ञा मान ली। उन्होंने राजसी वस्त्र उतारे और छाल के वस्त्र पहन कर कंधे पर अपना धनुष टांगा और वनगमन करने लगे। उनकी पत्नी सीता तथा उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी उनके साथ वन चले गए, क्योंकि वे उनके दुर्भाग्यों का बोझ बांटने के लिए प्रतिबद्ध थे।

इसी बीच अयोध्या में भरत ने ऐसे राज्य का राजा बनने से इन्कार कर दिया, जिसे धोखे से प्राप्त किया गया हो। उन्होंने राम के दूत के रूप में राजकाज चलाया तथा राम के लौट कर आने तथा राजपाट संभालने की प्रतीक्षा की।

वन में राम ने तेरह वर्ष की लंबी अवधि में अपनी पत्नी तथा अपने भाई के साथ भारी कष्ट उठाए। वे राक्षसों से लड़ते हुए निर्जन वनों से गुजरे। उन्होंने गुफाओं में बसेरा किया, कभी-कभी ऋषियों से भी मिले और प्रोत्साहन एवं बुद्धिमानी से परिपूर्ण कथाएं सुनीं।

वनवास के अंतिम वर्ष में राक्षस स्त्री शूर्पणखा, राम एवं लक्ष्मण की सुंदरता पर इतना अधिक रीझ गई कि उसने बार-बार उनसे संबंध बनाने का प्रस्ताव किया। उन्होंने जब उसकी बात नहीं मानी तो उसने समझा कि वे ऐसा सीता के साथ होने के कारण कर रहे हैं। इसलिए उसने सीता

की हत्या का प्रयास किया। राम और लक्ष्मण ने उसे समय रहते रोक दिया। साथ ही उसे पक्का सबक देने के लिए लक्ष्मण ने उसकी नाक और स्तन काट कर उसे भगा दिया।

अंग भंग शूर्पणखा रोती-कलपती अपने भाई राक्षसराज रावण के पास पहुंची। उसने रावण से अपने इस घोर अपमान का बदला लेने को कहा। उसकी दुर्दशा से क्रोधित रावण ने दोनों भाइयों द्वारा स्वर्णिम हिरण के आखेट के लिए निकलने पर उनके पीछे से सीता का अपहरण कर लिया। वो, उन्हें अपने साथ अपने द्वीपीय राज्य लंका में ले गया। उसकी इच्छा सीता को जबरदस्ती अपनी रानी बना लेने की थी।

सीता हरण से निराश राम ने उन्हें छुड़ा कर लाने के लिए वन में ही सेना तैयार की। इस सेना में वानर, रीछ, एवं गिद्ध शामिल थे। उन्होंने लंका जाने के लिए समुद्र पर पुल बनाया और वहां पर आक्रमण कर दिया। लंबी लड़ाई के बाद, राम ने रावण का वध करके सीता को मुक्त कर लिया।

राम उसके बाद लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौट आए और वहां पर भरत ने उन्हें राजमुकुट पहना कर राजा बना दिया। सीता उनके साथ राजसिंहासन पर महारानी के रूप में बैठीं।

- राम का वृत्तांत हालांकि महाभारत में ही है लेकिन वाल्मीकि नामक कवि ने उसे अलग से महागाथा बना दिया। रामायण नामक इस ग्रंथ में राम की कथा है, जिन्हें आदर्श राजा एवं उनके शासन काल को आदर्श राज बताया गया है। उसके विपरीत महाभारत में अधिकतर दोषपूर्ण राजाओं तथा उनके लचर शासन काल की कथा है। रामायण में विष्णु द्वारा राम के रूप में नियमों का पालन किया जाता है जबकि महाभारत में कृष्ण के रूप में विष्णु नियम ही बदल डालते हैं। रामायण में भगवान स्वयं राजा हैं जबकि महाभारत में भगवान दूसरे को राजा बना देते हैं।
- राम कथा के माध्यम से व्यास यह व्याख्यायित कर रहे हैं कि हम बहुधा ये सोचते हैं कि सारी समस्याएं और दुर्भाग्य हम ही झेल रहे हैं, लेकिन संसार में हमेशा हमसे भी कहीं अधिक कष्ट पाने वाले मौजूद रहते हैं। जैसे उन्होंने अपने कष्टों के वावजूद जीवन जिया तथा उन्हें विजित किया वैसे ही हमें भी अपना मनोबल बनाए रखना चाहिए।
- रामायण एवं महाभारत को संयुक्त रूप में इतिहास माना जाता है, उनके वेदों और पुराणों से अलग अस्तित्व को भी समझना चाहिए। इतिहास दरअसल पूर्णता एवं दिव्यत्व प्राप्ति के लक्ष्य को हासिल करने की मनुष्य की लगन के दौरान धर्म पालन के संघर्ष का वृत्तांत ही है। वेदों में इसके विपरीत जीवन चलन के सिद्धांतों का अमूर्त रूप में वर्णन है जबकि पुराणों में विभिन्न दिव्य चरित्रों के माध्यम से गाथा रूप में यह बताया गया है कि ईश्वर बारंबारता के आधार पर विश्व निर्माण एवं विध्वंस करते हैं।

शिव द्वारा अर्जुन को सबक

अर्जुन को मन ही मन पता था कि तेरह साल बाद युद्ध अवश्यंभावी है। राम द्वारा रावण से युद्ध के समान ही पांडवों को कौरवों से लड़ना पड़ेगा। उसने सोचा कि इसलिए वनवास के दौरान द्रौपदी के समान भाग्य को कोसने तथा भीम की तरह क्रोध में जलने के बजाए उसे युद्ध की तैयारी अभी से कर लेनी चाहिए।

उसने सोचा, 'मुझे शिव का आह्वान करके युद्ध की दृष्टि से महत्वपूर्ण पाशुपत अस्त्र जैसे अस्त्र जमा करने चाहिए। पाशुपत अस्त्र में सृष्टि के सभी पशु-पक्षियों की शक्ति निहित है जिसका प्रयोग कौरवों के विरुद्ध प्रभावशाली होगा।' उसने, अपने भाइयों से विदा लेकर उत्तरी दिशा में बर्फाच्छादित हिमालय की ओर कूच किया। इसकी चोटियां आकाश को छूती प्रतीत होती थीं।

पर्वत की तलहटी में चीड़ के गगनचुंबी पेड़ों का घना जंगल था। घने जंगल में थोड़ा छीड़ भरा स्थान देखकर अर्जुन ने पोली जमीन पर नदी से लाया हुआ अंडाकार पत्थर गाड़ दिया। उसने

खुद से कहा, 'अब से मैं इस सपाट पाषाण की लिंग रूप में पूजा करूंगा, शिव का स्वरूप मानकर, जो निराकार ब्रह्म हैं।' उसने शिवलिंग पर जंगल से लाए ताजे फूल चढ़ाए और उसके सामने ध्यान लगाकर, सांसों को समायोजित करके समाधिस्थ हो गया।

उसे समाधिस्थ हुए दिन बीतने लगे। निश्चल एवं ध्यानस्थ अर्जुन को देखकर लोग उससे प्रभावित हुए बिना न रहते।

उसी बीच एक दिन अचानक जंगली सूअर अर्जुन की ओर बढ़ा और उसकी समाधि तोड़ दी। अर्जुन ने धीरे से अपनी आंखें खोलीं और अपना धनुष उठाकर एक ही बाण में सूअर को ठंडा कर दिया। अर्जुन अपने आसन से उठकर जैसे ही सूअर की ओर बढ़ा तो देखा कि उसकी गर्दन में और एक तीर गड़ा हुआ है। उसने गर्दन उठाकर देखा तो सूअर के पास किरात अर्थात शिकारी को खड़ा पाया। उसके साथ उसकी सुंदर पत्नी खड़ी थी। उसने गर्वपूर्वक कहा, 'सूअर को मेरे पति ने मार दिया।' अर्जुन ने जवाब में कहा, 'नहीं, सूअर का वध मैंने किया है।' किरात की पत्नी अड़ गई, 'नहीं, उसे तो मेरे पति ने मारा है।' किरात भी बोला, 'मेरी पत्नी सही कह रही है। सूअर मेरे तीर से मरा है। तुम्हारा तीर तो मरे हुए सूअर को लगा है।'

अब अर्जुन से रहा नहीं गया और बोला, 'तुमको शायद पता नहीं कि तुम किससे बात कर रहे हो।' उसे इतनी आसानी से अपना दावा खारिज किए जाने की आदत जो नहीं थी।

इस पर किरात ने विद्रूप भरी मुस्कान फेंककर अर्जुन को जवाब दिया, 'हमेशा विजय प्राप्त करने को इच्छुक युवक।'

अर्जुन क्रोधित होकर बोला, 'मैं अर्जुन हूं, द्रोण का शिष्य, और संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर।'

किरात यह सुनकर फिर मुस्कराया, 'सर्वश्रेष्ठ, मगर किसके पैमाने से?'

उसकी पत्नी बोली, 'ये जंगल है। यहां पर तुम्हारे नागरी नियम नहीं चलते युवक। तुम कहीं के भी राजकुमार होंगे, मगर यहां तो तुम सामान्य कुत्ते के समान हो, जिसे व्याघ्र को देख कर पीछे हटना ही पड़ता है।'

इतना सुनना था कि अर्जुन आपे से बाहर हो गया। वो भला इस विरूप आदिवासी दंपती से इस प्रकार अपमानित कैसे हो जाता। इसलिए उसने चुनौती दी, 'तो आओ युद्ध कर लो। हम में से जो भी विजयी होगा उसे श्रेष्ठ धनुर्धर तथा सूअर का असली शिकारी मान लेंगे।' किरात ने फिर उपहास भरी दृष्टि डाली और चुनौती स्वीकार कर ली, जिससे अर्जुन और भी चिढ़ गया।'

अर्जुन ने अपना गांडीव पकड़ा और शिकारी पर बाण वर्षा कर दी। लेकिन ये क्या किरात ने शांतिपूर्ण भाव से अर्जुन के सारे तीर अपने बाणों से आकाश में ही रोक लिए। अर्जुन ने मन में विद्वेषपूर्वक ही सही किरात को श्रेष्ठ धनुर्धर मान लिया। अर्जुन का तरकश जब खाली हो गया तो उसने अपनी तलवार उठाकर किरात से फिर लड़ना शुरू किया। तलवार टूटने पर दोनों मल्ल युद्ध में भिड़ गए। किरात कुशल मल्ल होने के साथ ही अत्यंत शक्तिशाली भी था, सो उसने आसानी से अर्जुन को काबू में कर लिया।

अपमानित, क्रोधित, पराजित भाव के साथ अर्जुन आखिरकार शिवलिंग के पास अपने आसन पर लौटा तथा लिंग को पुष्प अर्पित करके ध्यान लगाया। उसका ध्यान जब टूटा तो आंखें खुलते ही उसने किरात को अपने सामने बैठा पाया। उसके द्वारा लिंग पर चढ़ाए फूलों से सज्जित किरात के होंठों पर मधुर मुस्कान थी।

अर्जुन को ये देख कर समझ आ गया कि भगवान स्वयं किरात के रूप में प्रकट हुए हैं। पूरे वन में गूंजती आवाज में शिव बोले, 'मैं ये देख रहा था कि अस्त्र पाने के लिए तुम कितने सन्नद्ध हो। तुम हार नहीं मानते, मानते हो क्या?' अर्जुन यह भी समझ गया कि किरात की पत्नी और कोई नहीं बल्कि स्वयं शक्ति हैं। दो तीरों का वार झेलने वाला सूअर दरअसल उनका पवित्र सांड, नंदीगण था, जिसने मरने का नाटक किया था।

सच समझ में आते ही अर्जुन ने उन्हें साष्टांग दंडवत प्रणाम किया। इससे प्रसन्न होकर शिव ने कहा, 'आओ पाशुपत ले लो। इसका प्रयोग समझ-बूझ के करना।'

उसके बाद शिव ने अर्जुन को साक्षात दर्शन दिए। उनके बाल, जटा बन कर लटक रहे थे और शरीर पर भभूत लिपटी हुई थी। उन्होंने शरीर पर व्याघ्र और शेर की खाल धारण कर रखी थी। उनके एक हाथ में त्रिशुल था, जिस पर डमरू टंगा था। दूसरे हाथ में खप्पर था। उनके गले में रुद्राक्ष की माला थी तथा नाग भी लिपटा हुआ था। वे अपनी पत्नी के साथ विशाल श्वेत सांड पर बैठे हुए थे। वो सुहाग की सोलह निशानियों से सुसज्जित थीं। ये प्रतीक हैं–लाल साड़ी, बालो की वेणी में फूलों का गजरा, मुंह में पान, बाहों में चूड़ियां, बाजूबंद, पाजेब, कड़े, बिछुए, नाक में लौंग, कानों में बाली, गले में आभूषण हार तथा कमर पर करधन। आत्मा एवं स्थूल के प्रतीक दिव्य दंपती ने अपने हाथ उठाकर अर्जुन को आशीर्वाद दिया।

- अर्जुन पूजा करता है। यह पद्धति वैदिक ग्रंथों में वर्णित प्राथमिक कर्मकांड यज्ञ से एकदम भिन्न है। पूजा के अंतर्गत किसी दिव्य प्रतीक का उसकी मूर्ति अथवा तस्वीर के रूप में ध्यान किया जाता है। उसको पुष्प, मिष्ठान्न, सुगंध तथा जल अर्पित किया जाता है। पूजा शब्द में पू का अर्थ तमिल भाषा में पुष्प है। तमिल भारत की प्राचीन भाषा है और इसका मूल वैदिक संस्कृत से भिन्न है। इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि पूजा दरअसल अवैदिक प्रजातियों का

संस्कार थी। ऐसी प्रजातियां यायावर कम और स्थिर अर्थात स्थायी बसाहटों में निवास करने वाली अधिक थीं।

- हिंदू प्रज्ञा में तुला की विशिष्ट अवधारणा है। किसी भी वस्तु का दाम उसके पैमाने से तय होता था। और चूंकि सभी पैमाने मनुष्य निर्मित हैं, इसलिए सभी मूल्य कृत्रिम हैं। इस प्रकार हरेक राय सिर्फ भ्रांति है, मनुष्य निर्मित पैमाने पर आधारित। अर्जुन ने भी अपने मन में धारणा का ऐसा ही पैमाना तय कर रखा था कि राजकुमार दरअसल वनवासी से श्रेष्ठ होता है। लेकिन किरात द्वारा किसी की क्षमता को आंके जाने का पैमाना ये था कि जो भी द्वंद्व युद्ध जीतेगा, वही श्रेष्ठ कहलाएगा। संसार को अपने-अपने पैमाने से मापी गई राय से आंके जाने को ही 'माया' कहते हैं।
- शिव से अर्जुन का सामना महज पाशुपत अस्त्र पाने तक सीमित नहीं था, बल्कि उसके माध्यम से विनम्रता का सबक भी मिलता है। स्वयं वनवासी बन जाने के बावजूद किसी वनवासी के हाथों पराजय उसके गले नहीं उतरती। क्योंकि अर्जुन उसे सामाजिक रूप में अपने से हेय मानता है।
- व्यास ने अर्जुन को उद्दंड राजकुमार के रूप में चित्रित किया है, जो भीषण प्रतियोगी भाव से ग्रस्त है। श्रेष्ठ बनने के लिए प्रतियोगिता जहां शक्तिशाली उपकरण है, वहीं व्यास हमें इसका प्रयोग दूसरों पर आधिपत्य जमाने के भाव से करने से बचने की शिक्षा देते हैं। शक्ति के बूते आधिपत्य जमाने की मंशा दरअसल जंगलियों की मानसिकता है, सभ्य मनुष्यों की नहीं।
- गढ़वाल क्षेत्र में अब भी पांडव लीला होती है। उसमें कालिया लोहार की कथा, अभिनयपूर्वक सुनाई जाती है। कालिया के बारे में धारणा है कि उसी ने वनवास की अवधि में पांडवों के हथियार गढ़े थे। यह भी मान्यता है कि यह लोहार, शिव का स्वरूप था। इसीलिए वहां उसकी देवता के रूप में पूजा भी की जाती है।

अमरावती में अर्जुन

अर्जुन उसके बाद बर्फीली चोटियों वाले हिमालय पर्वत पर चढ़ने लगा। रास्ते में उसने देखा कि आकाश पर काले-काले बादल घुमड़ रहे थे। फिर उसे बिजली कड़कने पर वज्र दिखाई दिया। उसके माध्यम से स्वर्ग के राजा के राजा और उसके पिता इंद्र उसे, अपने अस्तित्व का भान करवा रहे थे।

अर्जुन को फिर स्वर्ग से उतर कर आता रथ दिखाई दिया। यह इंद्र का ही रथ था। रथ चालक मताली ने अर्जुन को स्वर्ग चलकर अपने पिता से मिलने का निमंत्रण दिया। 'मेरे पिता मुझे क्यों बुला रहे हैं?'

'उन्हें आप की सहायता की आवश्यकता है। उन्हें असुर तंग कर रहे हैं। उन्हें लगता है कि आप अपने पाशुपत के द्वारा देवों की तुलना में असुरों को अधिक आसानी से पराजित कर सकते हैं।'

अपने कौशल की प्रशंसा सुनकर अर्जुन प्रसन्न हुआ। 'अपने पिता की मैं अवश्य सहायता करूंगा। मैं अपना धनुष उठाकर उन्हें तंग कर रहे असुरों को परास्त करूंगा।'

अर्जुन ने देवों के साथ मिलकर अनेक असुरों को पराजित किया। परास्त असुरों में कालकेयस तथा निवटकवचस भी शामिल थे। इंद्र ने अपने पुत्र को सीने से लगाकर उसका स्वर्ग में स्वागत किया। 'मेरे पुत्र स्वर्ग के भोग-विलास का आनंद उठाओ, तुम जो चाहोगे वही पाओगे।'

इसके बाद अर्जुन ने स्वर्ग का भरपूर आनंद उठाया मगर बीच-बीच में अपने भाइयों तथा अपनी पत्नी को याद करके वो उदास भी होता रहा। उसने गंधर्वों से नृत्य प्रशिक्षण लिया। पसीने से भीगे उसके गठीले मगर लोचदार शरीर को वंशी की धुन पर थिरकते देखकर स्वर्ग की अप्सरा उस पर मोहित हो गई।

उर्वशी नामक अप्सरा उस पर मोहित होकर झीने वस्त्रों में उसके पास आई और बोली, 'तुम, मुझसे अभिसार कर लो, ऐसी मेरी कामना है।'

इससे विचलित होकर अर्जुन बोला, 'ऐसा, कैसे हो सकता है। आप मेरे पूर्वज पुरुरवा की पत्नी थीं। इसलिए आप तो मेरे लिए माता के समान हैं।'

'मगर मर्त्यलोक के नियम स्वर्ग लोक में लागू नहीं होते।'

'फिर भी मुझ पर तो वे लागू होते हैं। मैं आपको स्पर्श नहीं कर सकता, अथवा आपकी जैसी, मेरे प्रति कामना है उस रूप में मैं आपकी कल्पना भी नहीं कर सकता।'

उर्वशी ने गुस्से से पांव पटकते हुए कहा, 'तुम मुझे ठुकरा रहे हो, तुम नश्वर! तुमने मुझे ठुकराया? तुम तो निरे नपुंसक हो। तुम्हारा पौरुष तत्काल खत्म हो जाए।'

'लेकिन...'

उर्वशी बड़बड़ाती हुई चली गई। अर्जुन ये सोचकर इंद्र के पास दौड़ा कि वे उसे शाप मुक्त कर देंगे। लेकिन इंद्र उसमें बस संशोधन कर सकते थे। 'तुम पौरुषहीन तो होगे, मगर सिर्फ एक वर्ष की अवधि के लिए। किस वर्ष में ऐसा होना है, ये तुम तय कर लो।'

अर्जुन ने कातर होकर कहा, 'मैं कितना दुर्भाग्यशाली हूं।' इस पर देवराज बोले, 'इस शाप का लाभ उठाओ। अपने वनवास के तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास के दौरान इसे लागू कर लेना।'

- देवता उड़नरथों अथवा विमानों पर यात्रा करते हैं। इससे यह अंदाजा लगा कि महाभारत में उड़न तश्तरी का जिक्र है। ऐसी धारणा है कि वैदिक काल में भी वायुगतिकी की जानकारी उपलब्ध थी और हवाई जहाज तभी बना लिए गए थे। हालांकि तर्कशील लोगों को देवताओं के उड़नरथों का प्रसंग कवि की कोरी कल्पना प्रतीत होता है।
- उर्वशी के नियम अर्जुन से भिन्न हैं। वो तो प्रकृति है और प्रकृति में वासना पर नैतिकता एवं आचार संहिता का कोई नियंत्रण नहीं होता। उससे पूर्व अपनी वासना विजित करने में विफल शांतनु तथा ययाति के विपरीत इस प्रसंग में अर्जुन अपनी वासना पर नियंत्रण पाने में सफल रहता है। वनवास ने उसकी इच्छाशक्ति दृढ़ कर दी थी।
- अप्सराओं एवं देवताओं की आयु मनुष्य की आयु से भिन्न है। उनके जीवन मूल्यों में भी अंतर है। उर्वशी के लिए जो भावोद्वेग और कामसंतुष्टि है वो अर्जुन के लिए संगोत्र संभोग है। व्यास इसके माध्यम से ये दर्शाते हैं कि टकराव एवं विवाद सिर्फ एक पक्ष के सही और दूसरे पक्ष के गलत होने से ही नहीं होता, बल्कि दो व्यक्तियों द्वारा भिन्न मूल्य व्यवस्थाओं के पालन से भी ऐसा हो सकता है।
- महाभारत में हिमालय देवताओं के स्वर्ग की सीढ़ी के रूप में प्रदर्शित है, क्योंकि उसकी चोटियां आकाश को छूती हुई प्रतीत होती हैं।

कथाओं से परिपूर्ण यात्रा

अमरावती के ऐश्वर्य को भोगते समय भी अर्जुन को अपनी पत्नी और अपने भाइयों की चिंता सता रही थी। उसकी संतुष्टि के लिए इंद्र ने लोमश ऋषि को उनका हालचाल जानने तथा हिमालय की बर्फाच्छादित चोटियों के बीच स्थित नर एवं नारायण पर्वत की तीर्थ यात्रा की सलाह देने के लिए पृथ्वी पर भेजा। इंद्र ने कहा, 'उन्हें बता देना कि अर्जुन, अपने पिता के साथ प्रवास पूरा करके उनसे वहीं आकर मिलेगा।'

लोमश जब पांडवों के पास पहुंचे तो उन्हें व्यग्रतापूर्वक अर्जुन को याद करते तथा उसका हालचाल जाने को चिंतित पाया। 'वो अपने पिता के पास रहने का आनंद उठा रहा है। इंद्र ने आपको वनवास की अवधि घूमने-फिरने, नदी तटों, पर्वत शिखरों, गुफाओं में, जामुन वाले द्वीप

जंबूद्वीप पर स्थित स्थानों की यात्रा करने की सलाह दी है। साथ ही आप लोग, ऋषियों का सत्संग करें, वृत्तांत सुनें, नए कौशल सीखें और ज्ञान प्राप्त करें। बारह वर्ष की अवधि तो इंद्र की पलक झपकने में लगे समय से भी कम है, यह फटाफट बीत जाएगी। वापस लौटने पर आप पृथ्वी के परिष्कृत शासक साबित होंगे।'

इस प्रकार पांडवों की लंबी तीर्थ यात्रा आरंभ हुई। धौम्य, नारद, पर्वत और लोमश ऋषियों सहित अनेक ऋषियों को साथ लेकर पांडव दक्षिण की ओर गए, उसके बाद पूरब और फिर पश्चिम में गए। पवित्र नदियों की धाराओं तथा प्राचीन मंदिरों के साए में सुरक्षित सरोवरों में स्नान किया। उन्होंने कंदराओं में तप किया और पवित्र पर्वत शिखरों पर उगते सूर्य को नमस्कार किया। यात्रा से उन्हें जीवन के प्रति नई दृष्टि प्राप्त हुई।

इस यात्रा के दौरान उन्हें, अनेक ऋषियों का सान्निध्य भी मिला। इन ऋषियों में महान तपस्वी वृहदाश्व एवं अर्शितसेन भी शामिल थे। उन्होंने पांडवों को अनेक कथाएं सुनाई तथा विविध दर्शनों पर चर्चा भी की। इस अनुभव ने युधिष्ठिर को और अधिक परिपक्व बनाया। उनके पास भौतिक संपदा भले न थी, मगर आध्यात्मिक संपदा की कोई कमी न थी।

ऋषियों ने युधिष्ठिर को अध्यात्म के अनुसरण तथा भौतिक आवश्यकताओं के मध्य संतुलन स्थापित करने का महत्व समझाया। उन्होंने अतीव वैराग्य को अनुर्वरता के समान बताया। एक समय की बात है जब विभांदक नामक ऋषि हुआ करते थे। उन्होंने अपने पुत्र ऋष्यश्रृंग को महिलाओं के बारे में कुछ भी बताने से इन्कार कर दिया था, उसके परिणामस्वरूप जिस क्षेत्र में

ऋष्यश्रृंग रहते थे वहां भीषण एवं लंबा अकाल पड़ा। वर्षा का आगमन और सूखे का अंत तभी हुआ जब स्थानीय राजा लोमपद की पुत्री शांता ने ऋष्यश्रृंग को अपने रूपजाल से सम्मोहित करके उसे शारीरिक संबंध में निहित सुख का महत्व समझाया।'

उन्होंने, उन्हें विवाह का महत्व भी समझाया। 'ऋशि अगस्त्य अपने पुरखों के अपने सपनों में आने से अत्यंत विचलित थे। उनके पुरखे किसी गहरे कुएं के ऊपर उल्टे लटके हुए थे और उन्होंने कातर होकर कहा कि वे इस नारकीय यातना से अपने पुनर्जन्म के बाद ही मुक्त हो पाएंगे। और उनका पुनर्जन्म तभी हो सकता है, जब उनके वंशज विवाह करके संतान पैदा करेंगे। अपने पुरखों की इच्छा के अनुरूप अगस्त्य ने राजकुमारी लोपामुद्रा से विवाह करके संतानोपत्ति की। उन्होंने इस प्रकार अपने पूर्वजों का ऋण चुकाया और उनके पुनर्जन्म का मार्ग प्रशस्त किया।'

उन्होंने, उन्हें पुत्रों का महत्व भी समझाया। 'कहोड़ नामक व्यक्ति ने कभी अपने अजन्मे पुत्र द्वारा वेदों का अपना ज्ञान दुरूस्त करने से कुपित होकर उसे आठ प्रकार की शारीरिक विकलांगता के साथ पैदा होने का शाप दे डाला। अपनी आठ विकलांगताओं के साथ पैदा होने के कारण अष्टावक्र कहलाए इस बालक ने शास्त्रर्थ में बांदी नामक विद्वान को निरूत्तर करके अपने पिता का सम्मान लौटाया। बांदी ने इससे पहले कभी कहोड़ को ऋषियों की सभा में अपमानित किया था। इस प्रकार अपने पिता द्वारा श्रापित होने के बावजूद पुत्र ने अपने पिता को उसके अपमान से मुक्ति दिलाई।'

उन्होंने, उन्हें अपने वचन पर अटल रहने का महत्व भी समझाया। 'शल नामक राजा ने वामदेव के द्रुत गति से दौड़ने वाले वामी अश्वों को एक महीने के लिए उनसे उधार मांगा और बाद में उन्हें वापिस लौटाने के अपने वचन से मुकर गया। इससे कुपित होकर वामदेव ने अपने तप के बल पर प्राप्त शक्तियों के बूते दानवों का आह्वान करके राजा की हत्या करवा दी। शल की मृत्यु के बाद उसके भाई डाला ने भी अश्वों को वापिस लौटाने से इन्कार कर दिया। उसने, वामदेव की हत्या के लिए तीर छोड़ा मगर वो, उसके ही पुत्र को जा लगा। ये देखकर शल की पत्नी ने ऋषि से अपने पति को क्षमा करने की याचना की और अपने पति पर दबाव डालकर उनके अश्व वापिस दिलवाए जिन पर वामदेव का ही असल अधिकार था।'

उन्होंने राजा को सांसारिक दायित्वों का महत्व इंगित करने संबंधी प्रसंग सुनाए। 'कौशिक ने साधु बनने के लिए अपने बूढ़े माता-पिता को छोड़ दिया। आध्यात्मिक क्रियाओं का अभ्यास किया तथा दिव्य शक्तियां प्राप्त कीं। इन शक्तियों से उन्हें आकाश में उड़ते पक्षी को भी आंख के इशारे मात्रा से हत्या करने का कौशल तो प्राप्त हो गया मगर मानसिक शांति नहीं मिली। पहले गृहिणी तथा फिर कसाई से उन्हें यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि मानसिक शांति संसार को त्यागने से नहीं बल्कि उसकी प्राप्ति, आत्मिक ज्ञान एवं विश्व को उसके वास्तविक रूप में समझने से होती है। आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति के बाद हरेक अपने सांसारिक कर्तव्य निर्विघ्न निभा सकता है। यह हरेक को स्वीकार करना चाहिए कि उसका जीवन पूर्वजन्म के कर्मों की सौगात है और तमाम परिस्थितियों से निपटने की शक्ति हम में अंतरनिहित है। ये भान होने पर कि सत्य का निवास वन में नहीं बल्कि हमारे हृदय के भीतर है, कौशिक ने घर लौट कर अपने बूढ़े माता-पिता की भरपूर सेवा की। दैवीय शक्तियों के बजाए कौशिक को वास्तविक सांसारिक ज्ञान से मानसिक शांति मिली।'

उन्होंने लालच के प्रसंग भी उन्हें सुनाए, 'इकलौते पुत्र जंतु की हत्या उसी जैसे सौ पुत्रों को पाने के लालच में कर लेने वाले राजा सोमक को भगवान ने दंडित किया।'

उन्होंने क्षमा प्रधान प्रसंग भी उन्हें सुनाए, 'रैभ्य नामक ऋषि ने देखा कि उनकी पुत्रवधू, यवक्री नामक युवक से व्यभिचाररत है। इससे क्रोधित होकर उन्होंने यवक्री की हत्या कर दी। यवक्री के पिता भारद्वाज ने इससे दुखी होकर रैभ्य को शाप दिया कि उनकी मृत्यु उनके पुत्र परवसु के हाथों होगी। परवसु की पत्नी पर ही उन्होंने यावक्री पर डोरे डालने का आरोप लगाया था। शाप कुछ दिन बाद ही फलीभूत हो गया। परवसु ने रैभ्य को वन्य पशु समझ कर मार दिया। परवसु ने अपना अपराध छिपाने के लिए पिता की हत्या का आरोप अपने छोटे भाई अरवसु पर लगा दिया। अरवसु बहुत रोया-चिल्लाया कि वो निर्दोष है लेकिन उसका किसी ने भी भरोसा नहीं किया। इससे आहत व क्रोधित होकर वो वनगमन कर गया। उसने वहां पर घोर तप किया ताकि तांत्रिक शक्तियां प्राप्त करके अपने बड़े भाई को सबक सिखा सके, तथा अपने पर लगा पितृहंता का कलंक मिटा सके। तपस्या करते-करते अरवसु को दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। उसकी रोशनी में अरवसु की तमाम वासना, मोह, क्रोध आदि समाप्त हो गए। उसके साथ ही प्रतिशोध का भाव भी उड़ गया तथा उसके चित्त पर शांतिछा हो गई। अब अपने भाई को दंडित करने के बजाए उसे यह अहसास हुआ कि उसको क्षमा करने में अधिक आनंद है।'

उन्होंने युधिष्ठिर को उदारता के माध्यम से अपनी विरासत छोड़ने संबंधी प्रसंग भी सुनाया। 'इंद्र के स्वर्ग में सदियां बिताने के बाद इंद्रद्युम्न को भगा दिया गया। उनसे कहा गया कि यदि पृथ्वी पर उनके गुणी कार्य लोगों को अब भी याद होंगे तभी वो स्वर्ग में वापिस आ पाएंगे। इंद्रद्युम्न सीधा मार्कंडेय ऋषि के पास गए। मार्कंडेय पृथ्वी पर अधिकतर मनुष्यों से अधिक लंबे समय तक जीवित रहे। लेकिन मार्कंडेय उसे स्वयं तो पहचान नहीं पाए अलबत्ता उसे अपने से भी लंबे समय से जीवित उल्लू के पास ले गए। उल्लू को भी उनके बारे में कुछ याद नहीं आया। इंद्रद्युम्न को उसने बगुले के पास भेज दिया। दुर्भाग्य से बगुला भी उन्हें नहीं पहचान पाया। बगुले ने बूढ़े राजा

को अकूपर नामक कछुए के पास भेज दिया। कछुआ अन्य जीव-जंतुओं से अधिक लंबे समय से जीवित था और उसे इंद्रद्युम्न ऐसे राजा के रूप में याद थे जिन्होंने वो सरोवर बनाया था, जिसमें वो रहता है। लेकिन इंद्रद्युम्न को याद ही नहीं था कि उन्होंने कभी सरोवर का निर्माण करवाया था। तब कछुए ने उन्हें स्मरण कराया कि इंद्रद्युम्न ने सरोवर निर्माण के बारे में सोचा तो नहीं था, लेकिन उनकी उदारता के कारण वो अस्तित्व में आ गया। राजा ने इतनी सारी गाय दान कीं और उन्होंने आते-जाते इतनी सारी धूल उड़ाई कि धरती में गड्ढा हो गया तथा बारिश आने पर वहां पानी जमा हो गया। इस प्रकार राजा की उदारता से वहां सरोवर बन गया तथा उसमें जीव-जंतु पलने लगे। सरोवर के भीतर भी अनेक मछली, कछुए तथा सर्प एवं पक्षियों ने बसेरा कर लिया। इस प्रकार इंद्रद्युम्न का नाम हमेशा जीवित रहा–पृथ्वी पर अनेकों ने उनके सत्कार्यों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में लाभ उठाया। इस जानकारी के कारण इंद्रद्युम्न दोबारा स्वर्ग पहुंचकर देवताओं के साथ निवास करने लगे।'

ऋषियों ने युधिष्ठिर को उनके महान पूर्वज कुरु के बारे में बताया। उन्हीं के नाम पर हस्तिनापुरी के आसपास के क्षेत्र का नाम कुरुक्षेत्र पड़ा। 'कुरु अपने मांस का बीज और अपने खून से सींचकर जब धरती को जोतते रहे तो इंद्र घबरा कर प्रकट हुए, और पूछा, उन्हें क्या चाहिए? कुरु को अपने लिए कुछ भी नहीं चाहिए था। उन्होंने सिर्फ इतनी इच्छा जताई कि उनके द्वारा जोती गई जमीन पर मृत्यु को प्राप्त होने वाले सभी सीधे स्वर्ग जाएं। इंद्र ने उन्हें इसका वरदान तो दिया, मगर एक शर्त पर। उसके लिए कुरुक्षेत्र में सिर्फ मरना काफी नहीं था बल्कि मृत्यु का प्रकार भी महत्वपूर्ण होगा। संसार त्यागने के बाद अथवा युद्ध में मृत्यु होने पर ही वो वरदान लागू होगा।'
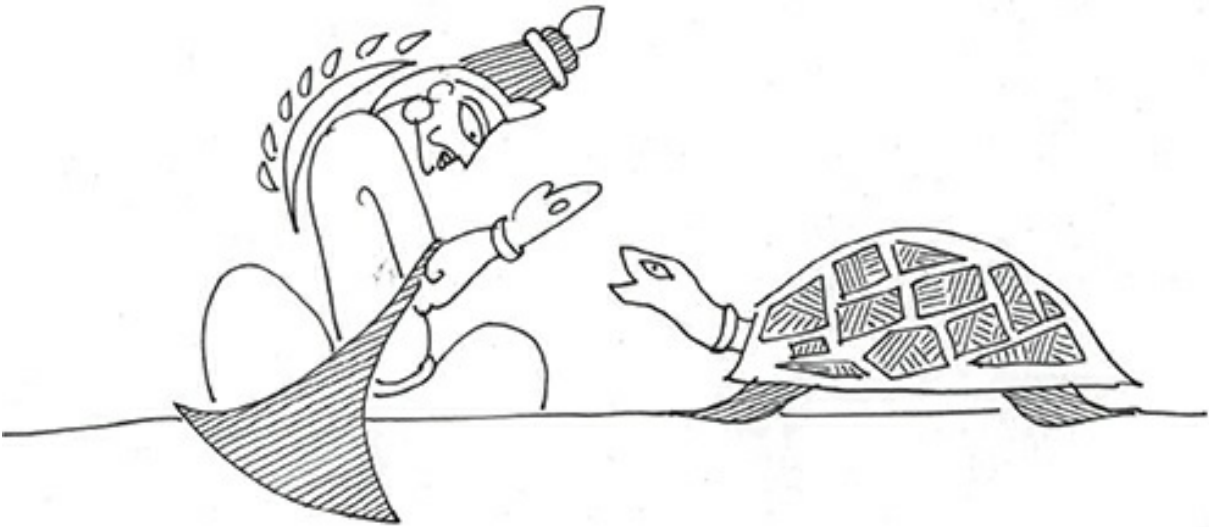
- बारह वर्ष वनवास के दौरान पांडव, पत्नी सहित कभी अकेले नहीं रहे। उनके राजर्षि धौम्य तथा अनेक ऋषि-मुनि हमेशा उनके साथ रहे। पांडवों को उन्होंने पवित्र स्थलियों की यात्रा कराई तथा अनेक प्रेरक कथाएं सुनाई। ऐसी मान्यता है कि तीर्थ यात्रा तथा पवित्र कथा श्रवण से कर्मों का बोझ हल्का हो जाता है। सभी प्रकार के कर्मों के बीच संतुलन स्थापित हो जाता है। अभागे पांडव इस प्रकार वनवास की लंबी अवधि का सदुपयोग अपने भाग्य को परिष्कृत करने के लिए करते हैं।

- हिंदू आध्यात्मिक कर्मकांड में तीर्थ यात्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। महाभारत में हरेक अवसर का प्रयोग भारत के पवित्र स्थलों के वर्णन तथा उनमें प्रत्येक से संबंधित वृत्तांत सुनाने के लिए किया गया है। इन वृत्तांतों ने बसाहट में निवासरत गृहस्थों की कल्पनाशीलता को पंख लगाए और वे जीवन में कभी न कभी तीर्थ यात्रा पर जाने को प्रेरित हुए। विद्वानों ने यह समझ लिया था कि अपने भीतर सिमटे समुदायों के दृष्टिकोण को विस्तृत बनाने का सर्वोत्तम उपाय यात्रा है।
- हिंदू परंपरा में कथावाचन एवं श्रवण का अत्यधिक महत्व है क्योंकि उनसे पूर्ण सत्य का ज्ञान मिलता है। उनसे व्यक्ति की विश्व दृष्टि विकसित होती है।

राक्षसों का सामना

ग्यारह वर्ष बीत गए। विभिन्न देवियों एवं देवताओं से संबद्ध तीर्थों की यात्रा के बाद पांडव अंततः उत्तर की ओर रवाना हो गए। ध्रुव तारे की दिशा में हिमाच्छादित हिमालय की ओर, क्योंकि ऋषि लोमश ने उन्हें बताया था कि अमरावती से लौट कर अर्जुन उन्हें, वहीं पर मिलेगा।

पांडवों के साथ हिमालय जाने वाले ऋषियों के जत्थे में ऋषिवेश में राक्षस भी था। उसका नाम जटा था। एक दिन जब सारा जत्था आराम कर रहा था, ऋषि फूल चुनने गए थे और भीम आखेट पर निकला हुआ था, जटा ने अपना वास्तविक रूप धारण किया। उसने दैत्याकार धर कर युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी को अपनी दोनों मुट्ठियों में भींचा और जंगल की ओर दौड़ पड़ा। वो तीनों पांडवों को खाकर उनकी पत्नी को भोगना चाहता था।

सहदेव उसकी मुट्ठी में ही कसमसा कर चिल्लाया, 'बचाओ, बचाओ,' यह सुनकर भीम सतर्क हो गया। वह आखेट छोड़कर आवाज की दिशा में दौड़ पड़ा।

इस बीच युधिष्ठिर ने भी जटा से कहा, 'तुम बेवकूफ हो। तुम्हारी इस हरकत से तुम्हें कोई पुण्य नहीं होगा। अगले जन्म में मनुष्य अथवा देवता के रूप में जन्म लेने की तुम्हारी संभावना हमारी हत्या और हमारी पत्नी से दुराचार से कमाए गए पाप के कारण समाप्त हो जाएगी। तुम अपने लिए कुआं खोद रहे हो, तुम्हारे पास उच्च योनि में पुनर्जन्म लेने की आशा है मगर अब तुम पशु, अथवा सब्जी, अथवा उससे भी बेकार रूप में यानी पत्थर बन कर अगला जन्म लोगे।'

युधिष्ठिर के वचन सुनकर जटा सोच में पड़ गया। सोचने के चक्कर में उसकी गति मंद पड़ गई। अब वो दौड़ने के बजाए चलने लगा। इससे भीम को उस तक पहुंचने में आसानी हुई और उसने गदा से उस पर वार किया। जटा जमीन पर गिर पड़ा और उसकी पकड़ ढीली पड़ते ही युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी उठकर भाग निकले। फिर भीम ने उसके मुंह पर इतने घूंसे जड़े कि आखिरकार उसने दम तोड़ दिया।

जटा के साथ अपनी मुठभेड़ के बाद, पांडवों ने फिर उत्तर दिशा पकड़ ली। घाटी तथा हिमालय के अनेक शिखरों से विहंगम दृश्य बहुत नयनाभिराम था मगर चढ़ाई एकदम खड़ी और खतरनाक थी। हवा कभी-कभी इतनी तेज चलती थी कि पांडवों को पीछे धकेल देती थी। उनके जोड़ भी ठंड से जमने लगते थे जिससे मजबूर होकर उन्हें गुफाओं में शरण लेकर आराम करना पड़ा था। ऊंचाई पर हवा की कमी से युधिष्ठिर की सांस उखड़ने लगी और थकान के मारे द्रौपदी बेहोश हो गई। नकुल और सहदेव ने दौड़कर द्रौपदी के हाथ-पैर रगड़े और उसे प्यार से समझा कर होश दिलाया।

उन्हें चढ़ाई जारी रखनी थी। शिखर पर पहुंचकर अंततः उन्हें अर्जुन से पुनर्मिलन करना था।

- पांडवों ने हिमालय में जो दिन बिताए उनका स्थानीय लोगों पर गहरा असर पड़ा। नदियां, दर्रे, पर्वत शिखर तथा कंदराएं जो महागाथा की विभिन्न घटनाओं एवं चरित्रों से संबंधित थीं, आज भी उसी रूप में प्रसिद्ध हैं। गढ़वाल क्षेत्र में आज भी पांडव लीला गाई एवं अभिनीत की जाती है। इस लीला में पांडवों की बहादुरी के कारनामों को याद किया जाता है। वे स्थानीय संस्कृति में रचे-बसे हैं।
- पांडव जितनी बार वन में गए, उनकी राक्षसों से हिंसक मुठभेड़ हुई। उनमें हिडिंब, बक, किरमिर तथा जटा जैसे लड़ाकू राक्षस शामिल थे। ये शायद अवैदिक लड़ाकू प्रजातियों के थे, जिनमें से घटोत्कच जैसे कुछ राक्षसों ने पांडवों से अच्छे संबंध बनाए।
- नेपाल की नेवार प्रजाति के लोग भीम को भैरव रूप में पूजते हैं। भैरव को शिव का हिंसक रूप माना जाता है। वे लोग भैरव पर बकरे आदि की बलि चढ़ाते हैं।

अर्जुन की वापसी

ये समझ में आने पर कि चढ़ाई और भी कठिन होती जाएगी, भीम ने अपनी राक्षस पत्नी हिडिंबी से उत्पन्न पुत्र घटोत्कच को बुलाने का निर्णय किया। उसे अपने पुत्र द्वारा कहे गए अंतिम शब्द याद आए, 'आपको कभी भी मेरी सहायता चाहिए होगी तो बस मेरा स्मरण करना और मैं हाजिर हो जाऊंगा।'

हुआ भी ऐसा ही। भीम ने जैसे ही घटोत्कच का स्मरण किया, राक्षस युवक उसके सामने आ खड़ा हुआ। उसके पास मनोसंचार एवं उड़ने, दोनों प्रकार की शक्ति थी। वो अपने साथ राक्षसों का पूरा दल लेकर आया था। उन्होंने पांडवों और उनकी पत्नी को अपने कंधे पर बैठा लिया और पर्वत के सबसे ऊंचे शिखरों तक पहुंचा दिया।

पांडव, यक्षों की नगरी अलकापुरी पहुंचे तो यक्षराज कुबेर ने उनकी आवभगत की। यक्षों एवं राक्षसों दोनों के ही साझे पूर्वज थे, पुलत्स्य ऋषि के पुत्र वैश्रवा। यक्ष जहां उत्तर में हिमालय पर रहते थे, वहीं राक्षस अधिकतर दक्षिण में वनों के निवासी थे। यक्ष खजाने के रक्षक थे और पहेलियां बुझाना उनका खास शौक था। कुबेर के पास ऐसा नेवला था जो मुंह खोलने पर हर बार जवाहरात बरसाता था।

पांडवों ने बदरी के भी दर्शन किए। इस कंदरा में कभी नर और नारायण ने तप किया था। पांडवों के साथ गए लोमश एवं धौम्य ऋषि ने बताया कि नर एवं नारायण का धरती पर फिर एक बार विचरण करना अवश्यंभावी था। ऐसी कानाफूसी हुई कि उन्होंने अर्जुन एवं कृष्ण के रूप में जन्म लिया है।

उसके कुछ ही देर बाद अर्जुन जगमगाते उड़न रथ पर अमरावती से उतर कर आया। द्रौपदी दौड़कर उसके गले लगी। ऋषियों ने उसे पुष्पमाल पहना कर स्वागत किया। उसके भाइयों ने दिव्यास्त्र दिखाने का आग्रह किया जो उसने देवताओं तथा भगवान से प्राप्त किए थे।

उसने जैसे ही अस्त्र बाहर निकाले पृथ्वी कांपने लगी, हवा ठहर गई और सूर्य फीका पड़ गया। चारों दिशाओं से सभी प्राणि चिल्ला उठे, 'सावधान, सावधान, ये शक्तिशाली अस्त्र हैं। ये समूची सृष्टि को नष्ट कर सकते हैं। इनका ऐसे अपमान मत कीजिए।' अर्जुन ने तत्काल दिव्यास्त्रों को समेटा और उन्हें दिव्य वस्त्रों में लपेट कर रख दिया ताकि कोई अन्य मनुष्य उन्हें न देख पाए।

- हिमालयी क्षेत्र में चप्पे-चप्पे पर पांडवों से संबंधित लोक कथाएं बिखरी पड़ी हैं। उन्हें एक बार दुधारु पशुओं का झुंड चरते हुए दिखा। उन्हें, उनके बीच सबसे भयंकर सांड के रूप में भगवान शिव दिखे। भीम ने उस सांड को पकड़ने का प्रयास किया तो वो गायब हो गया, मगर उसका कूबड़ धरती पर दिखाई देने लगा। उस कूबड़ की ही आज भी केदारनाथ के रूप में पूजा होती है। केदारनाथ, भगवान शिव के बारह ज्योतिर्लिंगों में भी शामिल हैं। इसी प्रकार अर्जुन को एक बार ऐसे क्षत्रिय ने हरा दिया जिसे वो तो नहीं जानता था, लेकिन वह उसका ही पुत्र नागार्जुन था। ये पुत्र अर्जुन के संसर्ग से स्थानीय नागवंशी राजकुमारी की कोख से पैदा हुआ था। ये कथा बब्रुवाहन की कथा से मिलती-जुलती है जो बाद में संस्कृत के संस्करण में मिली थी। पांडवों की ही अन्य कथा में अर्जुन द्वारा गैंडे के शिकार का उल्लेख है, जिसे वो अपने मृत पिता को समर्पित करना चाहता था।
- 100 सी.ई. काल के आसपास के नाटक 'मद्यमाव्ययोगम् 'में भीम किसी राक्षस के चंगुल से ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करता है। बाद में पता चलता है कि वो घटोत्कच था।
- रामायण में राक्षसों को सुरुचिपूर्ण नस्ल के रूप में दर्शाया गया है। उनका संबंध यक्षों से बताया गया है। वे स्वर्णिम नगरियों में निवास करते थे। उनके पास उड़नरथ थे। लेकिन महाभारत में वे जंगली, संवेदनाशून्य रूप में चित्रित हैं, जिनका सुरुचि से कोई लेना-देना नहीं है।

बलराम एवं दुर्योधन की पुत्रियां

घटोत्कच के वापस जाने की घड़ी आ गई थी। अपनी विदाई से पूर्व घटोत्कच ने अपने पिता के परिवार को द्वारका तथा हस्तिनापुरी में यादवों तथा कौरवों की गतिविधियों का विवरण सुनाने का निर्णय किया।

घटोत्कच ने बताया, 'द्रौपदी के बच्चे सुरुचिपूर्ण और जवान हो गए हैं और सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु तो प्रसिद्ध योद्धा बन गया है। वे सभी कृष्ण की संतानों के साथ आनंदपूर्वक रह रहे हैं। बलराम की पुत्री वत्सला को अभिमन्यु से प्रेम हो गया था। उसका दुर्भाग्य था कि बलराम ने उसका विवाह दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण से तय कर दिया था। विवाह तिथि निकट आने पर वत्सला ने परेशान होकर कृष्ण से विचार-विमर्श किया और कृष्ण ने मुझे बुलावा भेज दिया। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि वत्सला को अपने कंधे पर बैठा कर मैं उसे उड़ाकर द्वारका के बाहर पहाड़ों पर ले जाऊं। वहां पर अभिमन्यु उससे गंधर्वों की रस्मों के अनुसार वृक्षों को साक्षी मान कर विवाह कर लेगा। उन्होंने फिर मुझसे वत्सला का रूप धारण करके दुल्हन बन जाने का स्वांग करने को कहा। विवाह के दौरान मैंने लक्ष्मण का हाथ इतने जोर से दबाया कि वो अचेत हो गया। मेरा भेद खुलने पर द्वारका में हड़कंप मच गया। कौरवों ने यादवों पर अपने से धोखाधड़ी का आरोप लगाया।'

भीम ने मुस्करा कर कहा, 'दुर्योधन तो आपे से बाहर हो गया होगा। वो बलराम की बहन, सुभद्रा से विवाह करना चाहता था, मगर उसने, उसे छोड़कर अर्जुन से विवाह कर लिया। वो बलराम की पुत्री वत्सला से अपने पुत्र का विवाह करना चाहता था, लेकिन उसने भी अर्जुन के पुत्र से विवाह कर लिया।'

घटोत्कच ने आगे बताया, 'दुर्योधन, अपमान का ये घूंट पीकर चुप नहीं बैठा, उसने अपनी पुत्री लक्ष्मणी का कृष्ण के पुत्र संब से प्रस्तावित विवाह रद्द करने की घोषणा कर दी। संब ने भी इस घोषणा से विचलित होने के बजाए चुपके से हस्तिनापुरी में प्रवेश करके लक्ष्मणी को भगा लाने का प्रयास किया। वो, लक्ष्मणी से विवाह करने पर उद्धत था। लेकिन वो अपना मंसूबा पूरा कर पाने से पहले ही पकड़ा गया। उसे पकड़ कर बंदीगृह में ठूंस दिया गया। बलराम को जब इस बारे में पता चला, तो अकेले हस्तिनापुरी पहुंच गए और संब को उसकी प्रेमिका के साथ सकुशल अपने घर जाने देने का आग्रह किया। दुर्योधन ने इससे साफ इन्कार कर दिया और यादवों का ये कहकर अपमान किया कि वे हमेशा अपना वचन तोड़ देते हैं। उसने यादवों के पूर्वज यदु का भी मखौल उड़ाया कि वो अपने पिता के लिए कष्ट उठाने से मुकर गया था इसलिए उसके वंजश कभी भी राजा नहीं बन सकते।

दुर्योधन की बकवास सुनकर बलराम क्रोध में आगबबूला हो गए और उन्होंने विराट रूप धारण कर लिया। उनका सिर आकाश छूने लगा। उन्होंने अपना हल उठाया और उसकी नोंक हस्तिनापुरी की नींव में गाड़ कर समूची नगरी को खींचा और समुद्र की ओर चल दिए। अब जाकर दुर्योधन की समझ में आया कि बलराम सामान्य मानव नहीं थे। बलराम वैसे भी उसके गदा युद्ध के गुरु तथा पुराने मित्र थे। पांडवों का पक्ष लेने वाले कृष्ण के विपरीत बलराम ने उसको हमेशा अतिरिक्त स्नेह दिया। उन्हीं बलराम को अब दुर्योधन ने अपने अहंकार से क्रोधित करके उनका नया विकराल रूप देखा तो उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। भयभीत होकर वो, बलराम के चरणों में लोटकर क्षमा याचना करने लगा। बलराम अपने स्वभावानुसार जितने अधिक क्रोधित हुए थे, उसी तेजी से उन्होंने खुद को शांत कर लिया। उन्होंने कौरवों को क्षमा कर दिया और कृष्ण के पुत्र तथा उसकी नई पत्नी को लेकर द्वारका चले आए।'

पांडवों ने बलराम के विराट रूप की कल्पना की। साथ ही सोचने लगे कि वे आखिर किस के अवतार हैं और ऋषियों ने उन्हें बताया कि वे शेष के अवतार हैं। सनातन। वो, जो ईश्वर के निद्राग्रस्त होने तथा संसार के नष्ट होने पर भी अपने अस्तित्व में रहेंगे। वे आदि हैं, जो सृष्टि के अस्तित्व में आने से पहले और नष्ट होने के बाद भी अनंत रहेंगे। वे विराट सर्प हैं, जिनकी कुंडली पर भगवान, विष्णु के रूप में विराजमान हैं।

इन सब कहानियों से पांडवों के सनातन संदेह की पुष्टि हुई, बलराम और उनके छोटे भाई कृष्ण जैसे दिखते हैं, उतने सीधे-सादे हैं नहीं।

- दुर्योधन बलराम का चहेता था। उनकी इच्छा थी कि उनकी बहन दुर्योधन से और उनकी पुत्री, दुर्योधन के पुत्र से विवाह करे। उनके दोनों प्रयास कृष्ण ने नाकाम कर दिए और दोनों का विवाह अर्जुन से तथा उसके पुत्र से करवा दिया।
- ऐसी मान्यता भी है कि बलराम दरअसल भगवान शिव के अवतार थे। इसीलिए उनका स्वभाव निष्कपट और वैराग्यपूर्ण था। वे प्रेम में मगन हो जाते थे, इसीलिए कौरवों के दोष नहीं देख पाए।
- बलराम की पुत्री को अलग-अलग लोक कथाओं में भिन्न नामों वत्सला एवं शशि रेखा के रूप में चित्रित किया गया है। इस कथा का चित्रण महाराष्ट्र में 19वीं शताब्दी की पांडुलिपियों में चित्रकथी शैली में मिला है।
- कृष्ण के पुत्र तथा दुर्योधन की पुत्री के विवाह का प्रसंग भागवत पुराण में वर्णित है।
- दो विवाहों की इस कथा में राजनैतिक पहलू भी देखा जा सकता है। इनमें एक विवाह यादव स्त्री वत्सला का है और दूसरा कौरव स्त्री लक्ष्मणी का है। इन विवाहों के माध्यम से अभिमन्यु की पत्नी का यादव परिवार पांडवों का साथ देने को मजबूर हो जाता है तथा संब की पत्नी के परिवाजन कौरवों को भी यादवों का साथ देना पड़ना है। इस प्रकार इन विवाहों के माध्यम से शत्रु भी एक ही विशाल कुटुंब में शामिल हो जाते हैं जिससे किसी एक परिवार का पक्ष लेना दुष्कर हो जाता है।
- दार्शनिक स्तर पर सोच समझ कर तय किए गए विवाह तथा प्रेमवश होने वाले विवाह के बीच अंतर दिखाई देता है। प्रेम विवाह भावनाओं और तय शादियां बुद्धिमानी का प्रतीक हैं। उचित व्यवहार क्या है? विवाह जैसे मामले में कृष्ण बहुधा बुद्धि के बजाए दिल का साथ देते प्रतीत होते हैं। अथवा क्या ऐसा वे वास्तव में करते हैं? क्योंकि विवाह का अर्थ राजनैतिक गठजोड़ भी होता है और कृष्ण को इसका भलीभांति भान है।

भीम को हनुमान का सबक

हवा के साथ एक दिन स्वर्ण कमल उड़कर आया। उसकी हजारों पंखुड़ियां तथा नैसर्गिक खुशबू थी। द्रौपदी ने पूछा, 'क्या मुझे ऐसे और फूल मिल पाएंगे?' वो अपनी खुशी छिपा नहीं पा रही थी।

भीम ने बड़े लंबे समय बाद अपनी पत्नी को इतना प्रसन्न देखा था। इसलिए उसकी खुशी के लिए भीम ने कहा, 'हां, हां, क्यों नहीं?' और जिस दिशा से फूल उड़कर आया था, उसी ओर रवाना हो गया। वो सीधा चलता, गया कहीं नहीं मुड़ा। लंबे डग भरता, तेजी से अधीरता और दृढ़ निश्चय के साथ, अपने रास्ते की हर वस्तु को वह धराशायी करता जा रहा था। पत्थर, पहाड़, वृक्ष, पक्षी, वन्य पशु सब उसका रास्ता, छोड़ते चले गए। वो तो धुन में मतवाला हुआ जा रहा था। कष्ट झेलती अपनी पत्नी के लिए फूल लेने, जिनसे वह इतनी प्रसन्न हो गई थी।

चलते-चलते भीम अंततः हरी-भरी वाटिका में पहुंचा। वहां इतनी घनी वनस्पति थी कि सूर्य की रोशनी धरती पर नहीं पड़ती थी। उसे वहां पर बूढ़ा विशालकाय बंदर जमीन पर उसका रास्ता रोके पड़ा मिला। भीम अधीर होकर, चिल्लाया, 'किनारे हटो।'

बंदर ने क्षीण स्वर में कहा, 'इस बुढ़ापे में मुझसे हिला-डुला भी नहीं जाता। मेरी पूंछ को किनारे धकेल कर तुम आगे निकल जाओ।'

भीम ने जवाब दिया, 'अगर आप ऐसी ही कहते हैं तो ठीक है' और बूढ़े बंदर की पूंछ दोनों हाथों से किनारे खींचने लगा। लेकिन ये क्या, पूंछ इतनी भारी थी कि वो दोनों हाथों के बल से भी उसे खिसका नहीं पा रहा था। वो अत्यंत सुदृढ़ थी। भीम, बंदर की पूंछ से जूझ ही रहा था कि अचानक उसकी समझ में आया, हो न हो ये हनुमान हैं। महाबलशाली हनुमान दरअसल उस वानर सेना के मुखिया थे, जिसने रावण के शिकंजे से सीता को मुक्त कराने के लिए राम की सहायता की थी। हनुमान को अविनाशी माना जाता है। भीम के समान ही हनुमान भी पवन अथवा वायु पुत्र थे। उस लिहाज से हनुमान उसके बड़े भाई हुए।

बूढ़े बंदर ने पूंछ फटकार कर सीधे बैठते हुए उससे कहा, 'हां मैं वहीं हूं, जिसके बारे में तुम सोच रहे हो, मैं तुम्हारा भाई हूं।' उनकी आंखें ज्ञान एवं करुणा से भरपूर थीं। भीम को फौरन यह समझ में आ गया कि हनुमान के माध्यम से कृष्ण उसे विनम्रता का पाठ पढ़ा रहे थे। यह समझते ही उसने हनुमान को दंडवत प्रणाम किया और अपनी यात्रा में आगे बढ़ गया। अब वो उसके कदम कम अभिमानी तरीके से पड़ रहे थे।

भीम अंततः उस सरोवर के तट पर पहुंचा, जहां उसे हजारों सुगंधित स्वर्ण कमल खिले हुए मिले। उसने जैसे ही कमल तोड़ने को हाथ बढ़ाया, वहां सरोवर के रक्षक गंधर्वों ने उस पर हमला

कर दिया। भीम ने हाथ घुमाकर उन्हें भिनभिनाते हुए मच्छरों के समान झटका और फूल तोड़ने लगा, उसके बाद वह फूलों का मोटा गुच्छा लेकर अपने भाइयों के पास पहुंचा तथा द्रौपदी उसके हाथों में इतने सारे फूल देखकर खूब खुश हुई।

- शिव द्वारा अर्जुन को सबक दिए जाने के समान हनुमान ने भीम को विनम्रता का पाठ पढ़ाया। वनवास ने पांडवों को परिष्कृत करके बेहतर राजा बनाया। इस प्रकार वनवास की त्रासदी मनुष्य को परिष्कृत बनाने के लिए शायद किसी दिव्य योजना से प्रेरित थी।
- भीम ने एक बार बुखार चढ़ने का बहाना करके द्रौपदी से पैरों की मालिश करने का आग्रह किया। उसने लंबे-लंबे फल बिछौने पर बिछाए और उन पर चादर ढंक दी। द्रौपदी ने भी बिना चादर हटाए उन्हें भीम के ठोस अंग समझ कर उनकी मालिश कर दी। उसका पति दूर से खड़ा मजे लेता रहा। सच पता चलने पर द्रौपदी इतनी अधिक क्रोधित हुई कि उसने फलों को शाप दे दिया। भविष्य में वो फल सपाट नहीं रहेगा, उसकी खाल पर कांटे होंगे। इसीलिए कटहल के छिलकों में कांटे जैसे उभरने लग गए।
- हिमालय निवासियों के नैन-नक्श मैदानी लोगों की शक्ल-सूरत से भिन्न थे। तर्कशील लोग कहते हैं कि इसीलिए आर्यों द्वारा उन्हें राक्षस एवं यक्ष पुकारा गया।
- भीम और द्रौपदी की प्रेमलीला अनेक लोक मान्यताओं में विद्यमान है। तंजौर के अश्व नृत्य में काल्पनिक घोड़ों के सवार भीम और द्रौपदी के प्रतीक हैं।

द्रौपदी द्वारा रहस्य की स्वीकारोक्ति

द्रौपदी के अपमान की स्मृतियां भीम को मथती रहती थीं। उसे खुश करने का वो कोई अवसर नहीं गंवाता था। लेकिन धीरे-धीरे समझ गया कि वैसा, वो कभी नहीं कर पाएगा। वो हमेशा मुंह लटकाए रहती। शारीरिक रूप में भी उसमें शिथिलता आ गई थी, वो हालांकि हजारों स्त्रियों को संतुष्ट करने की स्थिति में था लेकिन द्रौपदी को पूर्णतः संतुष्ट नहीं कर पाता था। वो सोचने लगा, क्यों?

बारह वर्ष की अवधि जब समाप्त हुई तो पांडवों को समझ में आया कि वे वनवास शुरू होने से पहले जैसे थे, वैसे अब नहीं बचे थे। युधिष्ठिर ने संयम करना सीख लिया था। अर्जुन और भीम दोनों को ही विनम्रता का सबक मिल चुका था। लेकिन द्रौपदी, उसने भी कोई सबक लिया था?

वन में घूमते हुए द्रौपदी को एक दिन जंबू अर्थात जामुन के पेड़ पर चिकना-सुंदर सा फल लटकता दिखा। उसे देखकर उसके मुंह में पानी आ गया। उसने जैसे ही वो फल तोड़ा, उसे पेड़ की आवाज सुनाई पड़ी। 'तुमने, ये क्या किया? ये फल यहां पिछले बारह वर्ष से लटका हुआ था, इस वृक्ष की दूसरी ओर ऋषि बैठे हैं, जो बारह वर्ष की लंबी अवधि से तपस्यारत ही हैं। आज के अगले किसी प्रहर में वो ऋषि अपनी तपस्या समाप्त करेंगे। साथ ही वे यह फल भी खाने वाले थे। बारह वर्ष में वे पहली बार कुछ खाते! लेकिन अब इस फल को अपने हाथ से तोड़ कर तुमने अपवित्र कर दिया, वे भूखे रहेंगे और उन्हें भूखा रखने का पाप तुम्हें ही लगेगा।

इससे भयभीत द्रौपदी अपने पतियों को बुला लाई और उनसे कोई उपाय करने की याचना की। 'भीम तुम महाबली हो, क्या तुम फल को वापस वृक्ष पर जोड़ दोगे।' भीम ने असहायता जताते हुए सिर हिलाकर नकार दिया। 'क्या तुम अर्जुन? क्या तुम्हारे तीर इसे जोड़ देंगे,' अर्जुन ने भी इन्कार कर दिया। शक्ति एवं कौशल से अनेक काम किए जा सकते थे, लेकिन पेड़ से टूटे फल

को फिर से पेड़ पर जोड़ देना संभव नहीं था।

वृक्ष गरजा, 'द्रौपदी यदि तुम्हारी शुचिता सचमुच बरकरार रहती तो तुम अपनी शुचिता के बल पर इसे जोड़ सकती थीं।'

'लेकिन मेरी शुचिता को क्या हुआ? अपने पांच पति होने के बावजूद मैं अपने उस पति के प्रति हमेशा समर्पित रही, जिसे पूरे साल मेरे कक्ष में आने की अनुमति थी।'

'द्रौपदी तुम झूठ बोल रही हो, तुम किसी अन्य को अधिक प्यार करती हो।'

द्रौपदी ने फिर कहा, 'मैं कृष्ण से प्रेम करती हूं, लेकिन मित्र के रूप में, पति अथवा प्रेमी के रूप में नहीं,' वो अपनी अंतरचेतना में बसे विचारों पर सार्वजनिक चर्चा से विचलित थी।

'तुम जिससे प्यार करती हो, वो कोई और है। और कोई है! द्रौपदी, सच-सच बताओ।'

द्रौपदी ने आखिरकार स्वीकार कर लिया, वो अपने गुप्त भावों की खातिर ऋषि को भूखा नहीं रख सकती थी। उसने सच पर से पर्दा हटाया, 'मुझे कर्ण से प्रेम है। उसकी जाति के कारण उससे विवाह न करने का मुझे खेद है। मैंने यदि उसका वरण किया होता तो मुझे द्यूत क्रीड़ा में दांव पर हार नहीं दिया जाता। मेरे साथ सार्वजनिक दुराचार न होता। मुझे रखैल नहीं बताया जाता।'

रहस्य से परदा उठते ही पांडव भौंचक्के रह गए। उन्हें यही समझ नहीं आया कि वे द्रौपदी पर गुस्सा करें अथवा अपने पर शर्म करें। उन्हें अब जाकर अहसास हुआ कि उन्होंने व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप में भी उसकी अवमानना की है।

अपने अंतस का सच जताने के बाद द्रौपदी पवित्र हो गई थी। इसलिए जामुन के पेड़ ने उसके हाथ से जंबू फल को वापस अपनी डाली पर लगा लिया। ऋषि ने उसी शाम बारह वर्ष की तपस्या पूरी करके अपनी आंखें खोलीं। पास बहती नदी में स्नान किया और जंबू फल खाकर पांडवों और उनकी पवित्र पत्नी द्रौपदी को आशीर्वाद दिया।

भीम और अर्जुन दोनों के ही लिए यह सच पचा पाना मुश्किल हो रहा था कि उनकी पत्नी, कर्ण से प्यार करती है। उन्होंने एक रात में युधिष्ठिर को द्रौपदी के पांव छूते देखा। उन्होंने इसका कारण पूछा। युधिष्ठिर ने जवाब दिया कि वे दोनों उस रात में सोएं नहीं। आधी रात में तीनों भाइयों ने देखा कि उनके कमरे के बाहर सिंदूर अभिषिक्त लाल बरगद का पेड़ धरती में से उग आया। उसके नीचे नौ लाख देवी-देवताओं की मूर्तियां थीं, जिन्होंने भगवती का आह्वान किया था। उनको दर्शन देने द्रौपदी बाहर गई। द्रौपदी को उन्होंने स्वर्णजटित सिंहासन पर बैठाया और उस पर फूलों की वर्षा की। भीम और अर्जुन को ये समझ में आ गया कि उनकी पत्नी साधारण स्त्री नहीं थी। वो तो स्वयं भगवती स्वरूपा थीं, वे उसकी रक्षा में तो विफल रहे ही ऊपर से उसके चरित्र पर भी संदेह करने लगे।

- जंबू फल का प्रसंग महाराष्ट्र के 'जांबुल-आख्यान' नामक लोक नाटक से आया है। ऐसी धारणा है जंबू फल खाने पर हमारी जीभ बैंगनी होती है और यह इस बात का प्रतीक है कि हम दुनिया से कितनी सारी बातें छिपा कर रखते हैं। प्राचीन संस्कृत आख्यानों की तुलना में लोक वृत्तांत अधिक अपरिष्कृत एवं अनगढ़ होते हैं। उनमें मनुष्य की कमियों का उत्सव मनाने की प्रवृत्ति छिपी है।
- भील महाभारत जैसी अनेक लोक गाथाओं में द्रौपदी का भगवतीस्वरूप में वर्णन है।
- तमिल भाषा में महाभारत में द्रौपदी की वीर पांचाली के रूप में पूजा होती है। अनेक साहसिक अभियानों में वो अपने पतियों को अपने अपमान के प्रतिशोध के लिए समर्थ बनाने वास्ते उनकी पवित्र वस्तुओं जैसे-घंटी, नगाड़े तथा हल्दी के डिब्बे की खोज में उनका हाथ बंटाती है। पांडव एक रोज रात को उसे नग्नावस्था में जंगल में दौड़ते हुए देखते हैं। वो वहां हाथियों और भैंसों का वध करके उनके खून से अपनी प्यास बुझाती है।
- दक्षिण भारत की लोक कथा के अनुसार भीम एक बार अपनी पत्नी को यौनतृप्ति प्रदान करने के लिए कृष्ण से अपने शरीर में आ कर उसे अधिक पौरुष देने का अनुरोध करता है। द्रौपदी को तत्काल इसका आभास हो जाता है और वो इस बेईमानी के लिए अपने पति और उसके मित्र, दोनों को डांट पिलाती है।
- भगवती स्वयं पृथ्वी है। सृष्टि के नियंता भगवान के रूप विष्णु से उसका संबंध समय बीतने के साथ-साथ मानव का पृथ्वी के साथ संबंध बदलने का प्रतीक है। विश्व के एक युग की पहली एक-चौथाई अवधि बीतने के साथ ही संसार की निश्छलता समाप्त हो गई। भगवती रेणुका थीं। विष्णु की माता। विष्णु ने धरती पर परशुराम के रूप में जन्म लिया। विश्व की दूसरी, एक-चौथाई अवधि बीतने पर संसार की युवावस्था समाप्त हो गई। भगवती सीता थीं जो धरती पर राम

के रूप में विष्णु के अवतार की पत्नी थीं। विश्व की तीसरी, एक-चौथाई अवधि बीतने पर संसार की परिपक्वता समाप्त हो गई। भगवती द्रौपदी थीं जिन्हें कृष्णावतार के रूप में भगवान अपनी बहन एवं मित्र समान मानते थे।

सावित्री एवं सत्यवान

अपनी विकट स्थिति से थककर द्रौपदी ने एक दिन ऋषियों से पूछा, 'क्या मानव अपने प्रारब्ध से जुड़ा है? क्या कोई अपना भाग्य बदल सकता है।'

इसके उत्तर में ऋषियों ने उसे सावित्री की कथा सुनाई। ऐसी स्त्री, जिसने अपने प्रेम, धैर्य तथा बुद्धि के बूते मृत्यु को भी जीत लिया था।

सावित्री, राजा अश्वपति की इकलौती लड़की थी, और वो सत्यवान नामक लकड़हारे से प्रेम कर बैठी। वो यह जाने के बाद भी उससे विवाह करने पर उतारु थी कि सत्यवान ऐसे पिता का पुत्र था, जिसका राजपाट छिन चुका था और जिसकी मृत्यु एक वर्ष के भीतर ही निश्चित थी। अत्यंत दुःखी होकर अश्वपति ने सावित्री को सत्यवान से विवाह की अनुमति दी। सावित्री अपने प्रेम की खातिर सभी प्रकार के ऐशोआराम को तिलांजलि देकर अपने गरीब पति के साथ वन में रहने लगी।

सत्यवान की एक साल बाद मृत्यु हो गई। सावित्री ने अपनी आंखों से यम को उसके प्राण हरते हुए देखा। अपने पति के पार्थिव शरीर की चिता पर अंत्येष्टि के बजाए सावित्री, यम के पीछे-पीछे चल दी। यम ने दक्षिण की ओर मृतकों की नगरी की ओर बढ़ते हुए देखा कि कोई स्त्री उनके पीछे-पीछे चली आ रही है। यात्रा लंबी थी और यम ने सोचा कि सावित्री थक कर रास्ते में ही रुक जाएगी। लेकिन सावित्री ने थकन का कोई लक्षण प्रगट नहीं किया। वो तो लगातार चले जा रही थी।

यम ने उकता कर उससे कहा, 'मेरे पीछे मत आओ।' मगर सावित्री तो अपने पति के साथ ही रहने को आतुर थी, फिर वो चाहे कहीं भी रहे। यम ने कहा अपने भाग्य से समझौता करके अपने पति के पार्थिव शरीर की चिता पर अंत्येष्टि कर दो।

लेकिन सावित्री को जंगल में अपने पति के पृथ्वी पर रखे शव से अधिक यम की मुट्ठी में बंधे अपने पति के प्राणों को मुक्त कराने की चिंता थी।

परेशान होकर यमराज बोले, 'मैंने तुम्हें तीन वरदान दिए, तुम्हारे पति के जीवन के अलावा जो चाहो मांग लो और लौट जाओ।' सावित्री ने सम्मानपूर्वक अपना सिर झुका कर पहला वर यह मांगा कि उसके ससुर को उनका खोया राजपाट वापस मिल जाए, दूसरे वरदान में उसने अपने पिता को पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद लिया। तीसरा वर उसने ये मांगा कि वो सत्यवान के पुत्रों की मां बने।

यम ने छुटकारा पाने के लिए सावित्री को तीनों वरदान दे दिए। और वो मृतकों के लोक में चले गए। मर्त्यलोक को जीव लोक से अलग करने वाली नदी वैतरणी के तट पर पहुंच कर यम ने देखा कि सावित्री वहां तक पीछे लगी हुई थी। 'मैंने तुमसे तीन वर लेकर मेरा पीछा छोड़ देने को कहा था।' सावित्री ने फिर से सिर झुकाया और विनम्र स्वर में बोली, 'पहला वरदान फलीभूत हो गया। मेरे ससुर को उनका खोया राजपाट वापस मिल गया। दूसरा वर भी फलीभूत हुआ। मेरे पिता को अब पुत्र हैं। लेकिन तीसरा वर, वो कैसे फलीभूत होगा? मैं अपने पति के पुत्रों की मां कैसे बनूंगी, जब वो वन में पृथ्वी पर निष्प्राण पड़ा है? मैं आपसे यही पूछने आई थी।'

यम ये सोच कर मुस्कराए कि सावित्री ने उन्हें बुद्धू बना दिया। अपने तीसरे वर को लागू करने के लिए सत्यवान को पुनर्जीवित करना पड़ेगा। सावित्री ने इस प्रकार अपनी सूझबूझ तथा धैर्य से न सिर्फ अपना भविष्य बदला, बल्कि अपने ससुर तथा पिता का भविष्य भी सुधार लिया।

- सावित्री की कथा अनोखी है, क्योंकि इसके माध्यम से यह धारणा टूटती है कि भारत के लोग भाग्यवादी होते हैं। इससे यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि वैदिक काल से ही भारतीयों के मन में भाग्य एवं मुक्त इच्छा, भविष्य एवं वासना के बीच द्वंद्व चला आ रहा है। वेदों के अनुसार वासना ही रचना का मूल है। इस प्रकार भविष्य निर्माण में भाग्य के साथ-साथ वासना की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। उपनिषदों में याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं कि जीवन रथ के दो पहिए हैं—वासना एवं भाग्य। इनमें से किसी एक पर अथवा दोनों पर पूर्ण निर्भर किया जा सकता है। सावित्री गहन वासना को दृढ़ इच्छाशक्ति के रूप में प्रकट करके अपने भाग्य को आमूल बदल डालती है। इसी में हिंदू स्त्रियों द्वारा किए जाने वाले व्रत-उपवास जैसी परंपराओं का मूल तलाशा जा सकता है। व्रत-उपवास एवं रात्रि जागरण-कीर्तन के द्वारा वे अपनी इच्छा एवं लगन प्रदर्शित करके अपने परिवार का भाग्य बदलने की उम्मीद करती हैं।

नहुष के चंगुल में

वन में शिकाररत भीम एक दिन विशाल अजगर के चंगुल में फंस गया। ये कोई सामान्य अजगर नहीं था। ये मनुष्यों के समान बोलता था, 'मैं कभी पुरुरव का वंशज नहुष था। मैं इतना महान राजा था कि एक बार जब देवराज इंद्र स्वर्ग में किए गए पाप का प्रायश्चित कर रहे थे तो उनकी

अनुपस्थिति में मुझे अमरावती का अस्थायी राजा बनाया गया था। स्वर्ग में निवास के दौरान मुझे इंद्र के ऐरावत हाथी पर बैठने और उनके वज्र के प्रयोग का अवसर भी मिला था। इस नवीन सत्ता का घमंड मुझ पर इस कदर हावी हुआ कि मुझे मन ही मन इंद्र की रानी शची को भोगने की इच्छा होने लगी। रानी को मेरी इस इच्छा पर स्वाभाविक रूप में कोई आपत्ति नहीं हुई। मुझे सबक सिखाने के लिए, उन्होंने शर्त रखी कि वो मुझे अपने बिस्तर में तभी घुसने देंगी, जब मैं उनके महल में सप्त ऋषियों के कंधों पर पालकी में बैठकर जाऊंगा। सप्तर्षि, वेदों के सात-दिव्य संरक्षक थे। मैंने कामांध होकर सात पूज्य ऋषियों को कहार बनकर अपनी पालकी ढोने को मजबूर किया। मैं इतना अधीर हो गया था कि मैंने अत्यंत धीमी चाल से पालकी ढो रहे अगस्त्य मुनि के सिर पर अपने पैर से ठोकर मार दी। मेरे द्वारा हवस और अवमानना के इस बेशर्मी से प्रदर्शन पर अगस्त्य ने क्रोधित होकर कहा कि देवताओं द्वारा दिए गए पद के मैं लायक ही नहीं हूं। उन्होंने मुझे ये शाप दे डाला कि मैं स्वर्ग से वापस पृथ्वी पर राजा के रूप में मनुष्य योनि में नहीं बल्कि अजगर बनकर गिर जाऊं। जिसे हमेशा पेट के बल रेंगने और भोजन के अपने तक चलकर आने की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मुझे इस तुच्छ शरीर से तभी मुक्ति मिलेगी, जब मेरा वंशज, युधिष्ठिर मुझे, ब्राह्मण का सच्चा अर्थ समझाएगा।'

भीम ने अजगर को ये समझाने की बहुत प्रयास किया कि वो युधिष्ठिर का भाई है, मगर उसकी बात पर विश्वास न करके उसने, उसे हड़पने के लिए अपने जबड़े फैला दिए। इससे घबरा कर भीम चिल्लाया, 'बचाओ भाई, बचाओ।' भीम की पुकार सुनकर उसे बचाने के लिए पांडव भाई दौड़ पड़े। युधिष्ठिर ने वहां नाजुक स्थिति देख कर कहा, 'रुको, मेरे भाई को मत हड़पो। उसकी जगह मुझे खा जाओ, मैं पांडु पुत्र युधिष्ठिर हूं।'

ये नाम सुनकर अजगर ठहर गया। भीम पर अपना चंगुल ढीला करके उसने कहा, 'यदि जैसा तुम दावा कर रहे हो, वही हो, तो मेरे प्रश्न का उत्तर दो और उससे तुम सिर्फ अपने भाई को ही नहीं बल्कि मुझे भी इस विकट परिस्थिति से उबार लोगे। मुझे बताओ, ब्राह्मण कौन है?'

इसका जवाब वर्षों, ऋषियों के साथ चर्चा से परिपक्व हुए युधिष्ठिर ने इस प्रकार दिया, 'जनता की प्रचलित मान्यता के विपरीत ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण नहीं होता। वो तो ऐसा जीव है जिसने अपनी इंद्रियों पर विजय पाकर और अपने मस्तिष्क को अनुशासित करके ब्रह्म विद्या सीख ली है। ये विद्या सनातन, अनंत एवं निर्बंध आत्मा की है। इसके बाद से वो संतुष्ट एवं सज्जन तथा उदार हो गया, क्योंकि वो सत्य के मार्ग पर आरूढ़ है।'

यह उत्तर सुनकर अजगर आनंद से विभोर हो गया। उसने भीम को अपने चंगुल से मुक्त कर दिया और स्वयं भी अपनी वर्तमान योनि से बाहर आ गया। दिव्य रूप धारण करके उसने भीम तथा युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया और स्वर्गारोहण कर गया।

सभी भाई अपने शिविर में लौट आए और उनकी लंबी अनुपस्थिति से चिंतित साथियों ने उनकी अगवानी की।

- इंद्र की पत्नी शची को लक्ष्मी का ही रूप माना जाता है। वो सौभाग्य की देवी हैं। ये कहा जाता है कि पिछले इंद्र से अधिक पुण्य कमा कर कोई भी इंद्र बन सकता है। इंद्र बनने के बाद किसी को भी शची का सान्निध्य मिल सकता है। शची दरअसल इंद्र के पद के प्रति वफादार है। इंद्र नामक व्यक्ति के प्रति नहीं। नहुष अभी तक इंद्र नहीं बना था। वो अस्थायी प्रतिस्थापना था, उस पद के अयोग्य। अयोग्य होने के बावजूद वो शची की कामना करता है, इसीलिए, उस का खामियाजा उसे उठाना पड़ता है। कथा में नैतिकता नहीं (अन्य व्यक्ति की पत्नी की कामना मत करो) बल्कि उपयुक्तता (किसी सुविधा के योग्य बनने पर ही उसकी आकांक्षा करो) का सबक है।
- ग्रंथों के अनुसार पांचों पांडव अपने पूर्व जन्मों में इंद्र थे और उनकी साझा पत्नी, द्रौपदी ही शची थी।
- युधिष्ठिर एवं नहुष के बीच संवाद के समान ही महाभारत में बार-बार ये संदेश है कि ब्राह्मण जन्मना नहीं बल्कि कर्मणा होता है। इससे ये साफ है कि महागाथा में जाति की पारंपरिक अवधारणा का खंडन किया गया है।

यक्ष प्रश्न

युधिष्ठिर को एक बार स्वप्न दिखाई दिया। उसने देखा कि हिरण उससे रो-रोकर वन छोड़कर अपने स्थान पर लौट जाने की याचना कर रहा है। 'इतने वर्ष में आपने और आपके भाइयों ने हममें से इतने सारे हिरणों का आखेट किया है कि हमारी संख्या एकदम घट गई है। कृपया वापिस चले जाइए। वनवास की आपकी अवधि लगभग समाप्त हो रही है। द्वैत वन से चले जाइए।'

युधिष्ठिर ने उसके बाद द्वैत वन को तत्काल छोड़ देने का निर्णय किया। वो काम्यक वन में लौट आए।

वहां पर पांडवों से कोई ऋषि सहायता मांगने आए।

'अपनी क्रियाओं के लिए अग्नि प्रज्वलित करने के वास्ते मैं जिस चोब का प्रयोग करता था वो, पेड़ की शाखाओं पर लटकी हुई थी। वो किसी हिरण की सींगों में उलझ कर उसके साथ चली गई। क्या उसे आप वापस ला सकते हैं? मैं तो शिकारी नहीं हूं। लेकिन मैं उस तालाब को पहचानता हूं, जहां रोज शाम में हिरण पानी पीने जाता है।'

ये चूंकि आसान सा काम था, इसलिए युधिष्ठिर ने नकुल से वहां जाकर हिरण का आखेट करने को कहा। नकुल को शीघ्र ही तालाब के किनारे हिरण दिखाई दिया। लेकिन वो पलभर में हवा हो गया। नकुल को अचानक प्यास लगी तो उसने सोचा कि पहले तालाब में से थोड़ा पानी पी लूं, फिर हिरण का पीछा करूंगा। वो चल्लू भर के पानी पीने ही वाला था कि उसे कोई आवाज सुनाई दी, 'मैं यक्ष हूं। इस झील का स्वामी। तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर देने के बाद ही यहां से जल पी सकते हो।' नकुल ने चारों ओर नजर घुमाई, मगर उसे कोई भी दिखाई नहीं दिया। उसने, उस आवाज की उपेक्षा करके अपने चुल्लू में भरा जल पी लिया। जल पीते ही वो निर्जीव होकर गिर पड़ा। युधिष्ठिर ने एक के बाद एक अपने अन्य भाइयों को पानी लाने तथा उन्हें खोजने भेजा जो उनसे पहले गए थे, मगर लौटकर नहीं आए, लेकिन उन सबका हाल भी नकुल जैसा ही हुआ।

अंततः युधिष्ठिर भी व्यग्रता से उस ओर चले गए। अपने भाइयों को धरती पर निर्जीव पड़े देख कर उनका कलेजा मुंह को आ गया। आसपास वहां निर्जन था। न ही वहां किसी जंगली जानवर के आने का कोई निशान था। और उनके किसी भी भाई के शरीर पर चोट का कोई निशान भी नहीं था। तालाब किनारे पहुंच कर अपने भाइयों के समान वो भी प्यास से थकान महसूस कर रहे थे, इसलिए उन्होंने भी पानी पीने के बाद ही इस पहेली को सुलझाने की ठानी। पानी का स्पर्श करते ही उन्हें भी अपने भाइयों के समान वहां गूंजती आवाज सुनाई पड़ी। 'मैं यक्ष हूं। इस तालाब का स्वामी। मेरे प्रश्नों का उत्तर देने के बाद ही तुम ये पानी पी सकते हो।'

युधिष्ठिर ने अपनी अंजुली में भरा पानी तत्काल तालाब में छोड़ दिया। 'क्या तुम्हीं ने मेरे भाइयों की ये गति की है?'

आवाज ने कहा, 'हां। उन्होंने मेरी चेतावनी को अनसुना किया था।' उसके बाद यक्ष स्वयं युधिष्ठिर के सामने प्रगट हुआ।

युधिष्ठिर ने कहा, 'मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने की अपनी सामर्थ्य भर कोशिश करूंगा।' यक्ष ने पूछा, 'सूर्योदय कौन करता है।'

युधिष्ठिर का जवाब था, 'भगवान।'

'और सूर्यास्त?'

'सूर्य का प्राकृतिक कर्तव्य, उसका धर्म।'

'सूर्य किस में स्थित है?'

'सत्य में।'

'सत्य का सार कहां है?'

'वेद में।'

'ब्राहम्ण का क्या गुण है?'

'वेद का ज्ञान।'

'ब्राह्मण पूजा के योग्य कैसे बनते हैं?'

'अपने मस्तिष्क पर नियंत्रण की योग्यता से।'

'क्षत्रिय को शक्तिशाली क्या बनाता है?'

'उनके हथियार।'

'वे महान किस गुण से बनते हैं?'

'दान के गुण से।'

'जीवित व्यक्ति को मृत कब माना जाता है?'

'जब वो अपनी संपदा को भगवान, अतिथियों, सेवकों, पशुओं तथा पूर्वजों के साथ साझा नहीं करता।'

'हवा से तेज क्या है?'

'मस्तिष्क।'

'घास से अधिक बहुल क्या है?'

'विचार।'

'स्वर्ण से अधिक मूल्यवान क्या है?'

'ज्ञान।'

'संपत्ति से अधिक आवश्यक क्या है?'

'स्वास्थ्य।'

'प्रसन्नता का अधिक आवश्यक रूप क्या है?'

'संतुष्टि।'

'सबसे महान कार्य क्या है?'

'अहिंसा।'

'मनुष्य को कैसे आंका जाए?'

'चरित्र से।'

'क्षमा क्या है?'

'सबसे कट्टर शत्रु को बरदाश्त करना।'

'दया क्या है?'

‘सबके लिए खुशहाली की कामना।’
‘सादगी किसे कहेंगे?’
‘गंभीरता को।’
‘एक मात्र वस्तु क्या है, जिसे मनुष्य जीत सकता है?’
‘उसका अपना मन।’
‘क्या त्यागने के बाद मनुष्य सहमत होने लगता है?’
‘घमंड।’
‘क्या त्यागने के बाद कोई समृद्ध होता है?’
‘वासना।’
‘मनुष्य का सबसे खतरनाक शत्रु क्या है?’
‘क्रोध।’
‘सबसे गंभीर बीमारी कौन सी है?’
‘लालच।’
‘दान क्या है?’
‘असहाय की सहायता करना।’

‘विश्व के बारे में सबसे अनूठी बात क्या है?’
‘जीव रोजाना मरते हैं, फिर भी बाकी इस तरह जीते हैं मानों वे अमर हों।’
‘सच्चा पथ कैसे मिलेगा?’
‘बहस से नहीं–उसका कभी निष्कर्ष नहीं निकलता, शिक्षकों से नहीं–वे महज अपनी राय बता सकते हैं। सच्चे पथ को पाने के लिए हरेक को मौन और एकांत धारण करके अपने निजी

जीवन की परीक्षा करनी चाहिए।'

यक्ष ने और भी अनेक प्रश्न पूछे विश्व, समाज व आत्मा के स्वभाव पर, युधिष्ठिर के उत्तर से वो अत्यंत प्रभावित हुआ। अंततः उसने कहा, 'मैं तुम्हारे भाइयों में किसी एक को जीवित कर दूंगा। वो कौन सा होगा।'

युधिष्ठिर ने बिना पल भर सोचे कहा, 'नकुल।'

'वही क्यों? सौतेला भाई, भीम अथवा अर्जुन क्यों नहीं? वे शक्तिशाली योद्धा हैं, तुम्हारी राजगद्दी को बचाने के लिए आवश्यक।'

युधिष्ठिर का उत्तर था, 'मेरे पिता की दो पत्नियां थीं। मैं कुंती पुत्र जीवित हूं, इसलिए माद्री के पुत्र को भी जीवित रखना आवश्यक है।'

युधिष्ठिर की न्यायप्रियता से प्रभावित होकर यक्ष अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ। वो यम थे, जिसे धर्म भी कहते हैं। युधिष्ठिर के पिता। उन्होंने चारों पांडवों को पुनर्जीवित किया और तरोताजा पांडवों ने हिरण का आखेट कर डाला। उसके सींगों में चोब को निकाला और उन्हें ऋषि को वापस सौंप दिया। उन्होंने पांडवों के लिए धन्यवाद स्वरूप यज्ञ किया।

- यक्ष द्वारा सारस अथवा हंस का रूप धारण कर लेना महत्वपूर्ण है क्योंकि सारस और हंस का सरस्वती से संबंध है। ज्ञान की देवी सरस्वती। वो गुणावगुण के बीच अंतर करने की मस्तिष्क की सामर्थ्य के प्रतीक हैं। जैसे दिव्य सारस और हंस दूध और जल के अंतर को समझते हैं, वैसे ही अंतरसंवेदी मस्तिष्क सत्य और झूठ के बीच अंतर जान लेता है।
- युधिष्ठिर के भाई यक्ष की अवज्ञा करके उनके प्रश्नों के उत्तर देने से पूर्व ही पानी पी लेते हैं। इससे प्रतीत होता है कि वे सोच-समझ कर काम नहीं करते, जबकि द्यूत क्रीड़ा में बिना सोचे-समझे अपने भाइयों तथा पत्नी को दांव पर हार जाने वाले युधिष्ठिर वनवास के दौरान पूर्णतया परिष्कृत हो गए। इसीलिए पानी पीने से पहले वो प्रश्नों का उत्तर देते हैं।
- भारत में प्राचीन काल से ही प्रकृति के सभी उपादानों-वृक्षों,कंदराओं, सरोवरों, तालाबों- की संरक्षक एवं स्थानीय आत्मा हैं। इसलिए जमीन के टुकड़े पर कब्जा लेने अथवा फल तोड़ने या पानी पीने से पहले हमें उसके संरक्षक देवता को उस वस्तु का भोग लगाना चाहिए। उन्हें सामान्यतः यक्ष माना जाता है। उन्हें अनगढ़, नाटा तथा भद्दा समझा जाता है।
- द्यूत क्रीड़ा में युधिष्ठिर ने पहले अपने सौतेले भाइयों को दांव पर लगाया था। कुंती पुत्रों अर्थात अपने सगे भाइयों से पहले माद्री के पुत्रों को दांव पर लगाने की गलती को वह यक्ष के साथ वाली घटना में अपने सौतेले भाई को पहले बचाकर सुधार लेते हैं। इससे युधिष्ठिर के परिष्करण का भान होता है।
- वन में कुंती पुत्रों को उन तीन देवताओं के दर्शन होते हैं जिन्होंने, उनकी माता को गर्भवती किया था। युधिष्ठिर, यम से, अर्जुन, इंद्र से और भीम अपने भाई हनुमान से मिलते हैं। हनुमान, वायु अर्थात पवन के पहले पुत्र थे। इन तीन मुलाकातों का परिवर्तनकारी प्रभाव होता है। तीनों को ही उनके दिव्य पिता विनम्र एवं तत्वदर्शी बनाते हैं। वनवास की अवधि ऐसा काल है जो पांडवों को कथाओं एवं रोमांचक यात्राओं के द्वारा परिष्कृत कर देता है।

बारहवां अध्याय

अज्ञातवास

'जनमेजय, कभी राजा और द्यूत के प्रतियोगी रहे तुम्हारे पूर्वज अपनी सारी पहचान और सम्मान खोकर सिर्फ सेवक बन कर रह गए थे।'

नल-दमयंती

वनवास का बारहवां वर्ष पूरा होते-होते युधिष्ठिर को ऋषि वृहदाश्व के दर्शन हुए, जिन्होंने उन्हें पांसे खेलने सिखाए। यह कला सीखते समय युधिष्ठिर ने शिकायत की, ‘हमें अज्ञातवास करना है। यदि हम ढूंढ़ निकाले गए तो हमें और बारह वर्ष वनवास करना होगा। ऐसा दुखद भाग्य, सिर्फ पांसों के खेल के कारण! मेरी तरह किसी और ने भी ऐसी तकलीफ झेली हैं?

वृहदाश्व ने इसका यह उत्तर दिया, ‘हां कभी नल नामक राजा हुआ था, जिसने ऐसा ही दुख झेला? उसे अयोध्या के राजा का सारथि एवं बावर्ची बनना पड़ा था। और तुम्हारी पत्नी की तरह उसकी पत्नी भी उसके साथ वनगमन कर गई थी। साथ ही चेदिकी रानी की सेविका भी रही।’ उन्होंने फिर पांडवों को नल और दमयंती की प्रेम कथा सुनाई।

दमयंती अनिंद्य सुंदरी और विदर्भ की राजकुमारी थी। उसने सबसे सुदर्शन पुरुष नल को अपना पति चुना। इसके लिए उसने देवताओं के विवाह प्रस्ताव भी ठुकरा दिए थे। उन्होंने बारह वर्ष हंसी-खुशी जीवन व्यतीत किया। उनकी दो संतान हुईं। तभी नल का रिश्ते का भाई पुष्कर उनके यहां आया और उसने नल को पांसों का खेल, खेलने के लिए आमंत्रित किया। खेल के दौरान, युधिष्ठिर के समान ही नल ने भी अपना सब कुछ लुटा दिया।

नल को अपने परिवार के साथ ही राजप्रासाद त्याग कर चले जाने को कहा गया। उन्हें अपना शरीर ढंकने के लिए एक वस्त्र के अलावा कुछ भी नहीं ले जाने दिया गया। दमयंती ने अपने बच्चों को अपने पिता के यहां भेज दिया। नल ने अपनी पत्नी से कहा, ‘तुम्हें भी उन्हीं के साथ चले जाना चाहिए। मैं अपनी प्रजा को क्या मुंह दिखाऊं? मैं वहां नहीं जाना चाहता जहां मुझे पहचान लिया जाए। मैंने अपने लिए शर्मनाक हरकत की है। जाओ, मेरी पत्नी मुझे छोड़ दो। मेरे भाग्य के सहारे मुझे छोड़ दो।’

लेकिन दमयंती ने अपने पति को इस विपत्ति काल में छोड़ जाने से इन्कार कर दिया। उसने दृढ़तापूर्वक कहा, ‘मैं अच्छे दिनों की तरह इन बुरे दिनों में भी आपके साथ ही रहूंगी। आओ, हम साथ-साथ वन में चलें। वहां हमें कोई नहीं पहचानेगा।’

वनवासी का जीवन अत्यंत कठिन था। हथियारों के बिना, नल एक भी पशु का आखेट नहीं कर पाया और महलों के सुखों की आदी दमयंती को भी फल तोड़ने अथवा जल भर कर लाने का अनुभव नहीं था। भूख से बेहाल, नल ने अपने शरीर पर पहने एक मात्र वस्त्र के प्रयोग से कुछ पक्षी पकड़े। ‘अब शायद हम इन्हें खाकर भूख मिटा लेंगे अथवा खाने की वस्तुओं के बदले यहां आने-जाने वालों से पक्षियों का विनिमय कर लेंगे।’

लेकिन ये क्या, पक्षियों ने मिलकर जोर लगाया और उस कपड़े समेत उड़ गए। नल बेचारा निर्वस्त्र रह गया। नल जमीन पर लेट कर जोर-जोर से रोने लगा, ‘मेरा तो सर्वस्व खो गया।’

दमयंती ने उसे ढांढ़स बंधाते हुए कहा, 'सर्वस्व नहीं। तुम्हारे साथ अभी तो मैं हूं। और मैं तुम्हारा साथ कभी नहीं छोडूंगी।'

दमयंती ने अपने शरीर पर लिपटे कपड़े को उतारा और उसे फाड़कर दो हिस्से कर लिए। उनमें से एक हिस्सा उसने अपने पति को दे दिया और कपड़े के दूसरे टुकड़े से अपना तन ढांप लिया। वे वन में साथ-साथ चुपचाप रहे। नल तो अपराधबोध से घुटे जा रहे अपने मन के संताप के कारण चुप था, मगर दमयंती हर हालत में अपने पति का साथ देने के मन ही मन किए गए संकल्प में डूबी थी।

अपनी बेवकूफी के कारण दमयंती को कष्ट पाते देख कर नल बहुत दुखी था। इसलिए रात में दमयंती को नींद आ जाने पर नल यह सोचकर वहां से भाग गया कि उसे अपने साथ न पाकर अंततः उसे सद्बुद्धि आएगी और वो विदर्भ में अपने मायके चली जाएगी तथा उसे वन में ठोकरें नहीं खानी पड़ेंगी।

दमयंती सवेरे नींद से जागी तो अपने पति को साथ नहीं पाकर उसके मन में मायके जाने की उत्कंठा नहीं जगी, बल्कि वो पति को ढूंढ़ने में जुट गई। अपने पति को ढूंढ़ने में दमयंती ने वन का चप्पा-चप्पा छान मारा। वो पेड़ों के हरेक झुरमुट में उसका नाम लेकर जोर-जोर से पुकारती मारी-मारी फिरने लगी। संध्याकाल आते ही उसे अपने सामने विषैला नाग फन काढ़े उसे काटने को तत्पर रास्ता रोके खड़ा मिला। वो कोई प्रतिक्रिया करती उससे पहले ही किसी शिकारी के तीर ने उस जहरीले नाग को मारकर उसकी जान बचाई। उसने शिकारी का हार्दिक आभार जताया, लेकिन शीघ्र ही उसे लगा कि वो तो कहीं और खोया हुआ है। वो दमयंती के सौंदर्य को

भोगने के लिए ललचा रहा था। दमयंती की शुचिता बरकरार थी इसलिए शिकारी ने बुरी नीयत से जैसे ही उसे छुआ, वो आग की लपटों में घिर गया।

विषैले नाग और शिकारी के शिकंजों से चमत्कारिक ढंग से बचने के बाद दमयंती को व्यापारियों का कारवां वहां से गुजरता दिखाई दिया, जिन्होंने उसे भी अपने साथ चलने को कहा। उसी रात हाथियों के झुंड ने व्यापारियों के शिविर पर हमला कर दिया। इसमें व्यापारियों को भारी हानि उठानी पड़ी। व्यापारियों को लगा कि यह विपदा दमयंती के कारण आई थी, इसलिए उसे कारवां से बाहर कर दिया गया।

अकेली और अनाथ दमयंती अंततः चेदि नगरी में प्रविष्ट हो गई। उसके बदन पर अल्प वस्त्र और बिखरे-उलझे बाल देखकर बच्चों ने उसे पगली समझा और पत्थर मारने शुरू कर दिए।

दमयंती ने जब बच्चों के झुंड से बचने के लिए इधर-उधर भागा-दौड़ी की तभी चेदि की महारानी की नजर उस पर पड़ी। इस अस्त-व्यस्त मगर राजसी आभास देने वाली स्त्री को देखकर महारानी के मन में सहानुभूति जगी और उन्होंने अपने प्रासाद में उसे बुला भेजा। प्रासाद में दमयंती, महारानी की सेविका बन गई। दमयंती ने अपना नाम अथवा पहचान नहीं बताई। उसने अपना नाम श्रीरंध्रि बताया और महारानी के केशविन्यास तथा सुगंध तैयार करने का काम अपने जिम्मे ले लिया।

कुछ दिनों के बाद, सुदेव नामक ब्राह्मण चेदि से होकर गुजरा। उसने दमयंती की असली पहचान महारानी को बता दी। बहुत समझाने-बुझाने के बाद दमयंती अपने मायके जाने को तैयार हुई।

उसने विदर्भ पहुंच कर अपने पिता से कहा, 'हमें, मेरे पति को अवश्य ढूंढ़ना चाहिए।' इस पर

विदर्भराज ने पर्णद नामक ब्राह्मण को यह जिम्मेदारी सौंपी कि वो भारत वर्ष के हरेक राज्य में जाकर नल की खोज करें।

पर्णद ने सवाल किया, 'मैं उन्हें पहचानूंगा कैसे?'

दमयंती ने कहा, 'चलते-चलते ये पंक्तियां दोहराते जानाः 'अरे द्यूत क्रीड़ा में अपना राजपाट और पत्नी को हार जाने वाले, अपनी पत्नी से आधा वस्त्र लेकर उसे अनाथ करने वाले, तुम कहां हो? तुम्हारी पत्नी तुम्हारे लिए परेशान है।' इन पंक्तियों का प्रभाव सिर्फ नल पर ही होगा।'

पर्णद ने गंगा, यमुना और सरस्वती के दोनों सिरों की यात्रा के दौरान यही पंक्तियां दोहराईं। इन पंक्तियों के बोल सुनकर हर कोई चकराया, लेकिन किसी ने कोई प्रतिक्रिया नहीं जताई। अंततः राजा ऋतुपर्ण के अयोध्या नामक राज्य के भद्दे-नाटे बहुक नामक शाही बावर्ची ने इन पंक्तियों का जवाब कुछ इस प्रकार दिया, 'उस दुर्भाग्यशाली आत्मा की पत्नी तुम निराश न होना। वो भी तुम्हें भूला नहीं है। ऐसा बेवकूफ जो जुए में अपना राज्य हार गया, जिसके कपड़े पक्षी उड़ा ले गए, जो तुम्हें वन में आधी रात में अकेला छोड़कर भाग गया।'

पर्णद ने शीघ्रता से लौटकर दमयंती को इसकी सूचना दी। दमयंती ने मुस्कराते हुए कहा, 'वो नल ही हैं। उन्हें अभी तक मेरी याद आती है। इसीलिए उन्होंने उत्तर भी दिया।'

पर्णद ने कहा, 'लेकिन मुझे जवाब देने वाला भद्दा, नाटा व्यक्ति था। वो शाही बावर्ची है। आपके विवाह के समय से मेरे मन में नल की जो सुदर्शन छवि है, उससे वो जरा भी मेल नहीं खाता।'

दमयंती ने भी विश्वासपूर्वक जवाब दिया, 'पक्षियों द्वारा अपने वस्त्र उड़ा ले जाने की घटना तो सिर्फ नल ही जान सकते हैं। वो तो वही हैं।'

उसने सोचा कि क्यों न नल को विदर्भ में बुला लिया जाए। उसने सुदेव से अयोध्या जाकर राजा को उसका संदेश देने का आग्रह किया। 'उन्हें बताना कि नल के लापता हो जाने पर विदर्भराज दमयंती के पुनर्विवाह की सोच रहे हैं। उन्होंने पृथ्वी भर के राजाओं को निमंत्रित किया है, ताकि दमयंती स्वयं अपने पति का वरण कर ले। उन्हें बता देना कि स्वयंवर समारोह तुम्हारे आगमन के अगले ही दिन होगा।'

'अगले ही दिन? मगर ऋतुपर्ण एक ही दिन में विदर्भ कैसे पहुंचेंगे?'

'नल अगर उनके राज्य में हैं, तो वो, ऋतुपर्ण को अवश्य ले आएंगे, क्योंकि नल संसार में सबसे तेज रथचालक हैं। और ऋतुपर्ण हर कीमत पर आना चाहेंगे क्योंकि नल से मेरे विवाह के पहले ऋतुपर्ण की मुझ पर नजर थी और वो अभी तक मुझे चाहते हैं।'

सुदेव को हालांकि इस योजना के सफल होने पर संदेह था, मगर उसने दमयंती की बात मान ली।

दमयंती का अनुमान सही निकला। ऋतुपर्ण ने अपने आप को एक रात में विदर्भ पहुंचाने वाले को बड़ा इनाम देने का ऐलान कर दिया। उनसे, उनके बावर्ची ने कहा, 'मैं पहुंचा दूंगा। मैं आपको, वहां ले चलूंगा, मगर आपको मुझे पांसे घुमाने का राज बताना होगा।'

ऋतुपर्ण ने जवाब दिया, 'मुझे मंजूर है,' और दोनों विदर्भ के लिए रवाना हो गए। उनका रथ कड़कती बिजली जैसी गति से वन को पार कर गया। यात्रा के दौरान रात में ही ऋतुपर्ण ने बाहुक को पांसों का राज बता दिया। पौ फटने पर रथ के विदर्भ पहुंचने तक बाहुक पांसों के खेल में माहिर हो चुका था। रथ जैसे ही राजप्रासाद के द्वार के पार हुआ ऋतुपर्ण एवं बाहुक ने दो बच्चों को वहां खेलते देखा। उन्हें देखते ही बाहुक रथ से कूदा और उन्हें आलिंगनबद्ध करके फूट-फूट कर

रोने लगा। इससे चकित ऋतुपर्ण ने पूछा, 'ये बच्चे किसके हैं? और तुमने, इनका आलिंगन क्यों किया? और तुम रो क्यों रहे हो।' बाहुक ने कोई जवाब नहीं दिया। दमयंती दूर खड़ी इस दृश्य को देख रही थी, उसने राहत की सांस ली। 'वो पुरुष नल ही है।'

इस पर दासी ने कहा, 'लेकिन वो नल जैसे लगते तो नहीं। वो तो भद्दा, नाटा और विकलांग है।'

दमयंती ने विश्वासपूर्वक कहा, 'मैं शरीर को नहीं पहचानती मगर मैं उस हृदय को पहचान गई। उस पर नजर रखो। वो भले नल जैसे रूप-रंग के न हों, मगर उनका व्यवहार अवश्य नल जैसा ही होगा। और उनके आसपास उपस्थित संसार उन्हें राजा जैसा सम्मान ही देगा, क्योंकि उनकी आत्मा राजा की ही है।'

दासी तत्काल बाहुक के पीछे लग गई और उसे सचमुच आश्चर्यजनक घटना दिखाई दी। 'उनके पास तो दिव्य शक्तियां हैं। द्वार से गुजरते समय वो झुकते नहीं बल्कि द्वार स्वयं अपनी लंबाई बढ़ा लेता है, ताकि वो सिर ऊंचा करके निकल सकें। भोजन पकाने के लिए उन्हें जब मांस दिया जाता है, तो मांस खुद ही लगभग पक जाता है। लकड़ी के भीतर से ही अग्नि प्रज्जलित हो जाती है और धरती से पानी फूट आता है।'

ये सुनकर दमयंती ने समझाया, 'तब तो वो पक्का नल ही हैं। वो गरीब और विरूप भले ही हों, लेकिन राजप्रासाद के द्वार, जलाऊ लकड़ी तथा धरती के भीतर का पानी भी उनके राजसी वलय का सम्मान करते हैं। उनके अभिवादन के लिए वे उठ खड़े होते हैं।'

आसपास के लोगों से बेपरवाह दमयंती दौड़कर अस्तबल में पहुंची और बाहुक से ये चिल्लाते हुए लिपट गई, 'नल, नल।' ऋतुपर्ण यह देखकर भौंचक्का रह गया और उसके माता-पिता शर्म से पानी-पानी हो गए। ये विरूप सेवक, नल कैसे हो सकता है? नल तो सबसे सुदर्शन व्यक्तियों में शामिल थे।
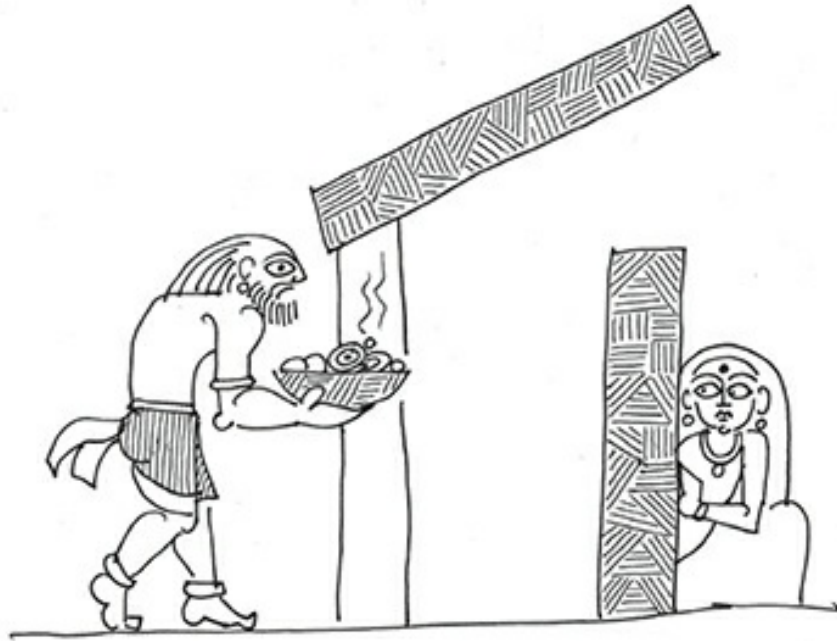
यह देखकर बाहुक बोला, 'हां, मैं नल ही हूं। वन में दमयंती को अकेले छोड़ देने के बाद, मुझे करकोटक नामक भयानक नाग मिला, जिसने अपनी विषैली फुफकार से मुझे ऐसा विरूप कर दिया। उसने फिर, मुझे अयोध्या के राजा के यहां नौकरी करने तथा पांसे चलने की कला सीखने की सलाह दी। मेरा भद्दापन और नौकरी पर लगना मेरे धत्कर्मों की सजा और प्रायश्चित है।'

ऋतुपर्ण को यह विवरण सरासर काल्पनिक लगा, उसे भरोसा दिलाने के लिए बाहुक ने करकोटक नाग द्वारा उसे दी, दिव्य पोशाक निकाली। उसे अपने शरीर पर लपेटते ही वो अपने मूल सुदर्शन स्वरूप में लौट आया। इसके बाद बाहुक के ही नल होने पर किसी को कोई संदेह नहीं रहा।

ऋतुपर्ण का अपनी हरेक सहायता के लिए धन्यवाद करने के बाद नल अपनी पत्नी और संतान से लिपट गया। दुर्भाग्य और विरह के बुरे दिन बीत गए थे, वे फिर से एक साथ आ गए थे।

नल कुछ ही दिन बाद अपने पूर्व राज्य में पहुंचा और अपने रिश्ते के भाई को पांसे खेलने की चुनौती दी। पुष्कर को प्रतियोगिता के वास्ते उद्धत करने के लिए उसे लालच दिया, 'मैं यदि हार गया तो मेरी रूपवान पत्नी तुम्हारी होगी।' हालांकि नल ने इस बार बाजी जीत ली, सो ऐसी नौबत ही नहीं आयी। ये दरअसल ऋतुपर्ण द्वारा सिखाए दांव-पेंच का कमाल था।

नल ने इस प्रकार अपना खोया हुआ सब कुछ पा लिया—परिवार एवं राजपाट। ऋषि वृहदाश्व ने कथा समाप्त करते हुए ज्येष्ठ पांडव को आशीर्वाद दिया और कहा, 'युधिष्ठिर, तुम्हारे साथ भी ऐसा ही होगा।'

- नल की बेवकूफियों की व्याख्या के लिए ऋषि दुर्भाग्य की प्रतीक काली के रूपक का प्रयोग करते हैं। ये काली दुर्भाग्य का वलय है। काली भद्दे, विकलांग दुर्भाग्य की वाहक है जो स्वच्छता के नियमों का उल्लंघन करने वालों, तथा प्रदूषित एवं अमंलगकारी वस्तुओं का स्पर्श करने वालों को प्रताड़ित करती हैं। द्यूतक्रीड़ा के दौरान युधिष्ठिर का विवेक हरण करने का आरोप भी काली पर ही है। ये काली वन की भीषण काली देवी से भिन्न है। काली के प्रतीक के द्वारा ऋषिगण, शर्म एवं अपराध बोध से उबरने में युधिष्ठिर की सहायता करते हैं। इसके माध्यम से पांडवों के दुर्भाग्य के लिए युधिष्ठिर अपने बजाए किसी वाह्य प्रभाव पर दोष डालकर स्वयं स्वस्थ हो पाते हैं।
- दमयंती का चरित्र दृढ़ इच्छाशक्ति वाली स्त्री के रूप में उभरता है, जो अपने पति के दुर्भाग्य से रत्ती भर विचलित नहीं होती, जो नल से हर हाल में प्रेम करती है और हमेशा उसका साथ देती है। दूसरी ओर नल तो शर्म और अपराध बोध से गड़ा जाता है। दुर्भाग्य से लड़ने का उसका मनोबल भी कमजोर प्रतीत होता है।
- नल और दमयंती का प्रसंग इसलिए सुनाया गया, ताकि पांडव अपने दुर्भाग्य के बोझ से टूट न जाएं। इसके माध्यम से उन्हें अपना अंतिम अज्ञातवास का वर्ष बिताने से संबंधित मार्गदर्शन भी मिल जाता है। नल के समान भीम बावर्ची और नकुल अस्तबल का प्रभारी बन जाता है जबकि दमयंती के समान द्रौपदी, महारानी की सेविका बनकर वनवास का सबसे कठिन वर्ष बिताती है।
- नल की कथा से कुछ लोगों की जन्म कुंडली में राज योग अर्थात राजसी जीवन बिताने की अवधारणा परिलक्षित होती है। उनके गरीब होने पर भी ब्रह्मांड उनके राजसी अस्तित्व का मान करता है। नल के मामले में द्वार की चौखट स्वयं उसे रास्ता देने के लिए अपना आकार बढ़ा लेती है, ताकि उसे पार होने के लिए सिर नहीं झुकाना पड़े। इसी प्रकार भोजन स्वयं पक जाता है, ताकि नल को अपने हाथ न भांडने पड़ें।
- नल के प्रसंग संबंधी अधिकतर पुनर्कथनों में उसे विश्व का सर्वश्रेष्ठ बावर्ची बताया गया है। कुछ पुनर्कथनों में दमयंती उसे यात्रियों से यह पूछकर खोजती है कि उन्होंने किस देश में सबसे स्वादिष्ट भोजन खाया था।

विराट के दरबार में सेवक

फिर तेरहवां वर्ष भी आ गया। पांडवों ने घोर रात्रि में कपड़े की गठरी में अपने अस्त्र-शस्त्र रखकर उसे शव के आकार में बांधा और शमी के वृक्ष की शाखा से बांध दिया।

उसके बाद उन्होंने भिन्न-भिन्न वेश धारण किए। युधिष्ठिर ने विद्वान ब्राह्मण का वेश बनाया। अपना नाम कंक रखकर उन्होंने अपनी योग्यता रियासत का मंत्री बनने लायक बताई जिसे राजकाज में महारत हासिल थी। भीम ने बावर्ची का वेश बनाया और अपना नाम बल्लव बताया। उसने कहा ऋतुपर्ण की सेवा करने वाले नल के समान मैं भी संसार का सर्वश्रेष्ठ बावर्ची सिद्ध होऊंगा। अर्जुन ने स्त्रीवेश धारण किया और स्वयं को बृहन्नला नामक प्रवीण नृत्य गुरु के रूप में प्रस्तुत किया। उसने कहा, 'मैंने नृत्य कला स्वयं अप्सराओं से सीखी है।' नकुल ने स्वयं को अश्वपालक दामग्रंथी के रूप में प्रस्तुत किया। सहदेव गोवैद्य तंतीपाल के रूप में प्रस्तुत हुआ। द्रौपदी शृंगारिका सैरंध्री के वेश में प्रस्तुत हुई।

वे सभी छह जन मत्स्य राज्य में गए और वहां के महाराज, विराट से काम मांगा।

उनका बहुरुपिया वेश इतना सटीक था कि दुर्योधन के गुप्तचर जब द्वैत वन पहुंचे तो उन्हें पांडवों की परछाई भी नहीं मिली। पांडवों द्वारा अंत में खाली की गई कंदराओं में उन्हें बस, ऋषि धौम्य कुछ अन्य ऋषियों के साथ यज्ञ करते और पांडवों की कुशल कामना के लिए पूजा करते मिले।

- इंद्रसेन जैसे अनेक वफादार दास-दासी पांडवों के साथ वनवास में भी गए थे। उन्होंने प्रासाद के समान ही उनकी वन में भी सेवा की। इन सेवकों ने कौरवों के गुप्तचरों का ध्यान बंटाने के लिए पांडवों का वेश धारण किया, जबकि पांडव उस समय सेवकों के वेश में मत्स्य राज्य की ओर जा रहे थे।
- हथियारों की गठरी शव के आकार में बांध कर उसे पेड़ की शाखा से नत्थी करने के प्रसंग से ऐसा लगता है कि महाभारत काल में शवों को प्रकृति के सुपुर्द कर देने की प्रथा प्रचलित थी। ऐसा कभी-कभी चिता पर अंत्येष्टि के लिए उपयुक्त समय की प्रतीक्षा के लिए किया जाता था।
- वनवास के अंतिम वर्ष में पांडवों ने सेवकों के योगदान को मानने तथा उनका सम्मान करना सीखा। और संसार के असंख्य मनुष्य अधिकतर सेवक अथवा दास वृत्ति में ही लिप्त हैं, लेकिन महाभारत में उनकी पूर्णतः अनदेखी की गई

है। इसका निहितार्थ यह है कि पांडवों ने आम आदमी की परवाह करना वनवास के दौरान भलीभांति सीख लिया, जिससे वे बाद में अधिक व्यावहारिक प्रजापालक साबित हुए होंगे।

- ऐसा लगता है कि वनवास का अंतिम वर्ष अज्ञातवास पांडव भाइयों के लिए परिस्थितिजन्य नियामत साबित हुआ। क्योंकि वे अंततः अपने मन की गहराइयों में दबे-ढंके मंसूबों को पूरा करने में पांसा खिलाड़ी, बावर्ची, नर्तक, अश्वपालक और गोपालक का काम करके सफल रहे।
- इंडोनेशिया में महाभारत के प्रचलित संस्करण के अनुसार विराट दरअसल सत्यवती के जुड़वां भाई का ही वंशज था। इस मान्यता का आधार शायद विराट के राज्य का नाम 'मत्स्य' होना है। मत्स्य का अर्थ है मछलियों का प्रदेश, जिससे इसका मछुआरों से घनिष्ठ संबंध प्रतीत होता है।
- विराट (बैराट) नामक स्थान राजस्थान के जयपुर जिले में स्थित है और इसे ही प्राचीन विराटनगर अथवा मत्स्य राज्य माना जाता है।

कीचक

विराट को यह भनक भी नहीं थी कि कंक नामक जो व्यक्ति उसकी राजधर्म संबंधी कार्य में और पांसे खेलने में सहायता कर रहा है, वो दरअसल युधिष्ठिर है।
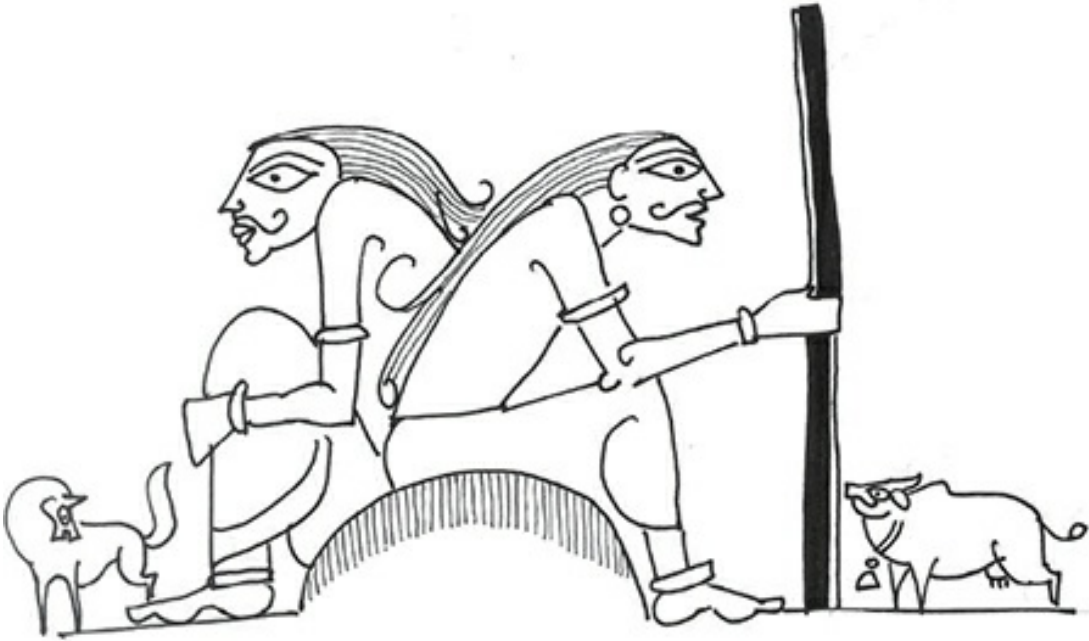
इसी प्रकार उसकी रसोई में अत्यंत स्वादिष्ट खाना पकाने वाला बल्लव असल में भीम, अथवा उसकी पुत्री को नृत्य सिखाने वाला बृहन्नला नामक किन्नर वास्तव में अर्जुन, अथवा अश्वपालक दामगं्रथी तथा गोपालक तंतीपाल जो उसके घोड़ों तथा गायों की देखभाल करते हैं वास्तव में नकुल एवं सहदेव हैं। उसकी पत्नी सुदेषणा को भी कभी ये भान नहीं हुआ कि सैरंध्री नामक स्त्री जो उसके लिए सुगंधि बनाती तथा उसका केश विन्यास करती है असल में द्रौपदी है।

इसके बावजूद राजदंपती की नजरों से उनके नए सेवकों की विशिष्टता, आत्मविश्वास से परिपूर्णता तथा उनका गरिमापूर्ण व्यवहार छिप नहीं पाया। उन्होंने कभी किसी की जूठन नहीं खायी तथा नौकरी स्वीकार करने से पूर्व उनमें से हरेक ने अपनी मांग पर स्पष्ट रूप में चर्चा की

थी। उन छहों ने कभी आपस में बातचीत नहीं की, इसलिए विराट अथवा सुदेषणा को उनके रक्त संबंधी होने की भनक भी नहीं लग पाई।

अनेक माह निर्विघ्न कट गए। बस युधिष्ठिर को यह मनोचाप झेलना पड़ा कि उनका राजा अपने राजधर्म की पूर्ति के बजाए अपनी वासनाओं में उलझा था। भीम का दुख ये था कि वो जो स्वादिष्ट खाना पकाता एवं परोसता था, वो उसे कभी खा नहीं पाता था। अर्जुन को धनुष थामने की ललक रहती थी लेकिन उसे घुंघरु थाम कर सब्र करना पड़ता था। नकुल पूरे दिन अस्तबल और अश्वों की सफाई, घिसाई, खिलाई-पिलाई में व्यतीत करता था। सहदेव भी नकुल के समान गायों की सेवा में व्यस्त रहता था।

इसी बीच भीषण घटना हुई। महारानी का भाई कीचक, बेडौल और चंचल आंखों वाला था। सुदेषणा की नई सौंदर्य प्रसाधिका सैरंध्री की सुरुचि और सौंदर्य ने उसे आसानी से आकर्षित कर लिया। उसकी चंचल आंखें सैरंध्री पर हमेशा बेशर्मी से गड़ी ही रहतीं, जिनसे वासना साफ टपकती थी। सैरंध्री ने कीचक की इस धृष्टता की जब सुदेषणा से शिकायत की तो अपने भाई के मोह में अंधी महारानी ने उलटे उसे ही डांट कर भगा दिया। उसे अपने भाई की आलोचना कतई नहीं सुहाती थी।

इससे कीचक की धृष्टता और बढ़ गई तथा उसने, अपनी बहन से ये फरमाइश कर डाली, 'क्या आप, अपनी उस धृष्ट सेविका को मेरे कक्ष में भिजवा देंगी?'

अपने भाई पर न्योछावर सुदेषणा ने उसे मना करने के बजाए कहा, 'मैं पक्की कोशिश करूंगी।' उसने दिन में सैरंध्री को बुलाकर सुरापात्र को कीचक के कक्ष में पहुंचा देने का आदेश दिया। सैरंध्री ने इस झंझट से बचने की भरसक कोशिश की, लेकिन सुदेषणा नहीं मानी। सुदेषणा के मोह से नाराज सैरंध्री सीधे कंक के पास गई, 'ऐसे शोषण से मुझे बचाओ।'

कंक ने उत्तर दिया, 'मैं नहीं बचा सकता। मैं असहाय हूं। समझने का प्रयास करो। हममें से कोई भी पहचाने जाने का जोखिम नहीं उठा सकता। हमें अपमान का ये घूंट पीना ही पड़ेगा और अपनी ओर से एक वर्ष बीतने तक अपनी पहचान छिपाए रखने का हरेक प्रयास करना चाहिए।'

सैरंध्री के गालों पर आंसुओं की लकीर बह चली, कंक के तर्क को समझने के बावजूद वो अपनी रक्षा में विफलता के लिए उसे क्षमा नहीं कर सकी। अब वो अपना दुखड़ा किस से रोए? बृहन्नला तथा जुड़वां भाई हमेशा कंक की सलाह से ही चलेंगे और उनकी बात का कभी उल्लंघन नहीं करेंगे। अब बस बल्लव ही बचा था, जो हमेशा जरा सी बात पर तैश खाकर, उसकी कही बात को निभाता है।

द्रौपदी रसोई में बल्लव से मिलने गई तो उसे राज परिवार के लिए भोजन पकाते पाया। उसने बल्लव को सब कुछ बता दिया, जिसकी प्रतिक्रिया में वो गुस्से से उबल पड़ा। उसकी आंखें ये सोचकर अंगारे उगलने लगीं कि वो आवारा, उसकी पत्नी को छुएगा। उसने दांत पीसते हुए कहा, 'मैं उसे ठीक करूंगा। ऐसा सबक दूंगा कि कभी नहीं भूलेगा। ये मेरा वचन है।'

उसी शाम में कीचक जब अपने कक्ष में घुसा तो सारे दीपदान बुझे हुए थे, बिस्तर पर चिर-परिचित पाजेब पहने कोई स्त्री बैठी थी। ये तो सैरंध्री थी। उसके इतनी आसानी से मान जाने पर वो चकित था—उसे तो लगा था कि वो गुस्सा होगी और उसे रोकेगी। बिस्तर पर बैठी स्त्री ने बांहें फैलाकर कीचक का स्वागत किया। कीचक बिस्तर पर लुढ़क गया और उसे टटोलने लगा, क्योंकि उसने जब उसकी बाजुओं को छुआ और जांघों को सहलाया तो उसे बहुत सख्त मांसपेशियों का अहसास हुआ। उसने सोचा किसी औरत के अंग ऐसे पुष्ट कैसे हो सकते हैं? वो और कुछ सोच पाता, उससे पहले ही उसे, ऐसा लगा मानो किसी भालू ने उसे बांहों में जकड़ लिया हो। उसने लपक कर भागने का प्रयास किया लेकिन नशे और हवस में डूबा कीचक कुछ भी नहीं कर पाया। कुछ ही पलों में कीचक का कचूमर बन चुका था। उसकी हड्डियां चटख गई, खाल उधड़ गई और कपाल क्रिया हो चुकी थी।

अगले दिन समूचे राजप्रासाद की नींद महारानी की चीख से खुली, जिसे अपने भाई के बिस्तर पर उसकी लहूलुहान लाश मिली। उसने देखा कि वहां उसके भाई की जगह मांस की गठरी पड़ी है, जिसमें से उसकी टूटी हड्डियां झांक रही थीं।

सुदेषणा को संदेह हुआ कि उसके भाई की हत्या में सैरंध्री का हाथ अवश्य है। उसने जब अपने

अन्य भाइयों को ये बात बताई तो वे सैरंध्री को कीचक की चिता पर ही जिंदा जला देने पर आमादा हो गए। उन्होंने जैसे ही उसे चिता की ओर घसीटना शुरू किया, वो सहायता पाने को चिल्लाई। सारे पांडवों ने उसकी चीख सुनी, लेकिन सिर्फ भीम उसे बचाने दौड़ा आया।

उसने पास खड़े पेड़ को जड़ से उखाड़ा और घुमाकर कीचक के भाइयों पर पटका तो उनकी भी खोपड़ियां कुचल गई। शीघ्र ही चितास्थल सुदेषणा के भाइयों के शरीर के भंग हुए अंगों से पट गया। लेकिन ऐसा होते किसी ने भी देखा नहीं था। इसलिए सैरंध्री ने बताया, मैं गंधर्व पत्नी हूं। वे हवा में अचानक प्रकट होकर मेरा अहित करने वालों से मेरी रक्षा करते हैं। मत्स्य की महारानी अपने भाइयों की लाशों पर रोते हुए अपनी मनहूस दासी को कोसने लगी। उसने कुपित होकर सैरंध्री को मत्स्य राज्य के बाहर भाग जाने का आदेश दिया। लेकिन विराट, उन अदृश्य गंधर्वों से दुश्मनी नहीं करना चाहता था जिन्होंने सैरंध्री की रक्षा की थी। इसलिए उसने सैरंध्री को उसकी इच्छानुसार राजप्रासाद में ही रहने की अनुमति दे दी।

कीचक और उसके भाइयों की हत्या की सूचना हस्तिनापुरी भी पहुंची। दुर्योधन को पक्का संदेह हुआ कि ये भीम की करतूत थी। 'बक और हिडिंब और किरमिर तथा जटासुर का वध करने वाला ही कीचक वध कर सकता है।' ये सोचकर, वो मुस्कुराया। उसे पांडवों के अज्ञातवास स्थल का ज्ञान हो गया था। उन्हें तेरहवां वर्ष समाप्त होने से पूर्व ही रंगे हाथों पकड़ लेने के रोमांच से वो पुलकित हो गया। वैसा होने पर पांडवों को फिर से बारह वर्ष वनवास करना होगा।

- ये दुविधा आने पर कि अपनी पत्नी की रक्षा की जाए अथवा अपनी पहचान छिपाई जाए, युधिष्ठिर ने निष्पृह तर्क रखा जिससे क्रोधित होकर द्रौपदी अपने पर मोहित भीम की शरण में गई।
- अपने सभी पतियों के प्रति समान व्यवहार की अपेक्षा के बावजूद द्रौपदी को अर्जुन से विशेष अनुराग था लेकिन उसका दुर्भाग्य ये था कि वो भी अपने बड़े भाई की आज्ञा का आंख मूंद कर पालन करता था। द्रौपदी को ये भान था कि भीम अपने निर्णय स्वयं भी कर लेता है और उस पर गहन आसक्त है। इसीलिए वो, भीम से अपनी बात मनवा लेती है, क्योंकि वो, उसकी आसक्ति में डूबा सीधा-सादा व्यक्ति है।
- द्रौपदी की अनिंद्य सुंदरता दृढ़ से दृढ़ व्यक्ति को विभ्रमित कर ही डालती है जिससे उसे हमेशा ही परेशानी झेलनी पड़ती है। निर्दोष होने के बावजूद उसका रूप सभी को अनियंत्रित कर देता है और वे उसके शोषण पर आमादा हो जाते

हैं, क्योंकि उसकी शुचिता अखंड है और वो किसी को भी घास नहीं डालती। कीचक, जयद्रथ, कर्ण, दुर्योधन सभी उसके रूप पर रीझे थे। पांडव भी उस पर आसक्त हैं। कुंती ने ये भांप कर ही द्रौपदी का विवाह अपने पांचों पुत्रों से कर दिया था, ताकि उसके पुत्रों के बीच उसके लिए सिर फुटौवल न हो।

- वर्ष 1910 में महाराष्ट्र नाटक मंडली के नाटक *कीचक वध* को तत्कालीन राजनैतिक स्थिति से प्रभावित माना गया था। कृष्णा जी खाडिलकर की इस प्रस्तुति में भारत माता को द्रौपदी निरूपित किया गया था। कीचक को अंग्रेजी हुकूमत, युधिष्ठिर को मध्यमार्गी दल और भीम को क्रांतिकारियों का प्रतीक जताया गया था। भीम उन अतिवादी परिवर्तनकामियों का प्रतीक था जो कठिन, हिंसक रूप में अंग्रेजी हुकूमत का प्रतिरोध करने से नहीं हिचकिचाते थे। नाटक को तत्कालीन प्रमुख क्रांतिकारियों ने बढ़-चढ़कर देखा जिससे अंग्रेज हुकूमत ने असुरक्षित होकर इस पर रोक लगा दी थी।

उत्तर का साहस

दुर्योधन के इशारे पर त्रिगर्त के राजा सुशर्मा ने मत्स्य की दक्षिणी सीमा पर आक्रमण करके विराट की गाय चुरा लीं। विराट इससे भयभीत हुआ, क्योंकि कीचक और उसके भाइयों के अलावा उसकी सेना में कोई समर्थ योद्धा नहीं थे।

राजा को परेशान देखकर कंक बोले, 'मैं आपकी सहायता करूंगा। मैं भाले से युद्ध में पारंगत हूं।'

फिर बल्लव बोला, 'मैं भी आपके लिए लडूंगा। मुझे गदायुद्ध में महारत है।'

दामाग्रंथी और तंतीपाल ने कहा, 'हमें तलवार युद्ध में महारत है।'

ये सुनकर विराट बोला, 'मगर हम यदि गाय ढूंढ़ने के लिए नगरी छोड़कर चले गए तो स्त्रियों की सुरक्षा के लिए यहां कौन रहेगा?'

राजा का छोटा पुत्र उत्तर तपाक से बोला, 'मैं करूंगा रक्षा। मुझे धनुर्विद्या का समुचित ज्ञान है। मैं अपनी माता तथा बहनों की रक्षा करूंगा। यह सुनकर विराट का माथा गर्व से ऊंचा हो गया। वो अपने इन चार सेवकों तथा अन्य सैनिकों को साथ लेकर अपनी गाय ढूंढ़ने निकल गया।'

उनके नगर से निकलते ही मत्स्य की उत्तरी सीमा पर कौरव सेना ने धावा बोल दिया। भयभीत होकर सुदेषणा चिल्लाई, 'वे नगरी पर आक्रमण करके सब कुछ धराशायी कर देंगे तथा औरतों को दासी बनाकर ले जाएंगे।'

उत्तर ने उसे ढाढ़स बंधाते हुए बड़बोलापन किया, 'माता, आप चिंता न करें। मैं घोड़े पर चढ़कर जाऊंगा और अकेले दम उन्हें भगा दूंगा।' उसने अपना कवच पहना, शिरस्त्राण लगाया और धनुष तथा तुणीर लेकर मोर्चे पर जाने को उद्धत हुआ, लेकिन तभी उसे याद आया कि उसके पास तो अपने रथ का सारथि ही नहीं है, 'अब मैं क्या करूं?'

इसका जवाब शर्मीली मुस्कान के साथ अपनी पलकें कौतूहल से झपकाती बृहन्नला ने दिया, 'मैं सहायता करूं क्या? मैं कभी पुरुष था और रथचालन कला में निपुण हूं।'

उत्तर ने धृष्टतापूर्वक इसका उत्तर दिया, 'तुम्हें ही करना होगा, क्योंकि और कोई है ही नहीं।'

कौरवों को शीघ्र ही सामने से अकेला रथ आता दिखाई दिया, जिसका सारथि किन्नर और योद्धा छोटा सा लड़का था। उन्होंने, उसकी हंसी उड़ाते हुए शंख बजाकर युद्धघोष कर दिया। उसकी आवाज कान के परदे फाड़ने जैसी तेजी से गूंजी।

उत्तर को अचानक अपने सामने महान योद्धाओं की रथारूढ़, अश्वारूढ़ तथा गजारूढ़ कतार दिखी, जो भांति भांति के अस्त्र-शस्त्र थामे हुए थे। वो भय से कांप गया। उसे तुरंत ये भान हुआ कि बहादुरी की बात करने और सचमुच बहादुर होने में बड़ा अंतर है। वो रथ से कूदा और वापस भागने लगा। बृहन्नला ने रथ रोका, जमीन पर कूदा और उसका पीछा करके उसे वापस रथारूढ़ किया। पूरी तरह भयभीत उत्तर ने आंखों में आंसू भर कर कहा, 'मैं इनसे नहीं लड़ सकता।'

बृहन्नला ने उसे ढाढ़स बंधाया और फिर रथ को रणक्षेत्र के बाहर वन क्षेत्र की ओर मोड़ दिया। वहां पहुंच कर उसने रथ को शमी वृक्ष के पास रोका। उसके ऊपर कपड़े में लिपटे शव, बंधे हुए थे। बृहन्नला ने उनमें से एक शव की ओर इंगित करके उत्तर से कहा, 'इस पेड़ पर चढ़कर, उसे उतार लो।' उत्तर भयभीत हो पीछे हट गया। इस पर बृहन्नला ने उसे हिम्मत बंधाई। 'भयभीत मत होओ, शव तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।' उत्तर ने जी कड़ा किया। उसने देखा कि किन्नर अब जनानी हरकतें नहीं कर रहा। उसका हावभाव मर्दाना और आत्मविश्वास से परिपूर्ण था। शव के पेड़ से उतरते ही बृहन्नला ने उसका कपड़ा खोला। उसके भीतर शव के अवयव नहीं, बल्कि अस्त्र-भाला, धनुष, बाण, तलवार तथा गदा थे। बृहन्नला ने उत्तर को बताया, 'ये पांडवों के शस्त्र हैं।'

आश्चर्य से आंखे फाड़े उत्तर ने पूछा, 'तुम्हें कैसे पता?'

'क्योंकि मैं तीसरा पांडव, अर्जुन हूं, कुंती पुत्र।' उत्तर ये सुनकर घुटनों के बल बैठ गया। उसके सामने अपने हाथों में गांडीव धनुष थामे अर्जुन खड़ा था। अर्जुन बोला, 'अब हमें युद्ध करना और लड़ाई जीतनी है।'

अबकी बार रणक्षेत्र में रथ जैसे ही प्रविष्ट हुआ उसका सारथि छोटा राजकुमार और योद्धा किन्नर था। ये देखकर कौरव दोबारा ठहाका मार कर हंसे और शंखों को तब तक फूंकते रहे, जब तक किन्नर ने अपना धनुष तान कर बाण छोड़े और दुर्योधन, कर्ण, भीम और द्रोण के रथों के झंडे जमीन पर नहीं टपका दिए।
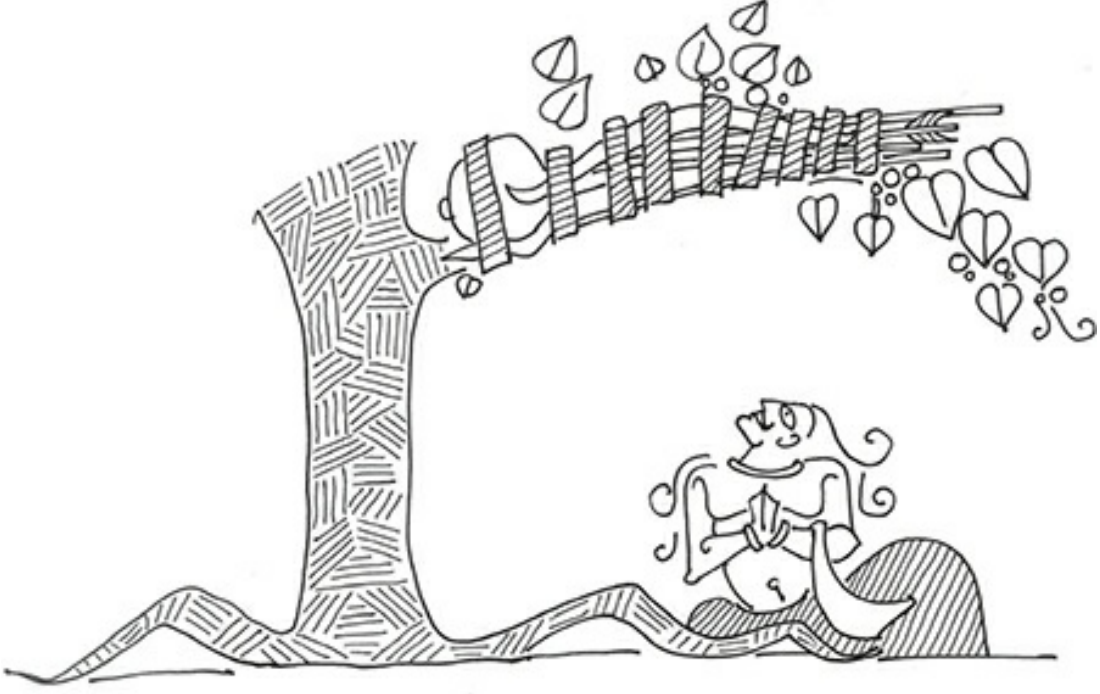
कर्ण चिल्लाया, 'वो तो किन्नर नहीं है। रथ के ऊपर फहराते झंडे को देखो। इस पर वानर का चिह्न है। और इसके हाथों में पकड़े धनुष को देखो। ये तो गांडीव जैसा दिख रहा है। तो वो निस्संदेह अर्जुन ही है।'

ये रहस्य खुलते ही दुर्योधन अर्थपूर्ण तरीके से मुस्कराया, 'लो हमने, उन्हें ढूंढ़ निकाला। तेरह वर्ष में अज्ञातवास का अंतिम वर्ष अभी पूरा भी नहीं हुआ और वे पहचाने गए। उन्हें अब फिर से वनवास करना पड़ेगा।'

भीष्म ने इसका प्रतिवाद किया, 'इतने आश्वस्त मत हो जाओ। तेरहवां वर्ष पूरा होने से पहले ही वे अपनी पहचान जता दें, पांडव इतने बेवकूफ नहीं हैं। सोचो दुर्योधन, सोचो, वर्ष की गणना तुम कैसे करोगे? ज्योतिष चक्र के बारह सौ ग्रहों में सूर्य की गति के हिसाब से अथवा सत्ताइस चांद्र ग्रहों का पूरा चक्कर चंद्रमा द्वारा लगाने में लगे कुल समय के आधार पर अथवा ज्योतिषी द्वारा दिए गए वर्ष फल के अनुसार? तीनों ही भिन्न-भिन्न हैं। हमारे ज्योतिषी हर पांचवें साल पर दो अतिरिक्त माह जोड़ देते हैं, ताकि उनके द्वारा मनुष्य निर्मित कैलेंडर सूर्य एवं चंद्रमा की प्राकृतिक बारंबारता से मेल खाता रहे। उस हिसाब से पांडवों के वनवास के तेरहवें वर्ष के बाद भी पांच माह बीत चुके हैं। युधिष्ठिर अपनी पहचान को पांच माह पूर्व ही सार्वजनिक कर देता। लेकिन वो तकनीकी आधार पर सवाल नहीं उठने देना चाहता। इसलिए उसने तथा उसके भाइयों ने अपनी पहचान जताने के लिए अज्ञातवास बीतने के बाद भी पांच महीने प्रतीक्षा की है। इसलिए तुम समझ लो कि उन्होंने समझौते के नियम का अपनी ओर से पूरा पालन किया है।'

द्रोण ने भी हामी भरी, 'भीष्म की बात सही है।'

दुर्योधन ने चिढ़ कर कहा, 'आप तो हमेशा परिवार के ज्येष्ठों की हां में हां मिला देते हैं। मेरी वार्षिक गणना के हिसाब से तो पांडव वनवास के तेरह वर्ष की अवधि अभी पूरी नहीं हुई। वो भले ही कुछ भी कहें पांडवों को तो वनवास ही भोगना पड़ेगा।' दुर्योधन ने इसके बाद कर्ण और

दुःशासन की ओर गर्दन घुमाकर कहा, 'आक्रमण करो, अर्जुन का वध करो और मत्स्य को धूल में मिला दो।'

लेकिन एक भी कदम आगे बढ़ने से पहले अर्जुन ने तीन तीर छोड़े। उनमें से एक भीष्म के चरणों में, दूसरा द्रोण के चरणों में उसकी ओर से श्रद्धास्वरूप गिरा और तीसरे तीर ने समूची कौरव सेना को नींद में सुला दिया।

अर्जुन ने फिर उत्तर को दुर्योधन, कर्ण, द्रोण और भीष्म के उत्तरीय उतार कर ले आने का निर्देश दिया। 'नींद से जागने पर उन्हें पता चलेगा कि मैंने उन्हें जीवनदान किया है। वे अपमानित होकर जाएंगे।'

- यज्ञ सचल कर्मकांड था, जिसके लिए किसी स्थायी ढांचे की आवश्यकता नहीं थीं। इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि वेद के अनुयायी मूलतः घुमंतू पशुपालक थे। समय बीतने के साथ उन्होंने कृषिकर्ता नागों और खननकर्ता असुरों के साथ लेनदेन और रोटी-बेटी का संबंध बनाया। ये दोनों ही प्रजातियां अपेक्षाकृत स्थायी बसाहटों में बस गई थीं। महाभारत उस काल की गाथा है जब विभिन्न प्रजातियों में लेन-देन आरंभ हो चुका था। लेकिन तब तक गाय चुराने और उनके लिए लड़ाई करने की प्रवृत्ति खत्म नहीं हुई थी।
- भास के नाटक *'पंचरात्र'* में दुर्योधन के यज्ञ की अवहेलना करने पर भीष्म के निर्देश से विराट को सबक सिखाने को उसकी गायों को हांक लिया गया था। ये नाटक 100 सीई का है। दुर्योधन अपने गुरु को चुनौती देता है कि पांडवों को पांच दिन में उनकी हैसियत जता दी जाए, वरना वो अपने राज्य के बंटवारे के लिए तैयार है। द्रोण विफल रहे और दुर्योधन ने राज्य का बंटवारा कर दिया। जिससे शांति कायम हो गई। ये महागाथा में वर्णित अंत से एकदम भिन्न है।
- गाय चुराना अथवा गो-हरण, वैदिक काल में लड़ाई आरंभ करने का सबसे सरल उपाय था। महागाथा में ये प्रसंग है कि युद्ध हजारों गायों के कारण लड़ा गया जिसमें मत्स्य, हस्तिनापुरी और त्रिगर्त से सैकड़ों रथ, हाथी तथा पैदल सेना शमिल हुई। युद्ध की जिस विशालता का जिक्र है वो अत्युक्ति अधिक प्रतीत होती है। गोहर्ताओं से छुटपुट झड़प

का अतिरंजित वर्णन।

- उत्तर तथा बृहन्नला के रथारूढ़ होकर रणक्षेत्र में पहुंचने का वर्णन अन्यथा गंभीर महागाथा में हास्य-व्यंग्य का थोड़ा पुट डालता है। अनके लोग बृहन्नला के चरित्र वर्णन से यह प्रतिध्वनि भी निकालते हैं कि स्त्री प्रासादों में सेवा के लिए पुरुषों का वंध्याकरण किया जाता था। इस मान्यता को चुनौती देने वालों की भी कमी नहीं है। उनके अनुसार ये बाद में जोड़ा गया क्योंकि पुरुषों का वंध्याकरण करके उन्हें गुलाम बनाने की प्रथा तो भारत में 1000 सीई के बाद मध्य एशियाई आक्रांताओं के साथ आई थी।
- प्राचीन काल में भी भारतीयों को समय मापने की पेचीदगियों का भलीभांति ज्ञान था। सूर्य और चंद्रमा द्वारा बारह सौर ग्रहों और 27 चांद्र ग्रहों की परिक्रमा पर वार्षिक तिथियां तय करते समय पूरा ध्यान दिया जाता था। चांद्र वार्षिक तिथियों के बारह महीनों का छह ऋतुओं तथा सूर्य एवं चंद्रमा की गति से तालमेल बैठाने के लिए अधिक मास का प्रावधान करके, समय-समय पर उसका प्रयोग किया गया।

उत्तरी का विवाह

विराट के मत्स्य लौटने पर उसे बताया गया कि उसके पुत्र ने अकेले ही कौरव सेना को, जिसने उत्तरी सीमा पर आक्रमण किया था, पछाड़ दिया था। इससे पहले विराट अपने मंत्री, बावर्ची, अश्वपालक तथा गोपालक की सहायता से त्रिगर्त से अपनी गाय सफलतापूर्वक वापस हांक लाया था। इससे प्रसन्न विराट को उत्तर की वीरता का पता चला तो गर्व से उसका सीना फूल गया। ‘ये तो अविश्वसनीय सा है! इतना छोटा सा लड़का और इतनी बड़ी उपलब्धि!’

इस पर कंक ने कहा डाला, ‘बृहन्नला उसके साथ थी तो उत्तर की सफलता अवश्यंभावी थी।’ मत्स्यराज ने उसकी बात अनसुनी कर दी क्योंकि उसे, ऐसा लगा कि उसके पुत्र की उपलब्धि को कम करके आंका जा रहा है। उसने अपनी विजय का उत्सव पांसे खेलकर मनाने का निर्णय किया।

द्यूत क्रीड़ा के दौरान भी उसने गर्वोन्नत होकर दोबारा कहा, ‘जरा सोचिए, मेरे छोटे से पुत्र ने उन सभी महान कुरु योद्धाओं को धूल चटा दी।’

इस पर कंक ने भी अपनी बात दोहरा दी, ‘बृहन्नला के उसके साथ होने के कारण यह लेशमात्र असंभव नहीं था।’ किन्नर का नाम दोबारा इस संदर्भ में आने से कि राजकुमार की सफलता उसके कारण है, मत्स्यराज और अधिक क्रोधित हो गए। ऐसा तीसरी बार फिर हुआ, जिससे उत्तेजित विराट ने पांसा कंक की ओर उछाल दिया, पांसा कंक की नाक पर इतने जोर से लगा कि खून बहने लगा। पास बैठी सौरंध्री कटोरा उठाकर कंक की ओर लपकी ताकि उसके रक्त की एक भी बूंद पृथ्वी पर न गिरे, ‘ये व्यक्ति ईमानदार है।’ उसने सफाई दी, ‘यदि इसका रक्त धरती पर गिरा तो अकाल छा जाएगा।’

राजा ने उसकी बात पर कोई खास ध्यान नहीं दिया क्योंकि तभी राजकुमार अपने हाथों में कुरु महारथियों के उत्तरीय थामे दरबार में प्रविष्ट हुआ। बृहन्नला लजाते हुए उसके पीछे खड़ा था। राजप्रासाद की स्त्रियां उसकी अगवानी के लिए दौड़ीं आइं। उसे विजेता नायक का सम्मान दिया गया। उसने सबको सच बताने का प्रयास किया मगर उत्साह में किसी ने उसकी बात पर कान नहीं धरा। राजकुमार के पीछे मोहक मुस्कान बिखेरते चल रहे बृहन्नला पर किसी का ध्यान भी नहीं गया।

विराट की 'सफलता' का उत्सव सारी रात चला। अगले दिन मत्स्यराज जब अपने दरबार में पहुंचे तो कंक को अपने सिंहासन पर बैठा देखकर भौंचक्के रह गए। कंक के दाहिने हाथ में भाला था और बाईं जांघ पर सैरंध्री बैठी थी। बल्लव, बृहन्नला, दामग्रंरथी तथा तंतीपाल उनके पीछे अपने भीषण अस्त्र लिए खड़े थे।

'इसका क्या अर्थ है? राजाओं के लिए आरक्षित राजगद्दी पर तुम कैसे बैठ गए?'

इसका उत्तर बृहन्नला ने दिया, 'क्योंकि कंक स्वयं राजा हैं। ये युधिष्ठिर हैं, पांडु के पुत्र, विचित्रवीर्य के पौत्र।' पांडवों ने इसके बाद राजा को अपनी वास्तविक पहचान से अवगत कराया।

अचानक सब कुछ स्पष्ट हो गया। कंक की न्यायप्रियता, बल्लव का बल, बृहन्नला का कौशल, दामग्रंथी का सुदर्शन व्यक्तित्व, तंतीपाल की तीक्ष्ण बुद्धि और सैरंध्री का राजसी व्यक्तित्व। विराट एवं सुदेषणा ने उनसे सेवकों जैसे व्यवहार की क्षमा याचना की। पांडवों ने मित्रता का हाथ बढ़ाकर कहा, 'हम तो आपके सेवक ही थे।'

इसका उत्तर विराट ने ऐसे दिया, 'शायद अज्ञानवश हमारे द्वारा दिखाए गए रूखेपन के प्रायश्चित स्वरूप मैं अपनी पुत्री उत्तरी का हाथ अर्जुन को सौंपता हूं।'

'मैंने पूरे साल उत्तरी को नृत्य सिखाया है, वो मेरी विद्यार्थी है, मेरी पुत्री के समान है। इसलिए मैं उसका हाथ अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करता हूं। वो मेरे पुत्र अभिमन्यु से विवाह करेगी।'

- उत्तर से विराट को इतना अधिक मोह है कि सबको स्पष्ट दृष्टिगोचर सत्य के प्रति भी उसकी आंखें मुंद जाती हैं। वो भी दृष्टिहीन धृतराष्ट्र एवं आंखों पर पट्टी बांधे गांधारी के समान ही है, जिन्हें दुर्योधन अत्यंत श्रेष्ठ प्रतीत होता है। व्यास को लगता है कि माता-पिता अपनी संतान की कमियों के प्रति शायद धृतराष्ट्र की तरह प्राकृतिक रूप में दृष्टिहीन होते हैं अथवा वे गांधारी की तरह उस ओर से स्वयं अपनी आंखों पर पट्टी बांध लेते हैं।
- इस प्रसंग में सेवकों के लिए ये सुझाव भी है कि कभी-कभी सही दिखने के बजाए चुप रहना अधिक श्रेयस्कर है। कंक यहां सही है, लेकिन उनके ऐसा करने से उनका नियोक्ता नाराज हो रहा है। यहां पर संयम अथवा शायद चुप्पी साध लेना अधिक उपयुक्त होगा।
- लोकगीतों से ऐसा प्रतिध्वनित होता है कि अर्जुन को शायद उत्तरी से गुपचुप प्रेम था। लेकिन वो चूंकि उसे गुरु मानती थी, इसलिए उसने उत्तरी को पत्नी के रूप में स्वीकारने के बजाए उसे पुत्रवधू बनाने का निर्णय किया।
- विराट के राज्य मत्स्य के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि वो शायद सत्यवती के जुड़वां भाई का वंशज था। मत्स्य का अर्थ मछली होता है। सत्यवती और उसका भाई दोनों ही मछली के पेट से निकले थे। उत्तरी का प्रपौत्र चूंकि अंततः पांडवों का उत्तराधिकारी बनता है, इसलिए राजाओं की माता बनने का सत्यवती का मंसूबा, अनेक पीढ़ी बाद ही सही,

पूरा हो जाता है।

तेरहवां अध्याय

मोर्चाबंदी

'जनमेजय, जिन लोगों ने कुरुक्षेत्र में लड़ने के लिए कमर कसी थी, वे सभी अनेक विचारों से प्रेरित थे और उनमें से सारे विचार महान नहीं थे।'

बातचीत

वनवास के तेरह वर्ष बीतने पर पांडव अब इंद्रप्रस्थ लौटने की तैयारी में थे।

पहले पांडवों ने अपनी जमीन वापस पाने के लिए मत्स्य से हस्तिनापुरी के लिए ब्राह्मण को भेजा। दुर्योधन ने उसे खाली हाथ लौटा दिया। दुर्योधन की दलील थी कि पांडवों ने चांद्र वर्ष तिथि के अनुसार भले वनवास के तेरह वर्ष व्यतीत कर लिए हों, मगर सौर वर्ष तिथि के अनुसार यह अवधि अभी व्यतीत नहीं हुई। इसलिए उन्हें और बारह वर्ष का वनवास करना होगा।

दुर्योधन ने उसके बाद पांडवों को यह बताने के लिए अपने पिता के सारथि संजय को भेजा कि वे वापस न आएं क्योंकि इंद्रप्रस्थ में उनके लिए कोई जगह नहीं है। वहां सब ठीकठाक है और जनता पांडव भाइयों को भूल चुकी है, जिन्होंने उस नगरी का निर्माण जुए में हार जाने के लिए किया था।

सनत और कण्व ऋषि जैसे ऋषियों ने हस्तिनापुरी जाकर धृतराष्ट्र को समझाया कि उनका पुत्र गलत काम कर रहा है। यह धर्म-विरुद्ध है। जब मूल्यों और नैतिकता की बातें धृतराष्ट के गले नहीं उतरीं तो ऋषियों ने उसे व उसके पुत्रों को चेताया कि कृष्ण और पांडव कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। अर्जुन और कृष्ण तो नर एवं नारायण के अवतार हैं।

कृष्ण तो स्वयं विष्णु हैं। जो पूरी धरती नाप चुके हैं। युद्ध में विष्णु को कभी कोई नहीं हरा पाया।

उन्होंने, पक्षीराज गरुड़ की कथा उन्हें सुनाई। गरुड़ एक बार सुमुख नामक नाग को खाने पर आमादा हो गए। सुमुख से इंद्र के सारथि मातली की बेटी गुडाकेशी मन ही मन विवाह करने का तय कर चुकी थी। मातली ने गरुड़ से अपनी पुत्री के प्रेमी की जान बख्शने की गुहार लगाई।

लेकिन गरुड़ ने उसे अनसुना कर दिया। मातली ने अंततः देवराज इंद्र का आह्वान किया। इंद्र ने गरुड़ को बुला भेजा। गरुड़ ने जब उनके सामने भी अपनी शक्ति का भौंडा प्रदर्शन किया तो इंद्र ने अपना हाथ उस पर रख दिया। उनका हाथ इतना अधिक भारी था कि गरुड़ बेहाल हो गया। उसने घुटने टेक दिए और सुमुख को जीने देने के लिए राजी हो गया। 'दुर्योधन, तुम भी गरुड़ के समान उद्दंडता मत दिखाओ, वरना तुम्हें उसके समान घुटने भी टेकने पड़ेंगे।'

दुर्योधन ने जब इस प्रसंग की खिल्ली उड़ाई और धृतराष्ट्र मौन रहे, तो ऋषिगणों ने अपनी गरदन निराशापूर्वक हिलाई और वहां से चले आए। उन्हें ये आभास हो गया था कि कुरुओं के कुटुंब को अब आत्म-विनाश से कोई भी नहीं बचा सकता।

उनके बाद कृष्ण ने हस्तिनापुरी जाकर कौरवों को होश में लाकर सुलह के प्रयास का निर्णय किया। कृष्ण ने जब नगरी की ओर प्रस्थान किया तो समूचे राजमार्ग पर, दुर्योधन ने उनके जलपान का प्रबंध किया हुआ था। तंबू लगाकर उनमें हाथों में जल पात्र एवं फलों की टोकरी थामे सेवक खड़े किए गए थे। कृष्ण ने कुछ भी खाने-पीने से इन्कार कर दिया।

नगरी में प्रविष्ट होकर कृष्ण, धृतराष्ट्र के राजप्रासाद के बजाए विदुर के घर पर ठहरे। 'मैं, कौरवों के साथ तभी भोजन करूंगा, जब उनसे बैठक का परिणाम सकारात्मक निकलेगा।' विदुर ने राजा के महल में कभी खाना नहीं खाया था। वो और उनका परिवार अपने पिछवाड़े लगे फल-सब्जियों में से शाक-भाजी तोड़कर अपना पेट भरते थे। इसका मूल प्रयोजन अपनी स्वायत्तता बरकरार रखना और राजा द्वारा अपने सगे भतीजों से किए जा रहे व्यवहार के प्रति असंतोष जताना था।

कृष्ण अंततः जब दृष्टिहीन राजा और उनके पुत्रों से मिले तो भी सौहार्द का अभाव था। दुर्योधन ने कृष्ण से दो-टूक कह दिया, 'मैं इंद्रप्रस्थ किसी को भी नहीं दूंगा। मैं उसका शासन अच्छी तरह चला रहा हूं। जुआरियों की वापसी कोई नहीं चाहता।'

कृष्ण ने दुर्योधन को समझाते हुए कहा, 'वचन तो वचन है। इसमें अच्छा या बुरा शासन कहीं आड़े नहीं आता। तुमने पांडवों को तेरह वर्ष लंबा अपमानजनक वनवास पूरा करने के बाद इंद्रप्रस्थ वापस कर देने का वचन दिया था। उन्होंने अपना वचन पूरा कर दिया। अब तुम भी अपना वचन निभाओ।'

दुर्योधन ने जवाब दिया, 'नहीं।'

कृष्ण ने फिर आग्रह किया, 'शांति बनाए रखने के लिए, उन्हें कम से कम पांच गांव तो दे दो, ताकि वे सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर सकें।'

'एक ही गांव में पांच मकान।'

दुर्योधन दुराग्रह पर डटा रहा, 'मैं तो उन्हें सुई की नोंक के बराबर जमीन भी नहीं दूंगा।'

कृष्ण अब अपनी उत्तेजना छिपा नहीं सके, 'अपना वचन तोड़ कर तुमने धर्म की बुनियाद नष्ट कर दी है। शांति बनाए रखने के लिए समझौते से भी इन्कार करके तुमने, स्वयं को शासन करने के अयोग्य साबित कर दिया है। इसलिए तुम्हारा विनाश करना आवश्यक है।' इतना कह कर कृष्ण उठ खड़े हुए और अपना निर्णय सुना दिया, 'अब कुरुक्षेत्र के मैदान पर सभ्य व्यवहार पर चलने वालों और सिर्फ शक्ति को ही सही मानने वालों के बीच युद्ध होगा। पृथ्वी उनके खून से नहाएगी जो उसकी कृपा के पात्र ही नहीं हैं।'

यह सुनकर दुर्योधन क्रोध में आगबबूला होकर चिल्लाया, 'मुझे धमकी देने की तेरी मजाल कैसे हुई। चौकीदारों, दौड़ो और इस धृष्ट गोपालक को गिरफ्तार कर लो।'

दुर्योधन की इस हिमाकत से समूचा दरबार स्तब्ध रह गया। कृष्ण को पकड़ना! वो तो सपने में भी नहीं सोचा जा सकता। शीघ्र ही, अनेक सैनिक अपनी चोब कृष्ण की तरफ ताने दरबार में घुस आए। कृष्ण निस्पृह भाव से मुस्कराए। और बोले, 'तुम पक्का ये सब करना चाहते हो?' और अचानक दरबार में दिव्य प्रकाश फैलाने से सबकी आंखें चौंधिया गईं। उसके बाद के दृश्य से सारे कौरव दहल गए। कृष्ण का ऐसा रूप सामने आया जिसके हजार सिर आग उगल रहे थे और अपने दांतों के बीच समूचे जगत को पीस रहे थे। उनका सिर आकाश को चीर कर ऊपर जाता और पांव समुद्र के पार पाताल तक जाते दिखे।

दरबार में पसरी निस्तब्धता से विचलित होकर धृतराष्ट्र ने पूछा, 'सब लोग क्या देख रहे हैं,' लेकिन जैसे वज्रपात से सबकी जीभ तालू से चिपक गई थी। 'ये क्या है! ये क्या है! कृष्ण, कृपया मुझे भी एक बार तो ये देखने दीजिए।'

कृष्ण ने कहा, 'तथास्तु।' धृतराष्ट्र ने अपने जीवन में अपनी आंखों से पहली ही बार जो देखा उससे वो धन्य हो गए। उनकी आंखों से आंसू छलक पड़े। वो साक्षात भगवान के दर्शन कर रहे थे। 'अब मैं और कुछ भी नहीं देखना चाहता। मुझे फिर से दृष्टिहीन कर दो। जो आंखें ये दिव्य दर्शन कर चुकीं, उन्हें अब और कुछ भी नहीं देखना।'

विराट स्वरूप दर्शन के बाद दरबार में अंधकार छा गया। वहां सामान्य प्रकाश लौटने तक कृष्ण विलुप्त हो चुके थे। दिव्य दर्शन के दौरान क्षण भर के लिए अनुभूत मोक्ष और श्रद्धायुक्त विस्मय का भाव काफूर हो चुका था। युद्धघोष हो चुका था और उसे लड़ना भी अवश्यंभावी था।

- शांति स्थापना के लिए बातचीत में कृष्ण ने पांडवों के लिए जिन पांच गांवों की मांग प्रस्तुत की थी उनमें शामिल थे, पानीप्रस्थ (आधुनिक पानीपत), सोनप्रस्थ (आधुनिक सोनीपत), तिलप्रस्थ (आधुनिक तिलपत), वृक्षप्रस्थ (आधुनिक बागपत) तथा इंद्रप्रस्थ (आधुनिक दिल्ली)।
- भास के नाटक *दूत वाक्य* में कृष्ण के अस्त्र मानव रूप धरकर दुर्योधन को डराते हैं, जिसके बाद वो कृष्ण को पकड़ने की योजना निरस्त कर देता है। 100 सीई काल के इस नाटक में ये अस्त्र हैं-सुदर्शन नामक चक्र, कौमुदकी नामक गदा, सारंग नामक धनुष, नंदक नामक तलवार और पांचजन्य नामक शंख।
- सामान्य जन के बीच अपनी बात मनवाने के लिए अर्थशास्त्र नामक ग्रंथ में साम,दाम,दंड,भेद नामक चार चरण बताए गए हैं। साम का अर्थ है आपसी समझ-बूझ के द्वारा विवाद को सुलझाना, दाम का अर्थ उसके नाम से ही स्पष्ट है कि रिश्वत देकर खरीद लेना, दंड से भी स्पष्ट है कि बाकी दो उपाय विफल होने पर दंड देना अथवा दंडित करने की चेतावनी देकर अपनी बात मनवाना। भेद से भी स्पष्ट है कि विपक्षी खेमें में फूट डालकर उसे कमजोर करना और अपनी बात मनवाने के लिए मजबूर करना। कृष्ण इन चारों उपायों को अपनाते हैं। वे, कौरवों को बातचीत द्वारा समझाने का प्रयास करते हैं। इसी नीति के तहत वे, पांडवों के लिए सिर्फ पांच गांव मांगने तक झुक जाते हैं, वे पांडवों को प्राप्त शक्तियों से भी अवगत कराते हैं। ये उपाय विफल होने पर वे कौरवों के मध्य फूट डालने का निर्णय करते हैं।
- युद्ध आरंभ होने से थोड़ा पहले सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण पड़ते हैं। बातचीत के दौरान आकाश में ज्योतिषीय अपशकुन छा जाते हैं। ये सूचना भीष्म पर्व से संकलित है और ज्योतिषी इसका प्रयोग महाभारत की काल गणना के लिए करते हैं।
- युद्ध के पूर्व पड़े सूर्यग्रहण के दौरान भारत वर्ष के सभी राजा-महाराजा कुरुक्षेत्र के पांच सरोवरों में स्नान करके स्वयं को पुनः पवित्र करने के लिए वहां एकत्रित हुए थे। पांडव तब अज्ञातवास भुगत रहे थे। कृष्ण भी वहां स्नान करने पहुंचे थे और वहां जमा राजाओं के ठाठ-बाट देखकर विस्मित रह गए। उन्हें तत्काल ये पूर्वाभास हुआ कि कुरुक्षेत्र में राजा-महाराजा अगली बार मृत्यु के तांडव के लिए एकत्रित होंगे।
- राजनैतिक षड्यंत्रों के बीच विदुर की स्वायत्तता की कथा ग्रंथों में भरी पड़ी है। वो अपने भाई के पास राजप्रासाद में ही रहते थे, लेकिन वहां का भोजन कभी नहीं करते थे। वो अपनी फल-फूल-तरकारी की बगिया से शाक-भाजी तोड़कर अपना व परिवार का पेट भर लेते थे। विदुर साग यानी विदुर की हरी शाक-भाजी पर भक्ति गीत भी प्रचलित हैं। ये शाक-भाजी स्वयं कृष्ण ने उनकी निस्पृहता से प्रभावित होकर उन्हें दिए थे।
- कृष्ण के प्रकरण के बाद कौरवों ने उलूक नामक अंतिम दूत भेजा जिसने पांडवों के विरुद्ध उनके द्वारा युद्ध का औपचारिक संदेश दिया।

दृढ़ संकल्प माता एवं भरोसेमंद मित्र

हस्तिनापुरी से निकलते समय कृष्ण, पांडवों की माता कुंती का अभिवादन करने भी गए। कुंती वहीं अपने ज्येष्ठ के यहां पांडवों के बच्चों की देखरेख कर रही थीं। कृष्ण ने उनसे पूछा कि क्या वे अपने पुत्रों के लिए कोई सलाह भेजना चाहती हैं। क्योंकि कौरवों द्वारा नियत समय बीतने के बावजूद इंद्रप्रस्थ का राजपाट वापस कर देने के वचन से मुकरने से पांडव चकित नहीं बल्कि निराश हो रहे थे। इस पर कुंती ने कहा 'मेरे पुत्रों को विदुला का प्रसंग सुना देना। उसका पुत्र भी सिंधुराज के हाथों अपनी पराजय से इसी प्रकार मायूस हो गया था। उसकी ऐसी हालत देखकर विदुला ने उससे कहा कि अपने अधिकारों के लिए हमेशा लड़ना चाहिए और पराधीन एवं लज्जित होकर लंबा जीवन जीने के बजाए सिर ऊंचा करके कीर्तिमान जीवन को चुनना अधिक श्रेयस्कर है। फिर भले ही सम्मान से जीवित रहने की अवधि कम हो। विदुला की अपने पुत्र को दी गई सलाह को ही मेरे पुत्रों के लिए मेरा आशीर्वाद माना जाए। कृष्ण ने शीश नवाया और यह संदेश पांडवों को देने का आश्वासन दिया।

कृष्ण ने इसके बाद दुर्योधन के मित्र कर्ण से मिलने का निश्चय किया। कृष्ण ने कर्ण से पूछा, 'यह जानते हुए भी कि कौरव इतने गलत रूप में पांडवों की जमीन पर कब्जा किए हुए हैं, तुम

उनके लिए युद्ध क्यों करना चाहते हो? यदि तुम ये घोषणा कर दो कि कौरवों के लिए नहीं लड़ोगे तो दुर्योधन युद्ध से हाथ वापिस खींच सकता है। उससे, इस विवाद का शांतिपूर्ण हल आसान हो सकता है।'

कर्ण का उत्तर था, 'मैं अपने मित्र का साथ कभी नहीं छोड़ूंगा।' वो, उस व्यक्ति का साथ कभी छोड़ भी नहीं सकता था, जिसने उसका हाथ थाम कर तब उसे क्षत्रिय घोषित किया था जब समूचे संसार ने उसे रथचालक का पुत्र ठहरा कर खारिज कर दिया था। कृष्ण ने उसे फिर समझाया कि अपने वचन से मुकरने वाले व्यक्ति का साथ देना तो अधर्म होगा। लेकिन कर्ण अपनी बात पर डटा रहा। कृष्ण ने तब उसके जन्म का राज उसे बताया, 'कर्ण, दुर्योधन जिन लोगों से लड़ रहा है, वो तो तुम्हारे सगे भाई हैं। तुम तो कुंती के ही पुत्र हो, तुम्हारा गर्भधारण उन्होंने, अपने विवाह से पूर्व सूर्य के आह्वान से किया था। श्वेतकेतु के नियम से तो कुंती से जिस व्यक्ति, 'पांडु' ने विवाह किया, वही तुम्हारे पिता हुए। उस हिसाब से तो तुम पांडव हो, प्रथम पांडव, युधिष्ठिर के बड़े भाई हो। और कुंती ने चूंकि अर्जुन से द्रौपदी को अपने भाइयों से साझा करने को कहा था, इसलिए वो तुम्हारी भी पत्नी है। तुम अगर पाला बदल लो तो तुम्हीं इंद्रप्रस्थ के राजा होंगे और द्रौपदी तुम्हारी रानी होगी और पांचों पांडव तुम्हारी सेवा करेंगे तथा तुम्हें कुंती का आशीर्वाद भी मिलेगा।'
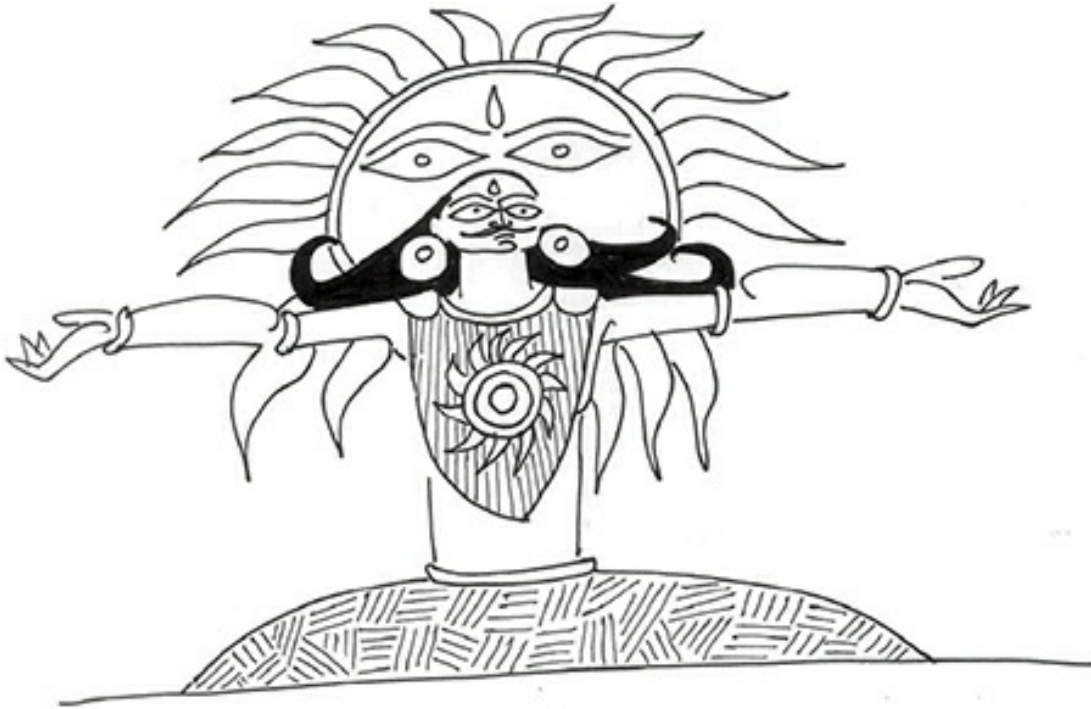
कर्ण को पता था कि कृष्ण झूठ नहीं बोल रहे। सचमुच यही सत्य था। एकाकी और उपेक्षित जीवन का एकाएक पटाक्षेप हो गया। उसके भीतर का खालीपन अंततः भर गया। उसे अब ये पता चल गया था कि वो कौन था: निराश्रित अनाथ नहीं बल्कि राजकुमार, जिसके पांच छोटे भाई और माता भी थी। वो राजसी मूल का था, उसे क्षत्रिय कुल में घुसपैठ की अब कोई आवश्यकता नहीं

थी। उसके मानस पटल पर अपनी माता एवं भाइयों के गले लगने की छवि उभरने लगी। उन्हें, वो निःशर्त क्षमा कर देगा। मन में स्नेह का ज्वार उठते ही उसके मुख पर मुस्कान छा गई। उसके बाद उसके नवोदित परिवार के पीछे से दुर्योधन का मुरझाया हुआ चेहरा उभरा। क्या उस व्यक्ति को बिसरा देगा, जिसने, उसको समूचे संसार द्वारा ठुकराए जाने पर भी सहारा दिया था? क्या वो दुर्योधन को समाज के लिए वैसे ही छोड़ देगा, जैसे कुंती ने कभी उसे अनाथ कर दिया था। नहीं, वो अपने मित्र से कभी भी विश्वासघात नहीं करेगा। इसी असमंजस से उबरते हुए उसने कृष्ण से कहा, 'आप मुझे अपने शब्दों और प्रलोभनों से भरमाना चाहते हैं, लेकिन मैं अपने वचन का पक्का हूं। सही हो अथवा न हो। मैं दुर्योधन का साथ दूंगा और उसी के लिए अपने प्राणों की आहूति दूंगा। उसके लिए भले ही मुझे अपने सहोदरों से भी लड़ना पड़े।'

त्रासदी यह थी कि युवराज के प्रति उसकी वफादारी के बावजूद कुरु कुटुंब के बुजुर्गों को वो फूटी आंख नहीं सुहाता था। वे हमेशा उसे निचली जाति के रथचालक के महत्वाकांक्षी पुत्र के रूप में देखते थे, जिसने दुर्योधन पर जादू कर रखा था। भीष्म तो कर्ण से बात करते समय उसका मुंह देखना भी पसंद नहीं करते थे।

युद्धारंभ की पूर्व संध्या में कर्ण ने कहा कि वो अपने प्रिय मित्र के लिए पांडवों को अकेले दम ही पराजित कर देगा। ये सुनकर भीष्म की हंसी छूट गई। 'जरा याद करो कि गंधर्वों से जब तुम दुर्योधन की रक्षा नहीं कर पाए थे, तब अर्जुन ने उसे कैसे बचाया था। और ये भी स्मरण रहे कि विराट की गायों को हांक लाने से अर्जुन ने हमें किस प्रकार अकेले ही रोक दिया था। अपने को उससे श्रेष्ठ मानकर तुम मूर्खता कर रहे हो। वैसे तो तुम्हारे जैसे व्यक्ति से और आशा भी क्या की जा सकती है?'

ऐसे अपमानित किए जाने पर आपे से बाहर होकर कर्ण चिल्लाया, 'बूढ़े आदमी तुम जो विवाह करने का भी साहस नहीं जुटा पाए, तुम, जीवन में जिसकी उपलब्धि शून्य है, मेरा मखौल उड़ाने की तुम्हारी हिम्मत कैसे पड़ी? जब तक तुम सेनापति हो, मैं तुम्हारे अधीन होकर युद्ध नहीं करूंगा।'

भीष्म ने व्यंग्य किया, 'ये अच्छा निर्णय है कर्ण। क्योंकि तुम जैसे व्यक्ति के साथ होते, मैं कभी युद्ध नहीं करूंगा। तुम यदि विषैली सलाह न देते तो दुर्योधन परिस्थिति भांपकर शांति स्थापित कर लेता।'

दुर्योधन अपने दादा और अपने अभिन्न मित्र के बीच वाक युद्ध सुनकर अवाक रहा गया। उसे चूंकि दोनों योद्धाओं की आवश्यकता थी, इसलिए उसने शांति स्थापना के लिए दोनों को मनाया, मगर उन्होंने समझौते से इन्कार कर दिया। दोनों को जिद पर अड़े देखकर उसने कर्ण को जाने दिया। दुर्योधन किसी भी कीमत पर भीष्म को नाराज नहीं कर सकता था। भीष्म ने यदि नहीं लड़ने का निर्णय किया तो द्रोण नहीं लड़ेंगे, और यदि द्रोण ने हथियार न छुए तो कौरवों में से कोई भी नही लड़ेगा। इस शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया से बचने और कर्ण को युद्ध में बाद के लिए तरोताजा रखने वास्ते भी उसने भीष्म का मान रखा।

- अपने पुत्रों से न्याय के लिए लड़ने संबंधी विदुला के आह्वान को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में युवाओं को अंग्रेजों के खिलाफ कमर कसने के लिए भी प्रयोग किया गया और अनेक लोग उससे प्रेरित भी हुए।
- सूर्य पुत्र होने के कारण कर्ण सीधे सूर्यवंशी राजाओं से भी संबद्ध हो गया। इनमें राम और हरिश्चंद्र भी हैं जो अपनी दानवीरता एवं वचनबद्धता के लिए प्रसिद्ध हुए।
- कर्ण एक बार दुर्योधन एवं उसकी पत्नी भानुमति के साथ पांसे खेल रहा था। कर्ण ने देखा कि भानुमति बेईमानी कर रही थी, इसलिए उसने, उसका हाथ पकड़ लिया। ये तो अशिष्टता की पराकाष्ठा थी। इस दृश्य के साक्षी सभी लोग सहम गए। भानुमति स्वयं भी आहत होकर वहां से उठ खड़ी हुई, क्योंकि उसके पति के सिवाए तब तक किसी ने उसे छुआ भी नहीं था। लेकिन दुर्योधन ने हंसते हुए कर्ण को साफ बचा लिया, 'कर्ण द्वारा मेरी पत्नी को छू लेने से क्या हुआ? मुझे पता है कि उसका स्पर्श निर्दोष था। अपने मित्र पर मुझे पूरा भरोसा है। उसका हृदय निर्मल है।' कर्ण पर दुर्योधन को इतना अटूट विश्वास था। इसीलिए कर्ण, दुर्योधन को पीठ नहीं दिखा पाया।
- कर्ण के माध्यम से व्यास जीवन की अनेक दुविधाओं को रेखांकित करते हैं: मित्रता अथवा परिवार, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा अथवा सार्वभौमिक हित, वफादारी अथवा अवसरवाद। इसके कारण वो महाभारत का कारुणिक नायक बन गया। लगभग यूनानी नायक के समान जो पूरी दुनिया से अपना लोहा मनवाने के लिए अकेला ही डटा रहा।

पक्ष परिवर्तन

पांडवों और कौरवों के बीच युद्धघोष होने के साथ ही दुर्योधन ने संजय को युधिष्ठिर के पास भेजा। इसका तात्पर्य युधिष्ठिर को यह समझाना था कि वो पर्वत से टकराने पर उतारू हैं। 'इस

ओर भीष्म और द्रोण तथा कर्ण जैसे महान योद्धा हैं। पुनर्विचार कर लो। कदम वापस खींच लो, क्योंकि युद्ध में तुम्हारी हार अवश्यंभावी है।'

युधिष्ठिर ने इस बात की अनदेखी करके अपने भाइयों के साथ अपने दूतों के हाथ राजाओं को युद्ध का निमंत्रण भेज दिया।

राजा-महाराजा समूचे आर्यावर्त से अपनी सेनाएं लेकर आए। सैनिकों, रथों, अश्वों, हाथियों का कुरुक्षेत्र में सैलाब आ गया। पांडवों अथवा कौरवों के पक्ष में अलग-अलग राज्यों की भिन्न रंग की पोशाकों, ध्वजा और शिविरों में सुसज्जित सेनाएं मानो नदियों में गिरने वाले नालों, रौ अथवा सहायक छोटी नदियों के जल के समान हहरा रही थीं।

उनमें नकुल और सहदेव के मामा, मद्रराज शल्य भी थे।

रणक्षेत्र पहुंचने वाले रास्ते में शल्य को ये देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि उनके सैनिकों, अश्वों और उनके गजों का पेट भरने के भरपूर प्रबंध किए गए थे। मन ही मन ये सोचते हुए कि ये प्रबंध पांडवों ने किए थे, वे बोले, 'ऐसे सेनापति के लिए लड़ना तो अत्यंत प्रसन्नता का द्योतक है। जिसने इतने कुशल प्रबंध किए हुए थे।'

कुरुक्षेत्र पहुंच कर शल्य का ये भ्रम टूटा। उन्हें पता चला कि वो प्रबंध तो कौरवों ने किए थे, कौरवों द्वारा आवभगत का लाभ उठाने के बाद शल्य का ये दायित्व हो गया कि वो अपने ही भांजों के विरुद्ध कौरवों के पक्ष में युद्ध करें।

ये सोचकर वो रोने लगे, 'ये तो भीषण यंत्रणादायक है।' ये सुनकर कृष्ण मुस्कराते हुए बोले, 'नहीं ये तो अवसर है। वे आपसे पक्का कर्ण का सारथि बनने के लिए कहेंगे, ताकि पांडव दुखी हों और कर्ण का अहं भी तुष्ट हो जाए। ये बात निर्विवाद रूप में मान लेना और रथ को रणक्षेत्र में ले जाते समय अर्जुन की बार-बार प्रशंसा करके कर्ण का मनोबल तोड़िएगा। पस्त मनोबल वाले क्षत्रिय एकाग्र होकर युद्ध नहीं कर पाते।'

युधिष्ठिर ने कौरव पक्ष के बीच भी ये संदेश मिजवाया कि जो लोग दुर्योधन की अनीति से

असंतुष्ट हों वे पांडव पक्ष से लड़ सकते थे।

धृतराष्ट्र के दो पुत्र विकर्ण एवं युयुत्सु अपने भाई दुर्योधन की कारगुजारी से असंतुष्ट थे। इनमें विकर्ण तो गांधारी का ही पुत्र था मगर युयुत्सु दासी पुत्र था। द्यूतक्रीड़ा के दौरान द्रौपदी को ही दांव पे लगा डालने का इन दोनों ने ही कड़ा विरोध किया था। दुःशासन के हाथों द्रौपदी के चीरहरण के दौरान भी दोनों ने अपनी आंखें शर्म से नीचे कर ली थीं। दोनों के ही मन में ये द्वंद्व चल रहा था कि धर्म का साथ दें अथवा परिवार के प्रति निष्ठित रहें।

युयुत्सु ने पांडवों का साथ देने का निर्णय किया लेकिन विकर्ण अपने सहोदर दुर्योधन के साथ ही डटा रहा। वो भी भीम के हाथों मारे गए सौ कौरवों में शामिल था। अलबत्ता विकर्ण के वध में भीम को सबसे अधिक संघर्ष करना पड़ा।

- कहीं-कहीं ऐसा भी उल्लेख है कि मद्रराज जानबूझ कर प्रतिपक्ष में शामिल हुए थे, क्योंकि उन्हें वहां विजय की ज्यादा संभावना लग रही थी। बहरहाल, जो भी हो, कृष्ण ने उन्हें कौरव पक्ष से लड़ते हुए भी पांडवों का पक्ष लेने का सुझाव देकर अपनी भूल सुधारने का अवसर दिया था। कर्ण का मनोबल कमजोर करने की उनकी सलाह शायद मनोयुद्ध प्रणाली का प्रथम चरण था। जिसमें युद्ध से पहले ही शत्रु का हौसला पस्त करने का प्रयास था।
- महाभारत में भी रामायण के समान ही परिवार अर्थात मोह और न्यायप्रियता अर्थात सत्य के बीच चयन के द्वंद्व को बार-बार चित्रित किया गया है। रामायण में रावण के दो भाई आपस में अधिक उपयुक्त पक्ष में युद्ध करने संबंधी बहस करते हैं।
- कुंभकर्ण परिवार को प्राथमिकता देकर रावण के पक्ष में युद्ध करता है। विभीषण न्यायप्रियता का साथ देता है और पाला बदल कर राम के पक्ष में युद्ध करता है। इसी तरह महाभारत में विकर्ण परिवार का वफादार रहता है मगर युयुत्सु पाला बदल लेता है। युद्ध की समाप्ति पर युयुत्सु, हस्तिनापुरी का प्रशासक नियुक्त किया जाता है।

पक्ष-प्रतिपक्ष

कृतवर्मा के नेतृत्व में यादवों का एक समूह कौरवों के पक्ष में युद्ध का निर्णय करता है। दूसरी ओर सात्यकी के नेतृत्व वाले यादव, पांडवों के पक्ष में युद्ध का निर्णय करते हैं।

कृष्ण तथा उनसे संबद्ध यादव किसके पक्ष में युद्ध करेंगे, इसका किसी को भी अनुमान नहीं था। उन्हें अपने पक्ष में करने के लिए दुर्योधन और अर्जुन दोनों ही द्वारका पहुंचे। दुर्योधन को कृष्ण की सहायता मिलने का पक्का भरोसा था, क्योंकि उसकी पुत्री लक्ष्मणी का विवाह कृष्ण के पुत्र संब से हुआ था। उधर अर्जुन को कृष्ण के अपने साथ आने का विश्वास इसलिए था कि उसने, उनकी बहन सुभद्रा से विवाह किया था।

द्वारका में कृष्ण के कक्ष में पहले दुर्योधन पहुंच गया। उसने देखा कि कृष्ण सो रहे थे। उनके नींद से जगने की प्रतीक्षा में दुर्योधन उनके सिरहाने ही बैठ गया। अर्जुन बाद में आया तो उनके पलंग पर पायताने बैठ गया। कृष्ण की नींद जैसे ही टूटी उनकी नजर अर्जुन पर पड़ी, तो वे मुस्करा दिए। उन्होंने पलंग पर उठकर बैठते हुए पूछा, 'तुम क्या पाने आए हो?'

तभी दुर्योधन चिल्लाया, 'पहले मुझसे पूछो कि मुझे क्या चाहिए, मैं ही पहले आया था।'

कृष्ण ने शांत भाव से उत्तर दिया, 'नहीं। तुम पहले भले ही आए हो, मगर पहले मैंने अर्जुन को ही देखा था। इसलिए मैं पहले उसी से पूछूंगा।' अर्जुन की ओर गरदन घुमाकर उन्होंने पूछा, 'तुम्हें क्या चाहिए? मेरी सेना अथवा निहत्था मैं?'

अर्जुन ने एक ही सांस में जवाब दिया, 'आपको कृष्ण, कौरवों से लड़ते समय मैं आपको अपने साथ रखना चाहता हूं।'

दुर्योधन ने राहत की सांस ली। उसे कृष्ण के नेतृत्व में बनी 'नारायणी सेना' की चाहत थी। इस सेना को मिलाकर कौरवों की ओर से लड़ने वाली ग्यारह सेनाएं हो जाएंगी। पांडवों के पक्ष में मात्र सात ही सेना थीं। उसे लगा कि ऐसे में विजयश्री निश्चय ही दुर्योधन के कदम चूमेगी।

अर्जुन भी बहुत प्रसन्न था। क्योंकि अस्त्र-शस्त्रों से अधिक युद्ध में रणनीति का महत्व उसे पता था। कृष्ण चूंकि रणनीति नियोजन में माहिर थे, इसलिए वे अकेले ही पांडवों और कौरवों के साथ खड़ी समूची सेना से अधिक मूल्यवान थे।

- पांडवों की ओर से लड़ने को सन्नद्ध सात सेनाओं के सेनापति धृष्टद्युम्न थे। वे द्रौपदी के जुड़वां भाई थे और उनकी सहायता के लिए सात दलपति थेः सारथि कृष्ण के साथ अर्जुन, मत्स्यराज विराट, मगधराज सहदेव, पांचाल नरेश द्रुपद, यादवों के मुखिया सात्यकी, चेदिराज धृष्टकेतु, कैकेय नरेश वृहत्क्षत्र एवं उनके चार भाई।
- कौरवों के पक्ष में लड़ने के लिए उद्धत ग्यारह सेनाओं के सेनापति भीष्म थे। उनकी सहायता के लिए ग्यारह दलपति थे। गौतम ऋषि के वंशज कृपा, भारद्वाज ऋषि के वंशज द्रोण, द्रोण का पुत्र तथा पांचाल के उत्तरी क्षेत्र का शासक अश्वत्थामा, अंगराज कर्ण, गांधार नरेश शकुनि,नकुल और सहदेव के मामा मद्र नरेश शल्य, सिंधुराज जयद्रथ-गांधारी की पुत्री दुःशला का पति, यादव मुखिया कृतवर्मा, शांतनु के छोटे भाई द्वारा स्थापित राज्य बहलिका के भूरिश्रवा, त्रिगर्त का सुदक्षिण एवं उसके जांबाज सारथि, और कलिंग का श्रुतयुद्धा। युद्ध के दौरान जो दलपति खेत रहे उनकी जगह आएः प्रागज्योतिष के भागदत्त, कौशल के बृहद्बल, अवंति के विंद एवं अनुविंद और हैहेय के नील।
- कृष्ण, अर्जुन को दो विकल्पों में से चुनने को कहते हैं: वे क्या हैं, और उनके पास क्या है? अर्जुन चुनता है, 'कृष्ण जो भी हैं?' दुर्योधन इतने मात्र से संतुष्ट है, 'कृष्ण के पास क्या है।' यह अंतर ही आत्म प्राप्ति की खोज और पदार्थ पाकर संतुष्ट हो जाने वाला अंतर है।
- कौरव आजीवन ऐश्वर्य में रहे। उसके बावजूद उनका जीवन ईर्ष्या एवं क्रोध तथा शिकायतों से भरपूर है। उधर पांडव जीवन में अधिकतर गरीबी, वन, अज्ञातवास, ताऊ पर आश्रित रहे। उसके बावजूद उनका जीवन ज्ञान से भरपूर है। व्यास ने इस प्रकार यह दर्शाया है कि लक्ष्मी की अनर्जित उपस्थिति, बुद्धि हर लेती है। और गरीबी किस प्रकार, यदि व्यक्ति चाहे तो हमारे जीवन में सरस्वती का वास करवा लेती है। यदि बुद्धि-विवेक की देवी को वास करने दिया जाए तो हमारे जीवन में बुद्धि और संपदा दोनों की भरमार कर देगी।

तटस्थ

दुर्योधन, फिर कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम के पास गया। दुर्योधन ने उनसे निवेदन किया, 'मेरे साथ आ जाइए। मैं आपकी बहन और मेरा पुत्र आपकी बेटी से विवाह नहीं कर पाए। मुझे कभी भी आपकी संगत का सुख नहीं मिला। इसलिए कृपया मेरे दुष्ट चचेरे भाइयों के विरुद्ध मेरी ओर से

लड़िए।'

बलराम उसकी बात का उत्तर दे पाते उससे पूर्व ही वहां दुर्योधन से पहले आ चुके भीम ने कहा, 'अन्यायी और दुष्ट तो दुर्योधन है, क्योंकि वही हमारे राज्य पर अवैध कब्जा किए हुए है। बलराम हमारा साथ दीजिए, हमारी ओर से लड़िए अपने भाई के पक्ष में। आप जानते हैं कि आपके भाई हमेशा सही होते हैं।'

बलराम ने कोई जवाब देने के बजाए अपने सामने उपस्थित दो अतुल बलशालियों पर दृष्टिपात किया। दोनों ही उनके रिश्ते के भाई थे। उन्होंने, उन दोनों को ही गदा युद्ध की कला सिखाई थी।

अपनी दुख एवं स्नेहसिक्त आंखों से दोनों को निहारते हुए वे बोले, 'इतना क्रोध, इतनी घृणा, अपने ही कुटुंबियों के प्रति। और काहे के लिए, मात्र जमीन के टुकड़े के लिए? जाने दो भीम, छोड़ दो दुर्योधन को। आपस में 'गले मिलकर सारे गिले-शिकवे भुला दो। इस संसार का मिलकर आनंद उठाओ। साथ-साथ, खाओ-पियो और नृत्य करो। इस युद्ध को भुला दो, द्यूतक्रीड़ा को भुला दो, और जो बीत गया सो बात गई को अपनाओ।' बलराम ने दोनों तहेरे-चचेरे भाइयों को देखा तो उनके हृदय में क्रोध एवं घृणा दृष्टिगोचर हुए। इसके बावजूद घृणा का दामन दोनों में से कोई भी नहीं छोड़ना चाहता। 'मूर्खों, प्रतिशोध से दुख कभी नहीं मिटता। उससे क्रोध और पनपेगा।'

उसके बाद बलराम ने निर्णय किया, वे किसी की भी ओर से नहीं लड़ेंगे। तटस्थ रहेंगे। इसके बजाए वे तीर्थ यात्रा पर जाएंगे। यात्रा पर निकलते समय अपने शिष्यों को सलाह दी, 'तुम्हें लड़ना ही पड़े तो युद्ध कौशल के नियमों का पालन करते हुए लड़ना जो मैंने तुम्हें सिखाए हैं। किसी की भी कमर के नीचे वार मत करना। किसी की भी पीठ पर कभी भी वार मत करना। किसी भी निहत्थे अथवा लाचार पर कभी वार मत करना। अपने बराबर वाले से युद्ध करो और नियमपालन

के द्वारा विजय प्राप्त करना। उसी में वास्तविक यश निहित है।'

अर्जुन द्वारा द्वारका से विदा लेते समय कृष्ण के साले रूक्मी ने उससे कहा, 'कौरवों से भयभीत मत होना। मेरे पास, मुझे देवताओं द्वारा प्रदत्त शक्तिशाली धनुष है। तुम्हारे साथ मेरे आ जाने से तुम, उन्हें अवश्य हरा पाओगे।'

अर्जुन को रूक्मी की इस टिप्पणी में कौरवों से भयभीत होने संबंधी संदर्भ रास नहीं आया। उसने डपट कर कहा, 'मुझे तुम्हारी आवश्यकता मेरा साथ देने के लिए कदापि नहीं है। मैं तुम्हारे बिना आराम से लड़ लूंगा।' अपमानित रूक्मी उसके बाद दुर्योधन के पास गया। उसने भी उसे वापस लौटा दिया। ज्येष्ठ कौरव ने उससे कहा, 'मुझे पांडवों की जूठन पसंद नहीं है।'

इस प्रकार दो योद्धा किसी भी पक्ष से नहीं लड़े। पहले योद्धा ने तो स्वयं ही तटस्थ रहने की घोषणा की, मगर दूसरे को दोनों पक्षों ने ठुकरा दिया।

- बलराम द्वारा तटस्थ रहने की घोषणा दरअसल सैद्धांतिक रूप में इस युद्ध के विरुद्ध होने के कारण की गई। दूसरी ओर रूक्मी अपने बड़बोलेपन से किसी के अहं को ठेस पहुंचाने के कारण नहीं लड़ पाया। इससे स्पष्ट है कि युद्ध न लड़ने की घोषणा हमेशा पवित्र भावना से प्रेरित नहीं होती।
- बलराम द्वारा युद्ध नहीं लड़ने की घोषणा से अनेक विद्वानों ने उन्हें शिव का अवतार मान लिया है। शिव को संसार से विरक्त संन्यासी रूपी भगवान माना जाता है, जिनकी नजर में मानव समाज की क्षुद्र राजनीति का कोई मूल्य नहीं है। जैन परंपरा में उन्हें कृष्ण से इसलिए उच्च श्रेणी का माना जाता है कि वे युद्ध अर्थात हिंसा से इन्कार कर देते हैं। इसीलिए ये भविष्यवाणी होती है कि अगले जन्म में वे तीर्थंकर होंगे। तीर्थंकर का अर्थ है जो हम नश्वर मानवों तथा सर्वोच्च सत्ता के बीच पुल का कार्य करते हैं। कृष्ण बहुत समय बाद तीर्थंकर रूप में अवतरित होते हैं। कुछ बौद्ध परंपरावादी बलराम को भगवान बुद्ध का अवतार मानते हैं। बुद्ध जो बुद्धिमान मगर विश्व से उचट कर मनुष्य की नश्वरता के प्रति अधीर हैं। जबकि कृष्ण को बोधिसत्व अवतार मानते हैं। बोधिसत्व अर्थात करुणामय एवं बुद्धिमान जो मनुष्य की नश्वरता को सिर्फ समझता ही नहीं बल्कि उसके प्रति उसके मन में करुणा व्याप्त है।

चतुरंगिणी सेना

युद्धारंभ होने की वेला अंततः आ ही गई। युद्धारंभ की पूर्व रात्रि में पांडवों ने दुर्गादेवी की आराधना की। दुर्गा अर्थात युद्ध की देवी। उसके उपरांत वे कुरुक्षेत्र में अपने-अपने स्थनों पर जा डटे।

उसी दौरान राजप्रासाद में धृतराष्ट्र का सारथि संजय अपनी दिव्य दृष्टी से रणक्षेत्र का आँखों देखा हाल दृष्टिहीन राजा धृतराष्ट्र और उनकी आंखों पर पट्टी बांधे पत्नी गांधारीक को सुना रहा था।

भारतवर्ष के लगभग सभी राजा-महाराजा रणक्षेत्र में अपनी सुसज्जित सेना के साथ डटे हुए थे। कोई पक्ष में था तो कोई पांडवों के प्रतिपक्ष में। पांडवों के पक्ष में धृष्टद्युम्न के सेनापतित्व में सात राजा और उनकी सेना लड़ने कोसन्नद्ध थी। धृष्टद्युम्न पांडव पत्नी द्रौपदी का जुड़वां भाई था। उनके सामने कौरवों के पक्ष में भष्म नीत ग्यारह राजा और उनकी विशाल सेना लड़ने को तैयार थी। इनको संख्या के हिसाब से महाभारत में सात अक्षौहिणी और ग्यारह अक्षौहिणी बताया गया है। इनमें से प्रत्येक अक्षौहिणी सेना में रथ, गज अश्वारोही और पैदल सेना शामिल थे। हरेक रथ के चारों ओर एक गज, तीन अश्वारोही तथा पांच पैदल सैनिक तैनात थे।

हरेक अक्षौहिणी का नेतृत्व एक-एक महारथी के हाथ में था। अपनी अक्षौहिणी के सैनिकों को दिशा-निर्देश देने तथा उनका मनोबल बढ़ाने के लिए महारथियों के हाथ में एक-एक शंख भी था। उसे बजाने में उसके सत्व का प्रदर्शन भी विपक्षियों को मिल जाता था। हरेक महारथी का अलग ध्वज था, जिससे उतने सारे सैनिकों के बीच उसकी गतिविधियों का अंदाज लगता था। हरेक महारथी के पास बाकी शस्त्रों के साथ ही अपनी महारत वाला विशेष हथियार भी था, जिसके प्रयोग में वो प्रवीण था जैसे-तलवार, भाला, धनुष, गदा आदि।

पांडवों की सेना का मुख पूर्व दिशा की ओर था, इसलिए सूर्योदय के समय उनकी सेना सुनहरी हो जाती थी।

युद्धारंभ से पूर्व युद्ध के नियम उद्घोषित किए गए कि युद्ध सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच ही होगा, प्रत्यक्ष खतरा सिद्ध न होने तक किसी भी पशु पर वार नहीं किया जाएगा। अकेले योद्धा पर समूहबद्ध आक्रमण नहीं किया जाएगा, निहत्थे योद्धा पर कोई वार नहीं करेगा, स्त्रियां रणक्षेत्र में नहीं आएंगी, यदि स्त्रियां रणक्षेत्र में आ भी गई तो उन पर कोई हथियार नहीं उठाएगा, दो योद्धाओं के बीच द्वंद्व युद्ध के बीच कोई भी अन्य योद्धा दखल नहीं देगा।
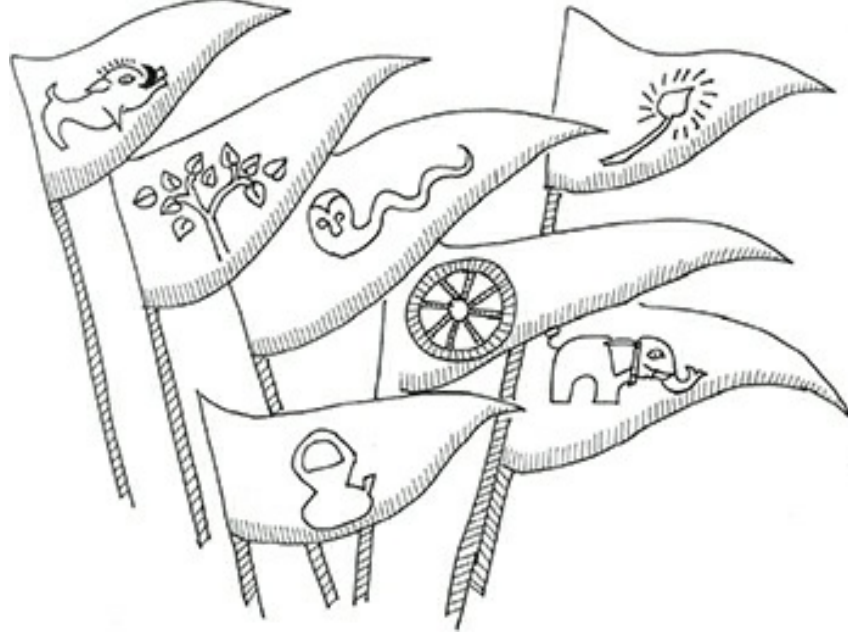
इसके बाद दोनों सेनाओं के सेनापतियों ने क्षत्रियों को अपनी इच्छा से पाला बदलने अथवा तटस्थ हो जाने के लिए आमंत्रित किया। धृतराष्ट्र का दासीपुत्र युयुत्सु कौरवों का साथ छोड़ कर पांडवों के पक्ष में चला गया।

युधिष्ठिर ने कौरव पक्ष की ओर जाकर भीष्म पितामह और गुरु द्रोणाचार्य का चरण स्पर्श किया। उन्होंने याचना की, 'मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए ताकि मैं सच्चे क्षत्रिय की मर्यादा के साथ लड़ सकूं। और आपसे क्षमायाचना भी है क्योंकि कुछ देर बाद ही मैं आपको शत्रु मानकर आप पर अस्त्र-शस्त्र से आक्रमण भी करूंगा।' भीष्म और द्रोण दोनों ने ही पांडु के सज्जन पुत्र को अपने पांवों से उठाकर गले लगाया और अपने सामने उपस्थित दुखदायक स्थिति पर शोक व्यक्त किया। वे ऐसा युद्ध लड़ने जा रहे थे, जिसमें पिता अपने पुत्रों से, भाई अपने भाई से, चाचा-ताऊ, मामा-फूफा अपने भतीजों अथवा भांजों से, मित्र अपने मित्रों से युद्ध करेगा। ये युद्ध इतना भीषण था कि इससे सिर्फ किसी कुल का नहीं बल्कि समूची सभ्यता का नाश अश्वयंभावी था।

- एक अक्षौहिणी में 21,870 रथ एवं रथी, 21,870 गज एवं गजारोही, 65,610 अश्व एवं अश्वारोही तथा 109,350 पैदल सैनिक (1:1:3:5 के अनुपात में) थे। दोनों सेनाओं में योद्धाओं और सैनिकों की संख्या कुल मिलाकर करीब 40 लाख थी।
- दिल्ली के 150 कि.मी. उत्तर में बसे कुरुक्षेत्र की प्रसिद्धि इस युद्ध के पूर्व अपनी पांच झीलों के लिए थी। उनका नाम था समता पंचक। ये झीलें परशुराम द्वारा खोदी और क्षत्रियों के रक्त से भर दी गई थीं। क्षत्रियों के हाथों अपने पिता की हत्या किए जाने के कारण उनसे परशुराम का बैर था।
- महाभारत युद्ध के लिए रणक्षेत्र वास्ते भूमि के चयन संबंधी दिलचस्प कथा हरियाणा के गांवों में प्रचलित है। कृष्ण ने सीधे-सादे भीम से युद्ध के लिए बंजर भूमि का पता लगाने को कहा। भीम ने प्रयास के दौरान देखा कि बंजर भूभाग में किसी किसान का शव पड़ा था। अपने मृत पुत्र की अंत्येष्टि करने के बजाए पिता अपना बंजर खेत जोतने में मस्त था। मृत की विधवा अपने पति के शव पर रोने के बजाए अपने पति के लिए पकाया खाना खाने में जुटी हुई थी। भीम ने सोचा कि ऐसी धरती का कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए युद्धों का युद्ध लड़ने के लिए ऐसी धरती ही सबसे उपयुक्त थी।
- क्षत्रिय योद्धाओं की पहचान उनके रथ पर फहराने वाले ध्वजों से हो रही थी।

योद्धा का नाम	**प्रतीक चिह्न**
युधिष्ठिर	अर्धचंद्र
भीम	शेर
अर्जुन	बंदर
नकुल	बारहसिंघा
सहदेव	हंस
कृष्ण	गरुड़
बलराम	ताड़ वृक्ष
अभिमन्यु	हिरण
घटोत्कच	पहिया
अश्वत्थामा	सुनहरी किरणें उगलती शेर पूंछ
भीम	ताराजड़ित वृक्ष
कृष्ण	यज्ञवेदी
द्रोण	पात्र
कर्ण	गज
दुर्योधन	सर्प

चौदहवां अध्याय

परिप्रेक्ष्य

'जनमेजय, सिर्फ तुम्हारे पूर्वज ने भगवान को जीवन के उद्देश्य और उसे प्राप्त करने के साधनों को उजागर करते सुना।'
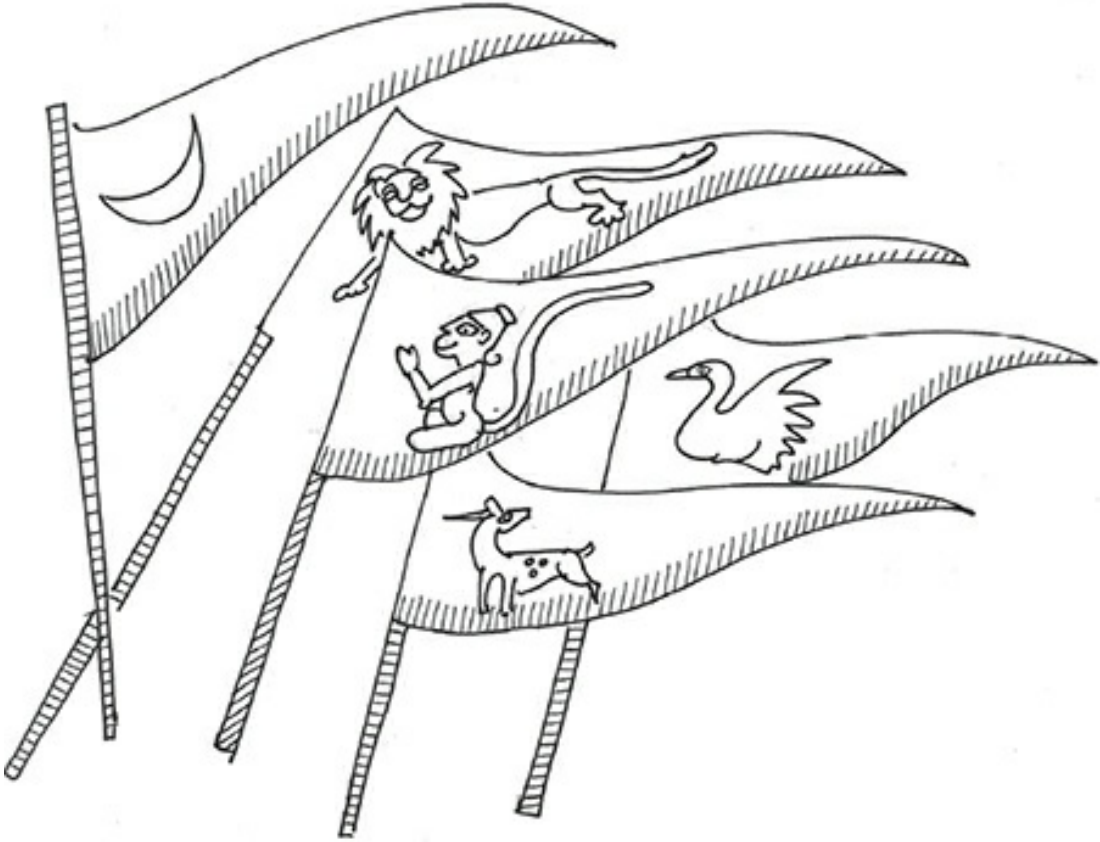
भगवद्गीता

पांडवों तथा कौरवों की सेना रणक्षेत्र में एक-दूसरे के समक्ष डटी हुई थीं। तभी एकाएक पांडव पक्ष में से एक रथ दोनों सेनाओं के बीच आकर खड़ा हो गया। रथ के ऊपर बंदर छाप ध्वज फहरा रहा था। ये तो अर्जुन था!

अर्जुन ने अपने समक्ष सेना पर दृष्टिपात किया। उसके बाद अपने पीछे खड़ी सेना को निहारा। भाई, चाचा-ताऊ, मामा-फूफा और भतीजे-भांजे एक-दूसरे से लड़ने और मरने-मारने पर उतारू हैं—क्या प्राप्त करने के लिए? मात्र भूमि के टुकड़े के लिए? उसने भाव विह्वल होकर कहा, 'मैं ऐसा नहीं कर सकता। ये धर्म नहीं हो सकता।'

मैदान में उपस्थित हजारों योद्धाओं के सामने उसने हथियार डाल दिए।

इस पर कृष्ण चिल्लाए, 'ऐसे कायरता मत दिखाओ। अर्जुन, परिस्थिति का सामना पुरुषोचित बनकर करो।'

अपने कंधे ढलकाते हुए रुंधे स्वर में अर्जुन बोला, 'मैं नहीं कर सकता।'

कृष्ण ने फिर समझाते हुए कहा, 'ये तुम्हारा क्षत्रियोचित कर्तव्य है।'

अर्जुन ने भी दोहराया, 'मैं नहीं कर सकता।'

कृष्ण ने दलील दी, 'उन्होंने तुम्हारी पत्नी से दुराचार किया। उन्होंने तुम्हारे राज्य पर कब्जा कर लिया। अर्जुन, न्याय स्थापना के लिए लड़ो?'

अर्जुन अपनी बात पर अड़ा रहा। 'मुझे भाइयों और चाचा-ताऊ-मामा-फूफा तथा मित्रों की हत्या करने का कोई औचित्य नहीं सूझ रहा। ये सज्जनता नहीं बल्कि निर्दयता है। मैं प्रतिशोध के बजाए शांति से रहना चाहूंगा।'

कृष्ण बोले, 'सचमुच दयालुतापूर्ण बात कर रहे हो, लेकिन ये दया आती कहां से है? उदारता अथवा भय से? ज्ञान से अथवा अज्ञान से? तुम्हारे पर परिस्थिति की भयावहता हावी हो गई है—विफलता की आशंका, सफलता के पुरस्कार—और तुम कांप गए। तुम्हें लगता है कि ऐसी नौबत आनी ही नहीं चाहिए थी। परिस्थिति का सामना करने के बजाए तुम पलायन कर रहे हो। तुम्हारा निर्णय परिस्थिति के गलत आकलन पर आधारित है। यदि तुम संसार को उसके वास्तविक रूप में पहचान पाते तो इस क्षण में भी दत्तचित्त रहते।'

अर्जुन ने विस्मयपूर्वक कहा, 'मेरी समझ में नहीं आया।'

कृष्ण ने तब अपना गीत गाया। ऐसा गीत जिसके माध्यम से अर्जुन को संसार का वास्तविक अर्थ समझाया गया। ये भगवद्—गीता थी, ईश्वरीय गीत।

'हां तुम हजारों क्षत्रियों का वध करोगे। लेकिन उनका सिर्फ शरीर मरेगा। इस हाड़-मांस के भीतर अजर आत्मा का वास है जो कभी नहीं मरती, तो ये पुनर्जीवित हो जाएगी, ये तो नई काया

को अपने ऊपर ओढ़ लेगी, जैसे पुराने कपड़ों को फेंक कर नए कपड़े शरीर पर पहनाए जाते हैं। मनुष्य की वास्तविक पहचान क्या है: नश्वर शरीर अथवा अमर आत्मा? क्या तुम मारते हो? तुम क्या किसी को मार सकते हो?

'शरीर का धर्म मनुष्य को आत्मदर्शन करवाना है। क्योंकि शरीर सभी अस्थायी वस्तुओं-विषयों का भोग करवाता है- तुम्हारे विचार, तुम्हारी भावनाएं, तुम्हारी मनोदशा। इनके चारों ओर का संसार अस्थायी है। शरीर स्वयं अस्थायी है। अंततः सभी अस्थायी वस्तुओं से निराश होकर तुम स्थायित्व को ढूंढ़ोगे और उसी क्रम में आत्मदर्शन होगा। अर्जुन, तुम यहां, शरीर के लिए दुखी हो रहे हो, बिना ये जाने कि शरीर का अस्तित्व क्यों है?' कृष्ण बोलते गए, 'मनुष्य सभी प्राणियों में सबसे अधिक सौभाग्यशाली है। क्योंकि शरीर के पास बुद्धि भी है। सिर्फ मनुष्य ही अस्थायी और स्थायी अस्तित्वों के बीच अंतर कर सकते हैं। सिर्फ मनुष्य ही शरीर और आत्मा के बीच अंतर कर सकते हैं। तुम और इस रणक्षेत्र में उपस्थित समुदाय अवश्य अपना समूचा जीवन इस अवसर को गंवाने में बिता देगा: अगर अमरता के बजाए नश्वर अस्तित्वों पर सारा ध्यान लगाया गया।

'तुम्हारे शरीर को वाह्य जगत के बारे में सूचना अपनी पांच ज्ञानेंद्रियों से मिलती है। ये हैंः आंख, नाक, कान, जीभ एवं त्वचा। तुम्हारा शरीर वाह्य भौतिक जगत से पांच कर्मेंद्रियों द्वारा लेनदेन करता है। ये हैंः हाथ, पैर, चेहरा, गुदा तथा जननांग। उद्दीपन तथा प्रतिक्रिया के बीच की अवधि में आपके मस्तिष्क में प्रक्रिया की लंबी शृंखला सक्रिय रहती है। यही प्रक्रियाएं भौतिक जगत के बारे में आपकी समझ विकसित करती हैं। अर्जुन तुम जिसे रणक्षेत्र समझ रहे हो, वो बस तुम्हारी नजरों का फेर है। और अन्य सभी परिकल्पनाओं के समान ये भी अवास्तविक है।'

'तुम्हारी बुद्धि को भी आत्मा का भान नहीं है। उसे गुण मापने के लिए अर्थ एवं मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ती है। इसका अस्तित्व क्यों है? इसे भौतिक जगत में उत्तर चाहिए और, जानकारी मिलते ही जगत का क्षणभंगुर अस्तित्व इसकी समझ में आ जाता है। अमर कुछ भी नहीं है। मृत्यु की चेतना आते ही भय उपजता है। भय से विवेक पर भरोसा टूट जाता है और वो बेकार लगने लगता है। भय से ही अहंकार पैदा होता है। विवेक भरमाने के लिए अहंकार, बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। अहंकार वैसी घटनाओं और यादों और वासनाओं में आपको लिप्त करता है, जिनसे उसका अस्तित्व पुष्ट हो सके तथा उसके अमर और शक्तिशाली होने का भ्रम पैदा हो सके। अहंकार को बेकार और नश्वर सिद्ध करने वाले सारे उपकरणों की ओर से ये आंखें मुंदवा देता है। अर्जुन, अभी तुम्हारी बुद्धि पर तुम्हारा अहंकार हावी है। ये तुम्हारे शरीर के सीमित अनुभव को हावी कर रहा है तथा तुम्हारा ध्यान तुम्हारी आत्मा के असीमित अनुभव से भटका रहा है। इसीलिए, तुम चिंता, भय और आशंकाओं से घिर गए हो।

'तुम्हारे मस्तिष्क में अतीत की सभी उत्तेजनाओं की स्मृति जमा है-वो भी जिनसे भय प्रतीत होता है और वो भी जिनसे राहत मिलती है। तुम्हारा मस्तिष्क उन स्थितियों की कल्पना भी करता है। जिनसे या तो तुम डर जाते हो अथवा तुम्हें चैन मिलता है। अपने अहंकार के अधीन तुम उन स्मृतियों को संजोते हो जो आनंददायक हैं। अपने अहं के कारण ही तुम उन स्थितियों की कल्पना करते हो जिन्हें अहं चाहता अथवा जिनसे बचता है। अर्जुन अभी तो इस रणक्षेत्र में कुछ घटा ही नहीं है। लेकिन तुम्हारे मस्तिष्क में बहुत कुछ घट रहा है। स्मृतियां प्रेतों के समान बार-बार मानसपटल पर उभरती हैं और कल्पनाएं दानवों के समान चली आती है। तुम उन्हीं के कारण व्यथित हो।

'तुम्हारा अहं परिस्थिति के आकलन के माप का अपना ही पैमाना गढ़ लेता है। यही पैमाना भययुक्त अथवा राहतजनक अच्छा अथवा बुरा आदि स्थितियों की तुम्हारी धारणाओं का आकलन करता है। इसे चराचर जगत के मूल्यों के अनुसार सूचना मिलती है, लेकिन उनकी स्वीकृति से पूर्व अहं उन्हें अपनी छलनी में छान डालता है। अर्जुन इस समय तुम जिसे सही समझ रहे हो, वो तुम्हारे उसी पैमाने पर आधारित है। जिसे दुर्योधन सही समझता है, वो उसके पैमाने पर आधारित है। कौन सा पैमाना सही है? कोई पक्षपात मुक्त पैमाना भी है।

'तुम जिसको संसार समझ रहे हो, वो दरअसल माया है। वो तुम्हारे, अपने पैमाने पर आधारित है। नई स्मृतियां और नई कल्पना इस पैमाने को बदल सकती हैं और उसकी के साथ संसार की परिकल्पना भी। संसार को इसके वास्तविक रूप में सिर्फ ज्ञानोद्दीप्त ही जान पाते हैं, बाकी तो ऐसी कृत्रिम वास्तविकता निर्मित करते हैं जिससे अहं तुष्ट होता है। इसीलिए ज्ञानोद्दीप्त हमेशा शांत रहते हैं। जबकि अन्य लगातार अशांत एवं अरक्षित रहते हैं। अर्जुन, तुम यदि ज्ञानोद्दीप्त होते तो इस रणक्षेत्र में हाथ में धनुष होने के बावजूद शांत होते। अर्जुन, तुम यदि ज्ञानोद्दीप्त हो तो तुम क्रोध से मुक्त होकर लड़ते और वध करते हुए भी घृणा को अपने पास न फटकने देते।

'तुम्हारा अहं ऐसे विषयों से चिपका रहता है, जो उसे अधिकतम सुख देते हैं। उससे जीवन का प्रयोजन सुखदायक स्थितियों के निर्माण का प्रयास मात्र हो जाता है और भयभीय करने वाली स्थितियों से जी चुराने लगता है। अपनी आश्वयकताओं को पूरी करने वाली स्थितियों के निर्माण से प्रसन्नता आती है और ऐसा कर पाने में विफल होने पर दुख आता है। अहं ऐसी वस्तुओं और विचारों से कसकर चिपका रहता है जो उसके अस्तित्व को पुष्ट करें। अहं अपनी सामर्थ्य भर ऐसी तमाम वाह्य स्थितियों पर स्थाई क्षेत्रीय नियंत्रण स्थापित करने तथा बनाए रखने में लगा रहता है जो सुखदायक हैं। क्या तुम्हें ये भान है अर्जुन कि तुम सिर्फ सुखदायक स्थितियों को पुनर्निर्मित एवं पुनः प्राप्त करना चाहते हो। तुमने अपनी भावनाओं को वाह्य घटनाओं में लिप्त कर लिया गया है। उनसे मुक्त हो जाओ।'

'वाह्य जगत तो शरीर के समान हैः जिसका स्वभाव क्षणभंगुर और सतत परिवर्तनशील है। स्थान एवं काल के नियमों के अधीन यह तीन गुणों तमस, रजस तथा सत्त्व के बीच चढ़ता-उतरता रहता है। अर्जुन, तुम कितनी भी कड़ी कोशिश कर लो मगर तुम्हारे प्रिय मृत्यु को अवश्य प्राप्त होंगे। फिर वो चाहे राजप्रासाद में हों अथवा रणक्षेत्र में। तुम रोकने का भले ही कितना भी अधिक प्रयास कर लो, अर्जुन वो तमाम विषय जिनसे तुम बचते हो अथवा जिन्हें नापसंद करते हो, तुम्हारे जीवन में अवश्य आएंगे। बार-बार। युद्ध एवं शांति, सुख और दुख, ग्रीष्म और शिशिर, बाढ़ एवं अकाल की तरह आते-जाते रहेंगे।'

'वाह्य गुणों में परिवर्तन से तुम्हारा अहं असुरक्षित होता है। इसलिए अहं किसी भी परिवर्तन को रोकने की भरसक कोशिश करता है। अहं यदि परिवर्तन से तुष्ट होगा तो यह उसे बार-बार लाना चाहेगा तथा ठहराव एवं जमाव से बचेगा। अपनी मनमानी नहीं चलने पर अहं कपट तथा क्रोध प्रकट करता है। ये शरीर को विषयों को पुनः पुरानी स्थिति में लाने को मजबूर करेगा। संसार को अहं के पैमाने के अनुकूल बनाने की इस इच्छा से ही सारी पीड़ा और कष्ट तथा क्रोध जन्म लेता है। संसार के प्रवाह को स्वीकार करने से इन्कार ही सारे दुखों के मूल में है। अर्जुन तुम्हारे भीतर भी यही स्थिति है। तुम संसार को नियंत्रित करना चाहते हो। तुम जगत के व्यवहार को अपनी इच्छा के अनुसार देखना चाहते हो। लेकिन वो वैसा नहीं करता, यही कारण है तुम्हारे क्रोध और दुख का।

'भौतिक जगत में परिवर्तन आकस्मिक नहीं है। वे पिछले कर्मों की अश्वयंभावी प्रतिक्रिया हैं। कोई भी घटना आकस्मिक नहीं है। वो पिछली अनेक घटनाओं का परिणाम है। यही कर्म है। आपके जीवन की घटनाएं आपके पूर्व कर्मों का परिणाम हैं। भले ही वे वर्तमान जीवन के कर्म हों अथवा पूर्व जन्मों के कर्म। अकेले तुम ही इसके उत्तरदायी हो। कर्म का यही नियम है। पूर्व कर्मों की प्रतिक्रिया को यदि नहीं भोगा तो तुम्हारा पुनर्जन्म होता ही रहेगा। यदि तुम दोबारा जन्म से बचना चाहते हो, तो कर्मों का बोझ घटाओ। कर्मों का बोझ बढ़ाने वाले कार्य उन कर्मों से अलग हैं, जिनसे कर्मों का खाता खाली होता है। बोझ बढ़ाने वाले कर्मों में अहं की प्रमुख भूमिका है। बोझ घटाने वाले कार्य विवेक आधारित होते हैं। ये क्षण, अर्जुन पिछले कर्मों का ही परिणाम है। वो कर्म तुम्हारे अथवा तुम्हारे पीछे खड़े लोगों के या फिर तुमसे पहले के लोगों के रहे होंगे। इसे स्वीकार करो। इससे पलायन मत करो। ये युद्ध तो अवश्यंभावी है। तुम इसे टाल नहीं सकते।

'तुम्हारी बुद्धि किसी भी विशेष उत्तेजना की प्रतिक्रया का निर्णय कर सकती है। लेकिन अधिकतर स्थितियों में जड़ता इतनी अधिक आ चुकी है कि बहुधा उत्तेजना और उसकी प्रतिक्रिया बिना सोचे-समझे होती है। लेकिन विकल्प भी उपस्थित होते हैं। यदि प्रतिक्रिया अहं तुष्टि से संचालित हो, तो कर्मों का चक्र अर्थात सांसारिक बंधन चलते रहते हैं। यदि चयनित प्रतिक्रिया आत्मचिंतन से प्रेरित होती है तो कर्म चक्र वहीं थम कर मोक्ष हो जाता है। अर्जुन, यदि तुम इस युद्ध को क्रोध अथवा अन्याय के प्रति रोष के साथ लड़ोगे तो, अशांत रहकर इसी संसार में फंसे रह जाओगे। यदि तुम ये युद्ध सहानुभूति एवं विवेक के सहारे लड़ोगे तो संसार से स्वयं मुक्ति अर्थात मोक्ष पा जाओगे।

'अहं के बजाए आत्मा को संदर्भ बिंदु बनाकर कार्य करने के लिए तुम्हें पहले आत्मानुभव करना होगा। आत्मानुभव के लिए तुम्हें संसार को उसके वास्तविक रूप में स्वीकार करना होगा, अपने द्वारा नियत पैमाने के हिसाब से नहीं। स्मरण रहे, आत्मा सबकुछ देख रही है-आपकी बुद्धि, आपका अहं, आपका पैमाना और परिस्थितियों पर आपकी प्रतिक्रिया। ये तो धैर्यपूर्वक आत्मानुभूति की प्रतीक्षा करती है। जब तक तुम आत्मा को पा नहीं लोगे, तब तक कष्ट और क्रोध मन में घर किए रहेंगे। तुम इसे कब पाओगे? अर्जुन, तुम शांति कब पाओगे?'

अर्जुन ने पूछा, 'शांति! युद्ध लड़ते समय शांति! कैसे कृष्ण, कैसे?' वो कृष्ण के उपदेश से व्याकुल था।

'अपने मस्तिष्क से-परिस्थिति का विश्लेषण करो और अपनी भावनाओं के मूल में जाओ। तुम जो अनुभव कर रहे हो, वैसे अनुभव क्यों कर रहो हो? क्या तुम्हारा अहं तुम्हें उकसा रहा है? तुम युद्ध क्यों करना चाहते हो? क्या इसका कारण अपने शत्रुओं पर आधिपत्य स्थापित करके अपने राज्य को वापस जीत लेना मात्र है? क्या तुम क्रोध, प्रतिशोध एवं न्याय की कामना से प्रेरित हो? अथवा क्या तुम परिणाम के निरपेक्ष हो, तुम जो काम करने वाले हो उसे शांतिभाव से करोगे?

यदि ये प्रश्न तुम्हारे मन में पैदा नहीं हो रहे तो अर्जुन, तुम ज्ञान योग नहीं जानते।

'अपने हृदय में, आत्मा के अस्तित्व में आस्था रखो। मान जाओ कि अकारण कुछ भी घटित नहीं होता। मान जाओ कि हरेक अनुभव का कोई न कोई प्रयोजन है। समझ लो कि आत्मा तुम्हारे और कौरवों के बीच किसी से भी पक्षपात नहीं करेगी, कि तुम्हारी कल्पना से कहीं अधिक बड़ी है वास्तविकता। समझ लो कि ब्रह्मांड की अनंत घटनाएं सीमित मानव मस्तिष्क द्वारा कल्पित नहीं हो सकतीं, भले ही तुम्हें प्रमाण न दिखे। सृष्टि के सत्य के आगे निःशर्त समर्पण कर दो। अनहंकार में ही आस्था है: आस्था विद्यमान होने पर, भय स्वयं भाग जाता है। अर्जुन तुम्हारे हाथ, आस्था का अनुसरण कर रहे हैं, अथवा भय का? यदि तुम भय से संचालित हो तो तुम भक्तियोग का अभ्यास नहीं कर रहे।'

'अपने कार्यों से, अपने चारों ओर फैले संसार में मानव समान विचरण करो, पशु के समान नहीं। पशुओं में बुद्धि नहीं होती। उनका शरीर सिर्फ अपने अस्तित्व की रक्षा में लिप्त है। वे इसीलिए जंगल के नियम (मत्स्य न्याय) से प्रेरित हैं। जीवित रहने के लिए अपनी शक्ति और चतुराई का प्रयोग कर रहे हैं: मानवों में बुद्धि है और वे जीवित रहने के अर्थ की खोज में भी लिप्त हैं। उनमें, अन्य लोगों की इस आवश्यकता को समझने की विशिष्ट योग्यता है क्योंकि वे सभी के शरीरों में आत्मा की उपस्थिति के प्रति संवेदनशील हैं। सभी प्राणियों में सिर्फ मानव ही जंगल के नियमों को ठुकरा कर संवेदना तथा जीवन के अर्थ की खोज आधारित आचार संहिता बना सकते हैं। यही धर्म है। धर्ममय जीवन ही निर्भय जीवन है। धर्ममय जीवन ही प्रेममय जीवन है। धर्ममय जीवन का आधार स्वकल्याण के बजाए जनकल्याण है। इसलिए इस युद्ध में उस भयभीत कुत्ते की तरह व्यवहार मत करो जो भय से प्रेरित होकर भौंकता है और अपने से शक्तिशाली के आगे रिरियाने लगता है। बल्कि उस सुरक्षित गाय के समान अपना व्यवहार रखो जो मुक्त हस्त से दूध प्रदान करती है और दिव्य संगीत का पालन करती है। अर्जुन, क्या तुम ये युद्ध मानव समाज पर हावी जंगल के नियमों के उन्मूलन के लिए लड़ रहे हो? यदि नहीं, तो तुम कर्म योग का अभ्यास नहीं करते।

'दुर्योधन, धर्मानुकूल आचरण नहीं करता। उसकी हरेक हरकत भय के अधीन है। वो अपने अहं को तुष्ट करने वालों की ही सहायता करता है। जिनसे भयाक्रांत है, उनसे बचता है। वो अपने राज्य की रक्षा करने में पशुवत व्यवहार करता है। लेकिन वो, पशु नहीं है, वो मानव है, अपनी प्रवंचना के आवरण को तोड़ने में सक्षम है। ऐसा करने से उसकी आत्मरक्षक प्रवृत्ति उसे दानव बनाती है, उस पर दया अनपेक्षित है। लड़ने से तुम्हारा, स्वयं का इन्कार भी अक्षम्य है। इसका आधार भी भय है। तुम्हें संसार के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है। दुर्योधन जैसे लोगों से संसार को बचाने के बजाए तुम अपनी अहं तुष्टि में लिप्त हो, जो इस युद्ध में संभावित विनाश की आशंका से त्रस्त है। तुम्हारा औदार्य भी दिखावा है; इसके पीछे तुम्हारे अरक्षित मनोभाव स्पष्ट झांक रहे हैं। वो स्वीकार्य नहीं हैं। युद्ध यहां बाहर नहीं बल्कि अर्जुन तुम्हारे भीतर चल रहा है। ऐसी स्थिति के सामने घुटने मत टेको, जिससे अहं तुष्टि हो। अर्जुन ये युद्ध तुम्हारे लिए नहीं बल्कि सभ्य मानव आचरण की स्थापना के लिए हो रहा है। स्मरण रहे कि युद्ध को जीतना या हारना लक्ष्य नहीं है; शत्रुओं की हत्या और भूमि पर कब्जा करना भी लक्ष्य नहीं है; लक्ष्य दरअसल धर्म की स्थापना और उसके माध्यम से आत्मा की खोज करना है।

'अर्जुन, मैं उसी प्रयोजन के लिए, यहां तुम्हारे सारथि के रूप में पृथ्वी पर आया हूं: धर्म की स्थापना के लिए, मानवों को उनकी मानवता का स्मरण कराने के लिए, बुद्धि को अहं से विलग करके आत्मानुसरण के मार्ग पर ले जाने के लिए। मनुष्य जब-जब अकर्मण्य एवं अर्थहीन हो जाते हैं और भयभीय होकर अहं के अधीन हो जाते हैं, तब-तब, मैं परिस्थितियों को सुधारने के लिए धरती पर अवतरित होता हूं। ऐसा पहले भी हुआ है। ऐसा दोबारा होगा। और ऐसा होता ही रहेगा।'

अर्जुन की आंखें खुल गईं कि उसका मित्र कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। उसने कृष्ण के सामने साष्टांग दंडवत होते हुए कहा, 'अपने वास्तविक रूप में दर्शन दीजिए।'

कृष्ण ने इस पर अर्जुन को अपने विराट रूप के दर्शन कराए। उस रणक्षेत्र में पांडवों और कौरवों की सेनाओं के बीच सिर्फ अर्जुन को ही उस वास्तविक रूप में उनके दर्शन मिले।

कृष्ण का विराटरूप आकाश और पाताल दोनों को भेदते हुए हजारों सूर्यों की रोशनी बिखेर रहा था। उनके सांस में से अनगिनत संसार पैदा हो रहे थे। उनके दांतों के बीच अनगिनत संसार पिस रहे थे। उनमें अर्जुन ने अतीत-वर्तमान और भविष्य की सारी घटनाओं, जीवों-जंतुओं आदि के दर्शन किए-सभी महासागर, सभी पर्वत, सभी महाद्वीप, आकाश और पाताल दोनों के पार बसी दुनिया। सब कुछ उन्हीं में से आया। सबकुछ उन्हीं में समाया। सभी मानवों, देवताओं, असुरों, नागों, राक्षसों, गंधर्वों, अप्सराओं, सभी पूर्वजों और सभी उत्तराधिकारियों का उद्भव वही थे। जीवन की तमाम संभावनाएं उन्हीं में निहित थीं।

विराट रूप देखकर अर्जुन को सृष्टि की विशालता और उसके सामने अपनी क्षुद्र ताकत का बखूबी भान हो गया। उसे, ऐसा लगा कि वो अनंताकार समुद्र तट पर रेत के कण से अधिक नहीं है। यदि इस क्षण कृष्ण महासागर थे तो यह युद्ध मात्र किसी अदना लहर के समान था। इतनी सारी लहरें, समुद्र की खोज के इतने सारे अवसर। यह युद्ध, यह जीवन उसका क्रोध और उसकी

कुंठा, संसार में सभी कुछ आत्मा की ओर इंगित करते थे।

कृष्ण ने कहा, 'अर्जुन, याद रखो कि वो जो कहता है कि उसने मारा और वो जो कहता है कि मारा गया, दोनों ही गलत हैं। मैं ही हंता हूं और मैं ही मृतक। मैं फिर भी नहीं मर सकता। मैं ही तुम्हारा शरीर और तुम्हारी आत्मा हूं। वो जो बदलता है और वो जो सनातन है। मैं ही तुम्हारे चारों ओर फैला जगत हूं। तुम्हारी आत्मा हूं। और बीच में बना मस्तिष्क भी मैं ही हूं। मैं ही पैमाना हूं। मुझे ही नापा जाता है। मैं ही नापता हूं। सिर्फ मैं ही स्थान एवं काल के नियम तोड़ सकता हूं। सिर्फ मैं ही कर्मबंधन तोड़ सकता हूं। मुझे पा लो। सारथि द्वारा अपने अश्वों को वश में करने की कला में पारंगत होने के समान ही अपनी बुद्धि को वश में करना सीखो और तुम्हें पता लग जाएगा कि मामला सिर्फ युद्ध, सिर्फ लड़ने अथवा न लड़ने, जीतने अथवा हारने तक सीमित नहीं है। बल्कि अपने बारे में निर्णय करने तथा सत्य की खोज करने का है। तुम ये कर लोगे तो भयमुक्त हो जाओगे, अहंमुक्त हो जाओगे, तुम शांत हो जाओगे, भ्रमित जिसे युद्ध कहते हैं उसके मध्य में भी शांत ही रहोगे।'

- भगवद् गीता सबसे लोकप्रिय हिंदू ग्रंथ है, क्योंकि इसमें भगवान सीधे मनुष्य से बात करते हैं।
- गीता का अंग्रेजी में पहला अनुवाद 1785 में चार्ल्स विल्किंस ने तत्कालीन गवर्नर जनरल वॉरन हेस्टिंग्स की छत्रछाया में किया था। अंग्रेजी में यूरोप पहुंचने के बाद फ्रेंच एवं जर्मन जैसी अन्य यूरोपीय भाषाओं में भी इसका अनुवाद हुआ। इन्हीं अनुवादों के कारण गीता इतना लोकप्रिय ग्रंथ बना। भारत राष्ट्र राज्य के संस्थापकों ने गीता सबसे पहले अंग्रेजी में ही पढ़ी, भारत की क्षेत्रीय भाषाओं अथवा संस्कृत में नहीं।
- गीता के मराठी अनुवादों में सबसे प्रारंभिक अनुवाद में शामिल मराठी ज्ञानेश्वरी है। ये अनुवाद ज्ञानेश्वर नामक युवा

संन्यासी ने किया था। परंपरा से अलग होने के बाद उसने वर्ण व्यवस्था को चुनौती दी और आम आदमी तक ज्ञान के इस भंडार को उसी की भाषा में पहुंचाया। तब से अनेक ऋषियों ने ये प्रयास किया कि गीता का ज्ञान आम आदमी को गीतों एवं कथाओं के माध्यम से मिले। उन्नीसवीं शताब्दी तक तो शिक्षित अभिजात वर्ग के अलावा अन्य वर्गों के लोग मूल संस्कृत पढ़ ही नहीं पाते थे।

- ऋषियों ने वेदों की तुलना घास से और उपनिषदों को गाय बताया जो घास की जुगाली करते हैं और भगवद्गीता को व्यास द्वारा इन गायों के थनों से दुहे दूध की उपमा दी गई है। अर्थात भगवद्गीता में वैदिक ज्ञान सारांश रूप में उपलब्ध है। वेद की ऋचा 2000 बीसीई काल की तथा वर्तमान रूप में उपलब्ध भगवद्गीता 300 सीई काल की मानी जाती है। इससे सिद्ध होता है। कि 'सनातन' समझे जाने वाले विचारों की निरंतरता इतनी लंबी अवधि बीत जाने पर भी बरकरार है।
- भगवद्गीता के अंत में भगवान द्वारा स्वयं नीत युद्ध वर्णित है। क्या इससे गीता को युद्ध का प्रचार करने वाला ग्रंथ माना जाए? गीता के पाठ से ये स्पष्ट हो जाता है कि इस उपदेश का हिंसा अथवा अहिंसा से कोई लेना-देना नहीं है, उपदेश में युद्ध को न तो सही ठहराया गया है और न ही उसका विरोध किया गया है। लक्ष्य हरेक कर्म के मूल का संधान है, एक युद्ध को उत्कृष्ट और दूसरे युद्ध को निकृष्ट ठहराने वाला पैमाना क्या है? लड़ने अथवा नहीं लड़ने की इच्छा वहां से उत्पन्न होती है। उत्प्रेरक सत्ता है अथवा प्रेम? व्यक्ति अपनी अहं तुष्टिकर रहा है अथवा आत्मसंधान?
- गणित के संसार में शून्य का प्रादुर्भाव भारत से ही हुआ। इस धारणा का मूल दार्शनिक चर्चाओं में निहित हो सकता है, जिनमें सृष्टि क्रम में मनुष्य के अस्तित्व की क्षुद्रता का बार-बार उल्लेख होता है। अनंत की तुलना में जीवन का हरेक क्षण, भले ही वो कितना भी आनंददायक अथवा दुखदायी हो, घटकर शून्य ही रह जाता है।
- भगवद्गीता के उपदेश की तिथि को मोक्षदा एकादशी के रूप में मनाया जाता है। ये तिथि मार्गशीर्ष (नवंबर-दिसंबर) माह में वर्धमान चंद्रमा के ग्यारहवें दिन अर्थात एकादशी को आती है। महागाथा में अन्य स्थान पर ये उल्लेख है कि युद्ध शिशिर नहीं शरद ऋतु में कार्तिक मास (अक्टूबर-नवंबर) में दशहरा अथवा दीवाली के आसपास हुआ था।
- तर्कशील लोगों को ये खलता है कि लड़ने को उद्धत दो विशाल सेनाओं के बीचों-बीच इतना लंबा उपदेश होना कैसे संभव है। ईश्वर का उपदेश होने के कारण इस पर काल एवं स्थान के नियम लागू नहीं होते। मनुष्यों को जो लंबा उपदेश लगता है, वो रणक्षेत्र में पलक झपकते पूर्ण हो गया होगा।
- जीवन का प्रयोजन विकसित होना है-भौतिक, बौद्धिक और भावनात्मक रूप में। दुर्भाग्यवश कौरव सिर्फ भौतिक विकास को पकड़ कर बैठ गए। कृष्ण को चुनने से पांडवों को भौतिक सुखों के साथ ही साथ बौद्धिक तथा भावनात्मक विकास का मार्ग भी मिल गया, जिसमें उनके द्वारा स्वनिर्मित सीमाओं को भेदने की शक्ति है।

पंद्रहवां अध्याय

युद्ध

'जनमेजय, युद्ध में पिता, गुरु भाई और मित्र मारे गए, ताकी बुद्धि भ्रम की जगह ले सके।'
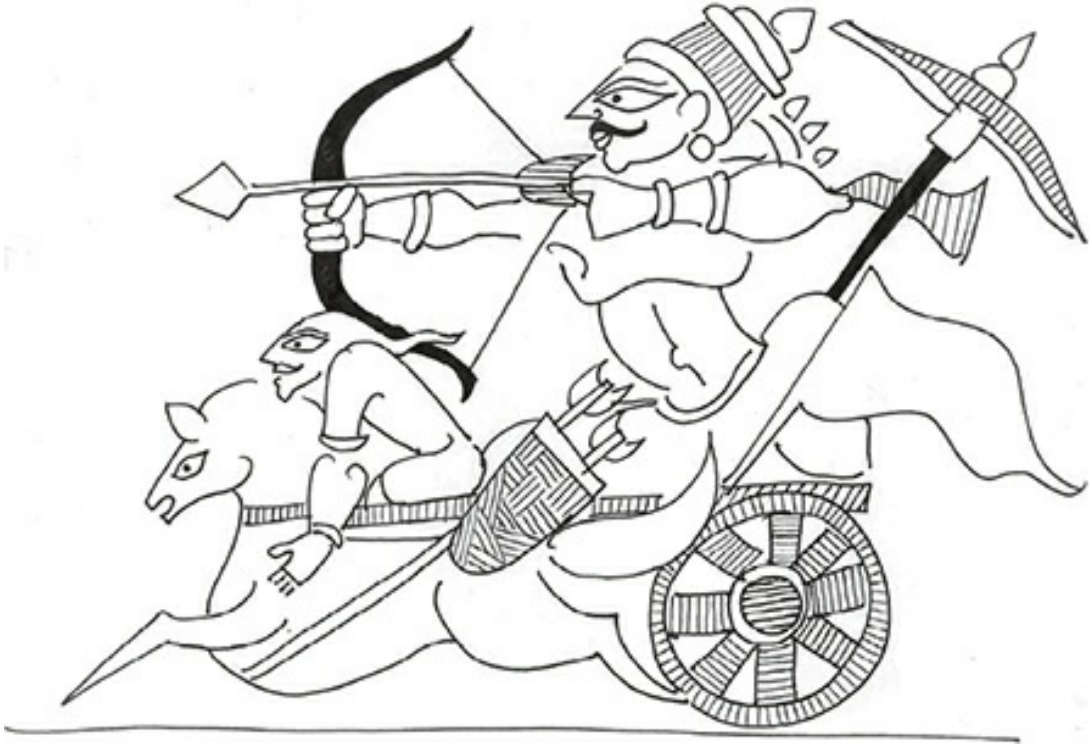
रक्तरंजन

कृष्ण के उपदेश ने रणक्षेत्र के प्रति अर्जुन का दृष्टिकोण बदल दिया था। ये, ऐसा कुरुक्षेत्र नहीं था, जहां प्रतिशोध अथवा संपत्ति के लिए युद्ध हो रहा था। ये तो धर्मक्षेत्र था जहां अर्जुन अपने भय, अपराधबोध और क्रोध को विजित करेगा।

अर्जुन ने अपने दिव्य गांडीव धनुष को उठाया और कृष्ण से, उसे शत्रु सेना की ओर ले जाने का अनुरोध किया। रथ चलते ही हनुमान की छाप वाला ध्वज नीले आकाश में लहराने लगा। अर्जुन के शंख देवदत्त और कृष्ण के शंख पांचजन्य को फूंके जाते ही वातावरण शंखनाद से गूंज गया। शंखनाद के साथ ही उन्होंने युद्धारंभ की घोषणा कर दी।

वहां से सुदूर स्थित हस्तिनापुरी में दृष्टिहीन राजा और आंखों पर पट्टी बांधे उनकी पत्नी, संजय द्वारा इस प्रकार वर्णित युद्ध का आंखों देखा हाल सुन रहे थेः महाराज, इसके बाद आपके पुत्रों और भतीजों के बीच युद्धारंभ हुआ जो देवासुर संग्राम के समान ही भीषण और डरावना है। अत्यंत बलशाली क्षत्रिय और रथों एवं हाथियों की भीड़ तथा हजारों गजारूढ़ एवं अश्वारोही योद्धा और रणतुरंग एक-दूसरे पर टूट पड़े। वातावरण में एक-दूसरे पे लपकते भयानक आकृति वाले हाथियों की चिंघाड़ वर्षा ऋतु में बादलों की गर्जना के समान गूंज रही थी। गजों की टक्कर से अपने रथ टूटने पर कुछ रथी पैदल हो गए। उन क्रोधित पशुओं के पैरों तले कुचलते सैनिकों को देखकर अनेक योद्धा मैदान छोड़कर भाग गए। महारथियों ने अपने बाणों से गजों की रक्षापंक्ति के अनेक अश्वारोहियों और पैदल सैनिकों को परलोक पहुंचा दिया। अरे, महाराज मैदान पर डटे दक्ष अश्वारोही सैनिकों ने मैदान में महारथियों को घेर लिया और उन्हें भाले, तीरों और तलवारों से बींध और काट डाला। कुछ सैनिकों ने धनुष तानकर महारथी योद्धाओं को घेरकर बाणों की ऐसी वर्षा की कि वे यमलोक पहुंच गए। अनेक सैनिक समूहबद्ध होकर एकल योद्धाओं पे भारी पड़ रहे थे।
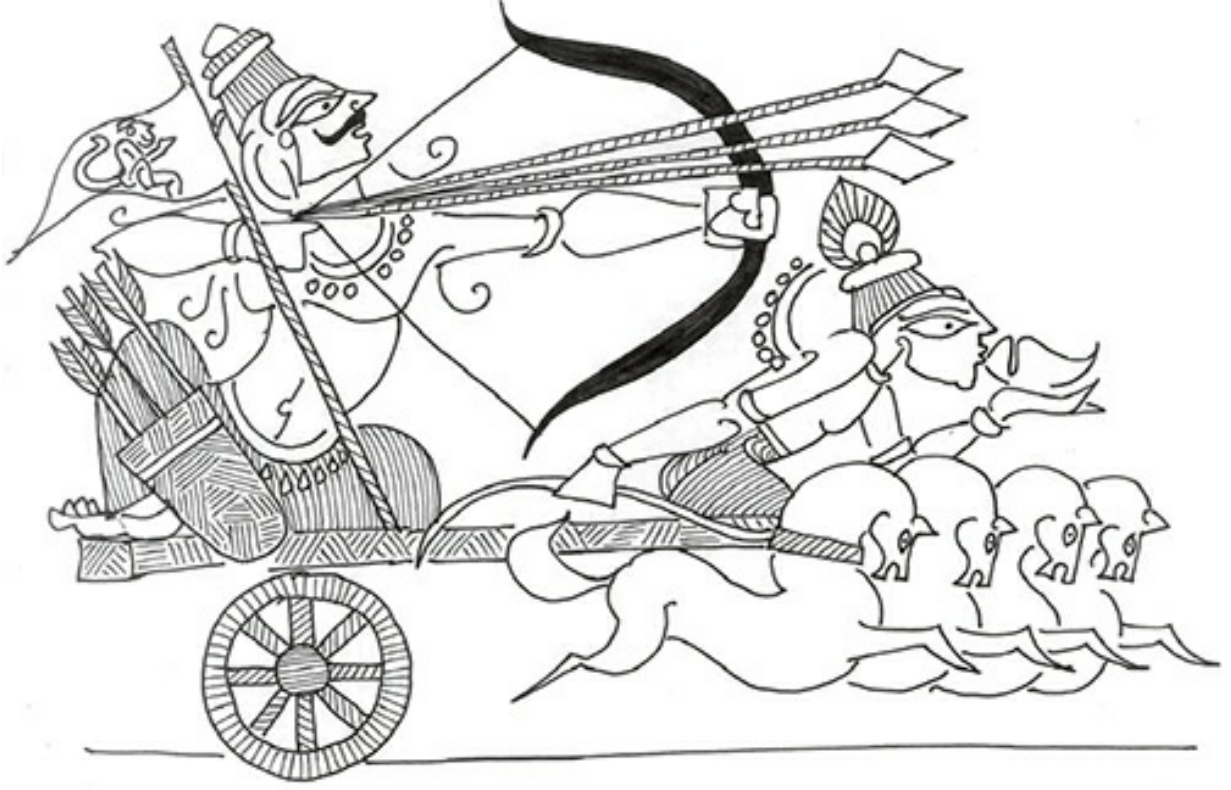
सूर्य चढ़ने के साथ ही उसने बताया, 'ओह, महाराज रक्तपिपासु योद्धा एक-दूसरे को लड़ाई में धराशायी करने लगे। युद्ध के लिए रथों के जमघट और अश्वों के बड़ेझुण्ड और पैदल सैनिकों के बड़े-बड़े जत्थे और बड़ी संख्या में हाथी एक-दूसरे से गुंथ गए। हमने इस भयावह युद्ध में एक-दूसरे पर गदाओं और नेजों तथा भालों और लघु बाणों तथा अस्त्रों से वार होते देखा। टिड्डियों के झुंड की तरह बाणों की भीषण वर्षा होते देखी। हाथियों का चिंघाड़ते हुए एक-दूसरे से भयानक टकराव देखा। अश्वारोहियों का अश्वारोही से टकराव और रथी का रथी से मुकाबला और पैदल सिपाहियों का रथों और गजों से आमना-सामना, और रथों से गजारोहियों एवं अश्वारोहियों पर आक्रमण और दौड़कर आते गजों का अन्य तीन प्रकार की सेना पर हमला आरंभ हो चुका। अरे, अरे, महाराज वे एक-दूसरे को कुचलने और मसलने के लिए आतुर हैं।'

दिन ढलने पर, जब सैनिक अपने-अपने युद्ध शिविरों में लौटे तब संजय ने रणक्षेत्र का कुछ ऐसा वर्णन किया: 'रक्त से सनी धरती वर्षा ऋतु में लाल फूलों से आच्छादित किसी विशाल मैदान जैसी सुंदर दिख रही थी।

सचमुच भूमि ने मानो किसी अतीवसुंदर युवती का रूप धरा हो जो गहरे लाल रंग में रंगे सफेद वस्त्रों से सजी हो। मांसपिंडों और रक्तरंजित युद्ध का मैदान ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उस पर सोना मढ़ दिया गया हो। अश्वों के खुरों के खांचों से भरा मैदान ऐसा सुंदर लग रहा था मानो किसी खूबसूरत स्त्री के शरीर पर उसके प्रेमी के नाखूनों की खरोंच पड़ी हुई हों। कटे हुए सिरों से आच्छादित धरती जो रक्त से किरमिजी हो गई थी, ऐसे जगमगा रही थी मानो उसे अपने फूलने के मौसम में स्वर्ण कमल से सज्जित किया गया हो। सिर पर सोने की माला और गले तथा छाती पर सोने के आभूषणों से सजे अनेक अश्व सैकड़ों और हजारों की संख्या में मरे पड़े थे। और महाराज, चारों ओर फैले टूटे हुए रथों और फटे हुए ध्वजों एवं चमकीली छतरियों, चिथड़ा हुई चंवरों और पंखों के साथ तथा टूटे हुए विध्वंसक अस्त्रों के टुकड़ों, सोने की मालाओं और गुलूबंदों के साथ बाजूबंदों, कर्णफूल पहने सिरों, सिरों पर से खुलकर फैली पगड़ियों, ध्वजवाहकों, उल्टे पड़े रथों के पुर्जों के साथ हीपट्टों तथा रासों के फैले होने से धरती ऐसी चमकीली दिख रही थी जैसे वो वसंत के फूलों से लदी-फदी हो।’

- विष्णु पुराण में पृथ्वी देवी, गाय के रूप में विष्णु से शिकायत करती हैं कि पृथ्वी के लालची राजाओं ने उन्हें इतनी बुरी तरह दुह लिया है कि उनके थन दुखने लगे हैं। विष्णु उन लालची राजाओं को सबक सिखाने का वचन देते हैं। परशुराम, राम एवं कृष्ण के अवतार में वे उनका रक्त पृथ्वी बहाएंगे ताकि पृथ्वी शेरनी के समान उनका रक्त पी सके। इस प्रकार कुरुक्षेत्र का युद्ध ब्रह्मांडीय घटनाओं द्वारा पूर्व-निर्धारित था। ये पृथ्वी देवी की प्यास बुझाने के लिए बलि हैं ताकि पृथ्वी का लावण्य पुनर्स्थापित हो सके।
- रणक्षेत्र में हरेक योद्धा के पास शंख है। शंख की ध्वनि से योद्धा के बल और तेज का पता चलता है और इसे शत्रु के लिए चेतावनी भी माना जाता है। युधिष्ठिर के शंख का नाम अनंत विजय था, भीम का पौंद्रय, नकुल का सुघोष और सहदेव का मणि पुष्पक नामक शंख था।
- युद्ध के वर्णनों और उनके चित्रों के अनुसार रणक्षेत्र में लाखों की संख्या में क्षत्रिय लड़ते थे, जिनसे मैदान पटा रहता था। वैदिक युद्ध हरेक अनुमान से मूलतः द्वंद्व होते थे। जिनमें विपक्ष के दोनों मुख्य योद्धा एक-दूसरे से आमने-सामने लड़ते थे। हरेक योद्धा रथ पर सवार रहता था और उनके चारों ओर गजों, अश्वों तथा पैदल सैनिकों का घेरा रहता था। उनका मुख्य कार्य लड़ने के बजाए योद्धा का जयघोष करना, उसकी शक्ति का प्रदर्शन करना और प्रतिद्वंद्वी का मखौल उड़ाना था। महान, सम्मोहक गाथा रचने के लिए कवि वास्तविकता में अपनी कल्पना का पुट डाल देते थे।

विजय के लिए बलि

नौ दिनों तक वे लड़ते रहे। सूर्य उगता, आकाश में फैलता और भाई द्वारा भाई, मित्र द्वारा मित्र को मारे जाते देखता तथा क्षितिज पर डूब जाता। बाजू काटे गए, सिर कुचले गए, पेट फाड़े गए, आंखें फोड़ दी गईं-लेकिन विजय श्री लापता थी। मैदान रक्त से गीला था, हवा में सड़ती लाशों की दुर्गंध, समाई थी। दिनोंदिन युवक युद्ध में कूद रहे थे, नगाड़ों की तेज ध्वनि और सारथियों के उपदेशों तथा उनके सेनापतियों के आदेशों से उनकी उत्तेजना चरम पर थी। शाम तक घायल और अंग-भंग स्थिति में मुट्ठी भर ही लौटते थे, फिर भी सूर्योदय के लिए अधीर रहते थे।

रात के सन्नाटे में सेवकों ने सारा दिन युद्ध शिविर में प्रतीक्षा के बाद रणक्षेत्र में जाकर अपने अंग-भंग मालिकों अथवा उनके शवों को वहां से बाहर निकाला। कुरुक्षेत्र इस प्रकार अगली सुबह फिर से होने वाले युद्ध के लिए तैयार हो रहा था। युद्ध के मैदान के साफ होने तक सूर्य क्षितिज पर उग आया था। मृतकों की अंत्येष्टि का समय नहीं बचा था। इसलिए युद्ध के मैदान की परिधि पर शवों के चट्टे लगा दिए गए और उनकी संवेदनाशून्य आंखें लगातार मार-काट देखती रहीं।

पहले ऐसा लगा कि पांडव जीतेंगे। फिर लड़ाई का रुख कौरवों के पक्ष में हो गया। कौरवों के वृद्ध सेनापति चतुराई से अपनी सेना का नेतृत्व कर रहे थे। उनके नेतृत्व में योद्धाओं ने पांडवों की सेना को पीछे खदेड़ दिया। लेकिन युवा धृष्टद्युम्न भी योग्य सेनापति था। उसने कौरवों की विशाल सेना का सामना चपलता से किया। उसके निर्देशों से उसकी सेना डटी रही और उसके सैनिकों का मनोबल बरकरार रहा।
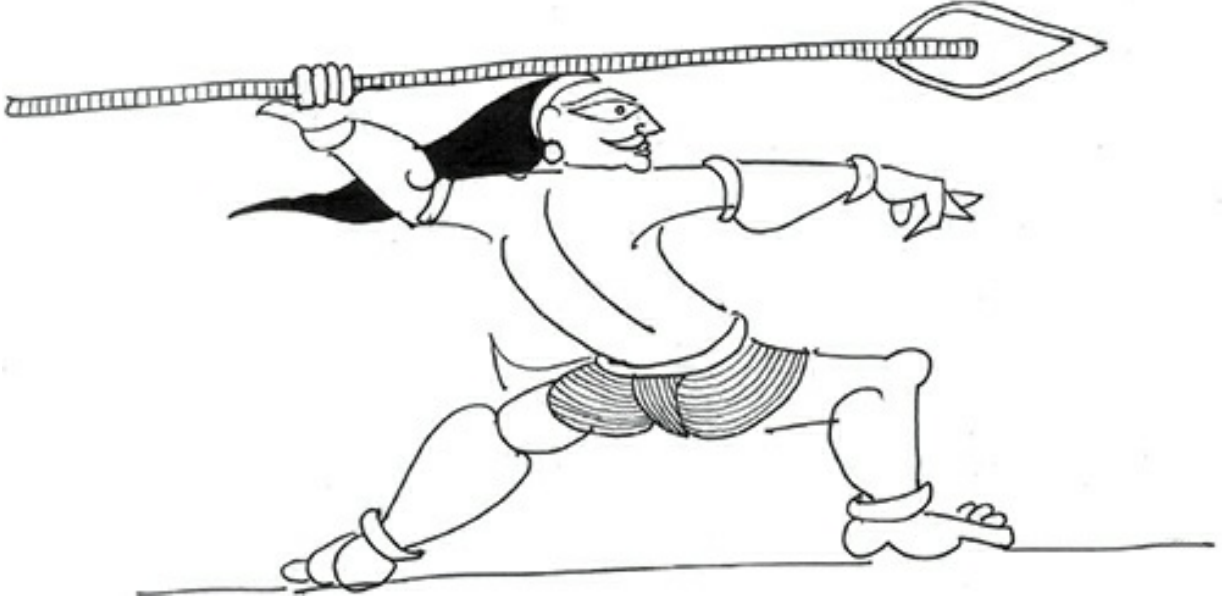
दिनोंदिन ये साबित हो रहा था कि दोनों पक्षों में बराबरी का मुकाबला था। विजयश्री किसी को नहीं मिली। सवेरे जो रणनीति सफल होती लगती थी, शाम तक विफल साबित हो जाती थी। हरेक आक्रमण पर जवाबी हमला हो रहा था। हरेक अस्त्र की काट उतने ही प्रभावशाली अस्त्र से विरोधी पक्ष कर रहे थे। पांडवों की सेना में राक्षस थे तो कौरव भी उन्हें साथ रखे हुए थे। कौरवों की सेना में यदि हाथी थे तो पांडवों ने भी गजों की रक्षा पंक्ति बना रखी थी। निराशा छाने लगी। आशा तो मृगा मरीचिका बन गई थी, रोजाना कुछ घंटे के लिए आ जाती और फिर गायब हो जाती। युद्धघोष और शस्त्रों की टकराहट के बीच सबको ये स्पष्ट अनुमान हो गया था कि युद्ध जल्दी समाप्त नहीं होगा।

'यदि हम काली नामक देवी को बलि चढ़ाएं, जो स्वयं जबरदस्त योद्धा और युद्धस्थल की ही देवी हैं, तो वे इस युद्ध को विजित करने का उपाय बता देंगी।' कृष्ण ने ऐसा नवीं रात में कहा। देवदूतों की सलाह ली गई और वे सहमत दिखे। उन्होंने बताया, 'बत्तीस पवित्र निशानों वाले शरीर का मालिक क्षत्रिय सबसे उपयुक्त होगा।'

पांडव पक्ष में सिर्फ तीन के शरीर पर वैसे निशान थेः अर्जुन, कृष्ण एवं इरावण नामक क्षत्रिय। पांडव, अर्जुन की बलि चढ़ा नहीं सकते थे और कृष्ण की बलि चढ़ाने का तो प्रश्न ही नहीं था। इसलिए सबकी नजरों का केंद्र इरावण बना।

अर्जुन ने पूछा, 'तुम कौन हो?'

इरावण ने तपाक से कहा, 'आपका पुत्र।' उसकी आंखें खुशी से दमक रही थीं। लेकिन अर्जुन को उस जैसे पुत्र का पैदा होना याद ही नहीं था। इरावण ने समझाया, 'मेरी माता नाग राजकुमारी उलूपी हैं, जिनसे, आपने बहुत समय पहले विवाह किया था।'

इरावण अपनी मां द्वारा मना किए जाने के बावजूद कुरुक्षेत्र में आया था। उसकी माता ने समझाया था, 'ये युद्ध उनका है, तुम्हारा नहीं।' लेकिन इरावण, अपने पिता से मिलने को अति आतुर था। साथ ही युद्ध में पिता का साथ देकर यश बटोरने की इच्छा भी उसे वहां खींच लाई थी।

अर्जुन तो उलूपी को विस्मृत कर चुका था, फिर भी उसने पुत्र मान कर उसे गले से लगाया।

वैसे तो, कोई भी क्षत्रिय, किसी भी कारण से, यदि उसके पक्ष में लड़ने के लिए आता तो उसे वो उतना ही मूल्यवान लगता। इसके लिए यदि किसी ऐसे व्यक्ति का पिता बनना पड़े, जिसे वो पहचानता तक नहीं था, वो भी उसे स्वीकार्य था। फिर इरावण की तो उसे इस समय वैसे भी सख्त आवश्यकता थी। सो अर्जुन ने उसे समझाते हुए कहा, 'यदि तुम मेरे सचमुच पुत्र हो तो तुम्हें काली के समक्ष अपनी बलि देने में कोई झिझक नहीं होनी चाहिए।'

इरावण समझ गया कि ये मना करने का अवसर न था। इसलिए उसने कहा, 'लेकिन मेरी एक शर्त है। मैं कुंवारा नहीं मरना चाहता। मुझे पत्नी का वरण करने दें, जो मेरी मृत्यु पर कम से कम दो आंसू तो बहाए।'

बलि अनुष्ठान के नियम के अंतर्गत बलिदान को तत्पर व्यक्ति की अंतिम इच्छा अवश्य पूरी की जाती थी। इसलिए इरावण का विवाह करना पांडवों का दायित्व बन गया, लेकिन कोई भी स्त्री उससे विवाह करने को तैयार नहीं थी। ऐसे व्यक्ति से विवाह कोई क्यों करती, जिसका जीवन अगली सुबह समाप्त होने वाला था। इरावण के लिए पत्नी के प्रबंध के सभी प्रयास जब विफल हो गए तो कृष्ण ने ऐसी तरकीब सुझाई जो अकल्पनीय थी।

कृष्ण ने स्वयं मोहिनी नामक स्त्री बनकर इरावण से विवाह किया और रात में उसकी पत्नी के रूप में उससे अभिसार भी किया। इससे इरावण खूब संतुष्ट हुआ। अगली सुबह जब इरावण का शिरोच्छेद करके काली को उसकी बलि चढ़ाई गई तो कृष्ण रूपी मोहिनी ने उसके लिए विधवा विलाप भी किया। इरावण के लिए कृष्ण ने ऐसा जबरदस्त विलाप किया, जैसा उनसे पहले किसी भी स्त्री ने कभी नहीं किया था।

- संस्कृत में वर्णित इस महागाथा में अर्जुन और उलूपी के इरावण रूपी पुत्र का कोई उल्लेख नहीं है। इरावण की मानव बलि चढ़ाने का वर्णन उत्तरी तमिलनाडु की वाचिक परंपरा में उपलब्ध है। वहां इरावण की शिव के अवतार कुथंदावर के रूप में पूजा की जाती है।
- इरावण की बलि का प्रसंग रस्मो-रिवाज के साथ हर वर्ष मंचित किया जाता है, जिसमें उसे, सभी स्त्रैण पुरुषों का दिव्य पति बनाया जाता है। स्थानीय स्तर पर ऐसे पुरुषों को आलिस कहा जाता है और आजकल उन्हें लिंगोच्छेदित समलिंग भी पुकारा जाता है। ऐसे लोग बहुधा अपना वंध्याकरण करवा कर समूचा जीवन औरत बनकर गुजारते हैं। वे सामान्य समाज से कटकर रहते हैं। इरावण के प्रसंग के द्वारा अपने को आलिस पुकारने वाले अपने अस्तित्व को परिभाषित करके, मान्यता प्रदान करते हैं।
- ऐसी जनश्रुति है कि इरावण के मन में युद्ध का पटाक्षेप देखने की प्रबल इच्छा थी। अपनी दिव्य शक्ति से ये बूझ कर उन्होंने उसके सिर में प्राण फूंक कर उसे किसी वृक्ष के ऊपर रख दिया ताकि वो उस उपयुक्त जगह से युद्ध को निर्विघ्न देख सके।

रणक्षेत्र में स्त्री प्रवेश

पांडवों को पता था कि भीष्म जब तक जिंदा हैं, उन्हें विजय प्राप्त नहीं हो सकती। इसके बावजूद भीष्म पर चोट करने से पांडव झिझक रहे थे। उनके लिए वे पितातुल्य थे। उनकी स्मृति में पिता का वही एकमात्र स्वरूप थे। अर्जुन ने भीष्म पर अनेक बाण तो छोड़े लेकिन उनमें से एक भी बाण घातक नहीं था।

कृष्ण तो एक दिन गुस्से से आगबबूला होकर अपने रथ से कूदे और टूटे रथ का पहिया उठाकर भीष्म को मारने दौड़ पड़े। अर्जुन समझ गया कि कृष्ण, युद्ध लंबा खिंचने से खिन्न होकर ही युद्ध की समाप्ति के लिए कुरुक्षेत्र में किसी पर भी वार न करने के अपने संकल्प को तोड़ने पर उद्धत हुए थे। कृष्ण के पीछे-पीछे अर्जुन भागा और उसने, उनसे रुकने की याचना की। उन्होंने उत्तेजित स्वर में कहा, 'मैं भीष्म का वध कर दूंगा।'

लेकिन समस्या वहीं निहित थी: भीष्म का वध कैसे किया जाए। क्योंकि उन्हें भगवान ने ये वरदान दे रखा था कि अपनी मृत्यु की घड़ी वे स्वयं तय करेंगे? कृष्ण ने कहा, 'उनका वध भले ही न किया जा सके, मगर हम उन्हें धरती से इस प्रकार टिका कर अक्षम तो कर ही सकते हैं कि वे अपना कोई भी अंग हिलाडुला न सकें।'

अर्जुन ने उत्तर दिया, 'जब तक धनुष उनके हाथ में है, तब तक ये असंभव है। '

इस पर कृष्ण ने अर्थपूर्ण मुस्कान बिखेरते हुए हुए कहा, 'तब उन्हें अपना धनुष टिका देने को मजबूर करो।' उन्होंने ये अनुमान लगा लिया था कि अर्जुन उस दुखदायी कार्रवाई को टाल रहा था। अर्जुन ने जवाब दिया, 'भीष्म रणक्षेत्र में तो अपना धनुष किसी कीमत पर नहीं टिकाएंगे।'

कृष्ण ने व्यंग्यपूर्वक पूछा, 'स्त्री के सामने आने पर भी क्या वे धनुष ताने रखेंगे।' इससे सबको कृष्ण द्वारा इरावण की पत्नी बनने का प्रसंग याद आ गया।

अर्जुन ने वितर्क किया, 'लेकिन स्त्रियां तो रणक्षेत्र में आ ही नहीं सकतीं?' वो अभी तक समाधान ढूंढ़ने के बजाए समस्या में ही उलझा हुआ था।

इस पर कृष्ण ने द्रौपदी के बड़े भाई का नाम लेते हुए पूछा, 'शिखंडी नर है अथवा मादा?'

शिखंडी की विचित्र कथा थी। वो पैदा तो मादा रूप में हुई थी मगर देवदूतों ने उसके पिता और पांचाल नरेश द्रुपद को बताया था कि बड़ी होने पर उसका शरीर नर जैसा हो जाएगा। उन्होंने

बताया, 'अपने पिछले जन्म में वो काशी नरेश की बड़ी बेटी अंबा थी। भीष्म की मृत्यु का कारण बनना उसके भाग्य में बदा है।' इसीलिए द्रुपद ने अपनी पुत्री को पुरुष बनाकर पाला है। उसने शिखंडी का विवाह करवा के उसे पत्नी भी दिला दी। सुहागरात में शिखंडी की पत्नी अपने पिता हिरण्यवर्ण के पास रोती-बिलखती हुई दौड़ी और उनसे शिकायत करने लगी कि उसके 'पति' का शरीर तो स्त्रियों जैसा है। दशर्ण के राजा हिरण्यवर्ण ने ये सुनते ही अपनी बेटी के मान की खातिर अपनी सेना को साथ लेकर द्रुपद के राज्य को घेर लिया तथा उसे धूल-धूसरित कर देने की धमकी दी।

पांचाल राज्य को युद्ध से बचाने के लिए शिखंडी ने आत्म हत्या का निर्णय किया। आत्म हत्या के लिए वो वन की ओर भागी। वन में उसे स्थूण नामक यक्ष मिला। उसने, शिखंडी की हालत जान कर उसे अपना पौरुष देने को कहा। यक्ष बोला, 'अपनी पत्नी तथा उसके पिता के सामने अपने को पुरुष साबित करने के लिए इसका प्रयोग करो और कल इसे, मुझे वापस कर देना।' शिखंडी ने यक्ष का पुंसत्व ग्रहण करके अपनी पत्नी के सामने अपने को पुरुष साबित करने वाली कार्रवाई की जिससे मजबूर होकर उसके ससुर को उलटे पांव लौटना पड़ा। अगले दिन शिखंडी जब वन में अपना अस्थायी पुंसत्व लौटाने पहुंचा तो यक्ष ने कहा, 'मेरे राजा कुबेर ने जो यक्षपति और अलकापुरी के राजा हैं, जब ये सुना कि मैंने किस प्रकार तुम्हें एक रात के लिए अपने पुंसत्व के प्रयोग की अनुमति दी, तो वे अप्रसन्न हुए। उन्होंने मुझे ये शाप दिया कि मेरा पुंसत्व तुम्हारी मृत्यु के बाद ही वापिस मेरे पास आएगा। ये सुनकर शिखंडी की प्रसन्नता का पारावार न रहा। स्त्री रूप में पैदा होने के बावजूद वो अब पुरुष बन गया था और अपने जीवन के अंतिम क्षण तक वैसा ही बना रहेगा।'

इस कथा से परिचित सभी लोगों को असमंजस हुआ कि शिखंडी पुरुष है अथवा स्त्री। लिंग क्या जन्म के सत्य से तय होता है अथवा वर्तमान क्षण के सत्य से तय होगा।

कृष्ण ने कहा, 'अर्जुन, यदि तुम्हें शिखंडी पुरुष जैसा लगता है तो तुम उसे अपने रथ पर बैठाकर रणक्षेत्र में ले जा सकते हो। लेकिन यदि भीष्म उसे स्त्री मानते हैं तो वो अपना धनुष झुका लेंगे और तुमसे युद्ध के नियमों के उल्लंघन की शिकायत करेंगे। उन्हें काबू करने का वही अवसर तुम्हारे लिए सबसे उपयुक्त होगा।'

अर्जुन ने उद्विग्न होकर कहा, 'लेकिन वो तो अन्यायपूर्ण होगा।'

कृष्ण ने कहा, 'वो दृष्टिकोण की बात है।'

और इस प्रकार युद्ध के दसवें दिन, शिखंडी ने अर्जुन के रथ पर सवार होकर भीष्म को द्वंद्व युद्ध की चुनौती दी। आशंकानुसार भीष्म ने जन्मना स्त्री के साथ लड़ने से इन्कार कर दिया। उन्होंने अपना धनुष झुका लिया। शिखंडी के पीछे खड़े अर्जुन ने अवसर का लाभ उठाकर सैकड़ों बाणों से भीष्म को बींध दिया।

उन महान योद्धा के अंगों और धड़ को बिजली की तेजी से आते बाणों से बुरी तरह बिंधते देखकर दुर्योधन बौखला गया। कौरवों के वह महान सेनापति अपने शरीर पर गड़े बाणों के साथ ही अंततः रथ से धरती पर गिर गए। शरीर के रोम-रोम में खुबे बाणों ने उन्हें धरती नहीं छूने दी। उन बाणों की शरशैया पर वे धरती और आकाश के बीच लेटे रहे। घायल भीष्म के गिर जाने की सूचना रणक्षेत्र में जंगल की आग की तरह फैल गई। ये पता चलते ही सारे सैनिकों ने अपने अस्त्र झुका दिए। भीष्म, कुरु कुल के प्रपितामह थे और उनका सभी सम्मान करते थे। उन्हें शरशैया पर लेटे देख वे सभी उनको घेर कर शोकाकुल विलाप करने लगे।

इतनी बुरी तरह घायल होने पर सामान्य व्यक्ति के प्राण तो कभी के निकल चुके होते। लेकिन भीष्म कोई सामान्य व्यक्ति नहीं थे। 'मैं अपने प्राण त्यागने की घड़ी स्वयं चुन सकता हूं। लेकिन अभी उचित समय नहीं है। उगता सूरज पूर्वी क्षितिज के सहारे दक्षिण दिशा में चला जा रहा है और हरेक बीतते दिन के साथ चंद्रमा घट रहा है। इसमें परिवर्तन होने और शिशिर की संक्रांति के बाद सूर्य के उत्तरायण होकर ध्रुव तारे की ओर बढ़ने तथा चंद्र माह में शुक्ल पक्ष में शुभ मुहूर्त में प्राण त्याग करूंगा।'

इस प्रकार युद्ध का दसवां दिन कौरव सेना द्वारा अपने महान सेनापति को खो देने के साथ समाप्त हुआ।

- पांडव हालांकि दुर्गा का आह्वान करते हैं, मगर किसी स्त्री को अपने साथ मिलकर युद्ध करने देने से कतराते हैं। गाथा काल में स्त्री की हत्या को अत्यंत घातक अपराध माना जाता था। स्त्रीहंता को प्रबुद्धता के स्वामी ब्राह्मण की हत्या अर्थात ब्रह्महत्या और संपत्ति की स्रोत गाय की हत्या अर्थात गोहत्या का पाप लगता था, क्योंकि स्त्री की हत्या को अपनी ही मां की हत्या अर्थात मातृ हत्या जैसा पाप समझा जाता था।
- भीष्म की हार के साथ ही पुरातन और न्यायप्रियता के युग का अंत हो गया, जिसमें युद्ध के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाता था। उसके बाद चले युद्ध में धीरे-धीरे युद्ध संबंधी सारे नियमों की बलि चढ़ गई।
- अर्जुन के बाण भीष्म को शरशैया पर धरती तथा आकाश के बीच लटकाए रहे क्योंकि उन्हें मृत रूप में ये दोनों ही तत्व ठुकराना चाहते थे। ऐसा गृहस्थ अथवा साधु में से किसी भी रूप में भीष्म की स्पष्ट पहचान स्थापित नहीं होने के कारण हुआ। इसके साथ ही वे पुरुष रूप में पैदा होने के बावजूद पुरुषोचित जीवन व्यतीत नहीं करते अर्थात वे न तो

पुत्र होने का दायित्व निभा पाते हैं और न ही पुत्र होने के लाभ ग्रहण करते हैंः वे विवाह नहीं करते, संतान के पिता नहीं बनते, अपने पिता के राजपाट के उत्तराधिकारी नहीं बनते, और अंत में मारे भी किसी स्त्री के कारण जाते हैं। भीष्म अपनी प्रतिज्ञा के कारण अपने वंश को आगे नहीं बढ़ाने का कलंक भी झेलते हैं। उनके सौतेले भाई पौरुषहीन होने के कारण निःसंतान ही मर जाते हैं। व्यास इस प्रकार, बहुत महान बलिदान के रूप में परिभाषित इस कार्य के भयावह परिणामों से अवगत कराते हैं।

- भीष्म के लिए ये भी कहा जा सकता है कि वे अधर्म का आचरण करते थे। वे आश्रम धर्म की संहिता का उल्लंघन करते हैं जिसके अनुसार अपने वंशजों के अपनी जिम्मेदारी स्वयं उठाने लायक हो जाने पर परिवार के मुखिया को सेवानिवृत्त हो जाना चाहिए। वे अपने परिवार को स्वयं अपने दायित्वों के निर्वहन के लिए अकेला छोड़ने से इन्कार कर देते हैं। अपनी मृत्यु की घड़ी स्वयं तय करने के वरदान का लाभ उठाकर वे अपने प्राण त्यागने अथवा आश्रम धर्म निभाने के लिए अपने परिवार से अपने को अलग कर लेने को राजी नहीं होते।
- भीष्म के शरशैया पर लेट जाने का काल शिशिर की संक्रांति के पूर्व था जब संवत प्रणाली के अनुसार पितर पृथ्वी के सबसे पास होते हैं। भीष्म, जिन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके संतानोत्पत्ति नहीं करने का संकल्प किया था, शायद अपने पितरों से मुंह चुरा रहे थे और इसीलिए वे शिशिर की संक्रांति के बाद वर्ष के उत्तरार्ध में अपने प्राण त्यागने का निर्णय करते हैं, जब पितर, पृथ्वी से दूर चले जाते हैं।
- इरावण के विवाह तथा शिखंडी के युद्ध में शामिल होने संबंधी दोनों प्रकरणों से लिंग परिवर्तन और लैंगिक अस्पष्टता परिलक्षित होती है। ये दोनों घटना युद्ध की नवीं रात्रि तथा दसवें दिन में घटित होती हैं जो अठारह दिन चले युद्ध का मध्यकाल है। इसके घटित होने पर ही युद्ध अपने निष्कर्ष की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार नवीं रात्रि से युद्ध युग्मक तर्क से अस्पष्ट तर्क की ओर मुड़ जाता है, जहां से दृष्टिकोणों के बीच की तर्क रेखा धुंधली पड़ जाती है।

द्रोण का आक्रमण

ग्यारहवें दिन द्रोण को कौरव सेना का सेनापति घोषित किया गया। दुर्योधन ने द्रोण को बताया, ‘इस रणक्षेत्र में खेत रहा पहला महारथी पांडव नहीं बल्कि कौरव है। ये हमारे मनोबल पर गहरा आघात है। आपको किसी पांडव का भी वध करना चाहिए, वो भी युधिष्ठिर का।’

द्रोण ने ऐसा ही करने की प्रतिज्ञा की। भीष्म के विपरीत, जिनकी रणनीति पांडवों की न्यूनतम क्षति के साथ उन्हें पीछे खदेड़ने की थी, द्रोण की रणनीति उनको अधिकतम क्षति पहुंचाने की थी द्रोण

उन्होंने संसप्तक नामक त्रिगर्त के रथियों को अर्जुन को घेरने तथा प्रागज्योतिष नरेश भागदत्त के नेतृत्व में गजपतियों के झुंड को भीम की घेराबंदी में लगा दिया। द्रोण ने कहा, ‘इस प्रकार अर्जुन और भीम की घेराबंदी से ज्येष्ठ पांडव अकेला पड़ जाएगा और उसे बंदी बनाने में आसानी होगी।’

भीम ने भागदत्त के गजपतियों को खदेड़ने में जान लगा दी। लेकिन वे उस पर भारी पड़ रहें थे। इसलिए भीम पीछे हटने लगा।

भीम के रथ को पीछे हटते देखकर पांडव सेना घबराने लगी। अर्जुन ने जैसे ही ये देखा तो उसने पहले भागदत्त को भगाने पर ध्यान देकर बाद में संसप्तक रथियों से निपटने का निर्णय किया। इसलिए कृष्ण ने अपने रथ को मोड़कर भागदत्त और उसके गजपतियों के पीछे लगा दिया। अर्जुन ने पहले कहा, ‘नहीं, वापस जाओ। पहले संसप्तक और फिर भागदत्त।’ फिर वो बोला, ‘नहीं शायद पहले भागदत्त और फिर संसप्तक।’
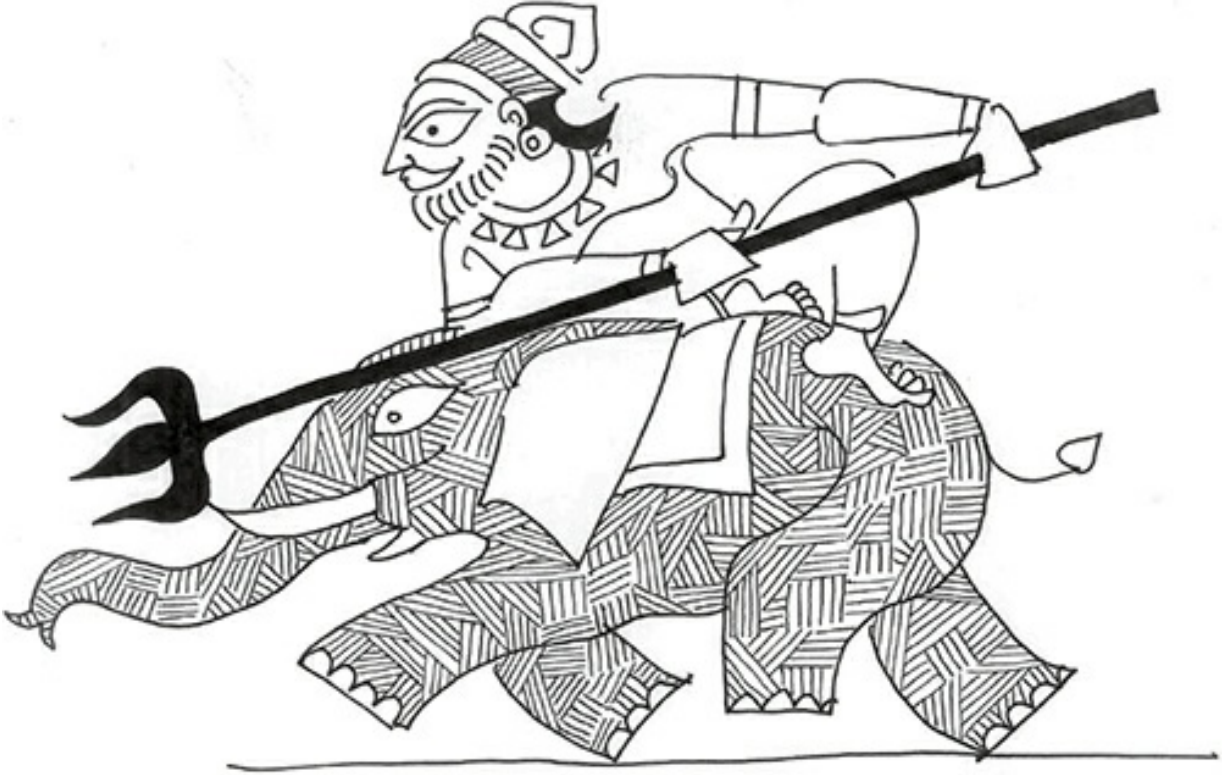
अर्जुन की ऊहापोह और तनाव को समझ कर कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा, 'तुम दोनों को हरा सकते हो। एक-एक करके अथवा दोनों को एकसाथ भी। मुझे तुम पर पूरा भरोसा है।'

इस प्रकार कृष्ण द्वारा प्रोत्साहित किए जाने पर अर्जुन ने अपना धनुष उठाया और पहले संसप्तक की ओर बाणों की बौछार की। बाणों ने दर्जनों अश्वों को बींधा, अन्य सौ रथों को तोड़ा और हजारों आरोहियों का वध किया। अश्वों के एक-दूसरे पर गिरते जाने और टूटे रथों का ढेर लगने से संसप्तक बुरी तरह भ्रमित हो गए। अर्जुन ने अकेले दम इस व्यूह को नष्ट कर दिया, जिसने या तो अर्जुन को मटियामेट कर देने अथवा उसके हाथों खत्म हो जाने का प्रण किया था।

अर्जुन फिर भागदत्त की ओर मुड़ा। रथ जैसे-जैसे भागदत्त की ओर बढ़ा, महारथी ने अपने गज पर खड़े होकर घातक अस्त्र छोड़ा-वैष्णव अस्त्र। अर्जुन ने इस अस्त्र को काटने के लिए अपना धनुष उठाया ही था कि कृष्ण बीच में आकर अस्त्र के सामने ढाल बन गए। लेकिन ये क्या! अस्त्र जैसे ही कृष्ण के शरीर पर लगा तत्काल फूल माला में परिवर्तित हो गया। अर्जुन ने उद्दंडतापूर्वक कहा, 'कृष्ण, आपने अस्त्र को अपने ऊपर क्यों झेला? मैं इसे स्वयं ही नष्ट कर देता।'

कृष्ण ने उत्तर दिया, ‘नहीं तुममें वो सामर्थ्य नहीं थी। भागदत्त को ये अस्त्र उसके पिता ने दिया था। उन्हें ये अस्त्र अपनी माता पृथ्वी से मिला था। उनकी माता को ये अस्त्र मैंने अपने पूर्व अवतार में वराह बनकर पृथ्वी को समुद्र के गर्भ से उठाकर पुनः स्थापित करते हुए दिया था। वैष्णव अस्त्र की शक्ति को इसके सर्जक अर्थात मेरे अलावा संसार का कोई भी प्राणि झेल नहीं सकता था। इसीलिए मैंने इस अस्त्र के वार को झेला।’

अर्जुन ने अपनी उद्दंडता के लिए क्षमा याचना की और उसके बाद उसने भागदत्त पर ध्यान दिया। उसने, जिस गज पर भागदत्त सवार था, उसका मस्तक अपने बाण के एक ही वार से चीर दिया। दूसरे बाण से उसने भागदत्त का सीना चीर दिया। उन दोनों का वध होते ही इतनी अधिक मात्रा में रक्त बहा मानो रक्त वर्षा हो रही हो।

और अर्जुन जब संसप्तक रथियों तथा भागदत्त के गजपतियों से निपट रहा था, तब भीम ने युधिष्ठिर की घेराबंदी करके उसका बखूबी बचाव किया जिससे द्रोण की व्यूह रचना बेकार हो गई।

शकुनि ने अर्जुन के विरुद्ध गांधार की सेना लेकर चढ़ाई कर दी। अपने मंत्रपूत बाणों की शक्ति से उसने सूर्य को बादलों से ढंककर अंधेरा प्रसारित कर दिया और गड़गड़ाहट के साथ वर्षा करवा दी। अर्जुन ने भी अपने दिव्यास्त्रों से उसका भरपूर प्रतिकार कियाः उसने एक ही अस्त्र से बादल और वर्षा गायब करके फिर से सूर्य को उजागर कर दिया। लगातार अपने अस्त्रों और सैनिकों को कटता देख शकुनि मैदान छोड़कर भाग गया।

श्रुतयुद्ध नामक योद्धा ने अर्जुन को परास्त करने में पूरी शक्ति लगा दी लेकिन अपने प्रयास में विफल रहने से खीझ कर उसने अपनी गदा कृष्ण पर फेंक दी। ये गदा जल देवता वरुण का उपहार थी और इसका प्रयोग निहत्थे पर करना वर्जित था। कृष्ण चूंकि निहत्थे थे, इसलिए गदा कृष्ण के सीने से टकरा कर उछली और श्रुतयुद्ध से जा टकराई। इस वार से श्रुतयुद्ध के प्राण पखेरू उड़ गए।

- कृष्ण के मुख से भगवद्गीता का उपदेश सुनने के बावजूद अर्जुन अपनी निष्ठा और पूर्वाग्रहों से लड़ता रहा। ये स्थिति रणक्षेत्र में बार-बार उसकी झिझक और अनिश्चितता से स्पष्ट परिलक्षित होती है। इससे साफ है कि विकास झटके से नहीं हो सकता बल्कि ये सतत प्रक्रिया है जिसमें अपने मन में छिपे पशु से हर पल लड़ने का निश्चय करना पड़ता है।
- वैष्णव अस्त्र और श्रुतयुद्ध की कथाओं से ये स्पष्ट है कि पांडवों को दैवी संरक्षण प्राप्त था। कृष्ण की उपस्थिति से अर्जुन निर्भय होकर रणक्षेत्र में अपने कर्तव्य का पालन कर पाता है।
- पांडव एवं कौरव, एक-दूसरे पर अस्त्रों से वार करते हैं। ये साधारण बाण नहीं थे। ये दिव्य ऋचाओं की शक्ति वाले प्रक्षेपास्त्र थे। वहां अनेक प्रकार के अस्त्र थे, जिनमें किसी देवता अथवा देवताओं की शक्ति निहित थी। वहां ब्रह्म अस्त्र, विष्णु अस्त्र और पाशुपत अस्त्र थे जिनमें क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्ति निहित थी। अग्नि अस्त्र, वायु अस्त्र और इंद्र अस्त्र भी थे जिनमें अग्नि, वायु और वर्षा की शक्ति संचित थी। इन हथियारों के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि शायद प्राचीन काल में भी परमाणु प्रौद्योगिकी विद्यमान थी और अस्त्र वास्तव में परमाणु प्रक्षेपास्त्र थे।

अभिमन्यु वध

बारहवां दिन समाप्त होते-होते कृष्ण ये समझ गए कि अर्जुन जैसे भीष्म पर वार करने से बच रहा था, वैसे ही द्रोण पर वार करने में भी झिझक रहा है। भीष्म को अर्जुन अपना पिता और द्रोण को गुरु मानकर उनका हृदय से सम्मान करता था। कृष्ण ने उसे समझाया, 'युद्ध में कोई किसी का पुत्र, पिता, चाचा-ताऊ अथवा गुरु नहीं होता। वहां सिर्फ सैनिक होते हैं जो अधर्म तथा धर्म के लिए लड़ते हैं।' इसके बावजूद अर्जुन अपने गुरु का हृदय से इतना अधिक सम्मान करता था कि मोह के बंधन को काट नहीं पा रहा था।

उधर द्रोण ने दो दिन सघन युद्ध के बावजूद पांडवों में से किसी को खरोंच तक नहीं लगा पाने से बौखला कर तेरहवें दिन भयावह व्यूह रचना की।

उन्होंने देखा था कि अर्जुन को कृष्ण लगातार कर्ण की पहुंच से बाहर रख रहे थे। कर्ण भी भीष्म के पतन के बाद रणक्षेत्र में दाखिल हो चुका था। इसका कारण निम्नलिखित था:-

भीष्म जब तक कौरवों के सेनापति रहे, कर्ण युद्ध में शामिल नहीं हुआ। भीष्म के पतन के बाद अंततः जब कर्ण के युद्ध में शामिल होने का समय आया तो कोई बूढ़ा आदमी सवेरे-सवेरे उससे दान मांगने आ गया। अपने स्वभाव के अनुरूप कर्ण ने कहा, 'जो मांगोगे वही वस्तु तुम्हारी हो जाएगी।' बूढ़े ने तत्काल उससे, उसके कुंडल और कवच मांग लिए। कर्ण के शरीर पर ये दोनों वस्तुएं आजन्म विद्यमान थीं। वे उसके शरीर पर त्वचा के समान थे और हरेक अस्त्र-शस्त्र से अभेद्य थे। उन्हें दान में देने का अर्थ था, युद्धक्षेत्र में अपनी सबसे बड़ी ताकत को गंवा कर अपनी जान को खतरा मोल लेना। इसके बावजूद कर्ण ने बिना एक पल गंवाए अपने दिव्य उपहारों को दान कर देने का निर्णय किया। उसने कटार से दोनों वस्तुओं को डाल को पेड़ से काट देने के समान अपने शरीर से काटकर निकाल दिया। वो बूढ़ा व्यक्ति और कोई नहीं बल्कि देवराज इंद्र थे। वे अर्जुन के पिता थे और ऐसा उन्होंने अपने पुत्र अर्जुन के मोह में पड़कर किया था। वो देखते रहे और कर्ण के कानों और सीने से खून का फौवारा छूट पड़ा। वो कर्ण की दानवीरता से विह्वल हो गया। उन्होंने अपनी वास्तविक पहचान बताते हुए कहा, 'सूर्य पुत्र। तुमको मेरा प्रणाम। तुम्हारी दानवीरता अतुलनीय है। मैं भी तुम्हें उपहार देता हूं। दिव्य भाला जो कभी अपने लक्ष्य से नहीं भटकता। लेकिन तुम सिर्फ एक ही बार उसका प्रयोग कर सकोगे। सोच-समझ कर प्रयोग करना।' कर्ण ने मन ही मन सोचा कि इस भाले से वो अर्जुन का वध करेगा। कृष्ण ने अपनी दिव्य दृष्टि से यह बात ताड़ ली थी। इसीलिए कृष्ण ने अर्जुन को कर्ण के रणक्षेत्र में प्रवेश के बाद से ही उसकी नजरों से दूर कर रखा था।

द्रोण ने कर्ण से कहा, 'अपने रथ को मेरे रथ से सटा कर रखो।' इससे द्रोण आश्वस्त हो गए

कि अर्जुन को कृष्ण रणक्षेत्र के दूसरे छोर पर ले जाएंगे। द्रोण ने फिर अपने सैनिकों के सात घेरे बनाकर चक्रव्यूह रचा जिसमें से शत्रु का बचकर जाना असंभव होता था। चक्रव्यूह को तोड़ना सिर्फ अर्जुन ही जानता था, लेकिन उसके रणक्षेत्र के दूसरे छोर पर युद्धरत होने के कारण द्रोण को पांडव सेना के कुछ महारथियों को आसानी से अपने व्यूह में फंसा पाने में भारी सफलता मिली।

कौरवों की सेना के बीच बुरी तरह फंसे युधिष्ठिर ने अचानक सहायता की गुहार लगाई मगर उसकी आवाज अर्जुन के कानों तक पहुंचने से रोकने के लिए कृष्ण ने अपना शंख फूंक दिया। युधिष्ठिर ने घबराकर पूछा, 'इस व्यूह रचना को हम कैसे तोड़ें? इससे कैसे बाहर निकलें?'

अर्जुन के सुभद्राजनित किशोर पुत्र अभिमन्यु ने कहा, 'आपको इससे बाहर निकालने के लिए व्यूह को भेदने की युक्ति मुझे पता है।' इस महायुद्ध में महारथियों से आमने-सामने लड़ने का अवसर पाकर अभिमन्यु की आंखें उत्साह से फैल गईं।

युधिष्ठिर ने पूछा, 'कैसे?'

'मैंने अपनी मां के गर्भ में ही अपने पिता द्वारा यह युक्ति अपनी माता को बताते समय सुनी थी। लेकिन...'

'लेकिन क्या?'

'लेकिन व्यूह को भेदकर आप सबको उससे निकालने की युक्ति तो मुझे पता है मगर स्वयं उसमें से बचकर निकलना मुझे नहीं आता। आपको वापस आकर मुझे बाहर निकालना होगा।'

युधिष्ठिर मुस्कराया और अभिमन्यु के सिर पर हाथ रखकर बोला, 'मैं, तुम्हें ये वचन देता हूं।'

अभिमन्यु ने तत्काल चक्रव्यूह भेदने के लिए युद्ध शुरू किया और द्रोण सहित कौरव महारथियों को छकाते हुए उसने व्यूह भेद कर पांडव महारथियों को वहां से निकाल दिया।

उसके बाद और योद्धाओं को बटोर कर युधिष्ठिर, अभिमन्यु को बचाने के लिए आया तो जयद्रथ और उसकी सेना ने उनका रास्ता रोक दिया। द्रोण ने तब तक व्यूह के भेद को फिर से सुरक्षित करके अभिमन्यु को उसमें फंसा लिया था।

अभिमन्यु ने अपने आप को अपने चाचा-ताऊ और चचेरे-तहेरे भाइयों से घिरा पाया-दुर्योधन, दुःशासन, लक्ष्मण, कृतवर्मा, कृपा, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा। उनमें से हरेक अपने हाथों में भयावह अस्त्र लिए जानलेवा अंदाज में उसी की ओर बढ़ा आ रहा था। तभी विकर्ण ने टोका, 'लेकिन क्या ये युद्ध के नियमों का उल्लंघन नहीं है कि इतने सारे योद्धा मिलकर अकेले प्रतिद्वंद्वी पर वार करें?'

द्रोण ने अपने निर्णय को सही ठहराते हुए जवाब दिया, 'भीष्म से लड़ने के लिए स्त्री को आगे करके नियम तोड़ने की पहल उन्होंने की थी।'

अभिमन्यु वीरतापूर्वक उन महारथियों से अकेला लड़ता रहा, उनके प्रहार से जब उसका धनुष टूट गया तो उसने तलवार उठा ली। उन्होंने तलवार को भी काट डाला तो उसने भाला उठा लिया। उसका भाला भी जब उन्होंने तोड़ दिया तो उसने रथ का पहिया उठा लिया। उसने दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण का वध कर दिया था। लेकिन दुःशासन के पुत्र ने उसके सिर पर अपनी गदा से प्रहार किया तो वो गिर पड़ा। अभिमन्यु जब तक अपनी बची-खुची शक्ति बटोर कर उठ पाता तभी अन्य योद्धा उस पर गिद्ध की तरह टूट पड़े और उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

चक्रव्यूह के बाहर खड़े युधिष्ठिर असहाय अभिमन्यु की सहायता पाने के लिए करुण पुकार सुनकर कसमसाते रहे। वो जयद्रथ की विजयी कुटिल मुस्कान को खड़े-खड़े झेलते रहे।
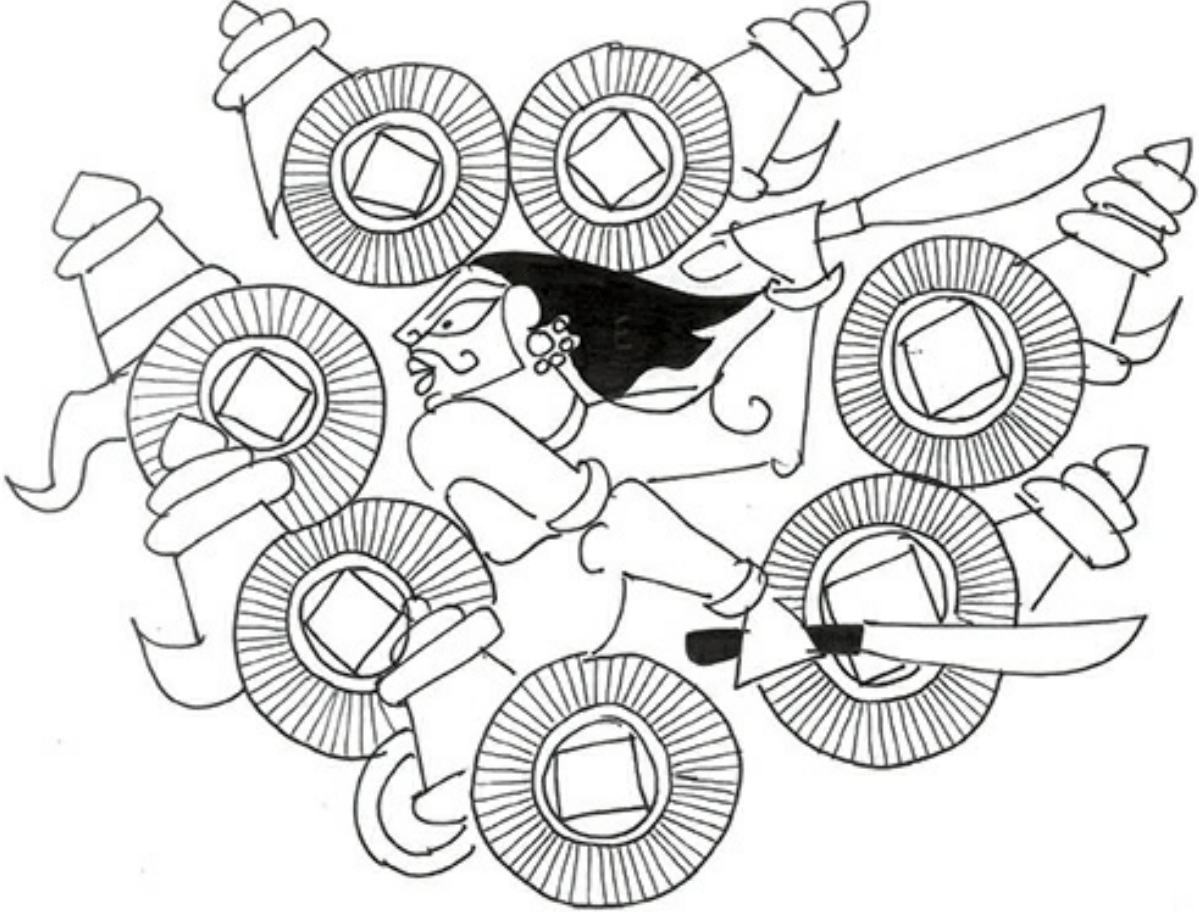
- अभिमन्यु की मृत्यु का जबरदस्त महत्व है क्योंकि कौरवों के हाथों वधित पांडव खानदान का वो पहला सदस्य था।
- मनोरंजन भट्टाचार्य के लिखे नाटक *चक्रव्यूह* का पहली बार मंचन साल 1934 में 23 नवंबर को हुआ था। उसके गीत और संगीत काजी नजरुल इस्लाम के थे। उसमें अभिमन्यु की कथा को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया था। नाटक में अभिमन्यु और दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण ये समझौता करते हैं कि यदि वे कभी भी राजगद्दी के उत्तराधिकारी बने तो अपने बड़ों के कर्मों को भूलकर वे राज्य को आपस में बांट लेंगे।
- इस बारे में अनेक लोककथाएं प्रचलित हैं कि कृष्ण ने अर्जुन के पुत्र का वध इस प्रकार क्यों होने दिया। एक कथा के अनुसार अपने पूर्व जन्म में अभिमन्यु दानव था और अर्जुन के पुत्र के रूप में जन्म लेकर विष्णु के हाथों अपने वध से बच गया था। ऐसी ही अन्य कथा में अभिमन्यु को चंद्रमा का पुत्र बताया गया है, जिसे उसके पिता ने सोलह साल पृथ्वी पर बिताने की अनुमति दी थी।
- युद्ध के दौरान विभिन्न अवसरों पर सेनापति अपने योद्धाओं को विशेष रूप में तैनात करता है, जिसे व्यूह रचना कहते थे। हरेक व्यूह का विशेष प्रयोजन है; कुछ सुरक्षात्मक थे और अन्य आक्रामक। हरेक व्यूह की अपनी खूबियां और खामियां थीं। मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार के व्यूह रचे जाते थे:-
    - क्रौंच व्यूह
    - मकर व्यूह
    - कूर्म व्यूह
    - त्रिशूल व्यूह
    - चक्र व्यूह
    - पद्म व्यूह

सूर्यास्त से पूर्व

अर्जुन रोते हुए चिल्लाया 'तुमने मेरे पुत्र का वध होने दिया।'

उसने अभिमन्यु को अकेला छोड़ देने के लिए युधिष्ठिर को दोषी ठहराया। साथ ही कृष्ण पर ये दोषारोपण किया कि वे जानबूझ कर उसका रथ युद्धक्षेत्र के सुदूर छोर पर ले गए।

कृष्ण ने प्रतिवाद नहीं किया। अभिमन्यु वध का अपेक्षित प्रभाव पड़ा। अर्जुन क्रोध से तमतमा गया और उसे ये स्वीकार करना पड़ा कि रणभूमि में द्रोण उसके गुरु नहीं बल्कि प्रतिद्वंद्वी थे।
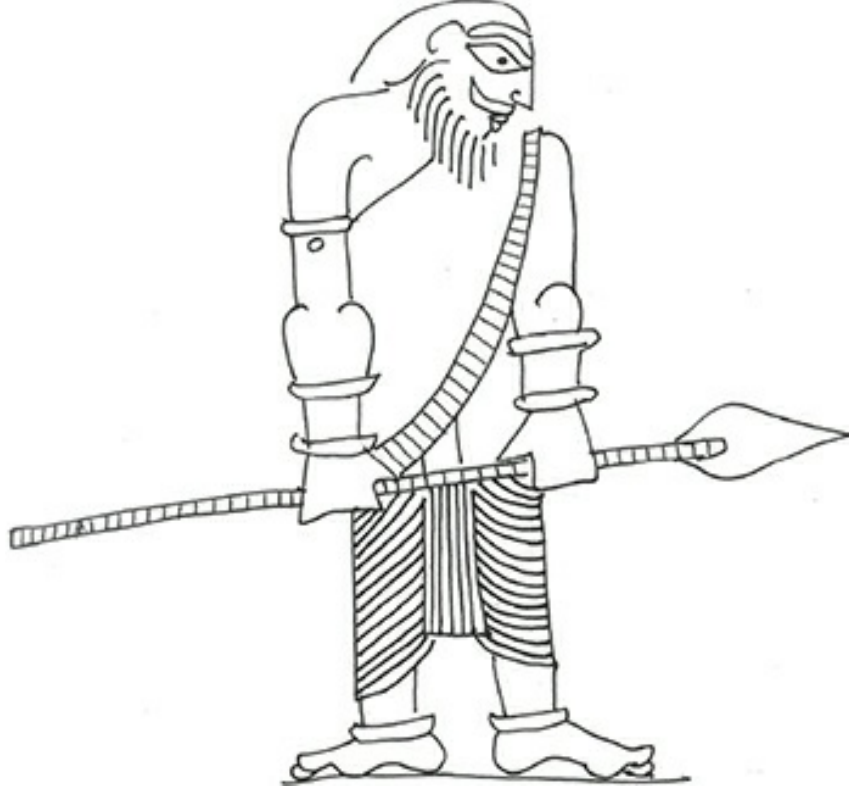
युधिष्ठिर ने अर्जुन को बताया कि जब वे अपने भतीजे को बचाने गए तो जयद्रथ कैसे उसका रास्ता रोके खड़ा रहा। इस पर अर्जुन ने अपना सारा गुस्सा जयद्रथ के विरुद्ध निकाला, 'मैं ये प्रण करता हूं कि कल यदि सूर्यास्त से पूर्व मैंने जयद्रथ का वध न किया तो मैं आत्मदाह कर लूंगा।'

द्रोण ने जब अर्जुन के प्रण के बारे में सुना तो वो प्रसन्न हो गए, 'हमें तो अब जयद्रथ को सिर्फ सूर्यास्त तक सुरक्षित रखना है और अर्जुन स्वयं खेत हो जाएगा।'

युद्ध के चौदहवें दिन समूची कौरव सेना को अर्जुन और जयद्रथ के बीच में तैनात किया गया था। उनका एकमात्र लक्ष्य कौरवों के परिवार के दामाद को सूर्यास्त होने तक जिंदा रखना था।

अर्जुन ने बड़ी कोशिश की मगर वो जयद्रथ का पता नहीं लगा पाया। अर्जुन ने भीषण युद्ध किया। उसने सैकड़ों बाण दाग कर अपने तथा जयद्रथ के बीच खड़े रथों, ध्वज दंडों, सैनिकों के हथियारों को धूल चटा दी। लेकिन वे रात्रि के आगमन तक अर्जुन को आगे बढ़ने से रोकने के लिए टिड्डी दलों के समान मैदान पर छाते रहे। अर्जुन भी शेर के समान अपने शिकार के आखेट

के लिए डटा रहा। कौरव भी जंगली हाथियों के समान झुंड बनाकर उसका रास्ता रोकने को डटे रहे।

अंततः अर्जुन के लिए अपने रथ में जुते घोड़ों के बुरी तरह हांफ जाने से ऐसी नौबत आ गई कि जयद्रथ का पीछा करना उसके बस का नहीं रहा। ऐसे में अर्जुन ने अपने घातक तीरों की बौछार से शत्रु को पास नहीं फटकने दिया। उसी बीच कृष्ण ने रथ रोक कर घोड़ों की जीन ढीली कर दी। कृष्ण ने कहा कि घोड़े प्यासे हैं। अर्जुन ने क्षण भर सोचा और फिर चारों ओर उमड़ रहे शत्रुओं की तरफ से घूमकर धरती में बाण मारा जिससे जल की मोटी धार फूट पड़ी। और अर्जुन ने तुरंत मोर्चा संभाल लिया। शत्रुओं को दूर रखते हुए उसने अश्वों को ये पानी पीकर तरोताजा हो जाने का पूरा अवसर प्रदान किया। शीघ्र ही चारों श्वेत अश्व जयद्रथ का पीछे करने को फिर तैयार हो गए।
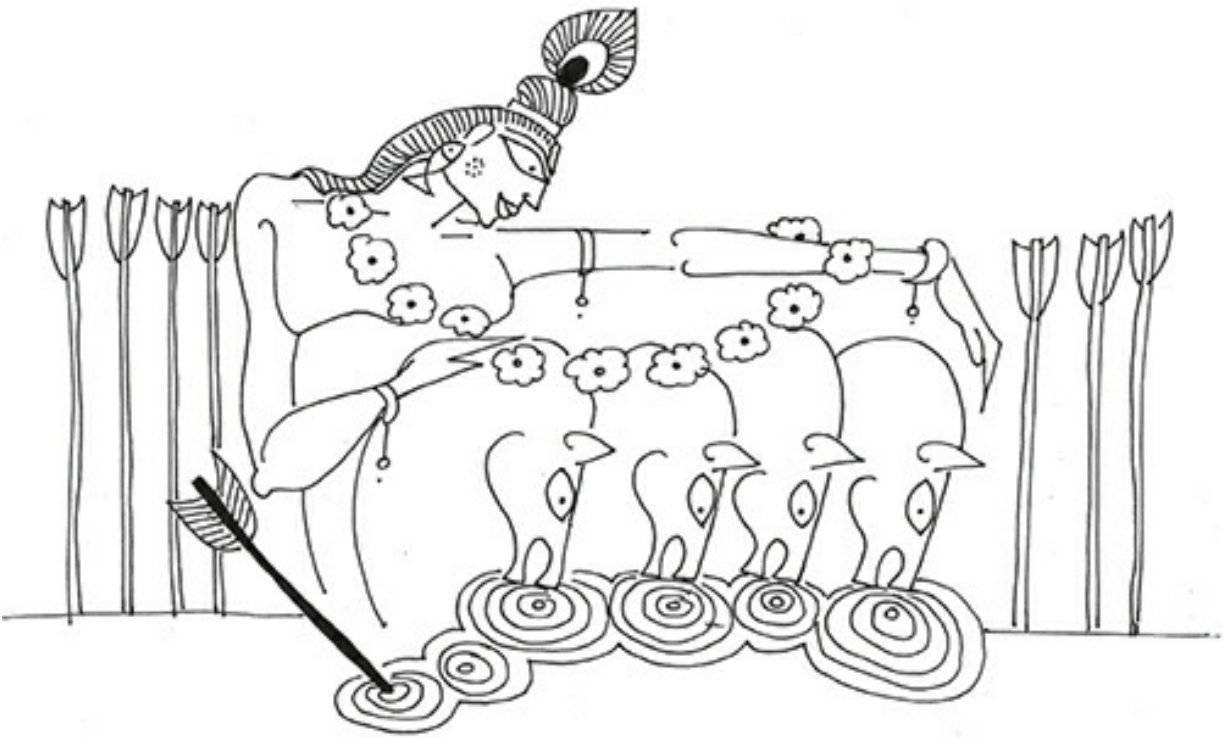
अर्जुन की नजर अचानक भूरिश्रवा पर पड़ी, जो यादव सात्यकी की गरदन पृथ्वी से लगाकर उसे दबोचे बैठा था। उसके दूसरे हाथ में सात्यकी की गरदन उड़ाने को तैयार तलवार थमी थी। दोनों के बीच प्रतिद्वंद्विता सबको पता थी। उनमें शत्रुता दरअसल सात्यकी के पितामह सिनी द्वारा भूरिश्रवा के पितामह सोमदत्त को हराए जाने से आरंभ हुई थी। इसका अंत भूरिश्रवा द्वारा सात्यकी की हत्या करके प्रतिशोध पूरा कर लेने पर ही होता। लेकिन भूरिश्रवा ने जब सात्यकी पर आक्रमण किया तो वो क्लांत एवं निहत्था था। जयद्रथ को ढूंढ़ पाने में विफल रहने से झल्लाए हुए अर्जुन ने आव देखा न ताव सात्यकी को बचाने के लिए बाण छोड़ दिया। बाण से भूरिश्रवा का तलवार थामे ऊपर उठा बाजू कटकर दूर जा गिरा। भूरिश्रवा ने नियम तोड़े जाने का शोर मचा दिया क्योंकि दो योद्धाओं के द्वंद्व के दौरान किसी तीसरे का दखल देना युद्ध नियम का उल्लंघन था। भूरिश्रवा अभी अर्जुन पर अपना गुस्सा उतार ही रहा था कि सात्यकी अपनी हिम्मत बटोर कर

उठ खड़ा हुआ। अपनी जान बचाने के फेर में सात्यकी ने ये भी ध्यान नहीं किया कि उसका शत्रु दरअसल उसके रक्षक से बात कर रहा है और उसने तलवार उठाकर टुंडे और अपनी ओर से बेपरवाह भूरिश्रवा का सिर एक ही वार में उसके धड़ से अलग कर दिया। ये देख कर वहां लड़ रहे क्षत्रियों ने जमा होकर अर्जुन और सात्यकी की इस कायरता के लिए निंदा की। लेकिन अब तक खासकर अभिमन्यु के वध के बाद अर्जुन ने युद्ध के नियमों को ताक पर रख दिया था।

सूर्य इधर पश्चिमी क्षितिज की ओर बढ़ रहा था और उधर जयद्रथ की खोज जोर-शोर से चल रही थी। अचानक आकाश में संध्या की लाली छा गई। और सूर्य एकदम से छिप गया। ये देखकर द्रोण ने घोषणा की, 'सूर्यास्त हो गया।' ये सुनकर तमाम कौरव योद्धा प्रसन्नता प्रकट करने लगे। वे अपनी मुहिम में सफल रहे। जयद्रथ सुरक्षित था।

अर्जुन भी आश्चर्य में पड़ गया, 'ये तो संध्या काल हो गया? हे कृष्ण, मैं विफल हो गया। चिता सजाओ, जिसमें मुझे आत्मदाह करना होगा।' ये सुनकर कृष्ण ने उसके कान में फुसफुसा कर कहा, 'सूर्य तो अभी आकाश में जगमगा ही रहा है। मैंने उसके आगे बस अपनी हथेली का परदा कर दिया है, ताकि सब सूर्यास्त होने के भ्रम में पड़ जाएं। जयद्रथ की खिलखिलाहट ध्यान से सुनो और अंधेरे में शब्दभेदी बाण चलाकर उसका वध कर दो। ऐसा तीर तुम ही चला सकते हो। उसके बाद मैं सूर्य को फिर उजागर कर दूंगा।'

ये सूचना पाकर फिर से उत्साहित अर्जुन उठकर खड़ा हुआ और युद्ध भूमि में गूंज रहे कौरवों के खुशी मनाने के शोर के बीच उसने अपने कानों पर जोर डाला। फिर अंततः अंधेरे में उसके कानों में जयद्रथ की हंसी पिघले सीसे सी पड़ी और उसने गांडीव पर शरसंधान करके उसे आवाज की दिशा में छोड़ दिया। और तीर ठीक निशाने पर जा धंसा। जयद्रथ की चीख सुनकर द्रोण द्वारा सूर्यास्त के बाद भी लड़ाई करने को अधर्म बताकर शोर मचाने के पूर्व ही कृष्ण ने अपनी हथेली हटाकर सूर्य को उजागर कर दिया। उसके प्रकाश से धरती फिर से जगमगा उठी।

उधर जयद्रथ के पिता वृद्धक्षत्र बहुत समय पहले ही साधु बन गए थे, मगर अपने पुत्र की रक्षा का वरदान उन्होंने देवताओं से प्राप्त किया हुआ था। वरदान ये था कि जयद्रथ के सिर के पृथ्वी पर गिरने का जो भी व्यक्ति कारण बनेगा उसके अपने सिर के हजारों टुकड़े हो जाएंगे। इसके प्रकोप से बचने के लिए कृष्ण ने जयद्रथ का शिरोच्छेदन करने वाले तीर द्वारा आकाश में उसका सिर लिए हुए जाकर वृद्धक्षत्र की गोद में टपका देने की व्यवस्था कर दी। अपनी गोद में अपने बेटे का कटा सिर पाकर भौंचक्का वृद्धक्षत्र एकाएक उठ खड़ा हुआ। उसके उठते ही सिर जमीन पर गिर गया। सिर का जमीन पर गिरना था कि वृद्धक्षत्र के सिर के भी चिथड़े उड़ गए। इस प्रकार कृष्ण के दखल से पिता द्वारा अपने पुत्र की रक्षा के लिए प्राप्त वरदान ने उसी की क्षति कर दी।

- अभिमन्यु की मृत्यु के कारण अर्जुन के लिए युद्ध अचानक व्यक्तिगत हो गया था। इस प्रकार भगवद्गीता का उपदेश अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित तो करता है लेकिन उसमें निहित विवेक-संयम-सत्य आदि का पालन युद्ध के दिन बीतने के साथ ही फीका पड़ता जाता है। अर्जुन के अपने भय और मोह का गुलाम बने रहने से कृष्ण उद्विग्न होते हैं। व्यास ने शायद इसके माध्यम से जताया है कि भगवान के उपदेश से भी कैसे अपनी सोच में स्थायी परिवर्तन लाना दुष्कर होता है।
- भूरिश्रवा द्वारा सात्यकी के सिर पर लात का प्रहार इसलिए किया गया क्योंकि उसके पितामह सोमदत्त के साथ भी सात्यकी के पितामह सिनी द्वारा ऐसा ही सलूक किया गया था। इस प्रकार योद्धाओं को कुरुक्षेत्र आकर युद्ध के लिए प्रेरित करने वाले अनेक कारण थे। कौरवों-पांडवों की शत्रुता तो बहुधा बस बहाना थी।
- महागाथा के इंडोनेशियाई संस्करण के अनुसार युद्ध में सात्यकी के हाथों मारा गया भूरिश्रवा दरअसल शल्य का पुत्र था। वो अविनयी और उद्दंड व्यक्ति था, उसे ऐसा होने का शाप उसके सगे नाना ने दिया था, जिनसे शल्य को घृणा थी और उसने, उनकी हत्या कर दी।
- द्रोण पर्व में यह भी प्रसंग है कि युद्ध के दौरान कभी सात्यकी और दुर्योधन का आमना-सामना होता है तो वे तत्कालीन हालात पर गले मिलकर रोने लगे। बचपन में वे पक्के दोस्त थे और अब परिस्थितिवश एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ रहे थे।
- महागाथा में अर्जुन द्वारा निश्चित काम में विफल रहने पर अनेक बार आत्मदाह की प्रतिज्ञा करने का उल्लेख है। वो ऐसी प्रतिज्ञा ब्राह्मण की मरती संतानों को बचाने का वचन देते समय, हनुमान के सामने नदी पर बाणों का पुल बनाने का दावा करने, और अंततः रणभूमि में करता है जब वो सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ के वध का संकल्प करता है। क्या ये अर्जुन का साहस और उसकी नाटकीय प्रवृत्ति दिखाने की व्यास शैली थी।

सूर्यास्त के उपरांत

युद्ध के चौदहवें दिन सूर्यास्त के ठीक पहले जयद्रथ वध के उपरांत द्रोण इतने अधिक क्रोधित थे कि उन्होंने अपनी सेना को सूर्यास्त के बाद भी लड़ाई जारी रखने का आदेश दिया। दुर्योधन और कर्ण ने द्रोण को याद दिलाया कि ये युद्ध के नियमों का उल्लंघन था। द्रोण ने उत्तर दिया, ‘जब

कृष्ण, दिन को रात में बदल सकते हैं तो हम रात को ही दिन क्यों नहीं मान सकते।'

और कौरवों ने इसीलिए सूर्यास्त के बाद रणभूमि में रात का अंधेरा छाने पर भी हथियार नहीं टिकाए। योद्धाओं को रात के अंधेरे में शत्रु वाहिनियां दिखाने के लिए दुर्योधन ने कुछ सिपाहियों को हथियार छोड़कर दीपदान थाम लेने का आदेश दिया।

शीघ्र ही कौरव सेना की लंबी कतारों के समानांतर दीपदानों की लकीरें दिखने लगीं। दीपों की रोशनी पड़ने से कर्ण और द्रोण और दुर्योधन तथा कृपा के सुनहरे कवच तथा हथियार सुनहले और चमचमाता प्रतिबिंब बिखेरने लगे। ऐसा लग रहा था कि मानो सितारे जमीन पर उतर आए हों और रौद्र मुद्रा में पांडवों की ओर उन्हें नष्ट करने लिए बढ़ रहे हों। पांडवों की थकी हुई सेना इस आक्रमण से ठगी रह गई और उसके अनके योद्धा खेत रहे। फिर अर्जुन ने भी अपनी सेना के लिए दीपदान मंगाए ताकि वे भी अंधेरे को चीर कर वार का जवाब दे सकें। हरेक हाथी की पीठ पर सात दीपदान, हरेक घोड़े की पीठ पर दो दीपदान और हरेक रथ पर दस दीपदान रखे गए। रोशनी का प्रबंध करने के बाद पांडवों ने करारा जवाब दिया और अंधेरे को अपने पर हावी नहीं होने दिया।

इसी रात में द्रोण ने अपने शत्रु और पांडवों के श्वसुर द्रुपद और मत्स्यराज विराट को ठिकाने लगा दिया। विराट ने ही अज्ञातवास के दौरान पांडवों को शरण दी थी।

द्रोण को अंधेरे का लाभ उठाते देखकर कृष्ण ने भीम से कहा, 'राक्षस रानी हिडिंबी से उत्पन्न अपने पुत्र घटोत्कच को बुलाओ। रात में राक्षस अभेद्य होता है। पांडव सेना थक कर चूर-चूर है, इसलिए घटोत्कच और उसके साथियों को लड़ने दो।'

भीम ने कृष्ण के सुझाव का पालन करके घटोत्कच का स्मरण किया और वो आ धमका। रात में वो ताड़ की तरह लंबा और डरावना लग रहा था। इस का कारण था उसके लंबे, तेज और उस्तरे की धार जैसे दांत और शिकंजे जैसे नाखून। उसके आक्रमण करते ही कौरव सेना के पांव उखड़ने लगे। पांडवों द्वारा इस दांव का पूर्वानुमान करके द्रोण ने दूसरे राक्षस अलम्वुश को बुला भेजा था। पर्वत समान ऊंचे अलम्वुश ने घटोत्कच को द्वंद्व युद्ध की चुनौती दी। वे एक-दूसरे पर जंगली हाथी के समान झपटे। उनकी टकराहट से इतनी ऊर्जा निकली कि चिंगारियां फूटने लगीं। दोनों सेनाएं दीपों की भड़भड़ाती लौ की रोशनी में दो दानवों को दो मानव सेनाओं के लिए लड़ते देखने लगीं। भीषण द्वंद्व के बाद घटोत्कच ने अलम्वुश का गला घोंट कर उसे ढेर कर दिया।

घबराए दुर्योधन ने तब कर्ण से गुहार लगाई, 'घटोत्कच ने हमारी सेना को भयभीत कर दिया है। उसे मारना जरूरी है। मैं तुमसे इंद्र द्वारा तुम्हें दिए गए भाले के प्रयोग का अनुरोध करूंगा। हमारे पास और कोई चारा नहीं है।'

कर्ण ने तो हालांकि उस दिव्य भाले से अर्जुन का काम तमाम करने का निश्चय कर रखा था लेकिन दुर्योधन के गिड़गिड़ाने पर उसने वो भाला घटोत्कच की ओर उछाल दिया। भाला छाती में गड़ने पर घटोत्कच ने भीषण चीत्कार किया। उसका चीत्कार इतनी जोर से गूंजा कि युद्धभूमि में गज और अश्व भी सहम कर अपनी जगह पे ठहर गए। उसके बाद वो लड़खड़ाता हुआ, जंगल में धरती पर गिरने से पहले कटे पेड़ के समान आगे-पीछे झूमने लगा। वो आखिरी बार अपने पिता के दर्शन करके ही प्राण त्यागना चाहता था।

तभी कृष्ण चिल्लाए, 'पांडवों की ओर मत गिरना। अपना आकार और बढ़ाकर कौरव सेना पर गिरो। अपने पिता के अधिक से अधिक शत्रुओं का नाश कर दो। इस प्रकार मृत्यु के बाद भी अपने

पिता की सेवा करो।' घटोत्कच ने सकारात्मक रूप में सिर हिलाया। उसने अपना आकार इतना बढ़ा लिया कि उसका सिर आकाश से जा लगा। उसके बाद वो कौरव सेना पर ढेर हो गया। उसके नीचे दब कर सैकड़ों सैनिक, अश्व, गज आदि मारे गए। अपने पुत्र को गिरते देखकर भीम सिसकने लगा। भीम को रोते देखकर दुर्योधन प्रसन्न हो गया। लेकिन घटोत्कच द्वारा अपनी मृत्यु के साथ ही कौरव सेना को भारी क्षति पहुंचाने की सूचना पाकर उसकी खुशी काफूर हो गई।

इस घटना से सिर्फ कृष्ण को ही प्रसन्नता हुई। इंद्र का दिव्य भाला काम आ जाने के बाद अब अर्जुन को कर्ण से कोई खतरा नहीं बचा था। और घटोत्कच वध का भीम पर वही प्रभाव होगा तो अर्जुन पर अभिमन्यु वध के बाद हुआ था-अब युद्ध व्यक्तिगत रूप ले चुका था।

युद्ध रातभर चलता रहा। अचानक अर्जुन को ये भान हुआ कि उसके आधे सैनिक सो चुके अथवा इतने उनींदे थे कि उन्होंने संघर्ष बंद कर अपने को मृत्यु के हवाले किया हुआ था, अथवा थकान के मारे दोस्त-दुश्मन का अंतर भूलकर अपने ही साथियों को मारने लगे थे। ऐसे में अर्जुन ने अपनी सारी सेना को द्रोण पर चढ़ाई का आदेश दिया। ये देख द्रोण युद्धभूमि से भाग खड़े हुए। उनके भागते ही युद्ध रुक गया। अपने-अपने शिविरों की ओर लौटने में भी असमर्थ पांडवों के सैनिक जहां थे वहीं पड़ कर सो गए। उनके घोड़े, हाथी भी टूटे रथों के मलबे और मुर्दा सैनिकों के साथ युद्धभूमि में ही लोट गए।

- पांडवों और कौरवों, दोनों ही पक्षों के लिए राक्षस लड़ने आए। इस प्रकार अपनी शक्ति के कारण डरावने, तथा अपने जंगलीपन के लिए घृणा के पात्र माने जाने वाले राक्षसों को भी जरूरत पड़ने पर अपना सहयोगी बना लिया गया।
- यह आरोप कि कृष्ण अवसरवादी थे उस प्रसंग से पुष्ट होता है जिसमें वे घटोत्कच को अपना अधिकतम विशाल आकार पाने के बाद ही मर कर शत्रु सेना को अधिक से अधिक हानि करने का निर्देश देते हैं।
- रात्रि युद्ध जिसमें थके सैनिक एक हाथ में दीपदान और दूसरे में हथियार लेकर लड़ते हैं दरअसल मनुष्य के असीम क्रोध के बखान के लिए अलंकार है। क्रोध में सारे नियम टूटते हैं, सारी सज्जनता काफूर हो जाती है और प्रतिशोध का दानव हावी हो जाता है।

गुरु का शिरोच्छेद

अब सभी की नजरें द्रोण पर थीं। पांडव असमंजस में थे कि उन जैसे महारथी को कैसे हराया जाए। कृष्ण ने उपाय सुझाया, 'उनका प्रेरणास्रोत उनके पुत्र अश्वत्थामा के प्रति उनका व्यामोह है। शायद हम सब उनके प्रेरणास्रोत को खत्म करके अथवा उन्हें वैसा हो जाने का विश्वास दिलाकर ही सफल हो सकते हैं। हमें उन्हें बताना चाहिए कि अश्वत्थामा का वध हो गया।'

द्रोण को घेरे सभी पांडव ये बात आपस में दोहराने लगे, 'अश्वत्थामा की मृत्यु हो गई।' इससे विचलित द्रोण ने उनकी बात मानने से इन्कार कर दिया। वे घबरा कर युधिष्ठिर की ओर मुड़े, जो संसार में सबसे अधिक सत्यवादी समझे जाते थे, और पूछा, 'क्या ये सत्य है?'

युधिष्ठिर ने कृष्ण से पूछा। कृष्ण ने सहानुभूतिपूर्ण मुस्कान फेंकी, क्योंकि वे युधिष्ठिर के मन में चल रहे द्वंद्व को बखूबी भांप रहे थेः क्या सत्य इतना महत्वपूर्ण था? यदि किसी झूठ से युद्ध समाप्त हो सकता हो तो? सत्य बोलने की उनकी उत्कंठा का स्रोत क्या था? पुण्य करते दिखना

जरूरी है या पुण्य करना? भारी मन से युधिष्ठिर ने अपने जीवन का प्रथम झूठ बोलने, जरा सा सरासर झूठ, का निर्णय किया। वो बोले, 'हां, अश्वत्थामा मारा गया' और फिर दोबारा कुछ सोचकर बड़बड़ाए, 'शायद वो हाथी था अथवा शायद वो मनुष्य था।' लेकिन युद्ध के कोलाहल में बुरी तरह टूट चुका पिता बड़बड़ाहट नहीं सुन पाया।

हां, अश्वत्थामा नामक हाथी मारा गया था। उसे कृष्ण के इशारे पर भीम ने मारा था। युधिष्ठिर को ये तथ्य भलीभांति पता था मगर फिर भी उसने अपने गुरु से कहा कि उसके योद्धाओं द्वारा वर्णित अश्वत्थामा पता नहीं मनुष्य था अथवा पशु।

कृष्ण के इस दांव का अनुकूल प्रभाव पड़ा। विमोहित द्रोण की लड़ने की इच्छा मर गई। उन्हें जीवन से ही वैराग्य हो गया। उन्होंने अपना रथ रोका, उससे नीचे उतरे, अपने हथियार धरती पर टिकाए और ध्यानस्थ हो, मृत्यु के वरण के लिए समाधि लगा ली।

ये देखकर कृष्ण चिल्लाए, 'उन्हें मारो, उन्हें मारो।' लेकिन द्रोण गुरु थे, ब्राह्मण, जिनका वध आर्यावर्त का सबसे गंभीर अपराध था। सैनिक ठिठक गए। कृष्ण चिल्लाए, 'वे तो ब्राह्मण के पुत्र मात्रा थे, लेकिन वे क्षत्रिय के समान जिए, संपत्ति, सत्ता और प्रतिशोध के लिए। उन्हें क्षत्रिय के समान रणभूमि में मृत्यु प्राप्त होनी चाहिए।'

कृष्ण का निर्देश सुनते ही पांडवों के सेनापति द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न ने तलवार उठाकर एक ही वार में द्रोण की गरदन को उनके धड़ से अलग कर दिया।

अश्वत्थामा ने जब अपने निहत्थे पिता की गरदन कटते देखी तो क्रोध में पागल होकर उसने नारायण अस्त्र दाग दिया। ये भयानक प्रक्षपास्त्र था, जो आग उगलने लगा तथा आकाश पर भयानक विषैले सर्प छा गए। युधिष्ठिर आशंकित स्वर में बोले, 'ये हम सबको नष्ट कर देगा?' इस पर कृष्ण ने ढांढ़स बंधाया, 'भयभीत मत होओ। अपने शस्त्र त्याग कर रथ से नीचे उतर जाओ। इससे लड़ो मत। इसे सम्मानपूर्वक प्रणाम करो। ये तुम्हारा अनिष्ट नहीं करेगा।'

पांडवों के सभी सैनिकों ने कृष्ण का कहा माना, मगर भीम क्रोधित होकर द्रोण पुत्र की ओर अपशब्द कहता, गदा घुमाता अपने रथ पर दौड़ पड़ा। नारायण अस्त्र ने उसे निगलने के लिए आग उगलती अपनी लपलपाती कुंडली में लपेट लिया। काले फन वाले नाग अवश्य ही उसे खत्म कर देते मगर कृष्ण और अर्जुन ने दौड़कर उसे पकड़ा। उसकी गदा छीन कर उसे दौड़ते रथ से नीचे धकेल दिया। रोके जाने पर भीम पहले तो गुस्से में लाल-पीला हुआ, लेकिन फिर उसने देखा कि नारायण अस्त्र अचानक प्रकार सिमटने लगा। वो किसी भी निहत्थे और शांत क्षत्रिय को नष्ट नहीं कर सकता था।

अपना घातक प्रक्षेपास्त्र निरर्थक हो जाने पर अश्वत्थामा फिर आपे से बाहर हो गया। दुर्योधन ने मौके का लाभ उठाकर उसे उकसाया, 'दोबारा उसे ही दाग दो।' वो उस अस्त्र की शक्ति से अभिभूत हो गया था, 'अपने पिता के वध का बदला ले लो।'

अश्वत्थामा ने बुझे स्वर में जवाब दिया, 'मैं ऐसा नहीं कर सकता। नारायण अस्त्र का प्रयोग केवल एक ही बार किया जा सकता है। दोबारा दागने पर ये मेरा ही अनिष्ट कर डालेगा।'

- वैदिक भारत में वर्ण धर्म और आश्रम धर्म का पालन आवश्यक था। वर्ण धर्म का अर्थ पिता के धंधे को अपनाना था। आश्रम धर्म का अर्थ अपनी आयु के अनुसार जीवन आचरण अपनाना था। द्रोण ब्राह्मण के बजाए क्षत्रियोचित जीवन व्यतीत करके वर्ण धर्म तोड़ते हैं। भीष्म ब्रह्मचर्य अपना कर और अपने पिता को दोबारा गृहस्थाश्रम अपनाने का अवसर प्रदान करके आश्रम धर्म का उल्लंघन करते हैं। इस प्रकार तमाम पुण्य कार्यों के बावजूद कौरव सेना के ये दोनों सेनापति भी दुर्योधन के समान ही धर्म विरुद्ध आचरण के दोषी थे।
- युधिष्ठिर द्वारा अपने जीवन में एकमात्र असत्य बोलने से पहले तक उनका रथ कभी भी पृथ्वी को नहीं छूता था। असत्य ये था कि मारा गया अश्वत्थामा नर था अथवा पशु ये उन्हें नहीं पता। युधिष्ठिर अपनी इस हरकत से मनुष्य बन गए। एक असत्य ने उन्हें सचमुच पृथ्वी पर ला पटका।
- द्रोण चूंकि ब्राह्मण हैं, इसलिए उनका वध करके धृष्टद्युम्न ब्रह्महत्या के पाप का भागी बनता है। ब्राह्मण की हत्या हिंदू जगत में सबसे घातक पाप माना जाता था। ऐसा पाप करने वाले व्यक्ति को समाज बाहर कर दिया जाता था। पौराणिक उपाख्यान में ऐसा करने का अधिकार सिर्फ भगवान शिव को है। महागाथा धृष्टद्युम्न की शिव से बराबरी करती है। इस घटना की तीव्रता को घटाकर प्रस्तुत करने के प्रयास किए गए हैं। ऐसा कहा जाता है कि धृष्ट्द्युम्न की तलवार से द्रोण का सिर कटने से पहले ही उनके प्राण निकल चुके थे। इसलिए वध तो हुआ ही नहीं। बस निर्जीव शरीर का सिर काट लिया गया था।

भाइयों के बीच रण

द्रोण का वध हो चुका था। कौरवों का नेतृत्व अब कौन करेगा? संजय द्वारा पंद्रहवें दिन के युद्ध का वर्णन समाप्त होने पर धृतराष्ट ने गांधारी से कहा, 'वो तो सारथि का पुत्र ही होगा।'

कुंती उन दोनों के पीछे बैठी थीं। और उन्होंने भी ये बात सुनी। उन्हें ये बात पच नहीं रही थी कि उनके पुत्र अपने ही बड़े भाई से युद्ध करेंगे। उन्हें ऐसा होने से रोकना पड़ेगा। छोटे पांच भाई भले ये बात न समझें, मगर बड़ा भाई जरूर समझेगा–वो अधिक समझदार और शायद उदार भी था। कुंती आधी रात में हस्तिनापुरी के राजप्रासाद से निकलकर चुपचाप रणभूमि की ओर चल

पड़ीं। वो कुरुक्षेत्र में कौरवों के युद्ध शिविर में पौ फटने से पहले ही पहुंच गईं। उन्होंने देखा कि युद्ध की तैयारी के लिए कर्ण ध्यानमुद्रा में बैठा है। वो अपने दिव्य कवच और कुंडलों के बिना अजीब सा दिख रहा था। उसके कानों से अब तक रक्त बह रहा था और सीने पर भी घाव था। ये उनका पुत्र था, उनकी पहली संतान, वो, जिसे पैदा होते ही भाग्य के सहारे अनाथ छोड़ दिया गया था। स्नेह और उद्वेग से थरथराती आवाज में उन्होंने पहली बार उसे संबोधित किया। उन्होंने कहा, 'पुत्र।'
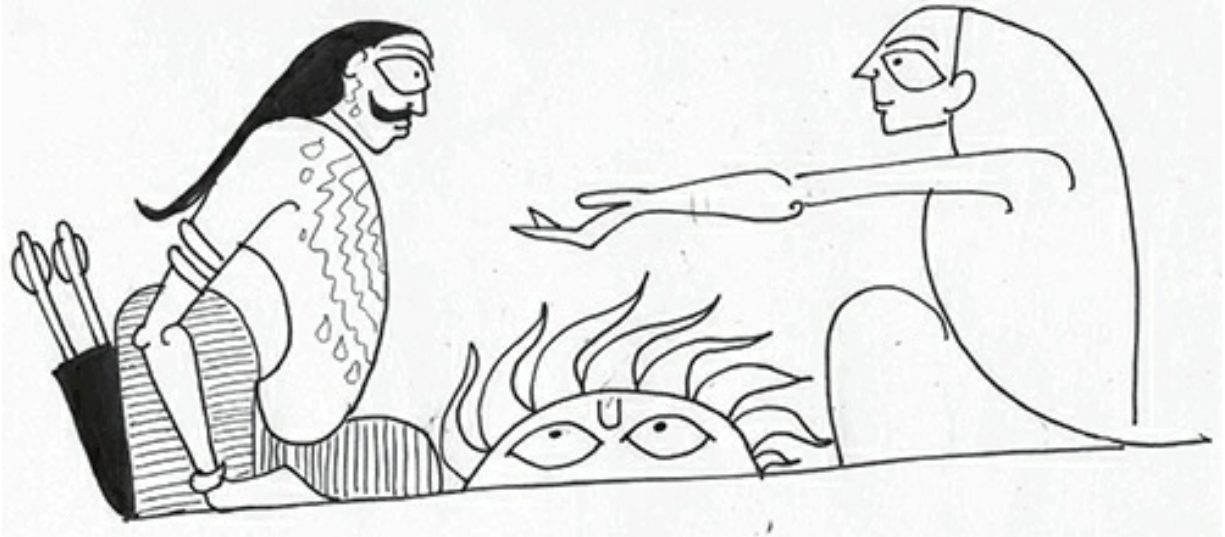
कर्ण ने अपना सिर उठाया और कुंती को पहचाना। माता और पुत्र ने एक-दूसरे को भर आंख देखा। जीवन भर जमा रही भावनाएं बह निकलीं। कर्ण दंडवत हुआ। उसने कहा, 'सारथि पुत्र का पांडवों की माता को प्रणाम।' उसकी आवाज में व्यंग्य का पुट जहरीले नश्तर जैसा था।

आंसुओं से लबालब आंखें पोंछते हुए कुंती ने कहा, 'मुझे क्षमा कर दो।'

कर्ण ने भी अपने छिछोरेपन के लिए क्षमा मांगते हुए कहा, 'मुझे भी क्षमा करें।' वो आखिरकार स्वयं ही बच्ची थीं जब उन्होंने कर्ण को पैदा किया था। 'बताइए मैं आपके लिए क्या करूं? पौ लगभग फटने को ही है। दिन के इस प्रहर में मुझसे की गई कामना मैं हमेशा पूरी करता हूं।' ये कहकर वो चुप हो गया। उसे ये पता चल ही गया कि कुंती ने उसके जीवन का इतना लंबा काल बीतने के बाद उससे मिलने और पुत्र के रूप में कबूलने का कष्ट क्यों किया? शायद आप यहां उसी के लिए आई थीं। वरदान मांगने के लिए? आपको बस यही चाहिए, ऐसा ही है न? आप यहां अपने कुजात पहले बच्चे को स्नेह करने के लिए नहीं, बल्कि सारथि के दानवीर पुत्र से दान मांगने आई हैं।'

सत्य उद्घाटित हो रहा था। कुंती ने लज्जित भाव से हां में सिर हिलाया। उन्होंने कहा, 'मैं नहीं चाहती कि भाई-भाई आपस में ही लड़ें। कौरवों को छोड़कर अपने परिवार में अपना आधिकारिक स्थान ग्रहण करो और शांति स्थापित होने दो।'

कर्ण ने अपने कंधे पीछे को झटके, गहरा सांस भरा और अपने शब्दों पर जोर देते हुए कहा, 'किसके लिए, शांति? उनके लिए अथवा मेरे लिए? मैं दुर्योधन का साथ कभी नहीं छोड़ूंगा। उसके

अलावा और कुछ भी मांग लीजिए।'

'मैं अपने पुत्रों की मृत्यु नहीं चाहती।'

'आप किन की बात कर रही हैं: शादी के बाद पैदा हुए पुत्रों अथवा उससे पहले पैदा होने वाले पुत्र की?' कुंती चिल्लाना चाहती थीं 'सभी की।' लेकिन हताश कर्ण बोलता चला गया, 'संसार आपको पांच पुत्रों की माता के रूप में जानता है। मैं आपको वचन देता हूं कि युद्ध समाप्त होने पर भी आपके पांच ही पुत्र होंगे, जिनमें से एक महान धनुर्धर होगा, या तो अर्जुन अथवा मैं।' कर्ण ने कुंती की ओर से मुंह फेर लिया। वो नहीं चाहता था कि कुंती उसका दर्द देखें। युद्ध शुरू होने की वेला आ गई थी। पौ फट गई। शंख ध्वनि गूंज रही थी। कुंती चुपचाप वहां से निकल गईं। कर्ण को आशीर्वाद देने की इच्छा मन में उठी मगर उन्होंने, उसे मन मार कर दबा लिया। वो पांडु पुत्रों के विरुद्ध उसे विजय प्राप्ति का आशीर्वाद देतीं भी तो कैसे?

फिर कर्ण के पास दुर्योधन आया और उसने जय-जयकार के बीच उसे, कौरव सेना का सेनापति घोषित कर दिया। कर्ण का महत्व जताने के लिए दुर्योधन ने शल्य को कर्ण का सारथि तैनात किया। वो प्रसन्न होकर अपने प्रिय मित्र से बोला, 'तुम्हें सारी जिंदगी पृथ्वी के सब राजा सारथिपुत्र पुकारते रहे, जिसका काम क्षत्रियों और राजाओं की सेवा करना माना जाता है। अब कर्ण तुम क्षत्रिय बन कर किसी राजा को सारथि बना कर युद्धभूमि में जाओ।'

इससे कर्ण प्रसन्न तो हुआ, मगर साथ ही ये भी उसकी समझ में आ गया कि शल्य का सारथि बनना उसके लिए हितकर नहीं होगा। अन्य सारथियों के समान प्रोत्साहक बातें करके उसका मनोबल बढ़ाने के बजाए शल्य, अर्जुन की प्रशंसा और कर्ण की भर्त्सना करते रहे।

कर्ण ने देखा कि अर्जुन के रथ को कृष्ण उसके रथ से दूर ले जा रहे थे ताकि उससे सीधे युद्ध करने से बचा जा सके। इसलिए कर्ण ने अन्य पांडव भाइयों पर निशाना साधना शुरू किया। उसने द्वंद्व में नकुल और सहदेव को हरा दिया। उसके बाद दूसरे द्वंद्व में उसने भीम को भी हरा कर अंत में युधिष्ठिर से भी द्वंद्व करके उन्हें पराजित कर दिया। कर्ण, उनमें से हरेक का वध कर सकता था, लेकिन उसने कुंती को दिए अपने वचन के अनुरूप उन्हें जीवित छोड़ दिया। कुंती के जिस एकमात्र पुत्र का वो वध करना चाहेगा वह अर्जुन था।

कर्ण उन चारों को अपनी गिरफ्त से मुक्त करने से पहले अपने पांडव भाइयों को गले लगा कर बताना चाहता था कि वे उसके छोटे भाई थे और उनकी मां कुंती ही थी। लेकिन कर्ण ने अपने को जब्त कर लिया। इसके बजाए उसने कहा, 'मैं तुम्हें जीवनदान देता हूं।'

कर्ण के शब्दों ने पांडवों के हृदय को जलाकर खाक कर दिया। उन्होंने नहीं सोचा था कि जीवित रहने के लिए वे ऐसे व्यक्ति के ऋणी थे जिससे वो सभी घृणा करते थे और जिसे किसी महत्वाकांक्षी सेवक से अधिक नहीं आंकते थे।

कर्ण से मुठभेड़ के बाद युधिष्ठिर इतने अधिक विचलित हुए कि उनके मन में युद्ध के प्रति वैराग्य का भाव आ गया; वे इतने शिथिल पड़ गए कि नकुल और सहदेव को उन्हें किसी तरह उठाकर वहां से बाहर ले जाना पड़ा। अर्जुन ने दूर से ये देखा और चिंतित होकर कृष्ण से बोला, 'मुझे युद्ध शिविर में वापिस ले चलिए। मुझे लगता है कि मेरे बड़े भाई घायल हो गए।'
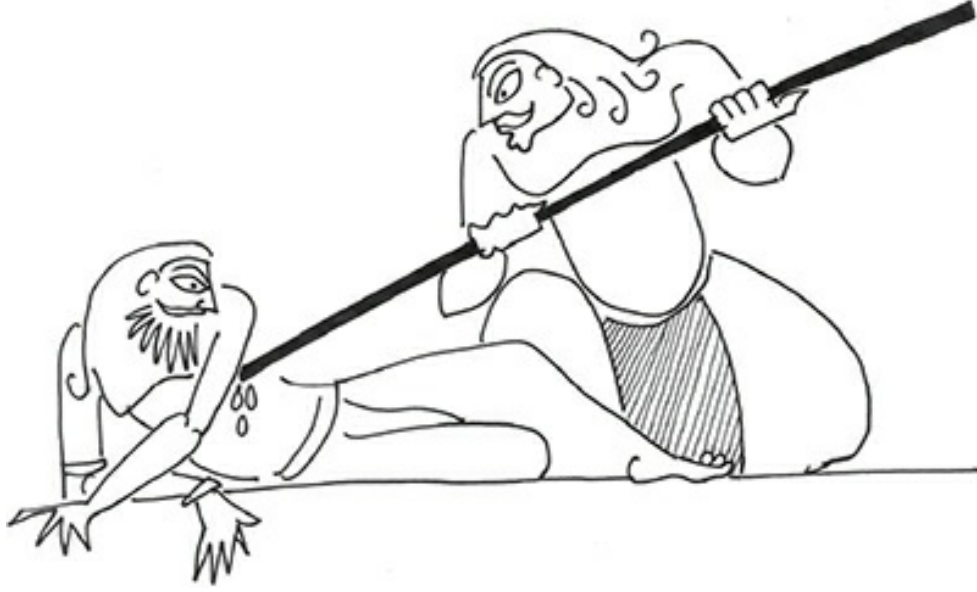
इस पर कृष्ण ने उसे समझाने का प्रयास किया, 'नहीं, उनकी चिंता मत करो। मुझे लगता है कि हमें कर्ण पे ध्यान देना चाहिए। वो, तुम्हारे चार भाइयों से लड़ने के बाद थक गया होगा। देखो, वहां भीम उनकी जगह पर लड़ रहा है। तुम्हें भी अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहिए।'

अर्जुन ने उनकी बात अनसुनी करके कहा, 'नहीं, नहीं, मैं कहता हूं कि मुझे अपने भाई को देखने जाना चाहिए।' इस पर कृष्ण ने रथ को घुमाया और युधिष्ठिर के शिविर की ओर हांक दिया।

अर्जुन को देखकर मानो युधिष्ठिर की जान में जान लौट आई। 'तुम सूर्यास्त से पहले ही जीवित लौट आए हो! कर्ण का वध हो चुका होगा? मुझे बताओ कि तुमने उस घृणित रथचालक पुत्र को कैसे मारा? मुझे बताओ कि तुमने दुर्योधन के उस विषैले मित्र का वध कैसे किया?'

अर्जुन ने उत्तर दिया, 'नहीं कर्ण का वध अभी नहीं हुआ। मैं तो यहां आपकी कुशलक्षेम लेने के लिए आया हूं।'

ये सुनकर युधिष्ठिर अपना आपा खो बैठे, 'तुम कायर। कर्ण से लड़कर उसका वध करने के बजाए तुम, मेरा हालचाल जानने के लिए यहां चले आए? तुम ऐसा, कैसे कर सकते हो? क्या तुम मुझे ये बता रहे हो कि भीम युद्धभमि में कौरवों से अकेला लड़ रहा है और तुम यहां मेरे शिविर में मेरे लिए झूठी चिंता जता रहे हो? मुझे लगता है कि तुम यहां इसलिए आ गए कि तुम्हें उस व्यक्ति का मुकाबला करते हुए डर लगता है। क्योंकि वो, तुमसे शायद बेहतर धनुर्धर है। मुझे लगता है कि अपना दिव्य गांडीव धनुष पास होने, महान कृष्ण के तुम्हारा सारथि होने और महान हनुमान के तुम्हारे रथ पर सवार होने के बावजूद तुम कर्ण से भयभीत हो। मुझे, तुम पर शर्म आ रही है। तुम पर और तुम्हारे गांडीव पर लानत है। अपना धनुष और किसी योग्य व्यक्ति को दे दो ताकि वो कर्ण का वध कर सके।'

युधिष्ठिर द्वारा इतनी सारी लानत-मलामत से अर्जुन का खून खौल गया, 'मुझसे, ऐसे बात करने की आपकी हिम्मत कैसे हुई? आपने मेरे दिव्य धनुष की इतनी अधिक बेइज्जती कैसे की? आपने ये भी सुझाव कैसे दिया कि मेरा धनुष और कोई चलाए?' क्रोध में पगलाए, सांप के समान

फुफकारते हुए अर्जुन ने तलवार उठाई और मारने को उद्धत होकर युधिष्ठिर पर झपटा। इस अप्रिय घटनाक्रम से हतप्रभ नकुल और सहदेव ने दौड़ कर युधिष्ठिर को घेर लिया ताकि अर्जुन के प्रहार से उन्हें बचा सकें। कृष्ण ने भी अर्जुन का हाथ पकड़ कर उसे पीछे खींचा। ये दृश्य देखकर युद्ध शिविर में उपस्थित तमाम लोग स्तब्ध रह गए। इससे पहले उन्होंने कभी भी पांडवों को आपस में इस प्रकार लड़ते हुए नहीं देखा था।

कृष्ण ने पूछा, 'अर्जुन, तुम ये क्या कर रहे हो?' उसके बाद युधिष्ठिर की ओर गरदन घुमाकर पूछा, 'और युधिष्ठिर आप भी क्या कर रहे हो? क्या युद्ध से आपका विवेक लुप्त हो गया है? अपने दुश्मन से लड़ने के बजाए अब आप लोग आपस में ही लड़ रहे हैं? ये हो क्या रहा है?'

कृष्ण ने उसके बाद उन्हें वालक की कथा सुनाई। वालक नामक शिकारी ने कभी वन में सरोवर पर किसी प्राणि को जल पीते देख कर उस पर अपना बाण छोड़ा। तीर दागने के बाद शिकारी ये समझ पाया कि प्राणि दृष्टिहीन था। उसे तीर छोड़ने पर पश्चात्ताप हुआ मगर तब तक तो तीर उस दृष्टिहीन प्राणि की हत्या कर चुका था। पश्चात्ताप की आग में जलता हुआ वालक उस प्राणि की ओर बढ़ा, मगर ये क्या, अचानक आसमान से पुष्प वर्षा होने लगी। देवता भी उसे बधाई देने पधारे। उन्होंने कहा, 'इस दृष्टिहीन ब्राह्मण के लिए तुम पश्चात्ताप तो कर रहे हो, मगर ये तो दानव था जो सारे संसार को नष्ट करने पे उतारू था। इसकी हत्या करके तुमने विश्व का कल्याण किया है।' अपनी बात खत्म करके कृष्ण ने उन्हें समझाया, 'देखा, कभी-कभी हमारे द्वारा कल्पित गलत हरकत भी सही सिद्ध हो जाती है।'

कृष्ण ने इसके बाद पांडव भाइयों को कौशिक की कथा सुनाई। कौशिक ऋषि था। उन्होंने कभी चार लोगों को अपने आश्रम में घुस कर किसी पेड़ के पीछे छिपते हुए देखा। उनके पीछे भयावह आकृति वाला कोई व्यक्ति भी आश्रम में घुस आया। उसने कौशिक से पूछा कि क्या उन्होंने चार लोगों को इधर आते हुए देखा है? हमेशा सत्य बोलने वाले कौशिक ने स्वीकृतिसूचक मुद्रा में सिर हिला कर उस ओर इशारा किया, जहां वे चारों छिपे हुए थे। भयावह आकृति वाला व्यक्ति दरअसल डाकू था और उसने उन चारों को पेड़ के पीछे से पकड़ कर उनकी हत्या कर दी। उनकी हत्या के बाद उसने, उनका माल भी हड़प लिया। अपनी इस गलती के लिए कौशिक को नरक की यातना भुगतनी पड़ी थी। कथा समाप्ति पर कृष्ण ने कहा, 'इससे सिद्ध होता है कि कभी-कभी हम जिस कार्य को सही समझते हैं, वो गलत निकल आता है।'

ये कथा सुनाने का प्रयोजन पांडव भाइयों को शांत करना था। साथ ही उन्हें ये भी समझाना था कि कभी-कभी परिस्थिति के मूल्यांकन में हमारी दृष्टि तथा वास्तविकता में अंतर निकल आता है। तनावपूर्ण परिस्थिति में उच्चारित शब्दों को अर्जुन को यथार्थ नहीं मानना चाहिए। उसका भाई क्रोधित अवश्य था मगर हृदय से वो उसका अथवा उसके धनुष का अपमान नहीं करना चाहता था। व्यक्ति को अपने मित्रों तथा अपने परिवारजनों के प्रति अटूट भरोसा रखना चाहिए तथा एकाध कटु उक्तियों के कारण उस रिश्ते को तोड़ना नहीं चाहिए।

कृष्ण की बात सुनकर अर्जुन शांत हो गया। 'लेकिन मैंने ये संकल्प किया था कि अपने धनुष को अपमानित करने वाले का वध कर दूंगा। मुझे अपना वचन पूरा करना होगा।'

कृष्ण ने सुझाया, 'तुम अपने भाई की भौतिक हत्या तो उसके शरीर को हानि पहुंचा के कर सकते हो, मगर उसे भावनात्मक कष्ट देना भी उसकी हत्या करने के समान ही होगा। तुम दूसरे विकल्प पर अमल क्यों नहीं करते?

अर्जुन ने वही विकल्प अपनाया और युधिष्ठिर को अपनी पत्नी तथा संपत्ति तक को द्यूत क्रीड़ा में हार जाने वाला कायर बताया। उसके बाद अर्जुन बोला, 'ओहो, यदि कनिष्ठ भाई द्वारा अपने ज्येष्ठ भ्राता का अपमान किया गया है तो उसे जीवित ही नहीं रहना चाहिए। मुझे भी अपना जीवन समाप्त कर लेना चाहिए।'

कृष्ण ने फिर अर्जुन को उबारा, 'तुम अपने शरीर को नष्ट करके अपनी भौतिक हत्या कर सकते हो लेकिन यदि आत्मश्लाघा करोगे तो वो भी अपनी बौद्धिक हत्या के समान होगी।'

ये सुनकर अर्जुन ने अपनी बौद्धिक हत्या का निर्णय किया। उसने स्वयं को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बताकर अपनी प्रशंसा की। और इस प्रकार स्वयं को शर्मिंदा करके उसने कृष्ण का धन्यवाद किया कि वे बेढब परिस्थितियों से उबरने के व्यावहारिक उपाय सुझा देते हैं।

अर्जुन ने इसके उपरांत अपने भाई से क्षमायाचना की। युधिष्ठिर ने भी पलट कर उससे क्षमा

मांगी। दोनों ये समझ गए कि वे फिजूल में परिस्थिति का तिल का ताड़ बना रहे थे। 'आओ उस घृणित घटना को भूल जाएं। आओ अपना कर्तव्य याद करें। आओ न्याय को पुनर्स्थापित करें। आओ कर्ण का वध करें। सारे मतभेद सुलटा कर पांडव भाई दोबारा युद्ध करने के लिए रणभूमि में पहुंच गए।

- युद्ध के दिन बीतने के साथ ही तनाव हावी होने लगा। व्यास, दोनों युद्ध शिविरों में अनेक तर्क-वितर्कों का वर्णन करते हैं। कर्ण और शल्य एक-दूसरे को कोसते रहते हैं मगर दुर्योधन के दखल से चुप होते हैं। सात्यकी के धृष्टद्युम्न से बहस करने पर भीम को दखल देना पड़ता है। कर्ण की बृपा से बहस होती है और वो अश्वत्थामा से तो गुत्थमगुत्था ही हो जाता है।
- इस प्रसंग से नियमों को विभिन्न पहलुओं से परिभाषित करके उनमें समायोजन की गुंजाइश निकालने की कृष्ण की योग्यता परिलक्षित होती है। यहां वे मानव शरीर को भौतिक, भावनात्मक और बौद्धिक भागों में विभक्त करके उनमें से हरेक को स्थूल मानकर उसकी हत्या का उपाय आविष्कृत करते है। किसी दूसरे का अपमान करने पर उसका भावनात्मक अस्तित्व नष्ट होता है। लेकिन अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने पर अपने ही बौद्धिक अस्तित्व का वध हो जाता है।

कर्ण के रथ का पहिया

युद्ध के सत्रहवें दिन पांडव खेमे ने अपनी सारी ऊर्जा कर्ण को चित करने पर केंद्रित कर दी। अर्जुन ने कर्ण के पुत्र वृषसेन का अपने बाण से वध कर दिया। उसने सोचा कि इससे कर्ण को भी, अभिमन्यु के वध से उसे हुई पीड़ा का उत्ताप होगा। कर्ण के दूसरे पुत्रों को भी अन्य पांडवों ने ढेर कर दिया। इसके बावजूद कर्ण ने अपने पुत्रों का शोक नहीं मनाया; वो लगातार लड़ता रहा। अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रह कर अपने मित्र की सहायता के लिए अपने उस भाई के वध पर उतारू जिसने आजीवन उस पर तानाकशी की और जो उससे घृणा करता था-हां, वो अर्जुन ही था।

अंततः वो घड़ी आ ही गई। कर्ण और अर्जुन आमने-सामने आ डटे। अर्जुन ने अपने बाणों से हवा का ऐसा दबाव बनाया कि कर्ण का रथ सौ गज पीछे खिसक गया। कर्ण के जवाबी बाणों से अर्जुन का रथ बमुश्किल दस गज ही पीछे हट पाया। उसके बावजूद कर्ण जब-जब अर्जुन के रथ को पीछे धकेल पाया कृष्ण ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अर्जुन ने ईर्ष्या में जल कर पूछा, 'मेरे द्वारा उसका रथ सौ गज पीछे धकेल दिए जाने के जवाब में उसके द्वारा मेरा रथ मात्रा दस गज ही खिसका पाने के बावजूद आप, उसकी ही प्रशंसा क्यों किए जा रहे हैं?'

कृष्ण ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, 'अर्जुन जरा ध्यान से देखो। कर्ण का रथ मात्रा दो व्यक्तियों का भार उठा रहा है। लेकिन तुम्हारे रथ पर तो नर और नारायण के साथ ही तुम्हारे रथ की ध्वजा पर हनुमान का भी साझा बोझ है। इसलिए तुम्हारे रथ की तुलना में कर्ण के रथ को पीछे धकेलना अधिक आसान है।'

अर्जुन पर कर्ण दनादन बाण दाग रहा था। उसी बीच कर्ण के तुणीर में सर्प आ घुसा। ये नाग अश्वसेन था, जिसका परिवार अर्जुन के हाथों खांडवप्रस्थ वन के दहन में स्वाहा हो गया था। अर्जुन के तीर ने उसकी माता को तो बींध दिया था, मगर वो चूंकि तब अपनी मां की कोख में था, इसलिए जीवित बच गया। उसने अपने परिवार की हत्या के प्रतिशोध की प्रतिज्ञा की हुई है।

इसीलिए वो कर्ण के तुणीर में घुसकर बाण बन गया। कर्ण ने उस तीर को प्रत्यंचा पर चढ़ाकर अर्जुन पर निशाना साध दिया। कृष्ण समझ गए कि ये सामान्य बाण नहीं है, सो उन्होंने अपना पांव जोर से जमीन पर पटका, जिससे अर्जुन का रथ नीचे धंस गया। उसके परिणामस्वरूप अर्जुन के सिर के टुकड़े-टुकड़े करने को उद्धत बाण का वार उसके मुकुट ने झेला, जिससे मुकुट के चिथड़े उड़ गए। अपने मुकुट के टुकड़े जमीन पर पड़े देखकर अर्जुन विस्मित रह गया। वो ये सोचने पर मजबूर हो गया कि उनमें से अधिक पारंगत धनुर्धर कौन है–वो स्वयं अथवा कर्ण? उसे विस्मित देखकर कृष्ण ने उसे दिलासा दिया, 'यह धनुर्धर की कुशलता का नहीं बल्कि बाण की शक्ति का कमाल है।'

नाग अश्वसेन फिर से कर्ण की ओर दौड़ा और उससे खुद को दोबारा दागने को कहा। कर्ण उस नाग को पहचान नहीं पाया। ये पता चलने पर कि उसके द्वारा दागा गया पिछला बाण यही नागरूपी बाण था, कर्ण बोला, 'ये मेरे योद्धास्वरूप की गरिमा के विपरीत है कि एक ही बाण को दोबारा छोड़ूं। अपने परिवार का प्रतिशोध किसी अन्य युक्ति से लो। अर्जुन वध के लिए मुझे किसी नाग की सहायता नहीं चाहिए।'

कर्ण द्वारा ठुकराए जाने पर अश्वसेन स्वयं ही अर्जुन की हत्या करने के लिए उस पर लपका, लेकिन उस प्रवीण धनुर्धर से वो क्या खाकर लड़ता, सो अर्जुन ने अपने एक ही बाण से उसे ढेर कर दिया।

अपना मुकुट टूटने के बाद अर्जुन ने अपने सिर पर सफेद साफा बांधा और कर्ण से फिर युद्ध करने लगा।

कर्ण और अर्जुन के बीच द्वंद्व सारा दिन जारी रहा, मगर सूर्यास्त से ऐन पहले कर्ण का रथ पहिया धरती में धंस गया। कर्ण उसी क्षण ये समझ गया कि उसकी मृत्यु सन्निकट है।

कर्ण को बहुत समय पहले भूदेवी का प्रकोप झेलना पड़ा था। उसने एक दिन देखा कि कोई छोटी सी बच्ची रास्ते में खड़ी रो रही है। क्योंकि उस बच्ची के हाथ दूध का पात्र छूट कर भूमि पर गिरने से उसका सारा दूध मिट्टी ने सोख लिया था। उसे प्रसन्न करने के लिए कर्ण ने भूमि से उस गीली मिट्टी को बटोर कर सारा दूध उसके पात्र में निचोड़ कर उसे फिर से भर दिया। कर्ण के इस उपाय से बच्ची का मुख तो खिल गया, मगर भूदेवी उससे सख्त नाराज हो गई। उन्होंने कर्ण को ये शाप दे डाला कि वे भी कभी उसे ऐसे ही निचोड़ डालेंगी, जैसे उसने, उनके भीतर समाया हुआ दूध वापिस निचोड़ लिया था। और कर्ण की मृत्यु उसी दिन अवश्यंभावी है।
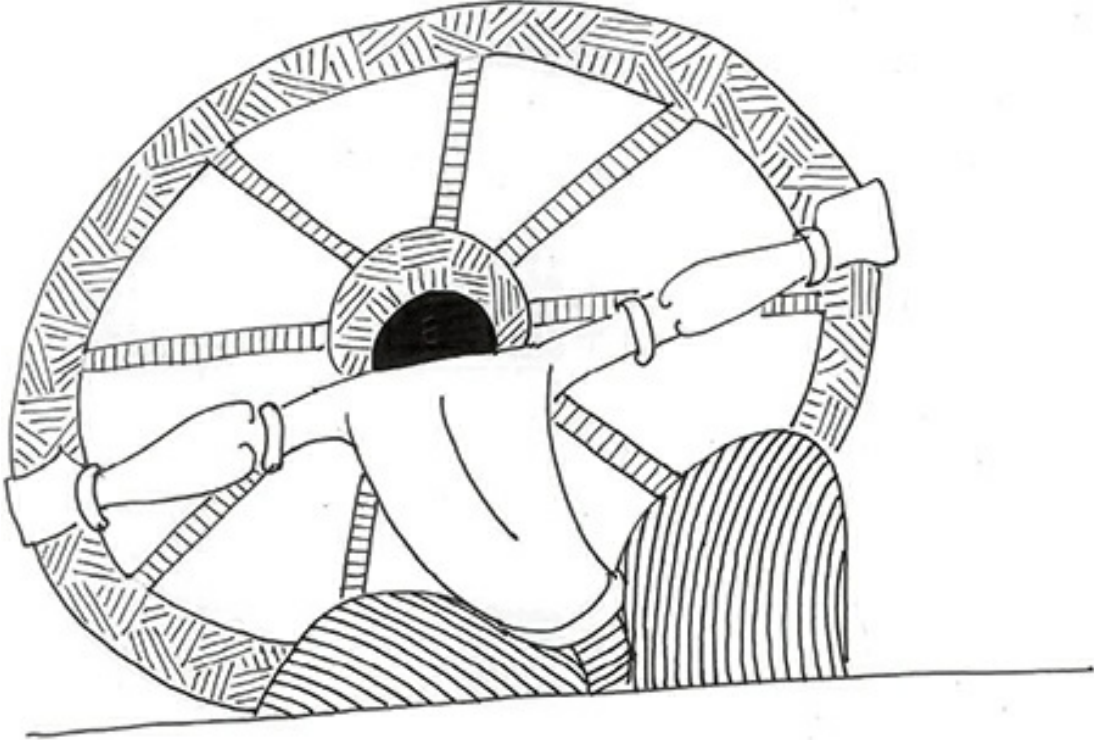
कर्ण के गुरु परशुराम ने उसे वो दिव्य मंत्र सिखाया था, जिससे धरती में धंसा रथ स्वयं ऊपर उठ आता था। कर्ण ने उस मंत्र का बहुत स्मरण किया मगर भरसक कोशिश के बाद भी उसे वो याद नहीं आया। इसी उधेड़बुन में डूबे कर्ण को अचानक अपने गुरु का दिया शाप याद आ गया: 'तुमने मुझे धोखा देकर मुझसे ये विद्या प्राप्त की है, इसलिए तुम अपने जीवन की निर्णायक घड़ी में इसे विस्मृत कर दोगे।'

कर्ण ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी और अपने सारथि शल्य से रथ का धंसा पहिया बाहर निकालने का अनुरोध किया। लेकिन शल्य ने ये कहते हुए उसकी अवज्ञा कर दी कि उन्होंने आजीवन ऐसा कार्य नहीं किया। अब कर्ण के पास रथ से स्वयं नीचे उतर कर रथ का धंसा पहिया बाहर निकालने के अलावा कोई चारा नहीं बचा था। वैसा करने पर उसकी मृत्यु निश्चित थी, क्योंकि उसके लिए उसे शत्रु के सामने ही अपने हथियार छोड़ कर अपनी पीठ दिखानी होगी। फिर भी कर्ण ने अपनी जान बचाने के अंतिम प्रयास के रूप में रथ से उतरते हुए कहा, 'युद्ध में निहत्थे व्यक्ति पर वार करना नियम विरुद्ध है।'

कर्ण द्वारा अपनी पीठ सामने करते ही कृष्ण ने अर्जुन को बताया, 'बाण चलाओ, तुम्हारे पास यही एकमात्र अवसर है।' अर्जुन फिर भी झिझका, क्योंकि उसे ये पता था कि निहत्थे, निस्सहाय व्यक्ति का वध करना लज्जाजनक हरकत थी। कृष्ण ने ये देख कर अर्जुन को प्रवृत्त करने के लिए ताना मारा, 'उन्होंने जब द्रौपदी का चीरहरण किया था तो वो कितनी लाचार थी, कर्ण तो उतना निस्सहाय नहीं है ना?' उस हृदयविदारक और अपमानजनक दृश्य को याद करते ही अर्जुन का प्रतिशोध उस पर हावी हो गया और उसने निशाना साध कर बाण दागा जो सीधा कर्ण के हृदय को चीर गया।

जनश्रुति है कि ये देखकर पुत्र शोक में विह्वल सूर्यदेव भी समय से पहले ही अस्त हो गए थे। सुदूर पांडवों के युद्ध शिविर में कुंती भी अपने ज्येष्ठ पुत्र के लिए विलाप करने लगी। ऐसा पुत्र जिसे वो कभी सार्वजनिक रूप में अपना नहीं पाई। पांडव और कौरव सेना के सारथियों ने भी अपने साथी सारथि के अनाथ पुत्र के शोक में अपने-अपने रथों को जहां का तहां रोक दिया। दुर्योधन पर तो मानो वज्रपात ही हो गया। वो दुःख में विह्वल हो गया। कर्ण तो उसे अपने सगे भाइयों से भी कहीं अधिक प्रिय था। भीष्म और द्रोण के पतन पर एक आंसू तक न ढरकाने वाला दुर्योधन अपने प्रिय मित्र के वध की सूचना मिलते ही बिलख उठा। अपने पुत्र की मृत्यु पर भी उसे, इतनी पीड़ा नहीं हुई थी जितनी पीड़ा कर्ण की मृत्यु से हो रही थी। युद्ध में विजयी होने की महत्वाकांक्षा भी उसे निरर्थक प्रतीत हो रही थी। कर्ण के साथ हुए बिना विजयी होने का भला क्या आनंद?

- अश्वसेन की कथा से फिर पता चलता है कि अर्जुन के गत कर्म उसे युद्ध क्षेत्र में भी बार-बार तंग करते हैं। लेकिन वो कृष्ण की कृपा से बचता रहता है। मगर उसका वंशज उतना सौभाग्यशाली नहीं रहा। नाग अश्वसेन का वार तो खाली गया मगर नाग तक्षक का वार सफल रहा।
- किसी राजा को अपना सारथि बनाने की भूल कर्ण को तब महसूस होती है, जब शल्य उसके रथ के धरती में धंसे पहिए को बाहर निकालने से ये कह कर इन्कार कर देते हैं कि वो कार्य उनकी क्षत्रियोचित गरिमा के विपरीत है। इस प्रकार अहं तुष्टि के लिए की गई हरकत की कीमत आगे जाकर कभी-कभी अपनी जान देकर भी चुकानी पड़ती है।
- ये शायद विडंबना ही है कि कर्ण अपनी सारथि की विरासत भूल कर क्षत्रिय बनने को उत्सुक था जबकि कृष्ण ने सारथि की अपनी भूमिका को मन लगाकर निभाया और कुरूक्षेत्र में स्वयं लड़ने से इन्कार कर दिया।
- विष्णु द्वारा राम का अवतार लिए जाने पर उन्होंने सूर्य पुत्र सुग्रीव का साथ देकर, इंद्र पुत्र बालि का वध किया था। कृष्णावतार में विष्णु ने इंद्र पुत्र अर्जुन का खुलकर साथ दिया और उससे सूर्य पुत्र कर्ण का वध करवाया। रामयण में बालि और महाभारत में कर्ण की कमर पर वार किया गया। ऐसा करके दो जीवन काल में संतुलन स्थापित किया गया।
- कर्ण द्वारा प्राण त्यागते समय कृष्ण ब्राह्मण रूप में कर्ण से कुछ स्वर्ण मांगा। कर्ण ने मरते-मरते भी अपने दांत तोड़ कर उन्हें दिए और कहा कि उनपर सोना मढ़ा हुआ है। इस प्रकार कर्ण अपनी अंतिम सांस तक दानवीर रहा।
- यक्षगान में गायक कहते हैं कि अपने पूर्व जन्म में अर्जुन एवं कृष्ण नर एवं नारायण थे। उनसे देवताओं ने ऐसे असुर के वध की याचना की थी जिसके पास एक हजार अभेद्य कवच थे। हरेक कवच को नष्ट करने के लिए किसी भी व्यक्ति को कम से कम हजार वर्ष की तपस्या करनी पड़ती। हरेक कवच को नष्ट करने के लिए और एक हजार वर्ष तक युद्ध करना पड़ता। नर एवं नारायण ने इसके लिए ये योजना बनाई कि नर तपस्या करेंगे तथा नारायण लड़ेंगे और जब नारायण तपस्या करेंगे तब नर युद्ध करेंगे। इस प्रकार आपसी सहयोग से वे असुर के 999 कवच भेदने में सफल रहे। नर द्वारा अंतिम कवच नष्ट किए जाने से पहले असुर सूर्य के पीछे जाकर छिप गया। उस समय संसार ही खत्म हो गया। संसार की पुनः रचना होने पर असुर पृथ्वी पर कर्ण के रूप में पैदा हुआ तथा नर एवं नारायण का पुनर्जन्म अर्जुन एवं कृष्ण के रूप में हुआ। अर्जुन को पिछला हिसाब चुकता करना था। कर्ण के विरुद्ध अपने बाण का प्रयोग करना उसका दायित्व था, ताकि हजार अभेद्य कवच वाले असुर का नाश हो सके। इसलिए ये तो अवश्यंभावी था।

7. कौरव सेना के तीन सेनापति-भीष्म, द्रोण और कर्ण-परशुराम के शिष्य थे। उनका वध कृष्ण की सलाह पर हुआ।

परशुराम और कृष्ण दोनों ही साक्षात विष्णु के अवतार थे।

8. कर्ण इतनी उदार आत्मा था कि जनश्रुति के अनुसार एक बार वर्षा हो रही थी और किसी ने उनसे, अपने पुत्र के दाह संस्कार के लिए लकड़ी मांगी। कर्ण ने और कोई उपाय न देखकर भरी बारिश के बीच ही अपना घर तोड़कर उसे लकड़ी दान कर दी।

शल्य की मृत्यु

शल्य, माद्री के भाई तथा नकुल एवं सहदेव के मामा थे, मगर दुर्योधन ने उन्हें धोखे से कौरव पक्ष से लड़ने को मजबूर कर दिया। उन्हें कर्ण का सारथि बनाकर उनका और अपमान भी किया गया। इसके बावजूद शल्य ने युद्ध संबंधी हरेक दायित्व को निर्विरोध निभाया। इससे कौरव और पांडव, दोनों ही पक्ष उनका सम्मान करने लगे। अंत में अठारहवें दिन उनसे कौरव सेना का सेनापति बनने को कहा गया। उन्होंने भारी मन से ये दायित्व भी स्वीकार कर लिया, मगर साथ ही ये वचन भी दिया कि उनकी व्यक्तिगत भावनाओं से उनका कर्तव्य प्रभावित नहीं होगा।

कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि कौरव सेना के अंतिम सेनापति शल्य से युधिष्ठिर को लड़वाना चाहिए। अर्जुन ने जब पूछा, 'क्यों?' तो कृष्ण निरुत्तर रहे।

शल्य के शरीर में दरअसल विकराल असुर बंदी था और आक्रांता को देखकर उसका बल बढ़ता चला जाता था। प्रतिद्वंद्वी जितना अधिक आक्रामक होता था शल्य के शरीर में उपस्थित असुर उतना ही अधिक शक्तिशाली हो जाता था।

युधिष्ठिर चूंकि स्वभाव से आक्रामक नहीं थे इसलिए शल्य के विरुद्ध उनका यही गुण सबसे बड़ा अस्त्र सिद्ध हुआ। युद्ध के अंतिम दिन उनका शल्य से आमना-सामना हुआ। वे शल्य से हिंसक भाव से नहीं बल्कि स्नेह एवं सम्मानपूर्वक मिले। इससे शल्य के शरीर में उपस्थित असुर की शक्ति का ह्रास होने लगा। युधिष्ठिर की कोमलता के कारण असुर की शक्ति बढ़ने के बजाए उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए और अंततः उसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। अब सिर्फ शल्य और युधिष्ठिर मैदान में थे।
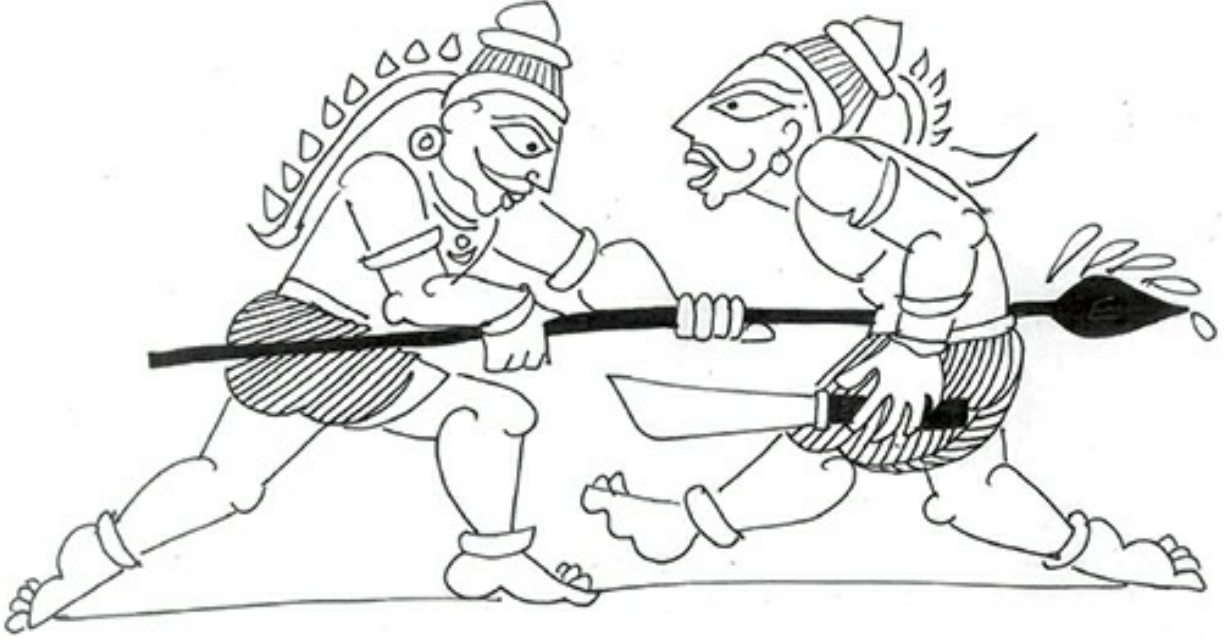
युधिष्ठिर ने तब अपना भाला उठाया और क्रोध एवं घृणा से मुक्त होकर सरासर निस्पृह भाव से उसे शल्य की ओर उछाला और उनका ठौर पर ही वध कर दिया। इसके साथ ही कौरव सेना का अंतिम महारथी भी खेत रहा। विजयश्री अब पांडवों को मिलनी तय थी।

पराजय सन्निकट देखकर शकुनि ने षड्यंत्र रचा। वो समझ गया कि भीम, अर्जुन और युधिष्ठिर, सभी सेना का नेतृत्व कर रहे थे। लिहाजा सेना का पिछला भाग अरक्षित था। उसने गांधार के अपने सैनिकों की टुकड़ी के साथ पांडव सेना पर पीछे से धावा बोल दिया।

कोलाहल सुनकर कुंती पुत्रों ने पीछे मुड़ कर देखा और वे फौरन कुटिल शकुनि की चाल को ताड़ गए। सेना के पिछले भाग में जाकर सैनिकों को बचाना उनके लिए कठिन कार्य था। इसलिए युधिष्ठिर ने माद्री पुत्रों को आवाज लगाई, वे दोनों पिछले छोर के पास ही थे, 'मेरे भाइयों, मुझे पता है कि तुम लोग हाल ही में मृत अपने मामा का शोक मना रहे हो। लेकिन हमें चाहिए कि तुम अपने आंसू पोंछ कर उस कुटिल शकुनि को ललकारो जो पिछले छोर से कायर लोमड़ी की भांति लड़ रहा है। अन्यथा हमारी सारी उपलब्धि मिट्टी में मिल जाएगी।'

नकुल और सहदेव ने ये सुनते ही अपनी तलवार उठाई और शकुनि पर पिल गए। उनके बीच जबरदस्त युद्ध हुआ जिसमें कनिष्ठ और अंतर्मुखी सहदेव ने शकुनि को धरती पर पटक कर उसका वध कर दिया। सहदेव उस दिन कुल मिला कर संतुष्ट ही रहा, क्योंकि उस दिन जहां उसके मामा परलोक सिधारे थे, वहीं दुर्योधन के मामा को भी हाथोंहाथ उसी दिन ढेर कर दिया गया था। उसके मामा तो निर्दोष थे और उन्हें धोखे से शत्रु पक्ष की ओर से लड़वाया गया था मगर शकुनि कदापि निर्दोष नहीं था। पांडवों को पांसों के खेल में उसी के कपट के कारण तेरह वर्ष पूर्व अपने राज्य से हाथ धोने पड़े थे।

- भीष्म, कौरव सेना के, दस दिन सेनापति रहे। द्रोण उनसे आधे समय अर्थात पांच दिन तक ही उनके सेनापति रहे। कर्ण तो द्रोण से भी आधी अवधि यानी दो ही दिन उनका सेनापति रहा। और शल्य तो उससे भी आधे समय अर्थात एक ही दिन उनके सेनापति रहे। इस प्रकार गणितीय दृष्टि से भी ये घटता क्रम सिद्ध हुआ।
- कौरवों को पराजित करने के लिए पांडवों को पिता(भीष्म), गुरु(द्रोण), भाई(कर्ण) और मामा(शल्य) से लड़ना है। उन्हें मोह के अपने सभी बंधनों को तोड़ कर मुक्त होना है।
- शल्य के शरीर में बंदी, आक्रामक मुद्रा के विरुद्ध अपनी शक्ति बढ़ाने वाले असुर की कथा, इस गाथा के इंडोनेशियाई संस्करण में से उद्धृत है।
- भारतीय महागाथा में दुर्योधन की पत्नी भानुमति जहां कलिंग की राजकुमारी है, वहीं इंडोनेशियाई संस्करण में उसे शल्य की पुत्री बताया गया है। उसे अर्जुन से प्रेम था लेकिन अर्जुन ने उसे अपने पिता द्वारा नियत व्यक्ति-दुर्योधन से ही विवाह करने को कहा। शल्य चूंकि दुर्योधन के श्वसुर थे, इसलिए कौरव पक्ष में लड़ना उनका दायित्व था।
- युद्ध में शल्य और उनके पुत्र की मृत्यु के बाद मद्र राज्य राजा विहीन हो गया था। इसलिए शल्य की इच्छा के अनुरूप राज्य की बागडोर उनके भांजों नकुल और सहदेव को ही सौंप दी गई।
- माद्री के पुत्र, शकुनि के वध के अलावा युद्ध में कोई भी महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा सके।

निन्यानबे कौरवों का वध

भीम ने द्यूतक्रीड़ा के दिन ये प्रतिज्ञा की थी कि वो हरेक कौरव का अपने हाथों से वध करेगा। और उसने अपनी प्रतिज्ञा इतने हिंस्र अंदाज में पूरी की कि कुरुक्षेत्र की रण भूमि में युद्ध के दर्शक सभी देवताओं और असुरों के होश फाख्ता हो गए।

बौखलाए शेर के समान भीम ने प्रतिदिन कौरव बंधुओं की चुन-चुन कर हत्या की। अपनी संख्या घटते देखकर गांधारी के पुत्रों ने युद्ध भूमि में भीम की दृष्टि से बचने की भरपूर कोशिश की। लेकिन वो अधीर परभक्षी के समान रथों और हाथियों की आड़ में छिपे कौरवों को ढूंढ़-ढूंढ़ कर बाहर निकालता रहा। उसके बाद उनकी दया याचना की करुण पुकार को अनसुना करके उनके सिरों का भीम अपनी गदा से कचूमर बनाता चला गया।

अन्य पांडव बंधुओं ने उपयुक्त अवसर होने पर भी गांधारी पुत्रों में से किसी का भी वध करने की अपनी इच्छा को दबा लिया ताकि भीम अपनी भयावह प्रतिज्ञा पूरी कर सके। इसलिए युद्ध के

दिन ज्यों-ज्यों बीते संजय से अपने मृत पुत्रों का वर्णन सुनकर गांधारी और धृतराष्ट्र का विलाप करूण होता चला गया।

भीम को विकर्ण के वध में बहुत परेशानी हुई। कौरव होने के बावजूद उसने कभी भी दुर्योधन की बात नहीं मानी थी। उसने द्यूतागार में भी अपने भाइयों का सार्वजनिक विरोध किया था। लेकिन युद्ध में अपने भाइयों का साथ देकर उसने अपने पारिवारिक कर्तव्य का पालन किया। उसकी इसी निष्पक्षता के लिए पांडव उसका दिल से सम्मान करते थे। विकर्ण की मृत्यु पर सभी पांडवों ने विलाप किया। लेकिन कृष्ण ने विलाप नहीं किया। उन्होंने कहा, 'परिवार अथवा मित्रता से अधिक मूल्यवान धर्म है।' दुःशासन का वध करके भीम सबसे ज्यादा प्रसन्न हुआ क्योंकि उसी ने भरी सभा में द्रौपदी का चीरहरण किया था। भीम ने उसे धरती पर दबोच कर अपने नाखूनों से उसका पेट फाड़ कर उसकी आंतें बाहर निकाल दी थीं। उसके बाद उसने दुःशासन के रक्त से अपने केश धोने के लिए द्रौपदी को बुलवाया ताकि वो बहुत समय पूर्व की गई अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके अपने बाल गूंथ कर फिर से वेणी बनाने लगे।

रक्त से सने भीम को द्रौपदी के बाल खून से धोते हुए, उन्हें दुःशासन की आंतों से गूंथते हुए और उनमें, उसके हृदय को टांकते हुए देख कर अनेक लोगों का निष्कर्ष था कि द्रौपदी के लिए भीम भी शक्ति के लिए भैरव के समान था। भैरव को वो संरक्षक कहा गया है जो पृथ्वी को हवस भरी नजरों से देखने वालों का शिरोच्छेद कर देते हैं। कौरवों के सिर भीम के लिए युद्ध में मिले इनाम थे। उनका रक्त, उसका युद्ध रोगन था।

अठारहवें दिन सिर्फ एक ही कौरव का वध करना शेष था। ज्येष्ठ। दुर्योधन।

- तमिलनाडु के डिंडीगुल जैसे कुछ इलाकों में द्रौपदी की पूजा देवी के रूप में की जाती है। उनके सम्मान में वहां बाकायदा 18 दिन लंबा पर्व मनाया जाता है। उसका नाम द्रौपदी अम्मन उत्सव है। इस दौरान महाभारत के विभिन्न प्रसंगों पर आधारित जुलूस निकाले जाते हैं। उनमें घटनाओं का क्रम महाभारत के तेरहवीं शताब्दी के तमिल संस्करण में वर्णित क्रम के अनुसार रखा जाता है। ये संस्करण वल्लीपुत्तुर अलवर ने लिखा था। जुलूस के साथ ही कथावाचक प्रवचन भी करते हैं। साथ ही उत्तर भारत में रामलीला के समान महाभारत पर आधारित नामक भव्य नाटक का मंचन भी किया जाता है।
- गाथा में सभी सौ कौरवों के नाम भी बताए गए हैं। वे हैं:(किसी विशेष क्रम में नहीं)-

1. दुर्योधन(कुछ संस्करणों के अनुसार उसे खलनायक बनने से पहले तक सुयोधन पुकारा जाता था)।
2. दुःशासन
3. दुःसह
4. जलगंध
5. साम
6. सह
7. विंद
8. अनुविंद
9. दुर्धर्ष
10. सुबाहू
11. दुष्प्रदर्शन
12. दूर्माशन
13. दुर्मुख
14. दुष्काम
15. विविकर्ण
16. विकर्ण
17. सालन
18. सत्व
19. सुलोचन
20. चित्र
21. उपचित्र
22. चित्राक्ष
23. चारूचित्र
24. सारसन
25. दुर्मद
26. दुर्विग
27. विवित्सु
28. विकटन
29. ऊर्णनभ
30. सुनभ
31. नंद
32. उपनंद
33. चित्रबन
34. चित्रवर्मा
35. सुवर्मा
36. दुर्विमोचन
37. अयोबाहु
38. महाबाहु
39. चित्रांग
40. चित्रकुंडल
41. भीमवेग
42. भिंब

43. बालकी
44. बालवर्धन
45. उग्रायुध
46. सुषेन
47. कुंदधारा
48. महोदर
49. चित्रायुध
50. निःषंगी
51. पाशी
52. वृंदारक
53. द्दधवर्मा
54. द्दधक्षत्र
55. सोमकीर्ति
56. अनुदार
57. द्दढ़संध
58. जरासंध
59. सत्यसंध
60. सदास
61. सुवाक
62. उग्रश्रवा
63. उग्रसेन
64. सेनानी
65. दुष्पराजय
66. अपराजित
67. कुंदाशय
68. विशालाक्ष
69. दुराधर
70. धृदहस्थ
71. सुहस्थ
72. वातवेग
73. सुवर्च
74. आदियाकेतु
75. बहवासी
76. नागदत्त
77. अग्रयायी
78. कवची
79. क्रधान
80. कुंदी
81. कुंदधार
82. धनुर्धर
83. भीमरथ
84. वीरबाहु
85. अलोलुप
86. अभय
87. रौद्रकर्म
88. धृदरथाश्रय
89. अनाधृष्य
90. कुंदभेदी
91. विरवि
92. चित्रकुंडल

93. दीर्घलोचन
94. प्रमथी
95. वीर्यवान
96. दीर्घरोग
97. दीर्घबाहु
98. महाबाहु
99. कुंदपि
100. विर्जस

कमर के नीचे वार

दुर्योधन रणभूमि में जाने से पहले प्रतिदिन अपनी माता के पास जाकर उनका आशीर्वाद मांगता तो वे कहतीं, 'न्यायपक्ष विजयी भव।' दुर्योधन को पता था कि उसकी माता की बात हमेशा सच होती थी। इसलिए उसने, उनसे ये कहने की याचना की, 'मेरे पुत्रों की विजय हो।' लेकिन उन्होंने ऐसा कहने से इन्कार कर दिया।

इसके बावजूद भीम के हाथों अपने 99 पुत्रों के वध के बाद गांधारी का मातृत्व उमड़ पड़ा। धृतराष्ट्र ने उनसे कहा, 'न्यायपूर्ण हो या नहीं, दुर्योधन तुम्हारा पुत्र तो है ही।'

इससे प्रभावित होकर गांधारी ने दुर्योधन को पौ फटने से पहले ही स्नान करके अपने सामने नग्नावस्था में आने को कह दिया। 'मैं अपनी आंखों की पट्टी अपने विवाह के बाद पहली बार खोलूंगी और तुम्हारे शरीर पर दृष्टिपात करूंगी। इतने वर्ष बंधी मेरी आंखों में मेरी पवित्रता तथा शुचिता का तेज भरा हुआ है। मेरे पहले दृष्टिपात से ही तुम्हारे शरीर का हरेक अंग वज्र के समान हो जाएगा, जिस पर किसी भी हथियार से चोट नहीं लगेगी।'

दुर्योधन ने अपने कार्यक्रम के अनुसार कपड़े उतारे, स्नान किया और नग्नावस्था में ही अपनी माता के कक्ष की ओर जाने लगा। रास्ते में अंधेरे को चीर कर उसने कृष्ण को आते देखा।

कृष्ण उसे नग्नावस्था में देख कर ठठा कर हंसे। 'कुछ तो शर्म करो। बालिग पुरुष को अपनी माता के सामने भी कम से कम जननांग तो ढंक कर जाना चाहिए।'

दुर्योधन ने लज्जित होकर केले का पत्ता तोड़ा और उसे अपनी कमर पर लपेट लिया, जिससे उसकी जांघ और जननांग छिप गए। वो जब अपनी माता के सामने पहुंचा तो उन्होंने आंखें खोलीं और अपने नग्न पुत्र पर दृष्टिपात किया। लेकिन जब उन्होंने पाया कि उसने अपने कुछ अंग ढंक रखे हैं तो वे रोने लगीं। 'अरे मेरे पुत्र, तुम्हारे शरीर के वो अंग जो तुमने ढंक लिए थे, अब किसी के वार से प्रभावित हो जाएंगे। और तभी तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।'

दुर्योधन भयभीत होकर रणभूमि के सुदूर छोर पर बने सरोवर में घुस कर छिप गया। भीम और अन्य पांडव, शल्य के वध के उपरांत अठारहवें दिन, पूरे समय ज्येष्ठ कौरव को ही ढूंढ़ते रहे। उसके जीवित रहते युद्ध समाप्त कैसे हो जाता? अंत में सरोवर के भीतर छिपा दुर्योधन उनके हाथ लग गया। भीम उसे देखते ही गरजा, 'कायर कहीं के, बाहर निकल।'

दुर्योधन ने अपना भय छिपाने का अभिनय करते हुए जवाब दिया, 'मैं कोई कायर नहीं हूं। मैं तो अपने थके हुए अंगों को आराम दिला रहा था, ताकि तुम्हारा वध आसानी से कर सकूं।'

कृष्ण और पांडव जब भीम और दुर्योधन को द्वंद्व युद्ध के लिए तैयारी करते हुए देख रहे थे तो ऐसा लगा कि मानो दो जंगली हाथी कामातुर होकर बेचैन हों। उनकी आंखें सुर्ख लाल हो रही थीं। उनके भारी-भरकम बाजू पसीना टपकाते हुए दोपहर की धूप में सोने के खंभों के समान दमक रहे थे। इन दोनों ही योद्धाओं ने गदा युद्ध कृष्ण के बड़े भाई बलराम से सीखा था। दोनों में ही बराबर मगर बेजोड़ बल था। भीम पूरा जोर और दांवपेंच आजमाने के बावजूद दुर्योधन को काबू नहीं कर पा रहा था। वो बड़ी फुर्ती से स्वयं को बचाता रहा। भीम जब-जब अपनी गदा को लहराता दुर्योधन बड़ी चपलता से स्वयं को बचा कर अथवा अपनी गदा से जवाबी आघात करके उसके बार को बेकार कर देता। दोनों की गदा टकराने से होने वाली ठन-ठन की आवाज के बीच भीम ने याचक भाव से कृष्ण की ओर देखा।

कृष्ण ने उसकी आंखें में अपनी नजरें गड़ा कर अपने जननांगों के पास अपनी जांध को ठोका। भीम ये समझ गया कि कृष्ण उसे दुर्योधन की जांघ पर वार करने का इशारा कर रहे हैं। लेकिन कमर के नीचे वार क्या युद्धसंहिता का उल्लंघन नहीं होगा? भीम के मन में ये सवाल उठा तो जरूर मगर उसे कृष्ण की सूझबूझ पर पूरा भरोसा था। लिहाजा उसने अपनी गदा लहराई और ऐसा वार किया कि दुर्योधन दर्द से तड़पने के बावजूद भौंचक्का रह गयाः कमर के नीचे, उसकी जांघों और जननांगों का कचूमर बन गया था।
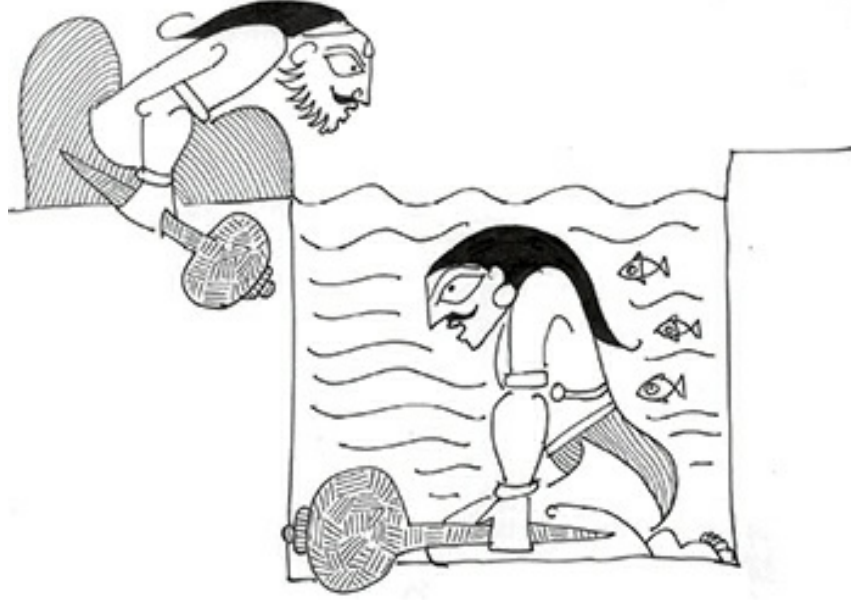
पृथ्वी पर गिरते दुर्योधन ने कराहते हुए कहा, 'ये तो बेईमानी है।' लेकिन न तो भीम ने और न ही कृष्ण ने उससे इसके लिए क्षमा याचना की। दुर्योधन चिल्लाता रह गया, 'अधर्म, अधर्म।' उसने कातर स्वर में अपने गुरु बलराम को पुकारा, 'आओ देखो, आपके इस चहेते शिष्य ने मेरे वध के लिए आपके भाई के उकसावे पर युद्धसंहिता का सरासर उल्लंघन किया है।'

बलराम तत्काल युद्धभूमि में प्रकट हुए और दुर्योधन की कुचली हुई जांघों को देख कर गुस्से में आपे से बाहर हो गए। बलराम ने क्रोध की रौ में अपने हल का फल उठाया और भीम की हत्या कर देने की चेतावनी दी। भीम ने वार झेलने के लिए उनके आगे शीश नवा दिया। तभी कृष्ण कूद कर उनके बीच में आ खड़े हुए। वे अपने अग्रज से ठंडे स्वर में बोले, 'जो लोग जंगल के कानून के सहारे जीते हैं, वे मारे भी जंगल के नियमों से ही जाते हैं।' बलराम ने उनकी उक्ति में निहित निस्पृह सत्य का भाव समझ कर अपना हल वापस अपने कंधे पर रख लिया।

दुर्योधन निश्चल धरती पर पड़ा-पड़ा दर्द से तड़पता रहा। उसके चोटिल अंगों से रक्त बह रहा था और उसके विजेता उसे घेरे खुशी प्रकट कर रहे थे। पांडव विजयोल्लास में खिलखिला कर उस पर फब्तियां कसते रहे। अपने तहेरे भाई की मृत्यु सन्निकट जान कर भीम तो खुशी से बौरा गया और दुर्योधन के सिर पर चढ़ कर नाचने लगा।

इस पर कृष्ण ने गुस्से से तमतमा कर कहा, 'बंद करो। तुम उसका इतना अपमान कैसे कर सकते हो? वो तुम्हारा भाई, राजा, क्षत्रिय है। उसे मिला दंड क्या काफी नहीं है? तुम्हें विजयश्री को विनम्रतापूर्वक शिरोधार्य नहीं करना चाहिए?'

भीम ने लज्जित होकर सिर झुका लिया और अपने भाइयों के पीछे-पीछे युद्ध शिविर की ओर चल दिया। वहां प्रसन्नता से आह्लादित द्रौपदी इस ऐतिहासिक विजय का उत्सव मनाने की तैयारियों में जुटी हुई थी।

वे जब वहां से लौटने लगे तो दुर्योधन ने पीछे से आवाज लगाकर कहा, 'मैं आजीवन राजप्रासाद में राजकुमार के रूप में जिया हूं और आज रणभूमि में क्षत्रिय के समान मृत्यु को प्राप्त होने को हूं। तुम लोगों ने तो अपना अधिकतर जीवन भिक्षुकों के समान वन में भयभीत और चोरों के समान छिपते हुए बिताया है और अब तुम्हें शवों के भंडार की विरासत मिली है। मुझसे अच्छा जीवन किसने जिया है-मुझसे अच्छी मौत किसे नसीब होगी?'

- अपने पुत्र को अभेद्य बनाने संबंधी गांधारी के प्रयास की कथा, समुद्री अप्सरा थेतिस की यूनानी कथा के समान ही है। थेतिस अपने पुत्र एकिलिस को अभेद्य बनाने के प्रयास में उसकी ऐड़ी पकड़ कर उसे स्टाइक्स नदी में गोता लगवाती है। लेकिन उसकी ऐड़ी चूंकि गोता लगवाते समय थेतिस ने अपने हाथ में पकड़ी हुई थी इसलिए बस वही अभेद्य होने से बच जाती है।
- कुरू, पांडवों के पूर्वज थे और उनके द्वारा जिस भूमि पर हल चलाया गया था, वही कुरुक्षेत्र कहलाया। हल चलाने के लिए उन्होंने उसमें शिव के गण नंदी बैल और यम के भैंसे को जोता था। शिव वैराग्य और यम मृत्यु के देवता हैं। कुरू ने जुती हुई भूमि में अपने ही मांस का बीज बोया था। इससे प्रसन्न होकर भगवान ने उनसे वरदान मांगने को कहा था। उन्होंने ये मांगा कि कुरुक्षेत्र में प्राण त्यागने वाले हरेक व्यक्ति को स्वर्ग में स्थान मिले। भगवान ने तथास्तु कह कर उन्हें वर दान कर दिया।
- भास ने 100 सीई काल के अपने नाटक *उरुभंगम्* में गाथा से इतर चरित्र का उल्लेख किया है। यह पात्र है, दुर्योधन का छोटा पुत्र दुर्जय। अपने पिता को देखकर दुर्जय उनकी गोद में बैठना चाहता है लेकिन दुर्योधन की जांघें टूट जाने के कारण उसे रोक दिया जाता है। पराजित खलनायक पश्चाताप की अग्नि में जलते हुए अपने पुत्र से अपने विजयी चाचाओं की मन लगा कर सेवा करने को कहता है।
- तमिलनाडु में तूरूकुट्टू के दौरान अठारह दिन लंबे युद्ध का विधि-विधान पूर्वक मंचन किया जाता है। इसमें भूमि पर लेटी मुद्रा में मिट्टी से दुर्योधन की विशाल मूर्ति बनाई जाती है। उसकी दाहिनी जांघ पर लाल रंग के द्रव से भरा बरतन रखा जाता है। इस बरतन को भीम बना पात्र कुशल नृत्य के बाद फोड़ देता है। इस कार्यक्रम के बाद वहां जमा दर्शक दुर्योधन की लेटी हुई प्रतिमा में से अपनी मुट्ठियां भर कर मिट्टी अपने-अपने घर ले जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि उस

मिट्टी को संभाल कर रखने से खलिहान में से अनाज न तो चोरी होता है और न ही सड़ता है।

- 'मेरा क्या है?' 'मेरा क्या नहीं है?' ये प्राकृतिक आभास नहीं बल्कि कृत्रिम धारणा है। इसे मानव मस्तिष्क द्वारा ही स्थापित किया जाता है और उसी माध्यम से इसे नष्ट भी किया जा सकता है। पशुवत मस्तिष्क अर्थात कौरव मस्तिष्क ये बात समझने में असमर्थ था। इसीलिए जिद ठान कर भूमि से चिपका रहा और अंत तक क्रोध एवं भय से ग्रस्त रहा। कृष्ण ने अपना सारा ध्यान पांडवों के मन में बैठे भूमि पर कब्जा करने को आतुर दानव से उन्हें मुक्त कराने और उन्हें दिव्य संभावनाओं को प्राप्त करने लायक बनाने पर लगाया। लेकिन ये सरल नहीं है। कृष्ण ने हालांकि दुर्योधन को हराने में भीम की सहायता की, लेकिन वे, भीम को शत्रु के प्रति संवेदनशील नहीं बना पाए। उसके लिए दुर्योधन अंत तक 'मेरा नहीं है', ही बना रहा। जब तक संवेदनशीलता एवं समावेशन नहीं होगा तब तक धर्म की स्थापना हो ही नहीं सकती। भीम द्वारा युद्ध को आंतरिक परिवर्तन के उत्प्रेरक के बजाए प्रतिशोध कथा तक सीमित कर दिया गया।
- महागाथा में कौरव सिर्फ इसलिए खलनायक बने कि वे भूमि पर कब्जे की पाशविक मानसिकता तथा श्रेष्ठ नर के समान हावी होने के भाव से उबरना ही नहीं चाहते थे। पांडवों के कायापलट में कृष्ण सहायक तो होते हैं, लेकिन घटनाक्रम सामने आने पर ये साफ-साफ समझ में आ जाता है कि मंशा और उस पर अमल में भारी अंतर है।
- दुर्योधन की उत्तराखंड की हर की दून घाटी में दयालु देवता के रूप में पूजा की जाती है। वहां पर महागाथा के खलनायक को समर्पित लकड़ी के मंदिर पाये जाते हैं।

बोलता हुआ सिर

युद्धारंभ के बाद से सूर्य अठारहवीं बार अस्त हुआ। विजयी पांडव युद्ध शिविर की ओर लौटे। वहां पर प्रसन्नता से विह्वल द्रौपदी ने उन पर सुगंधित पुष्प वर्षा करके उनका स्वागत किया।

अर्जुन, रथ से कृष्ण के पहले नीचे उतरने की बाट जोह रहा था। लेकिन कृष्ण निश्चल रथ पर बैठे रहे। अर्जुन को ये बात बहुत बुरी लगी, क्योंकि परंपरानुसार पहले सारथि उतरता है, उसके बाद ही धनुर्धर रथ से नीचे पांव रखता है। अंततः हैरान होकर अर्जुन रथ से नीचे उतर गया जबकि कृष्ण उस पर बैठे ही रहे। लेकिन ये क्या? कृष्ण के नीचे उतरते ही रथ आग की लपटों में घिर गया।

ये देखकर असमंजस में डूबे अर्जुन को तब कृष्ण ने समझाया कि उसके रथ को तो द्रोण ने बहुत पहले ही नष्ट कर दिया था। अब जाकर अर्जुन की समझ में ये आया कि सिर्फ कृष्ण की रथ पर उपस्थिति के कारण ही वो रथ चल रहा था। अर्थात वो कृष्ण के रथ पर बैठे रहने को जो अपने को अपमानित करने का प्रयास समझ रहा था वो दरअसल उसकी जान बचाने का उपाय था। कृष्ण जब तक रथ पर बैठे रहते तब तक उसमें आग नहीं लगती। विजय के मद में चूर अर्जुन के लिए विनम्रता का ये नया सबक था। कृष्ण यदि पांडवों के पक्ष में न होते तो वे कभी भी युद्ध नहीं जीत सकते थे।

युद्ध शिविर शीघ्र ही विजयोत्सव के शोर से गुलजार हो गया। भांति-भांति के व्यंजनों और सुरा का सेवन करके सैनिक मदमस्त हो नाचने-गाने लगे। जीत की खुशी मनाते-मनाते ही सैनिकों के बीच में ये विवाद पैदा हो गया कि कुरूक्षेत्र में पांडवों में से कौन सा भाई सबसे महान योद्धा सिद्ध हुआ है। सबसे महान योद्धा अर्जुन है जिसने भीष्म और कर्ण का वध किया अथवा भीम है जिसने सभी सौ कौरवों को मौत के घाट उतारा।

इस पर कृष्ण ने कहा, 'यदि इसका उत्तर तुम लोगों के लिए इतना ही महत्वपूर्ण है तो बोलने वाले सिर से क्यों नहीं पूछ लेते?'

बोलने वाला सिर दरअसल बर्बरीक था। वो अहिलावती नामक नाग राजकुमारी का पुत्र था। वो अपना पिता भीम को बताता था जबकि जनश्रुति ये भी थी कि उसका पिता भीम नहीं बल्कि उसका पुत्र घटोत्कच था।

बर्बरीक कुरूक्षेत्र में सिर्फ तीन ही बाण लेकर आया था। उसने आत्मश्लाघा करते हुए कहा था, 'एक तीर से मैं पांडवों को समाप्त कर सकता हूं, दूसरे तीर से कौरवों को और तीसरे तीर से कृष्ण को निपटा दूंगा।'

उसके कौशल को कसौटी पर कसने के लिए कृष्ण ने उससे वटवृक्ष की सभी पत्तियां एक ही तीर से झाड़ देने को कहा। ये देखकर सभी भौंचक्के रह गए कि उसने अपने एक ही तीर से सारी पत्तियां झाड़ कर वटवृक्ष को गंजा कर दिया और अंत में वो कृष्ण के चरण की परिक्रमा करने लगा। कृष्ण ने चुपचाप अपना पांव किसी गिरे हुए पत्ते पर रख दिया था।

कृष्ण ने उस महान योद्धा से प्रभावित होकर पूछा, 'तुम किस की ओर से लड़ने आए हो?'

बर्बरीक बोला, ‘पराजित की ओर से। क्योंकि तभी मैं अभेद्य रह पाऊंगा।’

उसके उत्तर से कृष्ण परेशान हो गए। यदि पराजित हो रहे पक्ष में रह कर ही उसकी अभेद्यता बनी रहती है तो वो हमेशा एक न एक पक्ष का साथ तब तक देता रहेगा, जब तक वो पक्ष हार रहा होगा। उसके साथ से जैसे ही वो पक्ष मजबूत हो जाएगा वो दूसरे पक्ष में चला जाएगा। ऐसे तो युद्ध कभी समाप्त ही नहीं होगा! क्योंकि कौरवों के बढ़त बनाते समय वो उनके विरुद्ध लड़ेगा और फिर वो, उनके पिछड़ते समय उन्हीं के साथ लड़ेगा। इस ऊहापोह से बचने की कृष्ण को युक्ति सूझी। उन्होंने पूछा, ‘तुम मेरी सहायता करोगे? मुझे संसार के लिए खतरनाक इस योद्धा से खतरा है।’
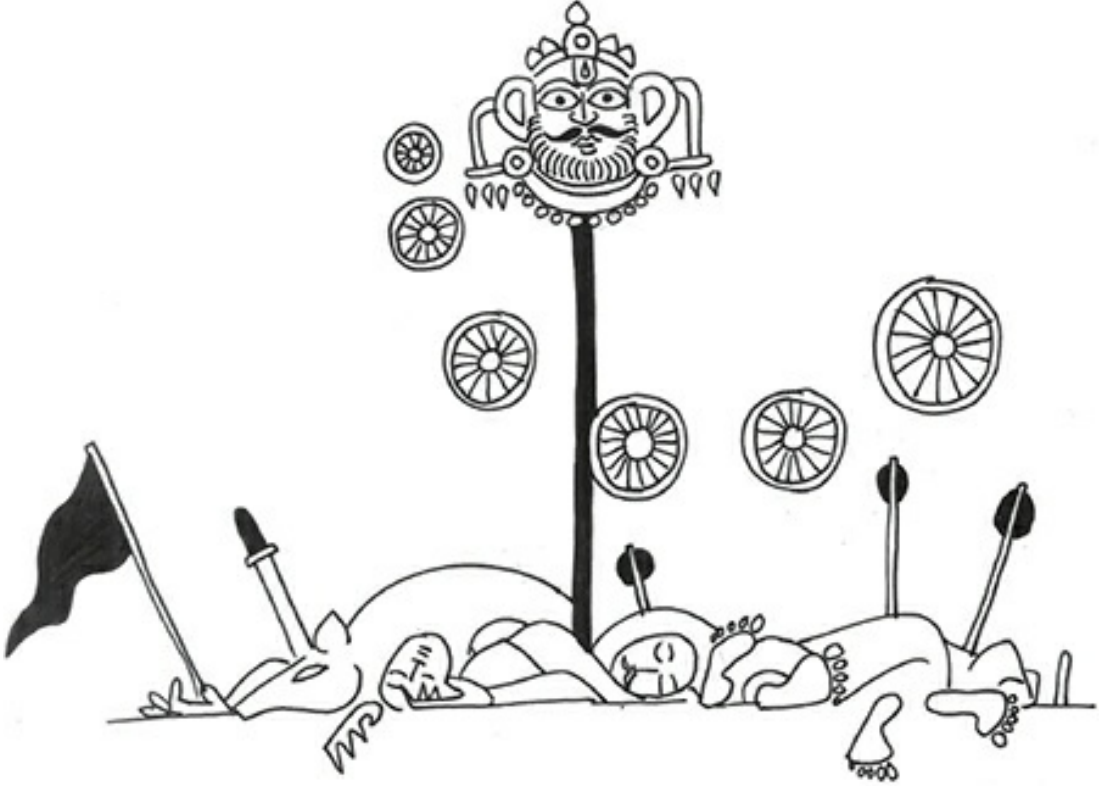
बर्बरीक असहायों को कभी मना नहीं कर सकता था, इसीलिए बोला, ‘ये कौन है? मुझे बताओ? मैं इसे खत्म कर दूंगा।’

कृष्ण ने उसे तत्काल आईना दिखा दिया, ‘मुझे इस योद्धा का सिर दे दो। मेरी, तुमसे यही याचना है।’

बर्बरीक को आईना देखते ही समझ में आ गया कि कृष्ण ने उसे बुद्धू बना दिया। लेकिन अपने वचन से वो मुकर नहीं सकता था। इसलिए उसने स्वयं अपना सिर काट कर कृष्ण को सौंप दिया। उसे बस यही दुख था कि वो कुरुक्षेत्र का युद्ध नहीं देख पाएगा। यह बात अपनी दिव्य शक्ति से समझकर कृष्ण ने बर्बरीक के सिर को जीवित कर दिया। ‘वो सब कुछ देखेगा, सब कुछ सुनेगा, मगर युद्ध में शामिल नहीं हो पाएगा।

बर्बरीक के सिर को आरंभ में जमीन पर रखा गया लेकिन रणभूमि में वो जब भी किसी

हास्यास्पद घटना पर हंसता तो उसके सांस की तेजी सैकड़ों युद्धक रथों को पीछे ढकेल देती। इसलिए कृष्ण ने उसके सिर को पर्वत शिखर पर रख दिया ताकि वो, वहां से युद्ध का विहंगम दृश्य देख सके। कृष्ण ने पांडव सेना से कहा, 'उसने किसी भी अन्य प्राणि की तुलना में युद्ध को अधिक समग्रतापूर्वक देखा है। इसलिए तुम्हारे प्रश्न का सबसे सही उत्तर वही दे सकता है।'

सैनिकों ने जब वाचाल सिर से पूछा कि कुरूक्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ योद्धा कौन था, तो उसने विचित्र उत्तर दिया, 'भीम, अर्जुन! मैंने तो उनमें से किसी को भी नहीं देखा। सच तो ये है कि मैंने तो किसी योद्धा को देखा ही नहीं मैंने तो सिर्फ यही देखा कि विष्णु का सुदर्शन चक्र घूम-घूम कर पापी राजाओं का सिर काट रहा है। और वहां गिरते रक्त को मैंने काली देवी रूपी पृथ्वी को अपनी जीभ से चाटते देखा।'

पांडवों ने जब इसका अर्थ पूछा तो यह कहा गया, 'बहुत समय बीता, विष्णु ने राजा पृथु के रूप में अवतार लिया था। उन्होंने कहा था कि वे पृथ्वी से वैसा ही व्यवहार करेंगे जैसा कोई गोपालक अपनी गाय से करता है। मानव संस्कृति तथा प्रकृति के बीच सौहार्द स्थापित करने के लिए उन्होंने सभ्यता की संहिता बनाई।

वे संहिता धर्म कहलाई जिसका आधार था-अनुशासन, उदारता और त्याग। इससे प्रसन्न होकर पृथ्वी ने गौरी का रूप धारण किया अर्थात माता, जो अपनी संपदा से पृथ्वी पर जीवन को पोषित करती है। धर्म की स्थापना और उसे अपने-अपने राज्यों में लागू करने के लिए राजा नियुक्त किए गए। समय बीतने के साथ दुर्भाग्य से राजा अपनी धर्म संरक्षक की प्रारंभिक भूमिका भूल गए। उन्होंने, अपने अधिकार का दुरूप्योग करके पृथ्वी का दोहन शुरू कर दिया। इससे दुखी होकर पृथ्वी ने गाय का रूप धारण करके रोती-रोती विष्णु के पास पहुंच कर उन्हें उनका

वचन याद दिलाया। विष्णु ये देखकर आग बबूला हो गए कि राजाओं द्वारा लालच में अंधाधुंध दोहन से पृथ्वी के थन जख्मी थे और कमर टूट गई थी। उन्होंने पृथ्वी पर राजाओं को नसीहत देने की कसम खाई। वे पृथ्वी पर परशुराम, राम और कृष्ण के रूप में अवतरित होंगे और धर्म विरुद्ध आचरण करने वालों का विनाश कर देंगे।

उन्होंने दयालु गौरी से कहा कि वो भी प्रचंड काली में परिवर्तित होकर लालचवश अपना दूध निचोड़ लेने वालों के रक्त से अपनी प्यास बुझाए। इस प्रकार ये युद्ध सिर्फ कौरवों और पांडवों तक सीमित नहीं है बल्कि इसका प्रयोजन पृथ्वी से मनुष्य के संबंध को पुनर्स्थापित करना है। इस प्रकार युद्धभूमि के ऊपर रखे वाचाल सिर ने ऐसे दृष्टिकोण से हिंसा देखी जो रणभूमि में उपस्थितजनों से कहीं अधिक व्यापक था।'

पांडव शिविर में सन्नाटा छा गया। वे यह समझ गए थे कि युद्ध और विजय दोनों ही घटना अकेले उनके कारण घटित नहीं हुई। दोनों ही भाग्य के अधीन थीं। विजयोत्सव फिर चलने लगा, मगर उसकी धार कुंद हो चुकी थी। पांडवों को विजयश्री, उनके श्रेष्ठ योद्धा होने के कारण नहीं मिली। वे ईश्वर की इच्छा के कारण जीत पाए थे।

- बर्बरीक की कथा केरल और आंध्र प्रदेश में श्रुति और स्मृति परंपरा के तहत प्रचलित है। राजस्थान में उनकी खाटु श्याम जी के रूप में पूजा होती है। ऐसे अवतार जो हमेशा पराजय की ओर अग्रसर पक्ष का साथ देते हैं। वाचाल सिर सबको, युद्ध की विवेचना ब्रह्मांडीय दृष्टिकोण से करने के लिए प्रवृत्त करता है। इससे हमारी ये समझ विकसित होती है कि युद्ध महज तहेरे-चचेरे भाइयों के बीच विरासत का झगड़ा नहीं था; ये साथ ही साथ भगवान द्वारा ब्रह्मांडीय संतुलन बनाने का प्रयास भी था। किसी भी घटना को एकल रूप में नहीं देखना चाहिए; वो विभिन्न ऐतिहासिक एवं भौगोलिक घटनाओं का परिणाम होती है। उसी प्रकार समकालीन घटनाओं का भी भविष्य के इतिहास एवं भौगोलिक घटनाओं पर गहरा प्रभाव होता है।
- कुछ परंपराओं में वाचाल सिर बर्बरीक का नहीं बल्कि इरावण का माना जाता है। इरावण अर्जुन एवं उलूपी का पुत्र था।

सोलहवां अध्याय

परिणाम

'जनमेजय, उन अठारह दिनों में गांधारी अपनी सभी संतानों से हाथ धो बैठी और द्रौपदी का भी वही हाल हुआ।'
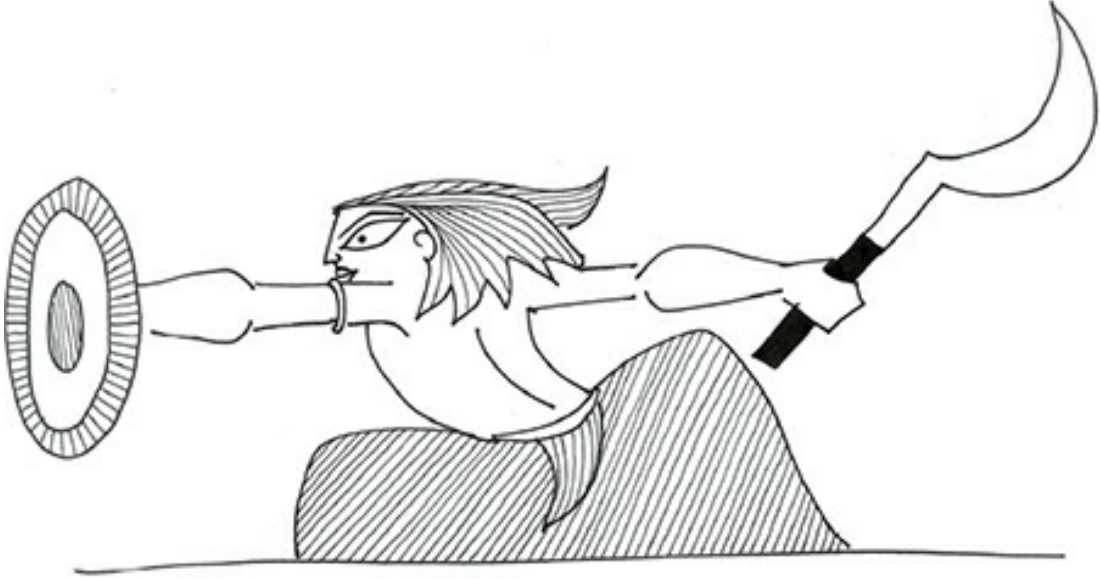
द्रौपदी की संतानों की मृत्य

अठारह दिन बीत गए थे। अठारह सेनाओं ने युद्ध किया। एक अरब, बाइस करोड़ से अधिक लोग मारे गए। चौबीस हजार से भी कम लोग जीवित बच पाए। उनमें से दुर्योधन की ओर से तो सिर्फ तीन ही लोग बचे थेः द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा, कुरू राजकुमारों के गुरु, कृपा और यादव कृतवर्मा। तीनों अंधेरे में बैठे थे। उस सरोवर के पास जिसमें लेटा दुर्योधन मौत की घड़ियां गिन रहा था। पांडव शिविर से आ रहा विजयोत्सव का कोलाहल उनके कानों में भी पड़ रहा था। ठहाकों और उल्लासपूर्ण आवाजों को सहन करने में नाकाम अश्वत्थामा ने रुंधे गले से कहा, 'हम भले ही पराजित हो गए हों, लेकिन अभी वे विजयी नहीं हुए।'

दुर्योधन बुदबुदाया, 'अश्वत्थामा तुम्हारा साहस अभी बरकरार है! ब्राह्मण परिवार में जन्मे होने के बावजूद तुम क्षत्रियों से अधिक साहसी हो। सेनापति बनने के तुममें सारे गुण हैं।'

क्रोध से आग उगलती आंखों को झुका कर द्रोणपुत्र ने कहा, 'तुम्हारी जितनी भी बची-खुची सेना है, उसका सेनापति मुझे बना दो। मैं अपनी जान पर खेल कर भी पांडवों को नेस्तनाबूद कर दूंगा।'

दुर्योधन ने होंठों ही होंठों में कहा, 'यदि तुम ऐसा कर सकते हो तो, कर डालो।' मौत सामने खड़ी होने के बावजूद वो अपने दिल में जलती बदले की आग से स्वयं ही विस्मित था।

उसकी बात से हल्का होकर अश्वत्थामा ने अपनी तलवार से धरती पर वार किया।

कृपा ने पूछा, 'विजेताओं को नष्ट कैसे करोगे? हम सिर्फ तीन हैं और वो इतने सारे?'

अश्वत्थामा ने दांत पीसते हुए उत्तर दिया, 'मुझे नहीं पता लेकिन मैं करूंगा। पक्का कर डालूंगा।'

सूर्यास्त होते ही उन तीनों ने सरोवर के पास खड़े पेड़ पर उल्लू को उतर कर बैठते और उसकी शाखाओं पर सोते कौओं को चुन-चुन कर मारते देखा। अश्वत्थामा ने उत्साह से उछल कर विस्मयपूर्वक कहा, 'इसी तरह।'

अश्वत्थामा पर छाए हत्या के जुनून को समझ कर कृपा बोले, 'नींद में सोते हुओं पर आक्रमण! ये तो अनर्थ है! ये धर्म विरुद्ध है!'

'किसी स्त्री को रणभूमि में ले कर आना क्या धर्म विरुद्ध नहीं था? अपने हथियार किनारे रख चुके निहत्थे व्यक्ति का वध करना क्या अधर्म नहीं था? कमर के नीचे वार करके किसी व्यक्ति का वध करना अधर्म नहीं है? पांडवों ने धर्म की कब परवाह की? तो फिर हम ही उससे बंधे क्यों रहें?' ऐसा बोलते हुए अश्वत्थामा दबे पांव पांडवों के युद्ध शिविर की ओर बढ़ चला। कुछ झिझकने के बाद कृपा और कृतवर्मा भी उसके पीछे हो लिए।

कृपा और कृतवर्मा ने पहरेदारी की नीयत से अपनी नजर इधर-उधर दौड़ाई ओर अश्वत्थामा

नंगी तलवार लेकर उस ओर बढ़ चला जिस ओर पांचाल के क्षत्रिय सो रहे थे। प्रवेश द्वार पर उसे विध्वंस के भगवान शिव मिले। लेकिन उनका रूप दयालु शंकर वाला नहीं बल्कि प्रचंड भैरव का था। रक्तरंजित और गले में मुंडमाला धारण किए हुए।

शिव को शीश नवाकर अश्वत्थामा पांडवों के पंडाल में घुसा और वहां उसे द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न तथा शिखंडी सोते हुए दिखे। उसने तलवार उठाई और उनके गले पर एक ही वार करके उनकी हत्या कर दी। उसके मुंह से निकला, 'लो, मैंने भीष्म और द्रोण का प्रतिशोध ले लिया।' उसके बाद उसने पांडव बंधु समझ कर पांच अन्य क्षत्रियों को मौत के घाट उतार दिया।

'लो मैंने सारे कौरवों का बदला ले लिया।' उसके बाद उसने पांडवों के शिविर में आग लगा दी। जान बचा कर भाग निकलने वालों के प्राण कृपा और कृतवर्मा ने अपने बाणों से हर लिए।

अश्वत्थामा ने कटे सिर ले जाकर दुर्योधन को भेंट किए और चिल्लाकर बोला, 'शिव के आशीर्वाद से मैंने पांचों पांडव भाइयों के सिर काट लिए हैं।' दुर्योधन को इस बात पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। उसने कराहते हुए कहा, 'मुझे जरा भीम का सिर दिखाओ।' उसे जब सिर सौंपा गया तो उसने, उसे अपनी दोनों हथेलियों के बीच दबाकर किसी नारियल के समान फोड़ दिया। उसके बाद दुर्योधन ने कहा, 'ये तो भीम के सिर के मुकाबले अत्यंत कमजोर है। तुमने ये किस की हत्या कर दी अश्वत्थामा?

कृपा ने सिरों को पास से देखा और विलापित स्वर में बोले, 'ये तो पांडव नहीं हैं। ये तो बहुत छोटे मुख हैं, बच्चों के। अरे अश्वत्थामा, क्रोध में अंधे होकर तुमने द्रौपदी के पांचों पुत्रों की हत्या

कर दी।' अश्वत्थामा को तो मानो काठ मार गया।

दुर्योधन भी पश्चाताप में चीखा, 'क्या अब हम बच्चों की हत्या पर उतारू हो गए? ये सिलसिला कब खत्म होगा। जब हम सबकी मृत्यु हो जाएगी। ये तो पागलपन है। पांडव मृतकों पर शासन करेंगे? हां अश्वत्थामा, मैं भले ही पराजित हो गया हूं, मगर वास्तव में जीता तो कोई भी नहीं!' इन दर्द भरे शब्दों के साथ ही दुर्योधन के प्राण पखेरू उड़ गए।

युद्ध के नियम	**नियम किसने तोड़ा**	**पीड़ित**
युद्धभूमि में कोई भी स्त्री नहीं लड़ेगी	पांडवों ने (अर्जुन)	भीष्म
अकेले योद्धा पर सामूहिक आक्रमण नहीं होगा	कौरवों ने (द्रोण)	अभिमन्यु
सूर्यास्त के बाद युद्ध नहीं होगा	पांडवों ने (अर्जुन)	जयद्रथ
द्वंद्व में कोई अन्य दखल नहीं करेगा	पांडवों ने (सात्यकी)	भूरिश्रवा
पशुवध नहीं किया जाएगा	पांडवों ने (भीम)	अश्वत्थामा (गज)
असत्य प्रचार नहीं होगा	पांडवों ने(युधिष्ठिर)	द्रोण
हथियार डाल देने वालों की हत्या नहीं की जाएगी	पांडवों ने(धृष्टद्युम्न)	द्रोण
धनुष नीचे रख देने वाले योद्धा से कोई नहीं लड़ेगा।	पांडवों ने (अर्जुन)	कर्ण
कमर के नीचे कोई भी वार नहीं करेगा।	पांडवों ने (भीम)	दुर्योधन
नींद में सोने वालों पर कोई वार नहीं करेगा।	कौरवों ने (अश्वत्थामा)	पांडवों के पुत्र

अश्वत्थामा को शाप

उगते सूर्य ने भयावह दृश्य देखा: पांडवों की समूची सेना के जले हुए शव और द्रौपदी के भाइयों एवं पुत्रों सिर कटे शव।

उनके ऊपर आकाश में हजारों गिद्ध मंडरा रहे थे। कौओं की कांव-कांव चारों ओर गूंज रही थी। सिर्फ सात योद्धा जीवित बचे:पांच पांडव और दो यादव—कृष्ण एवं सात्यकी।

द्रौपदी का आर्तनाद गूंजा, 'हाय, मेरे बच्चे, अपने बाल गूंथने की इतनी बड़ी कीमत?'

आंसू रुकते ही प्रतिशोध के दानव ने कुरूप सिर उठा दिया। उसने पूछा, 'किसकी करतूत है ये?' धृष्टद्युम्न के सारथि ने पूरा लोमहर्षक दृश्य अपनी आंखों से देखा था और उसने बताया कि अश्वत्थामा ने सोते हुए क्षत्रियों पर कैसी निर्दयता से वार किया था। मानो कोई उल्लू रात के अंधेरे में कौओं को खा रहा हो। द्रौपदी बोली, 'मैं उसकी मृत्यु देखना चाहती हूं।'

इस पर कृष्ण बोले, 'प्रतिशोध के इस कुचक्र को यहीं पर तोड़ना होगा। अश्वत्थामा कभी द्वारका आया था और वो मुझसे मेरा सुदर्शन चक्र मांगने लगा। वो चूंकि ब्राह्मण था, इसलिए उसे सुदर्शन चक्र सौंप देना मेरा कर्तव्य था। उसने चक्र को अपने बाएं हाथ से उठाने का प्रयास किया। फिर उसे दाहिने हाथ से उठाने की कोशिश की, लेकिन उससे जब चक्र नहीं उठ पाया तो वो रोने लगा। इस पर मैंने उससे पूछा कि मेरे जिस अस्त्र को कभी, किसी ने भी मांगने की हिम्मत नहीं की, उसे वो क्यों पाना चाहता था। मुझसे न तो मेरे मित्र अर्जुन ने और न ही कभी मेरे पुत्र प्रद्युम्न ने कभी मेरा चक्र मांगा था। उसने कहा कि उसे पता है ये संसार में सबसे शक्तिशाली हथियार है, इसीलिए वो इसे पाना चाहता था। चक्र का मेरे ही विरुद्ध प्रयोग करके वो संसार का सबसे शक्तिशाली योद्धा बन जाना चाहता था। ताकि समूचा संसार उससे भयभीत रहे। ऐसा था उसका स्वभाव! वो हालांकि ब्राह्मण परिवार में पैदा हुआ था, लेकिन उसके पिता ने उसका जैसा लालन-पालन किया उससे वो महत्वाकांक्षी दानव बन गया था। उसे सत्ता की चाहत तो है मगर वो उसका तर्कसंगत उपयोग करना नहीं जानता। लिहाजा वो न तो ब्राह्मण रह पाया और न ही क्षत्रिय बन पाया। उसकी हत्या कर देने से समाधान नहीं होगा, उसे जीवित पकड़ कर लाओ।'

अश्वत्थामा को खोजने के लिए अनुचर भेजे गए। उधर अश्वत्थामा को जब ये आभास हुआ कि पांडव उसे खोज रहे हैं तो उसने अपने धनुष से ब्रह्मास्त्र नामक प्रक्षेपास्त्र दाग दिया। प्रक्षेपास्त्र ज्यों ही पांडवों की ओर बढ़ा त्योंही अर्जुन ने उसे निष्प्रभाव करने के लिए अपने धनुष से जवाबी

ब्रह्मास्त्र दाग दिया। प्रक्षेपास्त्र ज्यों ही लपलपाते हुए एक-दूसरे को निगलने के लिए आगे बढ़े त्यों ही आकाश में घटाटोप अंधेरा छा गया। तूफानी हवा चलने लगी। हवा के साथ आई धूल और कंकड़ पृथ्वी पर बरसने लगे। पक्षी व्याकुल होकर चिचियाने लगे। पृथ्वी पर मानो भूकंप आ गया। इन दोनों घातक प्रक्षेपास्त्रों से निकले तेज ने भारी उथल-पुथल मचा दी। हाथी खड़े-खड़े आग की लपटों से घिर गए और जान बचाने को यहां-वहां दौड़ने लगे। अश्व भी खड़े-खड़े धरती पर ढेर हो गए। एक-दूसरे से टकराने को आतुर हरेक प्रक्षेपास्त्र में से दस हजार अग्निजिह्वाएं लपलपा रही थीं। दोनों ही मानो विनाश का पर्याय थे।

ये देखकर कृष्ण चिल्लाए, 'अपने-अपने अस्त्र वापिस बुलाओ।' उन्होंने दोनों योद्धाओं से अनुरोध किया, 'तुम्हारे प्रक्षेपास्त्र धरती को जलाकर उस पर स्थित समूचा जीवन विनष्ट कर देंगे।' दोनों प्रक्षेपास्त्रों के आपस में टकराने की आशंका से विह्वल व्यास आदि ऋषियों ने भी दोनों योद्धाओं से कृष्ण का आग्रह मान लेने का अनुरोध किया।

परिस्थिति के घातक परिणाम को समझ कर अर्जुन ने अपने प्रक्षेपास्त्र को वापिस अपने तुणीर में बुला लिया, लेकिन अश्वत्थामा को प्रक्षेपास्त्र वापिस बुला लेने की विधि का ज्ञान नहीं था, इसलिए उसने कुचेष्टा दिखाते हुए उसे पांडव पत्नियों के गर्भ नष्ट कर देने का निर्देश दे दिया। ऐसा करते हुए, वो बोला, 'ये पांडवों सभी गर्भस्थ वंशजों की हत्या कर दे ताकि मैं अपने पिता और अपने मित्र के हत्यारों को निर्वंश करने में सफल रहूं।'

ये सुनकर क्रोध में आगबबूला कृष्ण, अभिमन्यु की विधवा उत्तरी की ढाल बन कर खड़े हो गए और उस मारक प्रक्षेपास्त्र की सारी चोट अपने ऊपर झेल गए। इससे प्रक्षेपास्त्र उत्तरी की कोख में पल रहे पांडवों के एकमात्र वंशज की हत्या नहीं कर पाया।

कृष्ण इसके बाद अश्वत्थामा की ओर मुड़े और उसे भयावह शाप दे दिया। उनके मुंह से यही एकमात्र शाप निकला, 'अश्वत्थामा तुम्हारा अपराध इतना अधिक नीचतापूर्ण है कि तुम्हें तीन हजार साल तक मौत नहीं आएगी। उस दौरान तुम्हारे घावों में मवाद भरा रहेगा और त्वचा पर फफोले पड़ जाएंगे। उनकी यंत्रणा से तुम अपने अपराध की भीषणता पर पछताने को मजबूर रहोगे।'

अश्वत्थामा के माथे पर मणि जड़ी हुई थी। मणि उसके लिए अत्यंत सौभाग्यशाली थी। मणि को उससे छीन कर द्रौपदी को सौंप दिया गया। द्रौपदी ने वो मणि युधिष्ठिर को दे दी। उसके बाद अश्वत्थामा को समूची मानव जाति के लिए अपशकुन मान कर उसे नागर सभ्यता से निष्कासित कर दिया गया।

- अनेक विद्वानों के अनुसार अश्वत्थामा एवं अर्जुन द्वारा छोड़े गए अस्त्रों से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल के ऋषियों को या तो परमाणु अस्त्र बनाने का ज्ञान था अथवा वे उनके अस्तित्व से परिचित थे।
- हिंदू धर्म में गर्भपात को प्राचीन काल से ही घोरतम अपराध माना जाता है। इसका कारण सिर्फ गर्भस्थ शिशु की मृत्यु ही नहीं है, बल्कि इससे किसी पूर्वज के पुनर्जन्म का अवसर भी समाप्त हो जाता है। अश्वत्थामा द्वारा पांडव पत्नियों के गर्भपात का ये प्रयास किया जाना और और भी निकृष्ट कार्य इसलिए है, कि वो जन्मना ब्राह्मण था जिसका कार्य जीवन रक्षा करना है। इसीलिए भगवान द्वारा उसे दिया गया दंड मृत्यु से भी बदतर है। उसे जीवित रह कर दुख झेलना पड़ेगा। ऐसी जनश्रुति है कि आज भी लहरों की सिसिकियों अथवा हवा के विलाप को जब ध्यान से सुना जाता है तो उसमें अश्वत्थामा का दर्द सुनाई देता है। वो बालकों का हत्यारा होने के कारण मनुष्यों से लज्जित होकर अपना मुंह नहीं दिखाना चाहता।
- अश्वत्थामा दरअसल वर्णजनित नियमों के उल्लंघन से होने वाले पतन का प्रतीक है। ब्राह्मण पुत्र होने के कारण उसे आश्रम धर्म के अनुसार ब्राह्मण अथवा ऋषि का जीवन व्यतीत करना चाहिए था। उसके बजाए उसने क्षत्रिय धर्म को अपनाया, वो भी निर्बलों संरक्षण के लिए नहीं बल्कि सत्ता प्राप्ति के लिए। इसीलिए कृष्ण ने उसके प्रति लेशमात्र करुणा भी नहीं जताई। वो मानवीय सभ्यता के पतन तथा मनुष्य के क्रोध एवं लालच की पराकाष्ठा का प्रतीक है।
- द्रौपदी को व्यास रचित महाभारत में निस्सहाय एवं क्रोधी स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है। अपने भाइयों एवं पुत्रों की मृत्यु पर विलाप तथा प्रलाप करते हुए ऐसा जताया गया है। क्षेत्रीय कथाओं में उसका भिन्न नायिकाओं के रूप में पुनर्जन्म होता है जिनमें वो इतनी असहाय नहीं है। हिंदी की मध्यकालीन गाथा आल्हा में वो बेला के अवतार में है जो युद्ध में अपने क्षत्रिय पति की मृत्यु हो जाने पर उसके साथ ही चिता में सती हो जाती है। उत्तरी तमिलनाडु की लोककथा में द्रौपदी की अवतार वीरशक्ति है जो पांच पवित्र प्रतीकों (नगाड़ा, घंटी, कोड़ा, त्रिशूल और हल्दी की डिबिया) से सज्जित होकर दुर्गा के समान दानव का संहार करती है।

कुंती का भेद

अपने-अपने पिता के शव को रणभूमि में व्यग्रता से ढूंढ़ते अनाथों के चीत्कार हवा में गूंज रहे थे। बूढ़े दृष्टिहीन दंपती धृतराष्ट्र और गांधारी, विधवा हो चुकी अपनी सौ पुत्रवधुओं के साथ रणभूमि में घुसे।

विधवा स्त्रियां अपने-अपने पति को ढूंढ़ने के लिए यहां से वहां दौड़ने लगीं। उन्होंने देखा कि वहां सिर कटे धड़, कटे बाजू,, कुचली टांगें फैली पड़ी हैं और, महायोद्धाओं की जीभ कुत्ते चबा रहे थे। तथा धनुर्धरों की उंगलियां चूहे कुतर रहे थे। सड़ते हुए शवों की दुर्गंध असह्य थी।

पांडवों ने अचानक अपनी मां कुंती को कौरवों के शवों के आसपास मंडराते देखा। इस पर युधिष्ठिर ने पूछा, 'माता आप किसे ढूंढ़ रही हैं?'

वो बोलीं, ‘कर्ण को’।
अब अर्जुन बोला, ‘उस सारथी के पुत्र को क्यों?’

अंततः सत्य बोलने का साहस जुटा चुकी कुंती बोलीं, ‘क्योंकि वो, तुम्हारे ज्येष्ठ भाई थे। मेरी पहली संतान।’

अर्जुन को ये सुन कर मानो काठ मार गया। आखिर वो जब इस सदमे से उबरा तो उसका मन शोकग्रस्त हो गया। वो, ये सोचने लगा कि उसने अपने लिए पितृवत रहे भीष्म और अपने गुरु द्रोण ही नहीं बल्कि अपने ही भाई कर्ण का भी वध कर दिया। तभी युधिष्ठिर ने पूछा, ‘उन्हें ये पता था?’

कुंती ने हामी भर दी। इससे अर्जुन और भी उद्विग्न हो गया।

उन्होंने अपने पुत्रों को बताया कि कैसे बालसुलभ जिज्ञासा में दुर्वासा ऋषि के वरदान को आजमाने के लिए उन्होंने सूर्य का आह्वान कर डाला था जिसके कारण उन्हें कुंती को संतान देनी पड़ी थी। उन्होंने अपने पुत्रों को बताया कि कर्ण ने अर्जुन के अलावा किसी भी अन्य पांडव की हानि नहीं करने का उन्हें वचन दिया था। कर्ण ने कहा था, ‘अर्जुन सहित और उसके बिना भी आप हमेशा पूरे संसार को बता सकती हैं कि आपके पांच पुत्र हैं।’

पांडवों को युद्ध का वो दृश्य याद आ गया कि कर्ण ने अवसर होने के बावजूद उनका बाल भी बांका नहीं किया था। उनकी समझ में अब आया कि कर्ण ने वैसा क्यों किया था। वे सभी दुखी हो गए। उन्हें विजयश्री अपने सहोदर का ही रक्त बहाकर मिली थी। युधिष्ठिर ने उसांस भर कर कहा, ‘हे भगवान, आगे से कोई भी स्त्री ऐसा भेद कभी छिपा नहीं पाए।’

अर्जुन ने भी शोक से विह्वल होकर पूछा, ‘आपने, हमें ये बात पहले क्यों नहीं बताई?’

इस पर कृष्ण ने हस्तक्षेप किया, 'यदि ये बता देतीं तो क्या तुम उससे लड़ पाते? और यदि तुम उससे लड़ते नहीं तो कौरवों को कभी परास्त नहीं कर पाते। तक धर्म की पुनःस्थापना भी नहीं हो पाती।'

कृष्ण के इस तर्क से भी कुंती पुत्रों का शोक नहीं घटा।

- कर्ण के जन्म का सत्य बताने के बाद कुंती और उनके पुत्रों के बीच आपसी संबंध कभी सहज नहीं हो पाए। वे उनसे नाराज थे। उन्होंने लोकलाज के लिए अपने ही पुत्र को अनाथ कर दिया? उन्होंने इतने वर्ष तक पांडवों को कर्ण से घृणा करने दी? यदि वे चुप नहीं रहतीं तो संसार कर्ण से इतना अन्याय कभी नहीं कर पाता।
- कर्ण के माध्यम से व्यास ये दर्शाते हैं कि धारणाओं और निराधार सूचनाओं पर टिकी संसार की जानकारी अधूरी है। हमारे चारों ओर ऐसी न जाने कितनी कुंती हैं जो लोकलाज के डर से सत्य को छिपाती रहती हैं। हमारे चारों ओर कर्ण रूपी कथित खलनायक फैले हैं जो वास्तव में अंततः सगे भाई सिद्ध होते हैं।

बुजुर्गों का रोष

कृष्ण ने पांडवों से कहा कि वे कौरवों के माता-पिता को प्रणाम करके आएं। 'लेकिन भीम तुम सावधान रहना, धृतराष्ट्र के भीतर उबलते रोष से बच कर रहना। वो जब तुम्हारा आलिंगन करना चाहे तो अपनी जगह अपनी लोहे की प्रतिमा उसके आगे कर देना।'

भीम ने इस सलाह का पालन भी किया। धृतराष्ट्र ने लौह प्रतिमा को इतने कस कर आलिंगनबद्ध किया कि वो मिट्टी की मूर्ति के समान खंड-खंड हो गई। इससे सिद्ध हो गया कि अपने पुत्रों के हत्यारे के प्रति दृष्टिहीन राजा के मन में कितना गहरा रोष था।

धृतराष्ट्र ने वैसा कर तो दिया मगर मन हल्का होते ही वे विलाप करने लगे, 'मैंने ये क्या कर दिया। रोष के वशीभूत मैंने अपने पुत्र समान भतीजे की हत्या कर दी।'

लेकिन गांधारी ये ताड़ गई थी कि भीम जीवित है। उसकी सांसों की ध्वनि से उसे ये भान हो गया था। उसने कसैले मुंह से कहा, 'कृष्ण ने फिर पांडवों को बचा लिया।'

पांडु पुत्र जब उन्हें प्रणाम करने के लिए आगे बढ़े तो विदुर उनके कान में फुसफुसाए, 'गांधारी अपने गुस्से को नियंत्रित करो। यदि तुम इन लोगों को शाप दोगी तो ये धरा महीप विहीन हो जाएगी।'

इसलिए पांडवों ने जब उनका चरण स्पर्श किया तो उन्होंने अनिच्छापूर्वक ही सही, उन्हें आशीर्वाद दिया। ऐसा करते हुए उनकी आंखों से इतने अधिक आंसू बहे कि उनकी पट्टी गीली होकर उनके बोझ से नीचे गिर गई। उसी दौरान उनकी नजर युधिष्ठिर के पंजे पर पड़ी। उस क्षण भर पड़ी निगाह में भी रोष की इतनी आग थी कि युधिष्ठिर का विशाल पंजा नीला पड़ गया। उसी दृष्टिपात के साथ गांधारी का सारा रोष भी शांत हो गया।

द्रौपदी के मिलने आने पर गांधारी उससे लिपट कर रोने लगीं, 'हम दोनों ही निःसंतान हो गईं। अब हम माताएं रोएं न तो क्या करें।' द्रौपदी भी रोते हुए गांधारी से कस कर लिपट गई।

गांधारी को प्रतीत हुआ कि उनके पास कृष्ण खड़े हैं। उन्होंने पूछा, 'मेरी सारी संतानों की मृत्यु क्यों आवश्यक थी? तुम, उनमें से किसी एक को भी जीवित नहीं छोड़ सकते थे?'

कृष्ण ने अत्यंत करूण स्वर में जवाब दिया, 'आपके पुत्रों का वध मैंने तो नहीं किया। ये आपका और उनका प्रारब्ध था। बहुत समय पहले आपने चावल पकाते समय उसका गर्म-गर्म मांड अपनी रसोई के बाहर धरती पर उलीच दिया था, जिससे किसी कीट द्वारा दिए गए सौ अंडे नष्ट हो गए थे। उसी कीट ने आपको शाप दिया था कि जैसे उसने अपनी संतानों की मृत्यु देखी, वैसे ही आप भी अपने जीते जी अपनी सभी संतानों की मृत्यु का दंश झेलेंगी।'

गांधारी ने प्रतिवाद किया, 'लेकिन वो तो किसी बच्ची द्वारा अनजाने में किया गया कार्य था?'

कृष्ण का उत्तर था, 'कर्म का यही नियम है। कोई भी कार्य भले ही कितना भी निर्दोष हो, उसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी। व्यक्ति को उसे झेलना ही पड़ता है। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में झेलना पड़ेगा।'

कृष्ण ने तब उन्हें नृग नामक राजा की कथा सुनाई। नृग ने अपनी गाय किसी ऋषि को दान कर दी, लेकिन वो गाय फिर से राजसी गोशाला में लौट आई। उसे अनजाने में दोबारा किसी अन्य

ऋषि को दान कर दिया गया। लेकिन एक ही गाय के दावेदार दोनों ऋषियों ने क्रोधित होकर नृग को शाप दे दिया और उसे अगला जन्म छिपकली के रूप में लेना पड़ा।
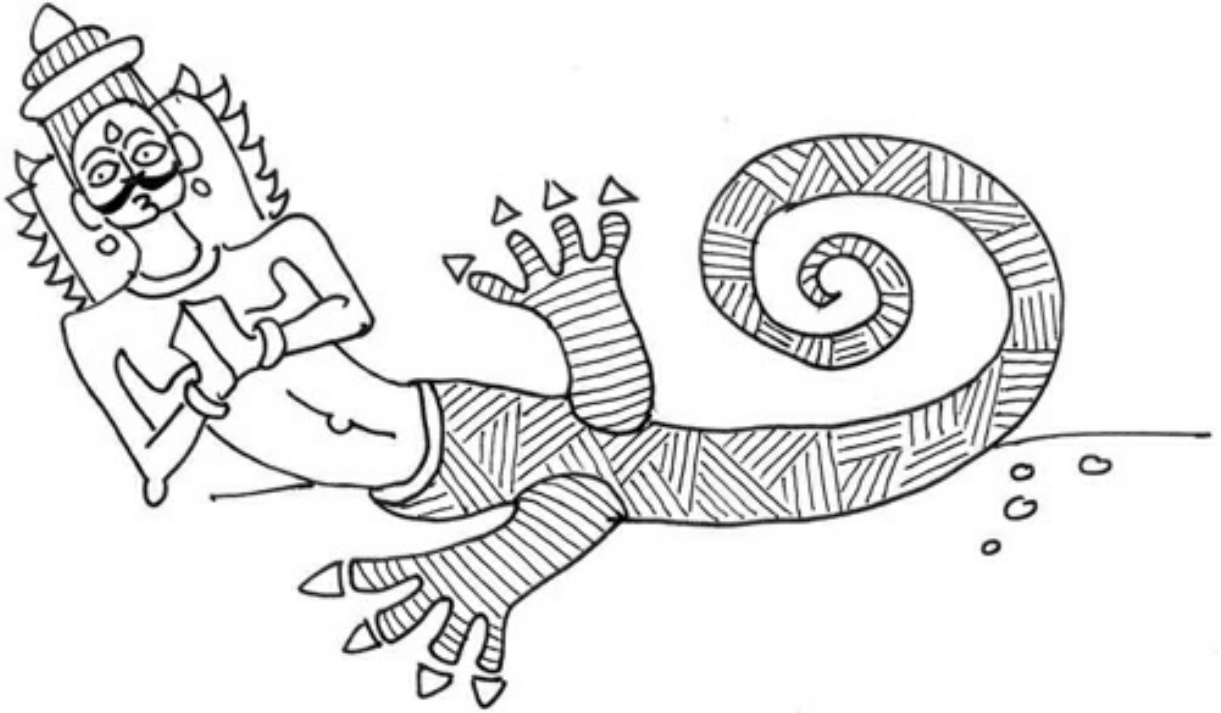
- रोष का निकल जाना ही ठीक है। धृतराष्ट्र ने लौह प्रतिमा पर और गांधारी ने अपनी नजर से युधिष्ठिर के पांव का पंजा जलाकर अपना क्रोध निकाल दिया। बाहर निकलते ही रोष से मुक्ति मिल जाती है और विवेक पुनः स्थापित हो जाता है। भारत के अनेक अंचलों में क्रोधित होने पर चीनी खाने की सलाह दी जाती है, जैसे गांधारी ने किया ताकि वो पांडवों को शाप नहीं दे दें।
- आंध्र प्रदेश में स्त्रियों को गांधारी के समान पृथ्वी पर गर्म पानी डालने से मना किया जाता है। बाहर डालने से पहले पानी या तो ठंडा होने दिया जाए अथवा उसमें ठंडा पानी मिला देना चाहिए।
- ओडिशा में ये जनश्रुति है कि गांधारी के किसी शिला पर बैठने से उसके नीचे कछुए द्वारा दिए गए अंडे टूट गए थे, जिससे कुपित होकर मादा कछुए ने गांधारी को शाप दिया था। उसीके फलस्वरूप अपनी सारी संतानों से हाथ धो बैठना गांधारी का प्रारब्ध बन गया।
- महागाथा में मृत्यु के स्रोत का अंदाजा लगाया गया है। सृष्टि के देवता ब्रह्मा को किसी दिन ये समझ में आया कि उनकी सभी संतानें बच्चे पैदा करती जा रही हैं और उनकी लगातार बढ़ती संख्या के बोझ तले पृथ्वी कष्ट पा रही है। ये देख कर उन्होंने मृत्यु नामक देवी की रचना कर दी। उस देवी ने तो लेकिन किसी भी जीव के प्राण हरने से इन्कार कर दिया। वो इतने भीषण महापाप की भागी नहीं बनना चाहती थी। ब्रह्मा ने उन्हें आश्वस्त किया कि वे ऐसे किसी भी पाप की भागी नहीं बनेंगी। 'जीवों द्वारा अपने जीवनकाल में किए गए पाप और पुण्य के अनुपात से ही मृत्यु तय होगी। आप सिर्फ परिवर्तन का कारक बनेंगी। मृत्यु का बोझ उन्हीं पर होगा जो उस जीवन को जिएंगे।' इस प्रकार सभी जीव बाह्य कारणों से नहीं बल्कि अपने ही कर्मों के कारण मृत्यु को प्राप्त होंगे।

गांधारी का शाप

कृष्ण को पता था कि उनके उपदेश से गांधारी के हृदय की पीड़ा दूर नहीं होगी। उनके द्वारा

समझाने के बावजूद गांधारी रोती रहीं। सूर्यास्त हो गया था। क्षितिज पर गिद्धों और कौओं और कुत्तों तथा प्रेतों के जमघट को शवों पर टूट पड़ने को तैयार देखकर कुरूवंश की रोती-बिलखती विधवाओं ने राजप्रासाद में लौटने का निर्णय किया। उन्होंने सिसकियां भरते हुए गांधारी से कहा, 'आइए मां अब वापिस चलें। हम अपने पतियों और पुत्रों का दाह संस्कार करने कल यहां वापिस आएंगी।'

'तुम जाओ, मैं अपनी संतानों को छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी। इस रणभूमि में यूं अनाथों के समान पड़े, अपने बच्चों का मुझे साथ देने दो।'

कृष्ण ने भी कहा, 'घर जाइए। आपको जब इससे भी अधिक पीड़ा अथवा आनंद मिलेंगे तो ये दर्द स्वयं ही काफूर हो जाएगा।'

गंधारी ने गुस्से में उन्हें झिड़का, 'नहीं। तुम्हें, मेरी पीड़ा का अनुमान कैसे लगेगा? तुम तो सौ पुत्रों की माता कभी बने नहीं।' ये समझ जाने पर कि आंखों पर पट्टी बांधे, कौरवों की माता, रणभूमि में ही रात बिताने को उद्धत हैं, बाकी सबने उन्हें वहीं अकेला छोड़कर नगरी में लौटने का निर्णय किया।

उस रात हवा में भूखे गिद्धों और कुत्तों तथा कौओं की आवाज गूंजती रही। गांधारी जिस लाठी के सहारे चलती थीं उसको घुमा-घुमा कर उन्हें अपने पुत्रों के शवों से दूर खदेड़ती रहीं। वो अपनी दुखद स्थिति पर आंसू बहाती रहीं। वो पांडवों प्रति नाराज थीं। कृष्ण के लिए भी उनके मन में रोष था। वे, इस जीवन से ही असंतुष्ट थीं।

आधी रात को उनका भूख के मारे हाल बुरा हो गया। भूख इतनी तेज लगी थी कि उन्हें भोजन

के अलावा कुछ सूझ ही नहीं रहा था। तभी उन्हें वहां आम की सुगंध आने लगी। वो आम ऊपर से लटका हुआ था। उस आम को तोड़ कर खाने के लिए उन्होंने पत्थरों का ढेर बनाया और उस पर चढ़ कर अपना हाथ आम तोड़ने के लिए बढ़ाया। आम बहुत स्वादिष्ट था। आम को खाते ही उनकी भूख शांत हो गई। गांधारी का मन फिर सामान्य रूप में सोचने लगा। अब उन्हें सुध आई कि जिन्हें उन्होंने पत्थर समझ कर ढेर बनाया था। और जिन पर खड़े होकर उन्होंने आम तोड़ा वो दरअसल उनके, अपनों के शव थे। उन्होंने अपनी संतानों के शवों का ढेर लगाकर आम तोड़ा और अपनी क्षुधा शांत की थी।

ये तथ्य समझते ही उनकी आत्मा चीत्कार कर उठी, 'अरे कृष्ण, अब मुझे माया की शक्ति का अनुमान लग गयाः जो तुम्हें दुखी होने के लिए भ्रमित करती है, उसे और भी अधिक दुखदायी भ्रम से भूला जा सकता है। मगर कृष्ण मुझे सत्य का दर्शन करवाने के लिए तुम्हें इतना अधिक क्रूर माध्यम अपनाने की क्या आवश्यकता थी। हे कुटिल, मैं तुम्हें श्रापित करती हूं। मैं तुम्हें ये शाप देती हूं कि तुम्हें भी अपने प्रियजनों के विछोह का दुख इसी प्रकार झेलना पड़ेगा। तुम्हें भी निस्सहाय ये देखना पड़े कि तुम्हारी संतान, तुम्हारे पौत्र, और तुम्हारा समूचा कुल आपस में ही लड़कर नष्ट हो जाए। और तुम जैसे महान भगवान को भी साधारण से शिकारी के हाथों जंगली पशु की तरह मृत्यु को प्राप्त होना पड़े।'

अगले दिन क्षत्रियों के शवों का ढेर लगाकर उनके दाह संस्कार की तैयारी की गई। लेकिन इतने सारे शवों के लिए लकड़ी कम पड़ गई। इसलिए टूटे-फूटे रथों, उनके पहियों और ध्वजों का ईंधन के रूप में प्रयोग करके चिता प्रज्वलित की गई। चिता की लपटें इतनी ऊंची उठीं कि स्वर्ग तक जा पहुंची। चिता जलने से इतना सारा उजाला फैला मानो सूर्यदेव स्वयं धरती पर उतर आए हों।

- भगवान जब नश्वर शरीर धारण करते हैं तो उन्हें, उसी रूप में जीना पड़ता है। उन्हें पाप और पुण्य का भागी भी बनना पड़ता जिससे उनकी मृत्यु का स्वरूप भी तय होता है। व्यास हमें याद दिलाते हैं कि सभी कार्यों के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव होते हैं। धर्म की स्थापना के लिए कृष्ण अनेक लोगों को मौत के घाट उतरवाते हैं। इसलिए किसी एक पक्ष की नजरों में वे खलनायक तो दूसरे पक्ष के लिए स्नेहसिक्त माताओं के प्रिय पुत्र होते हैं। इसीलिए न्याय में आस्था की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए जहां कृष्ण को असीम आशीर्वाद मिलते हैं, वहीं माता का हृदय विदीर्ण करने के लिए उन्हें श्रापित भी होना पड़ता है। किसी एक दृष्टिकोण से जो सत्कर्म लगता है वही किसी दूसरे दृष्टिकोण से शायद उस रूप में नहीं सराहा जाता। व्यास इस प्रकार जीवन के इस विचन को परिलक्षित करते हैं कि जिसमें ईश्वरीय सत्कर्म भी मनुष्य की चुनौती से अछूता नहीं रहता।
- अनेक दृष्टिकोणों से महाभारत युद्ध के लिए गांधारी को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। अपनी आंखों पर उनके द्वारा भी पट्टी बांध लिए जाने से वे अपनी संतान का सत्य कभी नहीं जान पाईं। वे यदि अपनी आंखों पर पट्टी न बांध लेतीं और उस बात को अपनी आन नहीं बना लेतीं तो शायद के वे माता के रूप में कुछ अलग होतीं। उन्हें माता के रूप में संतान से इतना मोह न होता और गाथा में शायद कुछ भिन्न, कुछ कम हिंसक प्रकरण पैदा होता।
- ये कल्पना करना एकांगी या सरलीकृत होगा कि पांडव अच्छे हैं और कौरव बुरे हैं और इसीलिए कृष्ण ने पांडवों का साथ दिया। पांडव बदलने के इच्छुक हैं; वे अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को विजित करना चाहते हैं। बदलाव की प्रक्रिया अत्यंत कठिन है। विवेकवान होने की प्रक्रिया में पांडवों को वनवास भुगतना, प्रियजनों का वध और अपने बच्चों की हत्या हो जाने का दंश तक झेलना पड़ता है। उनके मुकाबले कौरव सिर्फ अपने राजपाट से चिपके रहते हैं जैसे कुत्ते हड्डी से चिपके रहते हैं। वे बदलने से इन्कार कर देते हैं। इसीलिए वे बिना कुछ सीखे सीधे मृत्यु को प्राप्त होते हैं। कृष्ण गुरु अवश्य हैं, लेकिन सीखने की उत्कंठा तो सीखने वालों में होनी चाहिए।

यदु और कुरू वंश के बीच वैवाहिक संबंध
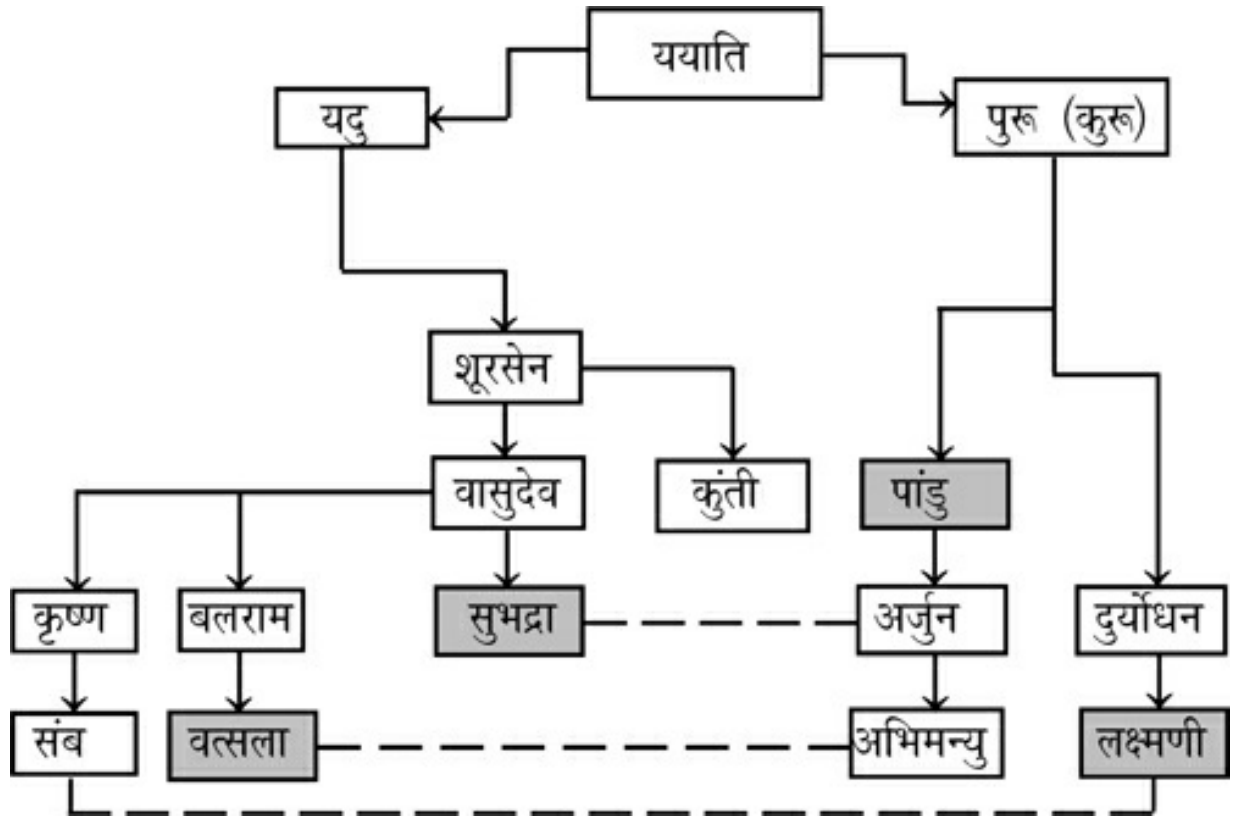
सत्रहवां अध्याय

पुनर्निर्माण

'जनमेजय, ज्ञान मृत्युपर्यंत रहना चाहिए, ताकि अगली पीढ़ी अधिक प्रबुद्ध हो पाए।'

युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

और तब यह सब खत्म हुआ: युद्ध, शवों का दाह संस्कार, गंगा नदी में अस्थि विसर्जन और शोक की लंबी अवधि। रोने और उपवास करने का समय समाप्त हुआ। अब फूलों की सजावट, ध्वज फहराने और पकवान बनाने की घड़ी आ पहुंची। हस्तिनापुरी के नए राजा युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का सुअवसर आ गया। युधिष्ठिर जो पांडु के पुत्र और विचित्रवीर्य के पौत्र तथा शांतनु के प्रपौत्र हैं।

लेकिन ये क्या, ज्येष्ठ पांडव को तो राजपाट से विरक्ति हो गई थी। वो बिलखते हुए बोले, 'मैं तो हत्यारा हूं। मेरे हाथ अपने ही परिवार के रक्त से सने हुए हैं। शवों के ढेर पर बैठ कर मैं सफलता का आनंद कैसे भोगूं? ये सब निरर्थक है।'

अर्जुन ने कहा, 'जीवन का अर्थ है, जिंदगी रूपी खेल के मैदान में प्रतिस्पर्धा करके आगे बढ़ना।'

भीम ने कहा, 'अतीत तो बीत गया। उसका चिंतन मत करिए। वर्तमान और भविष्य के बारे में सोचिए। हम सब जो भोजन करेंगे और जो मदिरा चखेंगे, उसकी कल्पना कीजिए। वही तो जीवन का सार है।'

नकुल बोला, 'सार ये है कि संपदा अर्जित करके उसे गरीबों, प्रबुद्धों और योग्य लोगों में वितरित किया जाए।'

सहदेव हमेशा के समान मौन ही रहा। द्रौपदी भी अपने पांच पुत्रों के शोक में डूबी चुप्पी साधे रही।

विदुर ने अपने भतीजे से गंभीर स्वर में कहा, 'मृत्यु तो सभी को प्राप्त होनी है—कुछ को अचानक, कुछ को धीरे-धीरे, कुछ को पीड़ा भोग कर, कुछ को शांतिपूर्वक। मृत्यु से कोई भी नहीं बच सकता। जीवन की सार्थकता उस को भोगने, उसका आनंद उठाने, उसका उत्सव मनाने, उससे सीखने, उसका मर्म समझने, अन्य मानवों के साथ सुख-दुख बांटने में निहित है—ताकि जब मृत्यु आए तो वो इतनी डरावनी न लगे।'

आध्यात्मिक या अभौतिक के अस्तित्व को नहीं मानने वाला चार्वाक नगरी के चौराहे से चिल्लाया, 'हां युधिष्ठिर, जीवन अर्थहीन है। इसलिए हर क्षण का आनंद लो, कल की चिंता मत करो। मृत्यु के बाद कोई जीवन नहीं, कोई मुक्ति नहीं, कोई ईश्वर नहीं। यदि तुम्हें प्रसन्नता होती है तो राजा अवश्य बनो; यदि ऐसा नहीं है तो राजा बिल्कुल मत बनो। जीवन का प्रयोजन ही ऐश करना है।'

इन सारी बातों के बावजूद युधिष्ठिर का चित्त शांत नहीं हो पाया। वे सारा दिन राजप्रासाद के गलियारों के चक्कर लगाते रहे और रात भर बिस्तर में करवट बदलते रहे। उन्हें विधवाओं और अनाथों का चीत्कार सताए जा रहा था। उनके दर्द को कोई भी समझ नहीं पाया, 'शायद मुझे साधु बन जाना चाहिए। वनगमन करके शांति प्राप्त करनी चाहिए।'

तभी कृष्ण बोले, 'हां, युधिष्ठिर आप संसार को त्याग कर संन्यासी बन कर शांति प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन बाकी सारे जगत का क्या होगा? क्या आप उन्हें भी त्याग देंगे?' युधिष्ठिर को इसका कोई उत्तर नहीं सूझा, लेकिन कृष्ण बोलते गए, 'संन्यासी सिर्फ अपने अस्तित्व का सत्य खोजता है, लेकिन कोई राजा ही ऐसा राज्य बना सकता है, जिसमें सभी सत्यशोधन कर सकें। इसलिए राजा बनने का विकल्प चुनिए। युधिष्ठिर, आप ऐसा अपना दायित्व समझ कर नहीं बल्कि मानवता के प्रति संवेदना के नाते कीजिए।'

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया, 'मैं ही क्यों करूं?'

'आपसे उपयुक्त और कौन है? आप, जो अपने राजपाट को ही द्यूतक्रीड़ा में हार गए, तो मनुष्य की कमियों के प्रति आपसे अधिक संवेदनशील और कौन होगा? आपने वनवास के तेरह वर्ष अपने मुंह पर ताला लगाकर भुगत चुके, इसलिए आप से अधिक क्षमाशील और पश्चातापी और कौन होगा? आप, जिसने दुर्योधन को शांति का हरेक प्रस्ताव ठुकराते देखा, अहं की माया और अधर्म के भय को भलीभांति समझते हैं। आप जिसने अपने ही गुरु के वध के लिए झूठ बोला, धर्म की क्लिष्टताओं से भलीभांति परिचित हैं। कुंती पुत्र सिर्फ आप ही के पास ऐसे विश्व की स्थापना की क्षमता है, जहां दिल और दिमाग, संपत्ति और विवेक तथा अनुशासन और करुणा के बीच

संतुलन स्थापित रह सके। आइए युधिष्ठिर, अपने भाइयों को साथ लेकर पृथ्वी पर विष्णु के समान स्थापित हो जाइए।'

युधिष्ठिर को और अधिक मनाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उन्हें राजा के पद का मर्म समझ में आ गया था। वे राजमुकुट धारण करने के लिए राजी हो गए।

सभी ज्येष्ठों की उपस्थिति में उन्हें कुरूवंश के लिए आरक्षित प्राचीन राजगद्दी पर बैठाया गया। उन्हें पंच स्नान कराया गया। उनके हाथों में सबसे पहले शंख, फिर कमल पुष्प, फिर गदा और अंत में राजसी धनुष थमाया गया।

फिर ब्राह्मणों ने कहा, 'विष्णु के समान शंख फूंकिए और इस बात पर जोर डालिए कि आपके नियम संसार को भलीभांति समझ में आ जाएं। जो उनका पालन करे, उसे समृद्धि के कमल से विभूषित करिए और जो उल्लंघन करे उसे गदा घुमाकर अनुशासित कीजिए। और धनुष की तरह हमेशा संतुलित रहिए—न तो अत्यधिक सख़्त और न ही एकदम ढीले।'

नए राजा को सभी ने दंडवत प्रणाम किया। ये नए युग का सूत्रपात था, ऐसा युग जिसमें कृष्ण द्वारा निर्देशित पांच पांडव धर्म को पुनर्स्थापित करेंगे। आशाओं से प्रफुल्लित जनता ने सौ बैलों को जोत कर बनाई बग्घी में जनदर्शन को निकले श्वेत-स्वर्णिम वस्त्रभूषणों से सज्जित अपने नए राजा का जय-जयकार किया। नगरी के आठों कोणों से शंख फूंके गए। नगरी के हरेक मार्ग पर उन्हें पुष्पवर्षा से सराबोर किया गया। युद्ध अतीत की स्मृति प्रतीत होने लगा। ये दृश्य महान कुरूवंश की गरिमा के अनुरूप अत्यंत भव्य था।

- प्राचीन काल में राजतिलक की रस्म, मंदिर में पाषाण मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा के समान ही हुआ करती थी। इसका प्रयोजन भावी राजा की चेतना के स्तर को उन्नत करना था इसके द्वारा जैसे पत्थर की मूर्ति को दिव्यता प्राप्त हो जाती थी और उसे श्रद्धालुओं का दुखभंजक माना जाता था, उसी प्रकार राजा बनाते समय इसके माध्यम से सामान्य जन में ईश्वर के समान चेतना पैदा करने का प्रयास किया जाता था। जिससे वो अपनी चिंता कम करे और प्रजा का अधिक ध्यान रखे।
- ये कभी नहीं भूलना चाहिए कि युधिष्ठिर के राजतिलक के समय हरेक पांडव को ये भान भलीभांति था कि उनकी सारी संतानों की हत्या हो चुकी थी—अभिमन्यु, घटोत्कच, इरावण, बर्बरीक और द्रौपदी के पांचों पुत्रों की भी। एकमात्र जीवित उत्तराधिकारी अजन्मा है—अभिमन्यु की विधवा उत्तरी की कोख में बढ़ता हुआ। इसलिए कुछ कथावाचकों द्वारा इसके वर्णन के अनुरूप ये कोई बहुत उत्साहजनक अवसर नहीं होगा।
- धर्म का अर्थ विजय मात्र नहीं है। इसका मर्म संवेदना और श्रीवृद्धि में निहित है। युधिष्ठिर को संतान मृत्यु की पीड़ा का अहसास है। वे शत्रु की पराजय पर प्रसन्न होने के बजाए उनके प्रति संवेदना महसूस कर सकते हैं। संवेदना में ही विवके निहित है।

शरशैया

राजतिलक समारोह संपन्न होने पर कृष्ण ने पांडवों को सलाह दी, 'जाइए और अपने पितामह का आशीर्वाद पाकर आइए। अपनी मृत्यु के पूर्व उनके द्वारा शांति और समृद्धि की कुंजी आप स्वयं को सौंपने दीजिए।'

शरशैया पर लेटे भीष्म के बिंधे हुए शरीर से प्राण धीरे-धीरे निकल रहे थे, लेकिन वे अपने अनुभव और ज्ञान नए राजा से साझा करने के इच्छुक थे। उन्हें देख कर भीष्म बोले, 'पहले मुझे

जरा सा पानी पिलाओ।'
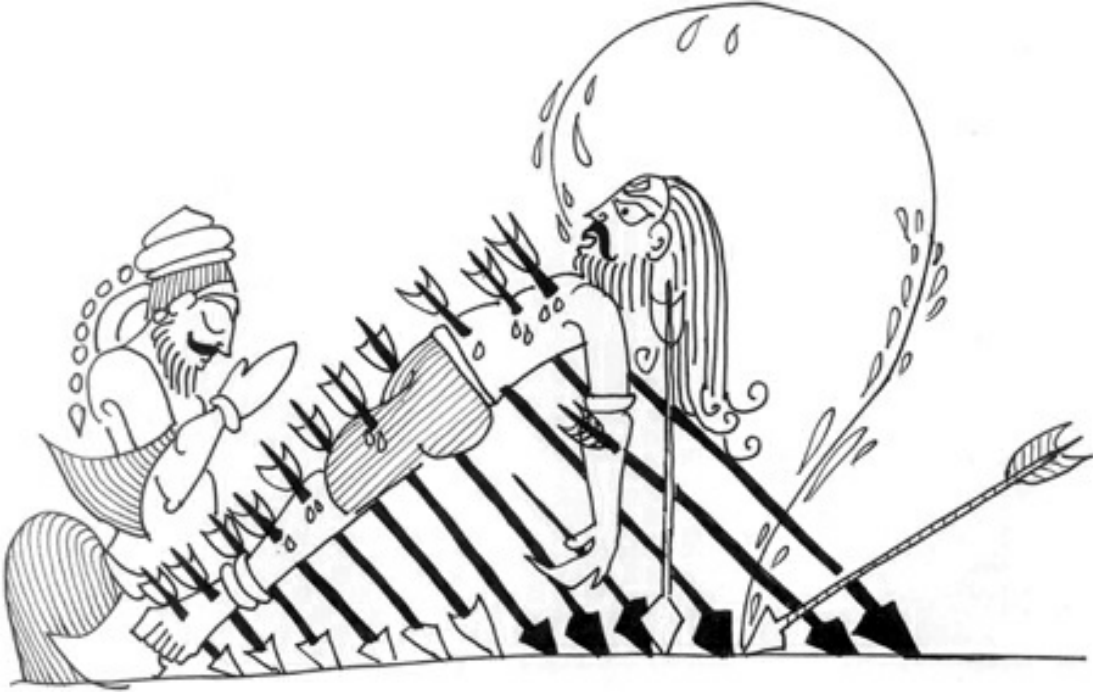
अर्जुन ने तत्काल धरती में तीर दागा और उससे फूटी जलधारा सीधे मृत्युशैयासीन पितामह के मुंह में पहुंच गई।

प्यास बुझने पर भीष्म, युधिष्ठिर से बोले, 'जीवन तो नदी के समान है। आप इसकी धारा का मुंह मोड़ने के लिए भले संघर्ष करें मगर ये तो अपने रास्ते पर ही जाएगी। इसमें स्नान करें, इसका आचमन करें, इससे तरोताजा हो जाएं, इसे सबके साथ बांटें, लेकिन इससे लड़ें कदापि नहीं, इसके बहाव में कभी न बहें और इसमें आसक्त भी कभी न हों। इसे ध्यान से देखें। इससे सबक सीखें।'

भीष्म ने युधिष्ठिर को मनुष्य की स्थिति के बारे में भी बताया, 'चील से जान बचा कर कोई कबूतर राजा शिवि के पास पहुंच कर आश्रय मांगने लगा। राजा ने जैसे ही उसे अपने संरक्षण में लिया, चील आ धमकी और चिल्लाई, 'अब मैं अपना पेट कैसे भरूं?' शिवि ने तब चील को और कोई कबूतर खाने के लिए दे दिया। तब चील बोली, 'अरे, राजन दूसरे पक्षियों के लिए ये तो उचित नहीं है, या तुम्हें उचित लगता है?' तब राजा ने चील से कहा कि वो उनके शरीर में से कबूतर के वजन बराबर मांस नोच ले। इस पर चील ने तर्क किया, 'राजन, आप कितना मांस दे पाएंगे? आगे-पीछे आपकी मृत्यु हो जाएगी और कबूतर को अपनी चिंता स्वयं ही करनी पड़ेगी। जब तक एक प्राणि नहीं मरेगा, तब तक दूसरा प्राणि जीवित नहीं रह पाएगा। यही जीवन का प्राकृतिक चक्र है।' ये सुनकर राजा को अपने पर संदेह हुआ, 'क्या मैंने कबूतर को बचा कर गलती कर दी?' राजा की आत्मा ने जवाब दिया कि उन्होंने कोई गलती नहीं की। तो फिर मनुष्य को क्या करना चाहिए? राजा को क्या करना चाहिए? कबूतरों को बचाकर चीलों को भूखे मरने दिया जाए? अथवा कबूतरों को खाकर चील को अपनी जान बचाने दी जाए? राजा उसी क्षण ये

बात समझ गए कि पशुओं की तुलना में मनुष्य कितने भिन्न हैं। पशु अपना समूचा जीवन अपने अस्तित्व को बचाने में ही व्यतीत कर देते हैं। मनुष्य अपना अस्तित्व बचाने के आगे की भी सोच सकते हैं, जीवन का अर्थ खोज सकते हैं। अपनी जान बचाने के लिए किसी अन्य की क्षति कर सकते हैं, अपना जीवन बलिदान करके दूसरों की जान बचा सकते हैं। मानव जाति को वो अख्तियार प्राप्त है कि वे संवेदना जता और शोषण कर सकते हैं। इसी विशिष्ट गुण के बूते मानवों को जंगल के कानून से छुटकारा पाकर सभ्यता स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई है।'

भीष्म ने युधिष्ठिर को मानव समाज के बारे में बताया, 'मानव को पशुओं से इतर कल्पनाशीलता का उपहार प्राप्त है। उसी से वे भविष्य का पूर्वानुमान लगाकर उसे सुरक्षित कर सके। भविष्य सुरक्षित बनाने के फेर में बहुधा जमाखोरी की प्रवृत्ति पनप गई; आवश्यकता पर लालच हावी हो गया। लालच ने शोषण को जन्म दिया। राजा वेणा ने पृथ्वी का इतना अधिक दोहन किया कि अपने शोषण से तंग आकर पृथ्वी ने गाय का रूप धारण किया तथा विदा ले ली। फिर क्षत्रियों ने वेणा का वध करवाया। तब वेणा पुत्र पृथु ने पृथ्वी रूपी गाय से वापिस अपने मूल रूप में आ जाने की प्रार्थना की। उसने कहा, 'यदि आपने इनका पालन नहीं किया तो मेरी प्रजा मर जाएगी।' गाय रूपी पृथ्वी ने रोषपूर्वक प्रतिवाद किया, 'तुम्हारी प्रजा मेरे थनों को इतना अधिक दुहती है कि उनमें घाव हो जाते हैं। वे अपनी महत्वाकांक्षा से मेरी कमर तोड़ देते हैं।' पृथु ने तब ये वचन दिया कि वो शोषण के स्थान पर संवेदना पर आधारित आचार संहिता स्थापित करेंगे। उससे मानव जाति का अस्तित्व बचा रहेगा। पृथु ने आश्वस्त किया, 'ये आचार संहिता ही धर्म कहलाएगी। इसी संहिता के प्रचलन से पृथ्वी गाय बन गई और राजा पृथ्वी के गोपालक बन गए। उन्होंने ये नियम लागू किया कि मनुष्यों और गाय के बछड़ों-बाछियों को भरपेट दूध मिलता रहे।'

भीष्म और युधिष्ठिर के मध्य संवाद अनेक दिन चलता रहा। आरंभ में उनकी हर बात मृत्यु का ग्रास बनने जा रहे मनुष्य का प्रलाप लगती थी मगर बाद में हर बात का अर्थ स्पष्ट होता गया।

युधिष्ठिर ने उनसे अनेक बातें सीखीं—इतिहास, भूगोल, विधि, शासन, अर्थशास्त्र तथा दर्शन। इन सभी विषयों से संबंधित ज्ञान उन्हें देवताओं, असुरों तथा मानवों की विचित्र कथाओं के माध्यम से प्राप्त हुआ।

युधिष्ठिर के पास प्रश्नों की खान थी। भीष्म ने भी हरेक प्रश्न का उत्तर दिया। युधिष्ठिर ने रौ में बहकर ये प्रश्न भी पूछ लिया, 'जीवन में अधिक आनंद किसे प्राप्त होता है, पुरुष को अथवा स्त्री को?'

भीष्म बोले, 'सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं होते युधिष्ठिर। तुमने जो पूछा, उसके बारे में किसी को भी पता नहीं, लेकिन भंगश्वान अपवाद हो सकता है। भंगश्वान प्राचीन राजा था और इंद्र ने उसे स्त्री बन जाने का शाप दे दिया था। पृथ्वी पर वो अकेला ऐसा प्राणि था जो स्त्री और पुरुष दोनों ही रूप में यौन सुख भोग चुका था। वही अकेला ऐसा व्यक्ति था जिसके पिता और मां, दोनों ही संबोधनों से पुकारने वाले बच्चे थे। ये सिर्फ उसे ही ज्ञात था कि यौन सुख स्त्री के रूप में अधिक मिलता है अथवा उसे पुरुष के रूप में अधिक भोगा जा सकता है। अकेले उसे ही पता था कि 'पिता' का संबोधन 'मीठा' है अथवा 'माता' का संबोधन 'अति मीठा'। बाकी हम सब तो बस अनुमान ही लगा सकते हैं।'

अंततः भीष्म ने पांडवों को भगवान के बारे में बताया, 'हमारे पुण्यों से सौभाग्य बनता है। हमारे पाप दुर्भाग्य पैदा करते हैं पुण्यों से हमें आनंद प्राप्त होता है। पाप से दुख मिलता है। इस प्रकार हम कर्म से संचालित होते हैं। कर्म से ही हम लौकि संसार से बंधते हैं। कर्म ही हमें जन्म लेने के लिए मजबूर करते हैं। यही हमें मरने के लिए मजबूर करते हैं। इसे, एक के अलावा कोई नहीं बदल समता। वो एक हैं भगवान। कर्म गति से निपटने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो।

इसके बाद भीष्म ने विष्णु सहस्रनाम का उच्चारण शुरू कर दिया। वे जैसे-जैसे नाम उच्चारित कर रहे थे, पांडवों ने देखा कि क्षितिज पर सूर्य उत्तरायण हो रहा था। यही भीष्म द्वारा प्राण त्यागने की वेला थी।

- रामायण और महाभारत दोनों में ही युद्ध के अंत में मृत्यु से पूर्व उपदेश का प्रसंग है। रामायण में राम अपने विद्वान शत्रु रावण से अपनी मृत्यु से पूर्व अपना ज्ञान बांटने का अनुरोध करते हैं। महाभारत में पांडवों द्वारा भीष्म से मृत्यु पूर्व अपना ज्ञान हस्तांतरित करने की प्रार्थना की जाती है। इन दोनों ही प्रसंगों में शायद ये तथ्य निहित है कि मृत्यु के बाद संपत्ति तो अक्षुण्ण रहती है मगर शायद ज्ञान नहीं बच पाता। इसलिए ज्ञान को जीवित लोगों को ही हस्तांतरित किया जाता है ताकि वो विलुप्त न हो जाए।
- शांति पर्व का उत्तरार्ध तथा समूचा अनुशासन पर्व लगभग समान ही है। दोनों में ही भीष्म विभिन्न विषयों पर अपना ज्ञान हस्तांतरित करते हैं। ये विषय हैं: मृत्यु एवं अमरत्व, संन्यस्त जीवन एवं गृहस्थ जीवन, शांति एवं संघर्ष, पुनर्जन्म एवं मोक्ष, स्थान एवं काल, स्वास्थ्य एवं रोग, कर्तव्य एवं विषय वासना।
- महाभारत, भारत के उन आरंभिक ग्रंथों में से है जिनमें कर्मकांडवाद एवं अमूर्त अनुमानों के बजाए भक्ति के प्रचार पर ध्यान लगाया गया है। इसमें दिव्यता निर्गुण नहीं बल्कि सगुण है। रामायण एवं महाभारत दोनों में ही विष्णु को भगवान बताया गया है। विष्णु अर्थात भगवान का सांसारिक रूप। ऐसा शायद इसलिए है कि इन दोनों ही महागाथाओं को सरोकार संपत्ति एवं संघर्ष जैसे सांसारिक मुद्दों से है।
- भगवान की कृपा प्राप्त करने के लिए भगवान का नाम जपने की प्रथा महाभारत से ही आरंभ हुई मानी जा सकती है। भगवान को भीष्म अपनी मृत्यु से पूर्व विष्णु रूप में स्थापित करके विष्णु के एक हजार नाम अर्थात विष्णु सहस्रनाम जपते हैं। प्रत्येक नाम दिव्य शक्ति के किसी रूप अथवा पराक्रम से संबंधित है। जप के दौरान वे कृष्ण को पृथ्वी पर विष्णु का अवतार मानते हैं। इसके माध्यम से वे कृष्ण को महज नायक और महान व्यक्ति की पदवी से उठाकर दिव्यता का व्यक्तिगत स्वरूप प्रदान करते हैं। स दक्षिण भारत में अनेक समुदाय माघ (जनवरी-फरवरी) माह में शुक्ल पक्ष के ग्यारहवें दिन भीष्म एकादशी का पर्व मनाते हैं। इसी पर्व पर पांडवों को विष्णु सहस्रनाम का ज्ञान हुआ था।

मृत्यु एवं पुनर्जन्म

भीषण युद्ध की समाप्ति के बाद लंबी अवधि बीतने पर पड़ी पूर्णिमा से आठवें दिन भीष्म ने अपने प्राण त्याग दिए। वे इस बात से संतुष्ट थे कि उनका समूचा ज्ञान, उनकी मृत्यु के बाद भी अक्षुण्ण रहेगा। उसके उपयोग का भार नए राजा के कंधों पर था।

भीष्म के दाह संस्कार में पृथ्वी पर जीवित बचे सभी राजा और क्षत्रिय शामिल हुए। वे कुरू कुल के पितामह ही नहीं बल्कि पिछली पीढ़ी के अंतिम प्रतिनिधि भी थे। उनकी मृत्यु के साथ ही युगांत हो गया था। भीष्म की मृत्यु पांडवों के लिए तो व्यक्तिगत त्रासदी थी। उनके लिए वे पितातुल्य थे।

इसके बावजूद शोक की अवधि शीघ्र ही समाप्त हो गई क्योंकि भीष्म की अंत्येष्टि के कुछ सप्ताह बाद ही अभिमन्यु की विधवा उत्तरी को प्रसव पीड़ा हुई। उसकी प्रसूति का समय आ जाने की सूचना से समूचे राजप्रासाद में उल्लास छा गया। द्रौपदी से लेकर गांधारी तक राजप्रासाद की सारी स्त्रियां इस युवती की सुरक्षित प्रसूति करवाने के लिए जमा हो गई। उनकी चिंता का कारण यह था कि वो कुरूवंश के अंतिम जीवित उत्तराधिकारी को जन्म देने वाली थी।

उत्तरी दम साध कर जोर लगा रही थी और उसके चारों ओर जमा स्त्रियां परिणाम के लिए उत्सुकतापूर्वक उस पर नजर गड़ाए हुए थीं। आखिर शिशु उत्तरी की कोख से बाहर आया। वो पुत्र था। सभी के चिंतित मुखों पर मुस्कान खिल आई। तभी दाई ने विस्मयपूर्वक कहा, 'शिशु रो नहीं रहा! शिशु हिलडुल नहीं रहा। मुझे लगता है कि ये मृत ही जन्मा है।'

इतना सुनना था कि कुरू कुल की सारी स्त्रियां विलाप करने लगीं। क्या ये परिवार श्रापित है? क्या इसके प्रारब्ध में टूट कर समाप्त हो जाना ही बदा है?

राजप्रासाद की स्त्रियों का चीत्कार कृष्ण ने भी सुना। वे स्त्रियों के प्रासाद की ओर दौड़े और नवजात शिशु को अपने हाथों में ले लिया। कृष्ण बोले, 'डरो मत शिशु। ये संसार इतना भयावह

नहीं है।’

कृष्ण के राहतदायक शब्द सुनकर और स्नेहसिक्त स्पर्श से नन्हें से राजकुमार ने अपनी आंखें खोलीं और मुस्कुराया। कृष्ण ने भी प्यार भरी मुस्कान के साथ उसे संसार को सौंप दिया। ‘लो, ध्यान से देखो, अगली पीढ़ी के पहले परीक्षित।’

- भीष्म अठावन दिन बाद मृत्यु को प्राप्त हो गए। विद्वानों में इन अठावन दिनों की गिनती पर मतभेद है। ये अठावन दिन, युद्धारंभ की तिथि से अथवा युद्ध समाप्त होने की तिथि से या फिर भीष्म को तीरों से छलनी करने की तिथि से गिने जाएं? अलबत्ता ये स्पष्ट है कि उन्होंने शिशिर की समाप्ति की सूचक मकर संक्रांति के बाद प्राण त्यागे थे। इसके साथ ही सूर्य के उत्तरायण होने से दिन लंबे और अपेक्षाकृत गर्म हो जाते हैं। इस हिसाब से तो युद्ध साल के सबसे अंधेरे और ठंडे दिनों में, शिशिर ऋतु में हुआ था। इसे तथ्य मानें या प्रतीकात्मक, मगर ये पूरे युग और महान कुटुंब के खात्मे को अवश्य दर्शाता है।
- बी.एन. नरहरि आचार ने प्लैनेटेरियम सॉफ्टवेयर का प्रयोग करके युद्ध की तिथि निकाली है। ये हस्तिनापुरी के लिए कृष्ण की यात्रा आरंभ करने से लेकर भीष्म की मृत्यु पर समाप्त होती है। उनका निष्कर्ष है कि कृष्ण ने 26 सितंबर 3067 बीसीई को यात्रा आरंभ की थी। वे 28 सितंबर को हस्तिनापुरी पहुंचे और कर्ण के यहां से फिर 9 अक्टूबर को लौट गए। नवचंद्रिका के साथ 14 अक्टूबर को सूर्य ग्रहण पड़ा। उस समय महागाथा में वर्णित ग्रह दशा के अनुसार शनि, रोहिणी नक्षत्र में और बृहस्पति, रेवती नक्षत्र में स्थित था। युद्ध 22 नवंबर, 3067 बीसीई को आरंभ हुआ। भीष्म की मृत्यु 17 जनवरी, 3066 बीसीई (माघ शुक्ल अष्टमी) को हुई। शिशिर की संक्रांति 13 जनवरी, 3066 को पड़ी। यहां ये भी ध्यान रहे कि पांच हजार साल पूर्व शिशिर की संक्रांति की तिथि वर्तमान तिथि से एकदम भिन्न थी। रात्रि में ग्रह-नक्षत्रों की आकाश में स्थिति वर्तमान स्थिति से भिन्न रूप में हमारे पूर्वजों ने देखी थी।
- अनेक विद्वानों का मत है कि भीष्म की मृत्यु माघ माह में सूर्य के उत्तरायण होने के बाद हुई थी। उनकी चूंकि कोई संतान नहीं थी, इसलिए वे हमेशा मर्त्य लोक में फंसे रहेंगे। मृतक स्थल पर चूंकि भोजन का कोई प्रबंध नहीं है, इसलिए ब्राह्मण आज भी पिंडदान करते हैं। भीष्म अष्टमी को दान किए जाने वाले ये पिंड चावल के आटे के होते हैं।

अश्वमेध यज्ञ

परीक्षित के जन्म के साथ ही युधिष्ठिर के मुख पर मुस्कान लौट आई। उनका वंश जारी रहेगा।

इस आनंददायक अवसर का उत्सव मनाने के लिए राजर्षि धौम्य ने अश्वमेध यज्ञ करवाने का सुझाव दिया। धौम्य, अब भी पांडवों के पारिवारिक गुरु थे। अश्वमेध यज्ञ में राजसी अश्व को एक साल तक सेना के साथ चारों ओर मुक्त विचरण के लिए भेजा जाता है। ये घोड़ा जहां-जहां बिना चुनौती मिले घूमेगा, वो क्षेत्र पांडवों के अधीन हो जाएगा। अश्व के वापस लौटने पर उसके द्वारा साल भर में अर्जित सत्ता तथा यश को राजा के नाम हस्तांतरित करने के लिए उसकी बलि चढ़ा दी जाती है।

इस सुझाव से अपने भाइयों के अति उत्साहित होने पर युधिष्ठिर ने इसे स्वीकृति दे दी। ब्राह्मणों ने दिव्य शक्ति के आधार पर पता लगाया कि अश्वमेध के लिए सबसे उपयुक्त घोड़ा भद्रावती नरेश युवानश्व की घुड़साल में ही मिल सकता है। अश्व को वहां से लेकर आने के लिए भीम अपने पौत्र और घटोत्कच के पुत्र मेघवर्ण और कर्ण के पुत्र तथा अपने भतीजे वृषध्वज के साथ रवाना हो गया। युवानश्व ने आरंभ में तो अपना घोड़ा देने से साफ इन्कार कर दिया लेकिन लंबे वाद-विवाद और कर्ण पुत्र के शक्ति प्रदर्शन तथा घटोत्कच पुत्र द्वारा मायावी जाल फैलाने के बाद वो राजी हो गया।
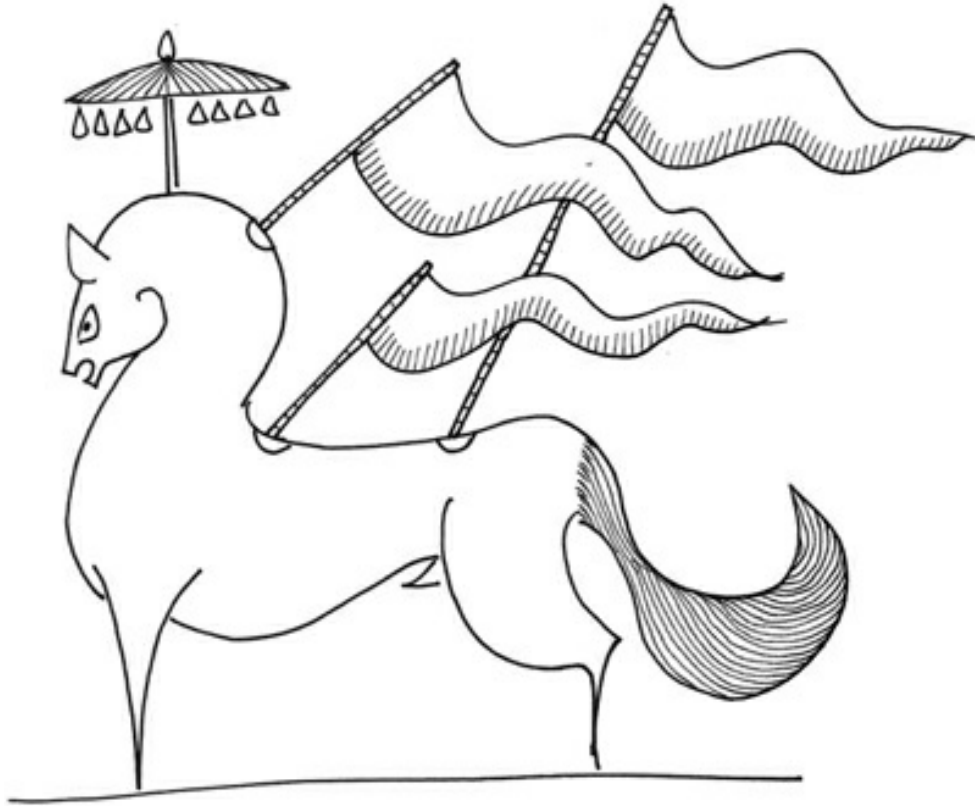
अश्व को हस्तिनापुरी लाने के बाद यज्ञ आरंभ हुआ और रीति-रिवाज के साथ घंटे-घड़ियाल, शंख ध्वनि तथा मंत्रोच्चार के बीच उसे नगरी की सीमा के बाहर अनजाने क्षेत्र में छोड़ दिया गया।

घोड़े के पीछे चल रही सेना का नेतृत्व स्वयं अर्जुन कर रहे थे। उनके साथ नकुल भी था। भीम और सहदेव उनकी अनुपस्थिति में हस्तिनापुरी की रखवाली के लिए वहीं रुक गए।

अश्व के चंपकपुरी पहुंचने पर वहां के राजा हंसध्वज ने विरोध में मोर्चा संभाल लिया। वह युधिष्ठिर की अधीनता अस्वीकार करने पर इतना अधिक उद्धत था कि उसने अपने राज्य में सबसे युद्ध में शामिल होने को कहा। उसने ये घोषणा करवा दी कि राज्य में जो भी अर्जुन से युद्ध में शामिल नहीं होगा, उसे उबलते तेल में डलवा दिया जाएगा। राज्य के प्रवेश द्वार पर जब हंसध्वज की सेना ने मोर्चा संभाला तो दुर्भाग्य से उसका कनिष्ठ पुत्र सुधन्व कहीं दिखाई नहीं पड़ा। वो अपनी पत्नी के साथ अभिसार में लगा हुआ था। अपने पुत्र द्वारा अपनी पत्नी के आनंद को अपने कर्तव्य पर वरीयता देने से कुपित होकर राजा ने उसे उबलते तेल में पटक देने का आदेश दिया। सुधन्व की पत्नी ने दया याचना की। कोई सुनवाई न होने पर उसने, द्रौपदी की विपत्ति में उसकी सहायता करने वाले कृष्ण से याचना की। कृष्ण ने उसकी प्रार्थना सुन ली और उनके दिव्य प्रभाव से खौलते तेल में डाले जाने पर सुधन्व का बाल भी बांका नहीं हुआ।

हंसध्वज के ज्येष्ठ पुत्र सुरथ ने अपने पिता की सेना के साथ अर्जुन को चुनौती दी। वह इतने जोशपूर्वक लड़ा कि उसका सिर कटने के बावजूद उसका धड़ तलवार भांजता रहा।
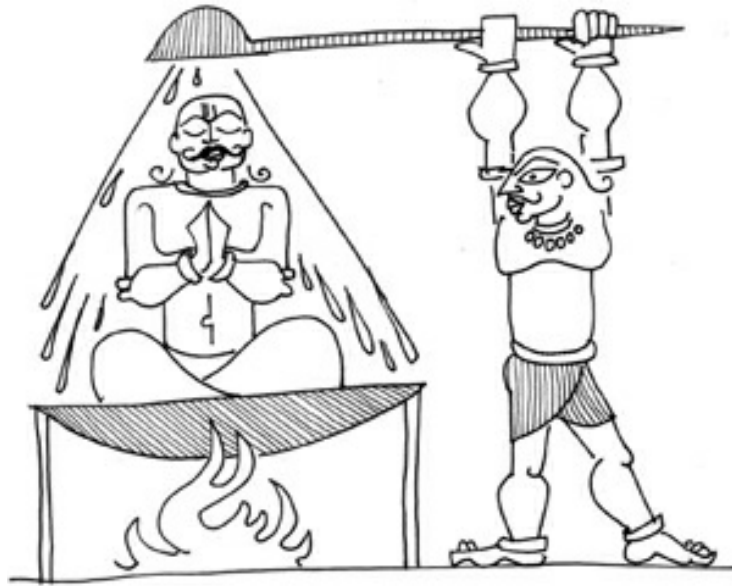
इससे देवता इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने सुरथ का सिर ले जाकर शिव को भेंट कर दिया। शिव ने अपने गले में पहने अन्य बहादुर योद्धाओं के मुंडों की माला में उसे भी पिरो लिया।

अपने ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु से टूटे हंसध्वज ने अर्जुन के सामने हथियार डाल दिए और युधिष्ठिर के राजसी घोड़े को चंपकपुरी से गुजर जाने दिया।

उसके बाद अश्व गौरीवन पहुंचा। ये देवी का पवित्र उपवन था। ये उपवन मंत्रपूत था, सो वहां पहुंचकर सभी स्त्री बन जाते थे। घोड़े का खुर उसके भीतर पड़ते ही वह घोड़ी बन गया। उसके पीछे-पीछे आ रही सेना उपवन के बाहर ही रुक गई। पक्षियों की बोली समझने में सिद्धहस्त नकुल को वन्य जीवों ने उपवन की दूसरी ओर प्रतीक्षा करने को कहा। उपवन से बाहर निकलते

ही घोड़ी वापस घोड़ा बन जाएगी।

इस उपवन के बीचोबीच स्त्रियों की नगरी नारीपुर स्थित थी। वहां की स्त्रियों को ये शाप था कि वे अपने विवाह से पूर्व नारीपुर की सीमा नहीं लांघ सकतीं, लेकिन उनकी शादी भी इसलिए नहीं हो पाती थी कि जो भी पुरुष मंत्रपूत उपवन में जाता, नारी बन जाता। नगरी की बंदी और परेशान रानी ने घोड़ी बन चुके युधिष्ठिर के घोड़े को बांधकर नारीपुर में ही रख लिया और संदेश भिजवाया, 'यह यहां से तभी गुजर पाएगी और युधिष्ठिर मेरे अधिपति तभी बन पाएंगे जब अर्जुन मेरा पत्नी के रूप में वरण करेंगे।' उसका संदेश उपवन के जीवों द्वारा नकुल के माध्यम से अर्जुन को मिला। ये संदेश पाते ही अर्जुन पहले आग-बबूला हुआ लेकिन फिर सद्बुद्धि आने पर उसने विवाह की स्वीकृति दे दी। ये सुनकर आनंद विभोर प्रमिला घोड़ी की रास पकड़े मंत्रपूत उपवन से बाहर आई। घोड़ी तत्काल घोड़ा बन गई और प्रमिला, अर्जुन की पत्नी। अर्जुन ने अपनी नई पत्नी से कहा, 'हस्तिनापुरी जाओ और मेरे वापस आने की प्रतीक्षा करो।' प्रमिला ने उसकी बात मान ली और वह युधिष्ठिर के घोड़े को संरक्षण देता आगे बढ़ गया।

युधिष्ठिर के अश्व ने फिर सिंधु नदी पार की और सिंधु राज्य में अर्जुन का स्वागत दुःशला ने किया। दुःशला, कौरवों की एकमात्र बहन और जयद्रथ की पत्नी थी। जयद्रथ ने अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के वध में सहायता की थी लेकिन अब पिछली भूल-चूक की लेनी-देनी हो चुकी थी। इसलिए अर्जुन ने स्नेहपूर्वक अपनी बहन को गले लगाया तथा उसके पुत्र को आशीर्वाद दिया।

अर्जुन आगे गांधार पहुंचा। वहां शकुनि पुत्रों ने उसका स्वागत किया। यहां भी पांडवों के विरुद्ध किसी का मन मैला नहीं था। मानो बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुध लेय, कहावत साकार हो

गई।

अर्जुन अंत में समुद्र किनारे पहुंचा, जहां घोड़ा उसकी लहरें भी चलकर पार कर गया। स्वयं भी लहरों पर चलते हुए अर्जुन को बेहद आश्चर्य हुआ। अर्जुन को पता चला कि ये चमत्कार ऋषि बकदलभ्य की आध्यात्मिक शक्ति से हुआ। वे पास ही स्थित समुद्र ताल में रहते थे। ऋषि ने उन्हें कथा सुनाई, 'मैंने अपनी घोर तपस्या से देवराज इंद्र को प्रकट होने पर मजबूर कर दिया था। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे मुझे स्वयं से शक्तिशाली मानने को तैयार थे? उन्होंने कहा हां, लेकिन एक और अधिक शक्तिशाली भी है। मैंने उनसे, मुझे अपने से इस शक्तिशाली के पास ले चलने को कहा। वे मुझे सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा के पास ले गए। उनके चार सिर थे। मैंने ब्रह्मा से पूछा कि क्या वे ही ब्रह्मांड में सबसे अधिक शक्तिशाली हैं। उन्होंने कहा कि कोई उनसे भी महत्तर है। वे मुझे आठ सिर वाले ब्रह्मा के पास ले गए। मैंने इन आठ सिर वाले ब्रह्मा से पूछा कि क्या वे ही संसार में महानतम हैं। इन आठ सिर वाले ब्रह्मा ने कहा कि नहीं, कोई उनसे भी महत्तर हैं। वे मुझे सोलह सिर वाले ब्रह्मा के पास ले गए। ये ब्रह्मा मुझे बत्तीस सिर वाले ब्रह्मा के पास ले गए जो मुझे चौंसठ सिर वाले ब्रह्मा के पास ले गए। इस प्रकार हम अनेक ब्रह्मा के पास मिलने गए, हरेक अपने से पहले वाले से बड़े। अंततः हम एक हजार सिर वाले ब्रह्मा से मिले जिन्होंने कहा कि उनसे भी बड़े विष्णु हैं। वे शेषनाग की कुंडली पर क्षीर सागर में विश्रामरत रहते हैं। और वही विष्णु, पृथ्वी पर कृष्ण के रूप में अवतरित हैं। ये सुनकर मैं समझ पाया कि भूमंडल में मैं कितना मामूली और कितना मूर्ख जीव हूं। मेरा अहं उसी दिन खत्म हो गया और मुझे मोक्ष प्राप्त हो गया। उसी दिन से लोग जब मेरे आश्रम के पास से गुजरते हैं तो जल पर पैदल चल पाते हैं।'

ऋषि कथा सुनने के बाद अर्जुन तट पर घोड़े के साथ आ गया। विजय यात्रा आगे बढ़ी तो घोड़े की रास मयूरध्वज ने थाम ली। मयूरध्वज ने ऐसा सिर्फ इसलिए किया कि उसके पीछे-पीछे अर्जुन उनके पास आएगा और उन्होंने यदि अर्जुन को बंदी बना लिया तो उसे छुड़ाने स्वयं कृष्ण आएंगे। मयूरध्वज को पता था कि कृष्ण ही विष्णु हैं। पृथ्वी पर भगवान के अवतार। लगनशील भक्त होने के कारण वे कृष्ण के दर्शन को आतुर थे। इसलिए उन्होंने यह योजना बनाई थी। योजना सफल रही और अर्जुन को खोजते हुए कृष्ण नगरी में आ पहुंचे। कृष्ण को साष्टांग दंडवत करने के बाद मयूरध्वज ने घोड़े और अर्जुन दोनों को छोड़ दिया।

- अपने गुरु व्यास रचित महाभारत से जैमिनी का महाभारत भिन्न है। इसमें युद्ध के बाद युधिष्ठिर के अश्वमेघ, शत्रुओं की संतानों (कर्ण, जयद्रथ, शकुनि पुत्रों) से समझौते और भगवान के रूप में कृष्ण की पूजा के महत्त्व पर अधिक जोर है। यह जैमिनीय अश्वमेध के रूप में प्रचलित है। इस प्रसंग से प्रेरित अनेक लोक कथाएं हैं। इनमें से कुछ का वर्णन उपरोक्त इसी अध्याय में किया गया है।
- ऋषि बकदलभ्य जल पर पैदल चलने अथवा जल को पार करने से संबंधित हैं। उन्होंने राम को ऐसी विधि सिखाई थी, जिससे वे समुद्र पार करके लंका द्वीप पर पहुंच पाए जहां राक्षसराज रावण ने सीता को बंदी बना रखा था। वही विधि हर साल विजय एकादशी पर दोहराई जाती है जो फरवरी-मार्च में शुक्ल पक्ष के ग्यारहवें दिन आती है।

बब्रुवाहन

अनेक देशों को विजित करते हुए पांडवों का अश्व मणिपुर पहुंचा। वहां पर उसे स्थानीय युवा राजा

बब्रुवाहन ने पकड़ लिया जो मणिपुर की राजकुमारी चित्रांगदा से प्रसूत अर्जुन का पुत्र निकला।

बब्रुवाहन ने अपने पिता का स्वागत किया। वह चूंकि उनसे पहली बार मिल रहा था, इसलिए उसने अश्व को पकड़ लिया था, वरना वह उसे नरमी से चुपचाप गुजर जाने देता। तभी उससे अर्जुन ने कहा, 'यह तो क्षत्रिय पुत्र के लिए उचित नहीं है। मुझे चुनौती दो। मुझसे लड़ो। इतनी आसानी से मत जाने दो।' अपने पिता की इच्छा के अनुरूप बब्रुवाहन ने अपना धनुष ताना और आश्चर्यजनक रूप में अपने पिता पर युद्ध में भारी पड़ने लगा। अपने पिता के बाणों को उसने कुशलतापूर्वक बेकार कर दिया मगर उसके बाणों से जूझने में अर्जुन के दांतों में पसीना आ गया।

घंटों द्वंद्व चलने के उपरांत अचानक बब्रुवाहन का एक बाण अर्जुन के हृदय को छेदते हुए उसके सीने में धंस गया। अर्जुन के प्राण पखेरू क्षण भर में उड़ गए। ये देखकर चित्रांगदा चीत्कार करने लगी। बब्रुवाहन भी पस्त हो गया क्योंकि उसने अपने पिता को क्षति पहुंचाने की कल्पना भी नहीं की थी। वो भी अपने पिता के निर्जीव शरीर से लिपट कर रोने लगा। अचानक वहां नाग स्त्री प्रकट हुई। उसका नाम उलूपी था। वो इरावण की माता थी, जिसकी युद्ध की नवीं रात में बलि चढ़ा दी गई थी। उलूपी ने बब्रुवाहन को ढांढ़स बंधाते हुए कहा, 'तुम्हारी इसमें कोई गलती नहीं है। तुम्हारे पिता ने यह मुसीबत खुद मोल ली है। तुम्हारे पिता ने अपने पितामह भीष्म का वध किया था। तुम तो भाग्य के हाथों बस कठपुतली बने हो। भीष्म, तुम्हारे पिता के लिए पितृवत थे। उस लज्जाजनक कृत्य के लिए भीष्म की माता और नदी देवी गंगा ने अर्जुन को शाप दिया था कि वह भी अपने पुत्र के हाथों मृत्यु को प्राप्त होगा। वही शाप अभी तुम्हारे बाण से फलीभूत हुआ है। लेकिन चिंता मत करो। मैं अपने साथ नागमणि लेकर आई हूं। ये नागलोक की मणि है और इसमें मृतकों को पुनर्जीवित करने की शक्ति है।' उलूपी ने दिव्य नागमणि को अर्जुन के घातक घाव पर रखा और बब्रुवाहन ये देखकर भौंचक्का रह गया कि घाव स्वयं ठीक हो गया।

अर्जुन फिर से सांस लेने लगा। उसकी आंखें ऐसे खुल गईं मानो गहन निद्रा से जागा हो। अर्जुन ने उलूपी पर नजर घुमाई मगर उसे पहचान नहीं पाया क्योंकि उस रात को बीते लंबा अरसा गुजर गया था, जब वो साथ-साथ थे। दुखी उलूपी चुपचाप अपने लोक में लौट गई।

चित्रांगदा और बब्रुवाहन के साथ अनेक दिन बिताने के बाद बलि के घोड़े के साथ अर्जुन के हस्तिनापुरी लौटने का समय आ गया था। माता और पुत्र ने भारी मन से उसे विदा किया।

हस्तिनापुरी में प्रवेश करते ही घोड़ा खुशी के मारे हिनहिनाने लगा। सारे ऋषि यह देखकर चकित रह गए। 'ये ऐसे प्रसन्न क्यों हो रहा है? क्या इसे पता है कि इसकी बलि दी जाएगी?' नकुल ने घोड़े का भाव समझकर सबको उसकी प्रसन्नता का राज बताया। उसने कहा कि इससे पूर्व के अश्वमेध यज्ञ में बलिदान किए गए अश्व हालांकि अपनी मृत्यु के बाद देवताओं के निवास स्वर्ग में पहुंचे थे, मगर यह घोड़ा उनसे भी ऊपर स्थित स्वर्ग में जाएगा। बस यही सोचकर ये प्रसन्न हो रहा है।

इस पर युधिष्ठिर ने पूछा, 'स्वर्ग के भी ऊपर स्थित ये कौन-सा स्वर्ग है?'

ऋषियों ने बताया, 'बहुत कम लोगों को यह रहस्य मालूम है। हमें इसके बारे में नहीं पता। हे राजन, यदि देवता आपको इस लायक समझेंगे तो आप ये रहस्य स्वयं जान जाएंगे।'

- महाभारत के बंगाली लोक पुनर्कथन में यह कथा है कि अर्जुन की अनेक असंतुष्ट पत्नियों में से ही किसी ने बब्रुवाहन के बाण का रूप धर लिया था और उसी से अर्जुन की मृत्यु हुई। बाद में उसे अपने व्यवहार पर पछतावा हुआ तो भगवान से अर्जुन के प्राण लौटाने की उसने याचना की।
- जैमिनीय भारत में बब्रुवाहन को उलूपी के निर्देशानुसार दिव्यमणि लाने को स्वयं नागलोक जाना पड़ता है। उसे, अनेक प्रकार के रहस्यों को भेदने के बाद ही मणि मिल पाती है।
- नागराज कुमारी उलूपी का अर्जुन के प्रति प्रेम सतत बना रहता है। अर्जुन तो उसे पहचान भी नहीं पाता, फिर भी उलूपी उसे क्षमा करके उसकी प्राण रक्षा करती है।
- अपने मुंहबोले पिता भीष्म की हत्या से लगा अर्जुन का पाप उसके पुत्र के हाथों उसकी मृत्यु से धुल जाता है।

कलियुग का आगमन

युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ मानव स्मृति में सबसे भव्य यज्ञ था। कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी गई। यज्ञ करने और मंत्रोच्चार करने वाले सभी ऋषियों को भरपूर भोजन-खाद्य सामग्री, कपड़े और गाय दान की गई।

आयोजन के मध्य में ही दो किसान हस्तिनापुरी आए और उन्होंने युधिष्ठिर से किसी विवाद को सुलझाने का निवेदन किया। उनमें से एक किसान ने अपने खेत, दूसरे किसान को बेच दिए थे। उसके अगले दिन खेत को जोतते समय खेत के नए मालिक को उसमें गड़ा सोने का घड़ा मिल गया। उसे लेकर वह पुराने मालिक के पास गया और यह कहते हुए उसे देने लगा, 'मैंने खेत खरीदे थे, लेकिन उसके भीतर गड़ी वस्तु अभी भी आपकी ही मानी जाएगी।' पुराने मालिक ने सोने का घड़ा लेने से यह कहते हुए इन्कार कर दिया कि वो अब नए मालिक की मिल्कियत है क्योंकि वो उसे ही मिला है।

युधिष्ठिर दोनों किसानों के त्यागपूर्ण स्वभाव वे प्रभावित तो हुए मगर उस विवाद का कोई हल

उन्हें नहीं सूझा। इसलिए उन्होंने कृष्ण से सलाह मांगी। कृष्ण ने सुझाया कि दोनों किसान सोने के घड़े को राजा के पास ही छोड़ दें और तीन महीने बाद फिर आएं। दोनों किसानों ने उनका सुझाव मान लिया।

उनके चले जाने पर युधिष्ठिर ने कृष्ण को प्रश्नवाचक नजरों से देखा। तीन महीने बाद क्या होगा, वे यही सोचकर हैरान थे। कृष्ण ने उत्तर दिया, 'सोने का घड़ा एक-दूसरे को देने पर आमादा यही दोनों किसान तीन महीने बाद आकर यहां उसके लिए बढ़-चढ़ कर दावा करेंगे। उस दिन तुम्हारे लिए इस मामले का निदान करना अधिक आसान होगा, क्योंकि तुम्हें उनकी नजरों में उदारता के स्थान पर लालच और दया के स्थान पर क्रोध दिखाई देगा। युधिष्ठिर, तीन महीने बाद तुम्हारा यज्ञ संपन्न हो जाएगा और कलियुग का आगमन होगा। नया युग शुरू होगा, जिसमें कुछ भी पहले जैसा नहीं रहेगा। सभ्यता के आरंभ में पृथु द्वारा स्थापित मूल्यों में से एक-चौथाई ही बचे रहेंगे। पुरुष सिर्फ आनंद के लिए जिएंगे, बच्चे अपने दायित्वों से मुंह चुराएंगे, औरतें भी पुरुषों के समान व्यवहार करेंगी, पुरुषों का व्यवहार स्त्रियों के समान हो जाएगा। मनुष्य भी पशुओं के समान संभोग में लिप्त हो जाएंगे। शक्ति का ही सम्मान होगा, न्याय को ताक पर रख दिया जाएगा, बलिदान भुला दिया जाएगा, प्रेम का उपहास होगा। समझदार लोग भी जंगल के कानून की पैरवी करेंगे, हरेक पीड़ित अवसर मिलते ही उत्पीड़क बन जाएगा।'

तीन महीने बाद दोनों किसान वापस आए और पूर्वानुमान के अनुसार सोने के घड़े के लिए आपस में लड़ने लगे। युधिष्ठिर के लिए अब विवाद को सुलटाना सरल हो गया। उन्होंने सोने को तीन बराबर भागों में बांटा। एक-एक भाग दोनों किसानों को दिया गया और तीसरा भाग राजा ने फैसले के शुल्क के रूप में अपने पास रख लिया।

राजसी घोड़े की बलि चढ़ाने और अन्य सभी कामकाज पूरे करने के बाद अश्वमेध करने वाले ऋषि अपने-अपने स्थान पर लौटने की तैयारी कर रहे थे, तभी उन्हें वहां यज्ञशाला में आता नेवला दिखाई दिया। उसका आधा शरीर सोने के समान दमक रहा था। वह यज्ञ कुंड में कूद गया और उसका भस्म पर अपने शरीर के स्वाभाविक भाग को रगड़ने लगा लेकिन अंत में मुख पर निराशा का भाव लेकर यज्ञ वेदी से उतरकर वापस जाने लगा।

ऋषियों ने जब उससे पूछा कि वह इतना उदास क्यों है? नेवला बोला, 'बहुत पहले मैंने एक कर्मकांड की बची-खुची सामग्री पर अपने शरीर को रगड़ा तो वह हिस्सा सोने का हो गया। मैंने सोचा कि यदि इस कर्मकांड की भस्म पर अपना शरीर रगड़ूंगा तो बाकी आधा भाग भी सोने का हो जाएगा। लेकिन यहां तो वैसा नहीं हुआ।' सबको ये जानने की उत्सुकता हुई कि क्या पिछला उत्सव, युधिष्ठिर के आयोजन से भी अधिक भव्य था। 'ऐसा तीन महीने से भी पहले घटित हुआ था। किसी गरीब परिवार की भूख से मत्यु हो गई क्यांेकि उन्होंने अपनी चौखट पर बिना पूर्व सूचना के आए अतिथियों को अपने हिस्से का अल्प भोजन बेहिचक करा दिया था। मैंने अपने शरीर को उन पत्तियों पर रगड़ा जिनमें खाना परोसा गया था और मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरी त्वचा सोने की हो गई लेकिन इस भव्य अश्वमेध यज्ञ की भस्म मेरी त्वचा पर वैसा ही प्रभाव नहीं छोड़ पाई।

ऋषियों ने समझ लिया कि युधिष्ठिर का अश्वमेध भले ही भव्य आयोजन हो, मगर उसका प्रयोजन दान-पुण्य कमाना कम और राजसी सत्ता प्रदर्शित करना अधिक था। इसीलिए इस आयोजन का माहात्म्य कम रहा।

पांडवों के गुरु धौम्य ने दिव्यदृष्टि से बताया कि युद्ध के पूर्व संपूर्ण धर्म, पांडवों की ओर था। एक-चौथाई युधिष्ठिर, एक-चौथाई अर्जुन, एक-चौथाई भीम और एक-चौथाई धर्म नकुल और सहदेव के पास था।

देवीस्वरूपा द्रौपदी और भगवान स्वरूप कृष्ण ने उन्हें एकजुट रखने में सफलता प्राप्त की। लेकिन कलियुग आरंभ होने के कारण यह स्थिति जारी नहीं रहेगी। अर्जुन स्वार्थी, भीम अत्याचारी, नकुल भोग-विलासी और सहदेव अहंकारी हो जाएगा। सिर्फ युधिष्ठिर ही निष्ठापूर्वक अपने एक-चौथाई जीवन के दौरान जगत का पालन करेंगे। और जब उसे भी ताक पर रख दिया जाएगा तो प्रलय हो जाएगी। विनाश की लहरें सभ्यता को लील जाएंगी तथा संसार का अंत हो जाएगा।

- कलियुग ऐसे काल का प्रतीक है जब मनुष्य का उदार भाव समाप्त हो जाएगा। जीवन का प्रयोजन पाना और बटोरना ही रह जाएगा। सभी झगड़ों या विवादों का मुख्य कारण माना गया।
- भगवद्गीता में भगवान कहते हैं कि संसार में जब-जब अधर्म का प्रभुत्व होगा वे धर्म की स्थापना के लिए पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। इसलिए ये माना जाएगा कि पृथ्वी पर भगवान के अवतरण की समाप्ति पर संसार की आरंभिक संपूर्णता पुनः स्थापित हो जाएगी। लेकिन ऐसा नहीं है। अधर्म को बीमारी तथा धर्म को सुस्वास्थ्य के रूप में देखा जा सकता है। भगवान समय-समय पर संसार के स्वास्थ्य को तो सुधार सकते हैं, लेकिन शरीर पर आने वाले बुढ़ापे को नहीं रोक सकते। कौरवों को हराकर कृष्ण, संसार में व्यवस्था पुनः स्थापित करने में पांडवों की सहायता करते हैं लेकिन इससे संसार के जीवन की चौथी कालावधि कलियुग का आगमन नहीं रुक पाता जो संसार के विनाश के पूर्व का चौथा युग है। अंततः हम सभी को मरना है लेकिन वैसा सोचकर हमें स्वस्थ जीवन जीने से परहेज नहीं करना चाहिए। उसी प्रकार किसी संगठन का विखंडन अवश्यंभावी होने पर भी उसके नेतृत्व को व्यवस्था बरकरार रखने का प्रयास नहीं छोड़ना चाहिए।

अठारहवां अध्याय

त्याग

जनमेजय, विजय अनेक प्रकार की होती है, और सिर्फ एक ही ऐसी होती है जिसमें हरेक जीतता।'

ज्येष्ठ राजपाट का त्याग करते हैं

युधिष्ठिर का राज शांतिपूर्ण एवं समृद्धि से भरपूर रहा। वर्ष बीतने के साथ-साथ युद्ध की स्मृतियां धुंधली पड़ती गई, छोटे परीक्षित को सुदर्शन युवक के रूप में बड़े होते देखने में ही सब मगन रहे।

धृतराष्ट्र और गांधारी, हस्तिनापुरी में ही रहते रहे और युधिष्ठिर ने उनके आराम तथा प्रसन्नता का हर प्रकार से ध्यान रखा। दुर्भाग्य से भीम उन्हें क्षमा नहीं कर पाया।

परिवार के सब लोग जब-जब साथ भोजन करने बैठते, भीम अपनी उंगलियां चटखाता, ताल ठोंकता और हरेक कौरव के वध का विवरण विस्तार से सुनाता। मांस खाते समय धृतराष्ट्र जब-जब किसी हड्डी को चबाते, तब-तब भीम कहता, 'मैंने जब दुर्योधन की जांघ तोड़ी थी तब भी एकदम ऐसी ही ध्वनि हुई थी।' धृतराष्ट्र जब-जब हड्डी में से रसीले मज्जा को मुंह में चूसते तब-तब भीम कहता, 'दुःशासन की आखिरी सांस का स्वर ऐसा ही था।'

अपने भाई की ऐसी दुर्गति को झेलने में नाकाम विदुर धृतराष्ट्र से कहते, 'कुछ तो शर्म करो। यहां से चले जाओ, यहां आपका कोई मान-सम्मान नहीं है।'

धृतराष्ट्र का एक ही उत्तर होता, 'मैं कहां जाऊं?' और वे चुपचाप अपमान झेलते रहते।

विदुर ने तंग आकर ये कथा सुनाई, 'कभी, कोई व्यक्ति जंगल में रास्ता भूलकर गड्ढे में गिर गया। गिरते समय उसके पैर कुछ लताओं में फंस गए और वो सिर के बल उसमें लटक गया। ऊपर, आकाश में बादल छाए हुए थे। उसे हवा की सनसनाहट सुनाई पड़ रही थी। गड्ढे के छोर

पर उसने जंगली हाथियों के झुंड की विकराल चिंघाड़ सुनी। गड्ढे में नीचे सैकड़ों विषैले सांप फुफकार रहे थे। चूहे लताओं की जड़ों को कुतर रहे थे जिनमें उलझ कर वह पके हुए कटहल के समान लटका हुआ था। अचानक उसने कनखियों से मधुमक्खियों को उनके छत्ते के इर्द-गिर्द मंडराते देखा। मधुमक्खी के छत्ते से शहद की बूंद नीचे गिरी। अपनी विकट स्थिति भूलकर उसने तेजी से हाथ आगे बढ़ा कर शहद की वह बूंद लपक ली। उस पल उसे तूफान, हाथियों, चूहों तथा सांपों और सामने खड़ी मौत का खतरा भी याद नहीं रहा; उसके लिए शहद का मीठा स्वाद ही सर्वोपरि हो गया।'

यह कथा सुनकर धृतराष्ट्र समझ गए कि अपनी दैन्य दशा के सच को स्वीकार करने में उनकी दृष्टिहीनता नहीं, बल्कि राजप्रासाद की सुख-सुविधाओं के प्रति उनका मोह आड़े आ रहा था। और अंततः उन्होंने सभी सांसारिक सुखों को त्यागकर राजप्रासाद छोड़ देने का साहस जुटा लिया। उन्होंने कहा, 'आओ गांधारी, यहां से चले जाएं।'

गांधारी ने आज्ञा पालन किया। विदुर भी उनके साथ हो लिए। कुंती भी ये सोचकर उनके साथ ही निकल गई कि उनकी पीढ़ी के यहां से चले जाने का समय आ गया।

युधिष्ठिर ने अपनी माता को रोकने का प्रयास किया, लेकिन नाकाम रहे। कुंती बोलीं, 'मैं थक चुकी, पुत्र। निकल जाने का यही समय है।'

ये बुजुर्ग अनेक वर्ष तक वन में ऋषियों का सत्संग करते, जीवन का मर्म समझते, घूमते रहे। फिर एक दिन, विदुर की मृत्यु हो गई। ध्यान की मुद्रा में ही उनके प्राण पखेरू उड़ गए। गांधारी को किसी रात यह सपना दिखा कि युद्ध में मारे गए सभी लोग सफेद वस्त्रों में, आभूषणों से सजे मुस्करा रहे हैं। उनके चेहरे दुख अथवा क्रोध से मुक्त हैं। यह देख कर वो प्रसन्न हुई।

उसके कुछ ही देर बाद वन में आग लग गई। धृतराष्ट्र ने धुएं की गंध सूंघ कर कहा, 'भागो।' गांधारी ने पूछा, 'क्यों?'

आखिर क्यों? और यही सोचकर कुरू वंश की बुजुर्ग पीढ़ी निश्चल बैठ गई और आग की लपटों से खुद को घिरने और उन्हें स्वयं को निगलने दिया।

- धर्मशास्त्रों ने जीवन को चार भागों में बांटा है। पहला ब्रह्मचर्य, व्यक्ति को सांसारिक संघर्ष के लिए तैयार करता है। दूसरा गृहस्थ, व्यक्ति को संसार के आनंद और सत्ता को भोगने का अवसर देता है। तीसरा वानप्रस्थ, व्यक्ति के परिवार से निवृत्त होने की वेला है। वो अपनी सारी संपत्ति अपनी संतान को और ज्ञान पौत्रों को सौंप कर दैनंदिन बंधनों से मुक्त हो जाता है। चौथा, संन्यास, सभी सांसारिक सुखों के त्याग की वेला है। प्रतीप से लेकर धृतराष्ट्र तक महाभारत के अनेक चरित्र अपने सांसारिक कर्तव्यों को पूरा करके समाज से निवृत्त होकर संसार का त्याग कर देते हैं। इस प्रकार पृथ्वी को भोगने का अधिकार सिर्फ युवाओं को है और बुजुर्ग उन पर विचार करते रहते हैं।
- व्यास इस तथ्य से भलीभाति परिचित हैं कि अनेक परिवारों में बुजुर्गों के जब अपने बच्चे नहीं होते और वे अशक्त हो जाते हैं तो उनसे कैसा व्यवहार किया जाता है। युधिष्ठिर आदर्श स्थिति के प्रतीक हैं जबकि भीम, युवाओं को बुजुर्ग पीढ़ी से होने वाली उन शिकायतों का स्वरूप है जिनके कारण अतीत की घटनाएं उनके मन को आजीवन मथती रहती हैं।
- संजय अपने मालिक के साथ वनगमन कर गया तथा उन्हीं के साथ जंगल की आग में स्वाहा हो गया। बुजुर्ग, दृष्टिहीन राजा के प्रति उसकी वफादारी इतनी पक्की थी।
- कृष्ण से मनुष्य के भीतर छिपे जंगली पशु पर विजय पाने का महत्व समझने के बावजूद पांडव युद्ध के बाद भी अपनी शिकायतों का बोझ ढोते रहते हैं। कोई भी सबक स्थायी नहीं है। इसलिए ज्ञान के अर्जन की प्रक्रिया सतत है।

यदुवंश का नाश

द्वारका में इसी बीच यादवों ने कुरूक्षेत्र में युद्ध में वीरगति को प्राप्त सभी लोगों की आत्मा की शांति के लिए पिंडदान के वास्ते प्रभाष में समुद्र तट पर जमा होने का निर्णय किया। कार्यक्रम के दौरान दो पक्षों के बीच बहस छिड़ गई। इनमें से एक पक्ष का मानना था कि पांडव न्यायपूर्ण थे और दूसरे पक्ष की राय में कौरवों से अन्याय हुआ था।

पांडवों के समर्थक पक्ष के नेता के रूप में सात्यकी ने कहा, ‘अभिमन्यु पर कौरव ऐसे झपटे जैसे झुंड से बिछुड़े मेमने पर कुत्ते झपटते हैं।’

कौरवों के समर्थक पक्ष का नेता कृतवर्मा था। उसने कहा, 'द्रोण के वध के लिए युधिष्ठिर ने झूठ बोला, अर्जुन ने निहत्थे कर्ण को बाण से मारा और भीम ने दुर्योधन की कमर के नीचे वार किया।' उसने सात्यकी को ये भी विश्वास दिलाया कि उसने नियम तोड़कर कैसे भूरिश्रवा पर वार करके उसकी हत्या कर दी।

बहस के बाद जल्द ही गुत्थमगुत्था शुरू हुई और फिर आपस में गृह युद्ध शुरू हो गया। कृष्ण और बलराम चुपचाप अपने भाइयों, मित्रों तहेरे, चचेरे-फुफेरे, भाइयों, पुत्रों और प्रपौत्रों को एक-दूसरे की जान का प्यासा बने देखते रहे।

अपने वंश को बचाने के प्रयास में दोनों भाइयों ने यादवों के सारे हथियार छिपा दिए। लेकिन वे इतने अधिक क्रोधित थे कि उन्होंने एक-दूसरे पर तट के किनारे उगे धारदार सरकंडे से ही वार करने शुरू कर दिए। ये कोई साधारण सरकंडे नहीं थे। इनके तेज धार वाले दांतेदार किनारे और नुकीले मुंह थे। ये लोहे की गदा से झरे लौह चूर्ण से पैदा हुए थे।

अनेक वर्ष पूर्व कृष्ण के पुत्र संब ने ऋषियों के किसी समूह से मजाक किया था। उनकी आध्यात्मिक शक्तियों को परखने के लिए वह गर्भवती स्त्री के वेश में उनके पास गया और उनसे पूछा कि उसके गर्भ में नर भ्रूण है अथवा मादा? ऋषियों ने क्रोधित होकर कहा, 'न नर, न मादा, बल्कि तुम्हारे शरीर में लोहे की गदा छिपी है। वही गदा यादवों का सर्वनाश कर देगी।' इस प्रकार ऋषि उसके छद्म वेश से भ्रमित नहीं हुए।

लोहे की वही गदा संब की जांघ फाड़कर बाहर आ गई। बुरी तरह भयभीत संब ने उसे पीट-पीटकर उसका चूरा बनाया और समुद्र में बहा दिया। समुद्र ने लोहे के इस चूरे को वापस प्रभाष के तट पर पटक दिया, जहां वो मारक सरकंडे उग आए और यादवों ने उन्हें ही तोड़-तोड़ कर एक-दूसरे पर वार किया।

प्रभाष के तट पर कुछ ही घंटों में सरकंडे के घातक वार के कारण युवा और बूढ़े तमाम यादवों के शवों का ढेर लग गया। उनमें से ये पता लगाना असंभव था कि कौन पांडवों का और कौन कौरवों का पक्ष ले रहे थे। सात्यकी की मृत्यु हो गई थी। कृतवर्मा की मृत्यु हो चुकी थी। वहां दूसरे कुरूक्षेत्र जैसा हाल था। कृष्ण और बलराम उन्हें बचाने के लिए कुछ भी नहीं कर पाए। इस प्रकार गांधारी का शाप फलीभूत हुआ।

- कृष्ण के पुत्र संब को ग्रंथों में गैर-जिम्मेदार, छिछोरा व्यक्ति वर्णित किया गया है। इसका प्रयोजन शायद हमें यह जताना है कि ये आवश्यक नहीं कि महान व्यक्तियों की संतान भी महान ही हो। महानता अगली पीढ़ियों को स्वतः हस्तांतरित नहीं होती। हरेक व्यक्ति अंततः स्वयं ही विरासत का निर्माण अथवा विनाश करता है।
- पांसों के मामूली खेल के कारण कुरूक्षेत्र जैसा विनाश हो गया। आपसी बहस से प्रभाष में जबरदस्त नरसंहार हो गया। हरेक युद्ध के पीछे अंततः छुटपुट लड़ाइयां-विवाद-मतभेद ही प्रमुख कारण मिलेंगे, जिनमें मनुष्य, दूसरों को समायोजित करने के बजाए उन पर धौंस जमाना चाहता है।
- कृष्ण का परिवार भी गांधारी के शाप से बच नहीं पाता। इस प्रकार कर्म फल के आगे ईश्वर भी नतमस्तक हो जाते हैं। मनुष्य को स्वयं भाग्य नियंता तथा उसकी इच्छाओं का उसे स्वयं प्रवर्तक बनाकर भगवान उसके द्वारा जिए गए जीवन और अपनी पसंद के चयन के लिए अंततः उसे खुद ही जिम्मेदार बना देते हैं। प्रारब्ध में भगवान भी दखल नहीं करते; वे उसे झेलने में मनुष्य की सहायता भर करते हैं।

कृष्ण का महाप्रयाण

अपने परिवार का नाश होने से निराश बलराम को जीवन से वैराग्य हो जाता है। वे अपने प्राणों को सर्प रूप में नश्वर शरीर से मुक्त कर देते हैं।

बलराम की मृत्यु होते ही कृष्ण भी समझ गए कि मनुष्य के अवतार का चोला उतार फेंकने का समय आ गया। वे बरगद के पेड़ के नीचे अधलेटे हो गए और अपने दाहिने पैर के ऊपर बायां पैर टिकाकर उसे हिलाते हुए अपने जीवन के बारे में सोचने लगेः वृंदावन से मथुरा और द्वारका

और फिर हस्तिनापुरी होते हुए अंततः कुरुक्षेत्र तक की यात्रा।

ऐसा करते-करते अचानक उनके पांवों के तलुए में जहरीला तीर आकर धंस गया। वह तीर किसी व्याध ने घनी झाड़ियों के पीछे से उनके हिलते पांव को हिरण का कान समझकर मारा था। तीर के मुंह पर लगा जहर बुझा लोहे का टुकड़ा संब द्वारा चूरा बनाई गई लौह गदा का एकमात्र टुकड़ा बचा था। व्याध को ये किसी मछली के पेट में से मिला था। शरीर में तीर का विष फैलने से कृष्ण ने भी अपने प्राण पखेरू उड़ा दिए।

सारे यादव जहां वैतरणी नदी को पार करके मर्त्य लोक पहुंचकर पुनर्जन्म की प्रतीक्षा कर रहे थे, वहीं कृष्ण स्वर्ग के भी ऊपर स्थित वैकुंठ में लौटकर सृष्टि के रक्षक विष्णु के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। बलराम वहां हजार फन वाले काल सर्प-आदि-अशेष-अनंत के रूप में पहले ही विष्णु को अपनी विराट कुंडलियों पर विश्राम के लिए वास्ते अगवानी हेतु उपस्थित थे।

- चक्रीय हिंदू जगत में जो भी जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है। कृष्ण को भी चूंकि प्रसूत होना पड़ा था, इसलिए उन्हें मृत्यु का अनुभव भी करना होगा। लेकिन कृष्ण की मृत्यु कोई सामान्य मृत्यु नहीं है; वे अपने अवतरण के समय धारण किए गए नश्वर शरीर को छोड़कर अपने नैसर्गिक स्थान वैकुंठ में लौट जाते हैं। अन्य प्राणियों को ये सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। मृत्यु के बाद वे पिछले जन्म को भूलकर नए जीवन में प्रविष्ट हो जाते हैं। ऐसा संसार में विचरण के दौरान मनुष्य द्वारा विभिन्न गतिविधियों में लिप्त हो जाने के कारण कर्मों का ढेर बटोर लेने से होता है। उन्हीं कर्मों के अनुसार उन्हें अगले जन्म अथवा अन्य जन्मों में भी भोगना पड़ता है। ईश्वर होने के कारण कृष्ण ऐसी कोई भी गतिविधि नहीं करते कि कर्म जमा हो जाएं। उनकी गतिविधियां पाप और पुण्य के भेद से मुक्त हैं। उनकी गतिविधियां दरअसल उनकी दिव्य लीला होती हैं जो जागरूकता तथा निर्लिप्तता पर आधारित हैं।
- उत्तर भारत की लोक कथा के अनुसार भगवान ने राम के रूप में अपने पिछले अवतार में बालि नामक वानर की पीठ में द्वंद्व के दौरान बाण मारकर उसका वध किया था। बालि ने इस अन्यायपूर्ण हरकत का विरोध किया तो भगवान ने उसे जरा के रूप में पुनर्जन्म लेने दिया और स्वयं कृष्ण का अवतार लेने पर उसे वैसे ही तीर मारकर अपने को मार

डालने का अधिकार दिया।

- गुजरात राज्य के समुद्र तट प्रभाष पाटन पर खड़े बरगद के पेड़ को ही उस पेड़ का अंश माना जाता है जिसके नीचे कृष्ण को घातक बाण लगने से प्राणांतक चोट लगी थी।
- बरगद के वृक्ष को उसकी लंबी आयु के कारण हिंदुओं द्वारा पवित्र अर्थात अमरत्व का प्रतीक माना जाता है।

द्वारका का पतन

कृष्ण के पिता वासुदेव को प्रभाष की त्रासदी का जैसे ही पता चला, उनकी ह्दयाघात से मृत्यु हो गई। शीघ्र ही समुद्र तट पर चिताओं का जमघट लग गया। अपने प्रियजनों की मृत्यु से शोकग्रस्त यादव स्त्रियां समवेत रूदन करने लगीं। उनका सामूहिक चीत्कार स्वर्ग तक जा पहुंचा और उसे सुनकर देवता भी रो दिए।

कुछ स्त्रियां अपने-अपने पति के विछोह के बाद जीवन के एकाकीपन की कल्पना करके चिता पर कूद कर सती हो गईं। अन्य को वैराग्य हो गया और वे साधु का जीवन जीने के लिए वनगमन कर गईं। सांसारिक जीवन जीने की इच्छुक स्त्रियां अर्जुन के साथ हो लीं, जो द्वारका में जबरदस्त गृह युद्ध की सूचना पाकर हस्तिनापुरी से दौड़ा आया था लेकिन उसे आने में बहुत देर हो गई; वहां यादव वंश को बचा पाने के लिए कुछ था ही नहीं।

उसके बाद समुद्र का जलस्तर बढ़कर द्वारका की दीवारों पर ठाठें मारने लगा। साथ ही मूसलाधार वर्षा भी होने लगी और बारिश के चढ़ते पानी ने द्वीपीय नगरी की नींव को ही हिला दिया। शीघ्र ही दीवारें ढहने लगीं और विधवाओं तथा अनाथ बच्चों को घर छोड़ कर नावों और तमेड़ों में चढ़कर समुद्र से बाहर धरती पर आना पड़ा।

अर्जुन ने बचे-खुचे लोगों को अपने साथ हस्तिनापुरी ले जाने का निर्णय किया।

इसके बावजूद दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा। राह में उन पर बर्बरों ने आक्रमण कर दिया। वे अनेक औरतों और बच्चों को उठाकर ले गए। अर्जुन ने अपना गांडीव उठाकर उनकी रक्षा का प्रयास किया मगर बर्बरों की संख्या बहुत अधिक होने से वो निस्सहाय हो गया। विध्वंसक गांडीव, जो एक ही बाण से सैकड़ों योद्धाओं के छक्के छुड़ा सकता था, अब शक्तिहीन लग रहा था। अर्जुन समझ गया कि वह अब पहले जैसा तेज धनुर्धर नहीं रहा। पृथ्वी पर उसका और उसके गांडीव के आने का प्रयोजन पूरा हो गया था।

प्रारब्ध की विकट लहरों के सामने अपनी निस्सहायता से लाचार और परिस्थितियों के अनियंत्रित तूफान से पराजित अर्जुन घुटनों के बल बैठकर जोर-जोर से रोने लगा।

अपने आंसू सूखने पर उसने यह समझा कि द्वारका और वहां की जनता का विनाश करने वाले गांधारी के शाप की जड़ कुरूक्षेत्र के युद्ध में निहित थी। और यदि वे संयम से काम लेकर पांसों के खेल में अपनी राजधानी को दांव पर नहीं लगाते तो ये युद्ध होता ही नहीं। अर्जुन समझ गया कि द्वारका के पतन के लिए वह भी कम जिम्मेदार नहीं था। यह कर्मों का भारी जंजाल था जो सभी प्राणियों को एक ही सूत्र में पिरो देता है। उसने समूची मानव जाति के दुख में अपनी भूमिका के लिए क्षमा याचना की।

इसके जवाब में बादल गरजने लगे और बिजली कड़कने पर उसकी रोशनी में उसको यह दृश्य दिखा कि द्वारका का विनाश करती लहरों के बीच बरगद के पत्ते पर लेटा शिशु प्रसन्नता पूर्वक अपने मक्खन सने पांव के विराट पंजे को चूस रहा है। विनाश के बीच यह पुनर्जीवन और आशा का प्रतीक था।

अर्जुन, भगवान द्वारा उसे दिए गए संदेश को अंततः समझ गया। खुशियों और दुखों, विजयों और त्रासदियों के बीच जीवन समुद्र की लहरों के उतार-चढ़ाव के समान सनातन रहेगा। संसार के अवश्यंभावी असीम झंझावातों के प्रति निस्पृह भाव से साधारण भाग को भोगते हुए इसको

समझदारी से खेना उसके अपने वश में है।

बचे-खुचे यादवों को ले जाकर उसने मथुरा में बसा दिया। वहीं पर समय बीतने के साथ कृष्ण के प्रपौत्र, प्रद्युम्न का पौत्र और अनिरुद्ध का पुत्र वज्रनाभि महान राजा बना।

- आधुनिक द्वारका के पास पुरातत्वविदों ने समुद्र तट पर प्राचीन बंदरगाह युक्त नगरी के अवशेष खोजे हैं। इनका काल 1500 बीसीई अनुमानित है। यही वह काल था जब वर्तमान पंजाब, राजस्थान, सिंध और गुजरात में सिंधु नदी के किनारे नागर सभ्यता बसी हुई थी। अनुसंधान का विषय है कि महाभारत के चरित्र इन विस्तृत ईंट-गारे से बनी नगरियों में निवासरत थे अथवा नहीं।
- वज्रनाभि ने अभिमन्यु की पत्नी उत्तरी द्वारा किए गए वर्णन के अनुसार कारीगरों से कृष्ण की प्रतिमाएं बनाने को कहा। लेकिन वर्णन इतना अधिक विशद था कि हरेक कारीगर अपनी प्रतिमा में कृष्ण के रूप का कोई एक कोण ही साकार कर पाया। ये प्रतिमा सदियों तक संसार से ओझल रहीं और बाद में ऋषियों ने उन्हें ढूंढ़ा और मंदिरों में प्राण-प्रतिष्ठा की। नाथद्वारा में श्रीनाथ जी की मूर्ति को भी इनमें शामिल माना जाता है।

पांडवों द्वारा त्याग

अंततः पांडवों द्वारा राजपाट त्याग कर संन्यास ग्रहण करने की वेला भी आ गई। कुरुक्षेत्र में रक्त बहने के बाद पैदा हुए परीक्षित के हस्तिनापुरी का राजपाट संभालने की उम्र हो गई थी। युधिष्ठिर को वन बुला रहे थे। उन्होंने कहा, 'अब नई पीढ़ी को जीवन के सुख भोगने दिए जाएं और हम भी अपने जीवन के अर्थ की तलाश में निकल जाते हैं।'

परीक्षित का राज्याभिषेक करके और अपनी प्रजा के बीच अपनी गाय, घोड़े, बर्तन, आभूषण और वस्त्र बांटकर पांडवों ने भगवा वस्त्र धारण किए तथा हस्तिनापुरी से निकल गए।

वे उत्तर में हिमाच्छादित गगनचुंबी पर्वत की ओर चल दिए। युधिष्ठिर ने कहा, 'आओ मंदार पर्वत पर चढ़ाई करें। यदि हमने अपने जीवन में धर्म का निष्ठापूर्वक पालन किया है, तो हम सशरीर स्वर्गारोहण करेंगे। इस शरीर को मरना नहीं पड़ेगा।' उनके भाई सहमत हो गए। द्रौपदी भी उनके साथ हो लीं। इस प्रकार पांच बूढ़ों और एक बूढ़ी स्त्री की आकाश के ऊपर बसे पुण्यलोक की संकरी और खड़ी चढ़ाई वाली कठिन यात्रा आरंभ हुई। द्रौपदी का अचानक पांव फिसला और वो गिर गई। वो चिल्लाई, मगर उसे बचाने के लिए कोई भी मुड़कर नहीं आया। उसके बाद सहदेव फिसला और गिर गया। उसे बचाने के लिए भी कोई नहीं मुड़ा। उसके बाद नकुल फिसला और गिरा। उसके बाद अर्जुन भी फिसल कर गिरा। अंत में भीम की भी वही गति हुई। युधिष्ठिर बिना रुके अपने रास्ते पर बढ़ते रहे।

युधिष्ठिर ने मुड़कर किसी की भी सहायता करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने स्वयं से कहा, 'मैं सबकुछ त्याग चुका। सारे संबंध भी।' उन्होंने स्वयं को समझाया कि यम ने चूंकि सशरीर स्वर्ग सिधारने लायक पुण्यात्मा नहीं समझा, इसलिए उनकी मृत्यु हो गई। उनमें से हरेक में कोई न कोई कमी थी; द्रौपदी से हालांकि अपने पांचों पतियों से समान प्रेम अपेक्षित था लेकिन उसे अर्जुन अधिक प्रिय था, उसने कर्ण की चाहत की और भीम को अपनी उंगलियों पर नचाया; सहदेव अपने ज्ञान के अहंकार में डूब गया था; नकुल की सुंदरता ने उसकी संवेदना हर ली थी; अर्जुन को दुनिया के अन्य सभी धनुर्धरों से ईर्ष्या थी और भीम सारी जिंदगी पेटू रहा, दूसरों को

खिलाने की चिंता किए बिना खुद खाता रहा।

युधिष्ठिर आखिर कठिन चढ़ाई के बाद मंदार पर्वत शिखर पर पहुंच गए। उनके सामने अकूत ऐशोआराम की नगरी अमरावती का द्वार था।

देवों ने बांहें फैलाकर उनका स्वागत किया, 'भीतर आइए। लेकिन उस श्वान को बाहर छोड़ दीजिए।'

युधिष्ठिर ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, 'श्वान?' वे मुड़े तो उन्हें अपने पीछे दुम हिलाता कुत्ता दिखाई दिया। युधिष्ठिर उसे हस्तिनापुरी की गलियों से ही पहचानते थे। श्वान, युधिष्ठिर के पीछे-पीछे शीत और घातक यात्रा को झेलते हुए निष्ठापूर्वक चला आ रहा था। 'कुत्ते अपशकुनी हैं, वे श्मशानों में भटकते हैं और कूड़ा-कचरा खाते हैं। स्वर्ग में उन्हें प्रवेश नहीं दिया जाता।'

श्वान ने स्वामीभक्त भाव से युधिष्ठिर को देखा और उनका हाथ चाटने लगा। युधिष्ठिर इससे पिघल गए। 'मैंने सब कुछ त्याग दिया, मगर इस श्वान ने मेरा साथ नहीं छोड़ा। ये, इस दुर्गम यात्रा के बावजूद मेरे साथ यहां पहुंच गया। इससे स्पष्ट है कि इसने भी मेरे समान स्वर्गारोहण का अधिकार अर्जित किया है।' उन्होंने कहा, 'इसलिए आप इसे भी भीतर आने दीजिए।' देवों ने जवाब दिया, 'नहीं'।'

'ये तो अन्याय है। क्यों उसे स्वर्ग के बाहर और मुझे उसके भीतर रखा जाए? हम दोनों के पुण्य समान हैं। मैं तो उसी के साथ स्वर्ग में प्रवेश करूंगा, अन्यथा मैं भी भीतर नहीं जाऊंगा।'

देवों ने आश्चर्य जताया, 'आप किसी कुत्ते के लिए स्वर्ग प्रवेश से मना कर रहे हैं।'

युधिष्ठिर ने अपनी बात पर अडिग रहते हुए जवाब दिया, 'मैं न्याय की मान-प्रतिष्ठा के लिए स्वर्ग में जाने से मना कर रहा हूं।'

देव ये सुनकर मुस्कराए। 'युधिष्ठिर, तुमने फिर से अपनी ईमानदारी प्रदर्शित की है। तुम्हारे पीछे ये श्वान स्वयं धर्म है, न्यायसंगत व्यवहार का देवता। ये तुम्हारे पीछे-पीछे आया और तुमने इसे नहीं दुत्कारा। इसीलिए सिर्फ तुम्हीं को सशरीर स्वर्ग में प्रवेश का अधिकार मिला है।'

युधिष्ठिर को शंख ध्वनि के बीच स्वर्ग में प्रविष्ट किया गया। अप्सराओं ने उनपर पुष्प वर्षा की। गंधर्वों ने उनका यशोगान किया।

- परीक्षित की नसों में नाग रक्त है। क्योंकि उनकी दादी सुभद्रा यादव पुत्री थीं इसलिए जनमेजय का भी नागवंश से रक्त संबंध है।
- परीक्षित, सुभद्रा के पौत्र हैं, इसलिए उनमें यदुवंशी रक्त भी है। इस प्रकार गाथा के अंत में हस्तिनापुरी के राजा पुरू के वंशज नहीं बल्कि यदु के वंशज हैं जिन्हें बहुत समयपूर्व ययाति की राजगद्दी से वंचित किया गया था।
- व्यास का कथन है कि पुण्यक्षय और पापार्जन के कारण सभी प्राणी अंततः स्वयं ही मृत्यु के पात्र बनते हैं। इसलिए तार्किक रूप में यदि कोई पापार्जन नहीं करता तो उसकी मृत्यु नहीं होगी। ऐसे व्यक्ति के लिए मृत्यु के बिना ही

सशरीर स्वर्गारोहण करना संभव है। उसे अमर हो जाना भी कह सकते हैं। सारी आध्यात्मिमक प्रथाओं का यही अंतिम उद्देश्य है। युधिष्ठिर का भी यही लक्ष्य है।

- कुत्तों को हिंदू धर्म में अपशकुनी मानते हैं क्योंकि वो मृत्युदेव यम और शिव के भयावह हंता स्वरूप भैरव से संबद्ध हैं। कुत्ते मोह और बंधन के प्रतीक हैं क्योंकि वे धरती से संबद्ध और अपने मालिक के प्रति समर्पित हैं। वे लगातार ध्यान आकर्षित करने और सांबल्य के भूखे हैं। इसलिए वे लिप्सा, असुरक्षा, मोह और अहंकार के प्रतीक हैं। उनके विपरीत गाय, शांत आत्मा की प्रतीक है।

स्वर्ग में कौरव

युधिष्ठिर ने जैसे ही स्वर्ग में कदम रखा, उन्हें सौ कौरव दिखाई पड़े। उनमें दुर्योधन और दुःशासन भी शामिल थे। वे स्वस्थ और शांत दिखते हुए, देवों के साथ खड़े थे। उन्होंने भी बांहें फैलाकर युधिष्ठिर का स्वागत किया। युधिष्ठिर अरुचिपूर्वक पीछे हट गए। उन्होंने उग्र स्वर में पूछा, 'ये युद्धकामी, अमरावती में कैसे पहुंच गए?'

उसका देवों ने ये उत्तर दिया, 'इनका वध कुरूक्षेत्र की पवित्र धरती पर हुआ था। उससे इनके सारे दुष्कर्म धुल गए और इन्हें अमरावती में प्रवेश करने का अधिकार मिल गया। वैसे भी, यदि तुम स्वर्ग को अपने श्वान के लिए उपयुक्त समझते हो तो, तुम्हारे चचेरे भाई भी यहां रह ही सकते हैं।'

इस उत्तर से युधिष्ठिर संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने पूछा, 'और मेरे भाई? और मेरी पत्नी? वे कहां हैं? क्या वे भी यहीं हैं?'

उन्होंने युधिष्ठिर के उग्र होते स्वर पर कोई ध्यान नहीं दिया।

'वे यहां नहीं हैं,' देवों ने शांतिपूर्वक कहा।

युधिष्ठिर ने पूछा, 'वे, कहां हैं?'

युधिष्ठिर की अधीरता को नजरअंदाज कर देवों ने बताया, 'अन्य स्थान पर।'

उनका पता लगाने पर आमादा युधिष्ठिर ने कहा, 'मुझे, उनके पास ले चलिए।'

देवों ने कहा, 'निश्चित।' और वे युधिष्ठिर को स्वर्ग के बाहर, आकाश से नीचे, मंदार की

ढलान उतरकर, पृथ्वी के अंदर गहरी खाई में अंधेरे और विषादग्रस्त स्थान पर ले गए। वहां, युधिष्ठिर के कानों में पीड़ा और अत्याचार की चीखें सुनाई पड़ीं। ये स्थान तो अमरावती के ठीक उलट था। वे समझ गए कि ये तो नरक है, आर्तलोक।

अविश्वास से युधिष्ठिर की चीख निकल गई, 'मेरे भाई यहां हैं?' इसके जवाब में उन्हें कर्ण सहित अपने भाइयों का समवेत क्रंदन सुनाई पड़ा, 'हां, हम यहीं हैं।'

युधिष्ठिर समझ गए कि भीम अपने अत्याहारी, अर्जुन अपनी ईर्ष्या, नकुल अपनी संवेदनशून्यता, सहदेव अपने घुन्नेपन और द्रौपदी अपने पक्षपात का खामियाजा चुका रहे हैं। लेकिन कर्ण? वो क्यों? उनके बड़े भाई ने अपने जीवन में ही क्या कम कष्ट पाए थे? देवों ने निर्लिप्त भाव से बताया, 'ये जानते हुए भी कि सभी पांचों पांडवों के वध के लिए दुर्योधन उसी पर निर्भर है, कर्ण ने कुंती को उनके पांच में से चार पुत्रों की जान बख्शने का वचन दे दिया था। वो, अपने मित्र से दगा करने की कीमत चुका रहा है।' उन सबके कष्टों को महसूस करके युधिष्ठिर रोने लगे। तभी देवों ने पूछा, 'अब हम अमरावती वापस चलें?'

युधिष्ठिर ने अपने भाइयों का रूदन सुना, 'नहीं, नहीं, कृपया मत जाइए, आपकी उपस्थिति से हमारा कष्ट घटता है।'
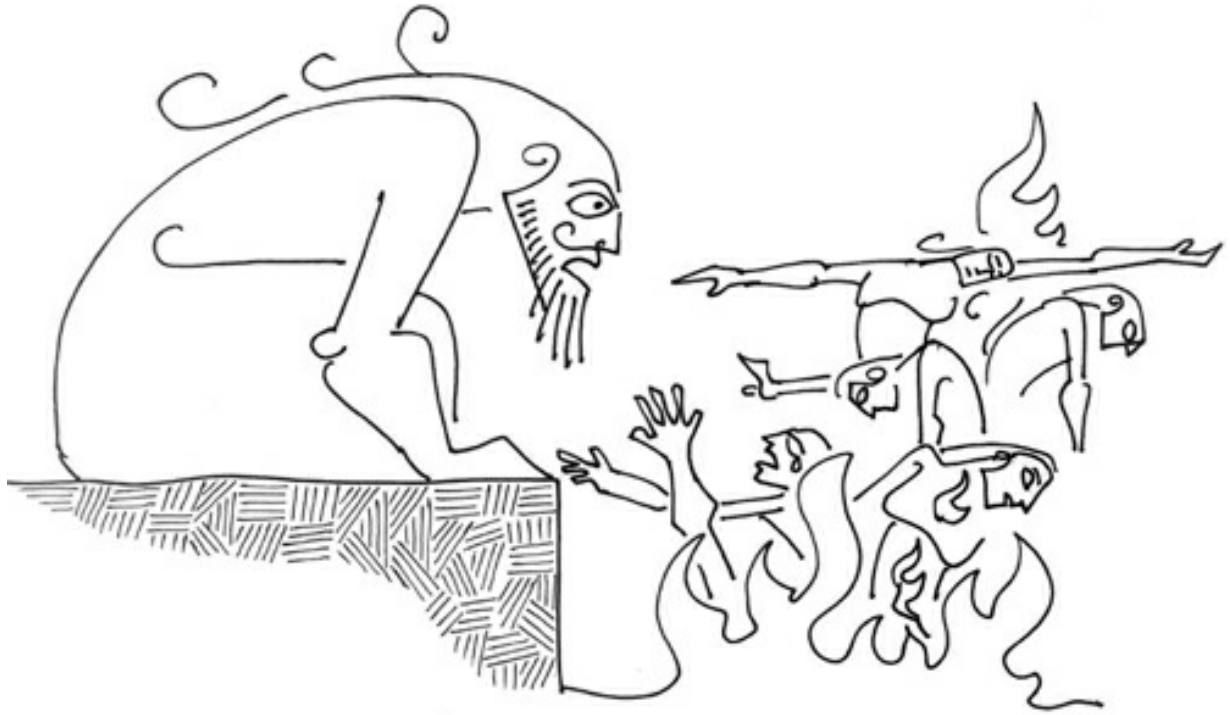
देवताओं ने अधीर होकर पूछा, 'सुनिए, अब हम यहां से चलें?'

युधिष्ठिर को द्रौपदी की याचना सुनाई दी, 'रुक जाइए कृपया।' वह श्रमित, क्लांत, चिंतित और भयभीत प्रतीत हो रही थी।

युधिष्ठिर ठिठके रह गए। उनकी आंखों में आंसू छलक आए। वो अपने परिवार को यहां छोड़कर वापस स्वर्ग कैसे जा सकते थे? उन्होंने निर्णय किया। 'मैं नरक से नहीं जाऊंगा। मैं अपनी पत्नी

और अपने भाइयों के साथ यहीं रहूंगा। मैं उनके साथ कष्ट पा लूंगा। उनके बिना अमरावती जाने से मैं इन्कार करता हूं।'

देव हंसे। हवा में उड़ते हुए, जुगनू के समान टिमटिमाते हुए वे बोले, 'अरे, लेकिन हमने सोचा कि आपने सबकुछ त्याग दिया है।'

युधिष्ठिर ने अचानक बेचैन होकर पूछा, 'आपकी बात का अर्थ?'

'स्वर्ग में प्रविष्ट होते समय क्या आपने सभी सांसारिक संबंधों को तिलांजलि नहीं दे दी थी? अपनी घृणा में आप उतने ही लिप्त हैं जितना कोई श्वान अपने मालिक के प्रति समर्पित होता है।'

युधिष्ठिर ने तर्क किया, 'अमरावती हत्यारे कौरवों के लिए अपने दरवाज़े कैसे खोल सकती है, जबकि हमेशा न्यायोचित व्यवहार से बंधे मेरे परिवार को भीतर आने की अनुमति नहीं दी गई? कृष्ण तक ने कौरवों के विरुद्ध युद्ध किया था!'

देवों ने पूछा, 'क्या आपको ऐसा लग रहा है कि हम पक्षपात कर रहे हैं?'

युधिष्ठिर ने अपने चारों ओर फैली अंधेरी उदासी को देखते हुए तपाक से कहा, 'हां।'

'धर्मपुत्र, आपने अपने राजपाट और वस्त्रों को तो त्याग दिया मगर अपने भीतर बसी घृणा से छुटकारा नहीं पा सके। आपने कुरूक्षेत्र में कौरवों का वध करके उनके राज्य पर 36 साल शासन किया। इसके बावजूद आप उन्हें क्षमा नहीं कर पाए। आप, जिसने अमरावती के रास्ते में मुड़कर अपने भाइयों की ओर देखा तक नहीं, उसे स्वर्ग में कौरव दिखते ही वे सब याद आ गए। प्रेम का ये प्रदर्शन महज प्रतिक्रिया है, प्रतिकार है। युधिष्ठिर, आप क्रोध से मुक्त नहीं हो पाए। आप मित्रों और शत्रुओं में भेद अभी तक कर रहे हैं। आप बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुध लेय से अभी तक बच रहे हैं। तब आप स्वर्ग की वास्तविक प्राप्ति की आशा कैसे कर सकते हैं?'

युधिष्ठिर के सामने अचानक विचित्र दृश्य उपस्थित हुआ। कृष्ण का विराट स्वरूप। आकाशवाणी गूंजी, 'ईश्वर में अवलोकन करो, उन सबका जो कुछ भी अस्तित्ववान है। सब कुछ। हरेक। द्रौपदी और गांधारी। पांडव एवं कौरव। समस्त संभावनाएं। वधिक और वधित।'

युधिष्ठिर उसी क्षण समझ गए कि वो अपने को जितना महान समझते थे, वैसे वे हैं नहीं। वे अपने पूर्वाग्रहों से पार नहीं पा सके। अपने कट्टर शत्रुओं सहित हरेक के लिए जब एकरस करुणा जागती है, तभी अहंकार पर सच्ची जीत प्राप्त होती है। आत्मज्ञान ने युधिष्ठिर को विनम्र बना दिया। वे जमीन पर गिर गए और रोने लगे।

उसके बाद देवों के नेतृत्व में युधिष्ठिर ने गंगा स्नान के लिए गोता लगाया और प्रकाशित, तरोताजा, वास्तव में मोक्षित होकर बाहर आए। उनके भीतर ये ललक जगी कि कौरवों को क्षमा करके उन्हें अपना लें। घृणा धुलकर बह गई थी। 'वे' और 'हम' का भाव विलुप्त हो गया। 'उत्कृष्ट' एवं 'निकृष्ट' की चेतना समाप्त हो गई। सिर्फ करूणा और प्रेम छा गए। सभी एक समान हो गए।

इंद्र ने हर्षनाद किया, 'जय'। देवताओं ने हर्षनाद किया, 'जय', ऋषियों ने उद्घोष किया, 'जय'। क्योंकि युधिष्ठिर ने अंतिम विजय प्राप्त कर ली थी, स्वयं पर विजय। अब वे स्वर्ग से भी ऊपर बसे स्वर्ग में जाएंगे। अब उनका वैकुंठारोहण होगा। वैकुंठ अर्थात विष्णु का वास।

- महागाथा कौरवों पर पांडवों की विजय के साथ नहीं बल्कि, युधिष्ठिर के स्वयं को विजित करने पर समाप्त होती है। यही आध्यात्मिक विजय अथवा जय है। महागाथा का यही अंतिम उद्देश्य है।
- 'जय हो' शुभकामना का प्रतीक है और 'जय हे' भारतीय राष्ट्रगान में शामिल है।
- पुण्य अनेक प्रकार से अर्जित किया जा सकता है। इसे दान, धार्मिक अनुष्ठान, पवित्र नदियों में स्नान अथवा तीर्थस्थलों में मृत्यु प्राप्त करके पाया जा सकता है। सारे पापों का नाश करने और पुण्य देने वाला ऐसा ही तीर्थस्थल कुरुक्षेत्र है। गंगा तट पर बसे तीर्थ काशी का भी यही माहात्म्य है। इसीलिए लोग मृत्यु प्राप्त करने के लिए आज भी काशी में जाकर रहते हैं।
- बाइबल से जुड़ी परंपराओं के विपरीत हिंदुओं में एक से अधिक स्वर्ग होने की मान्यता है। स्वर्ग भी है और वैकुंठ भी है। स्वर्ग तो इंद्र का स्वर्ग है जिसमें सारी कामनाएं पूर्ण होती हैं। वैकुंठ भगवान अर्थात विष्णु के पास वाला स्वर्ग है जहां सारी कामनाओं से मोक्ष मिल जाता है।

उपसंहार

सर्पमेध यज्ञ की समाप्ति
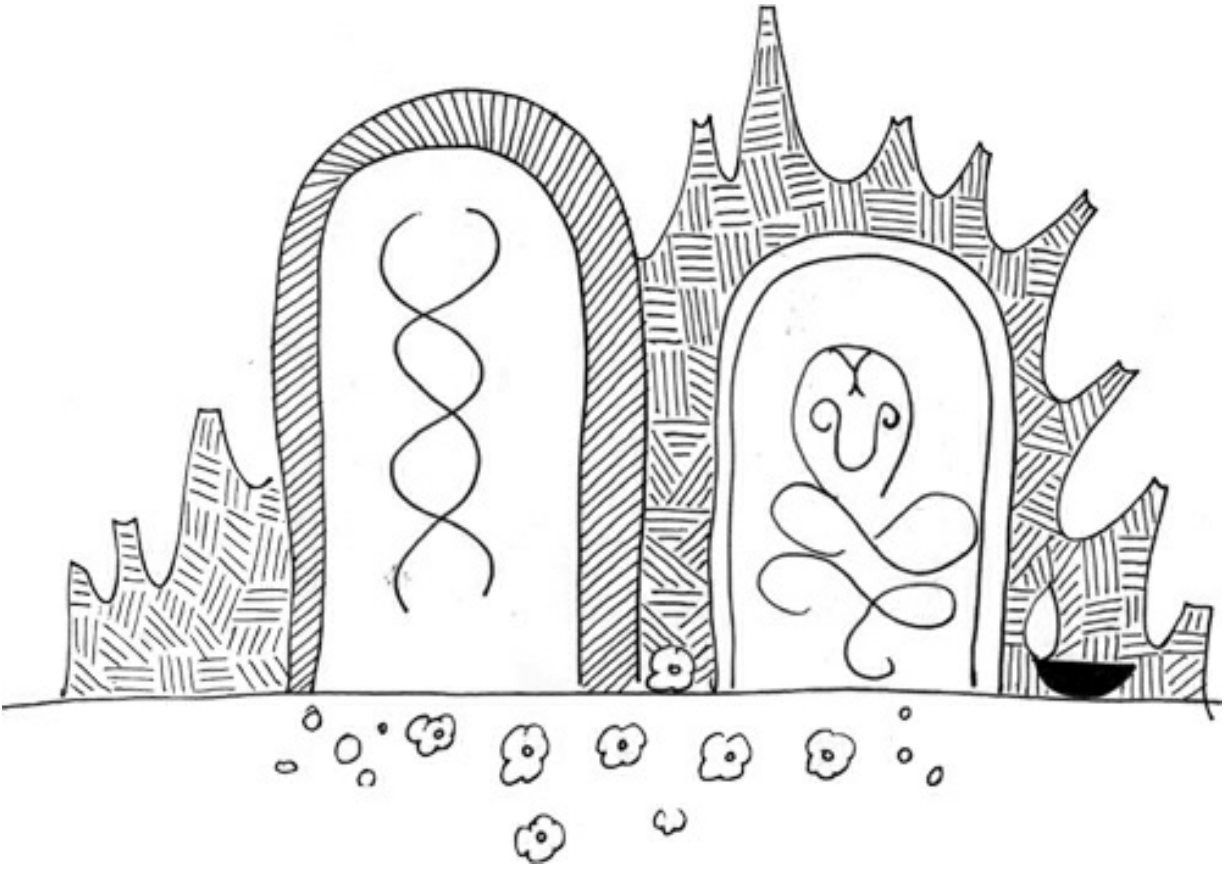
वैशंपायन ने कथा पूरी की। सर्पमेध यज्ञ के अग्निकुंड के ऊपर सर्प अभी तक लटके हुए थे और अपने कर्मकांड को पूरा करने को आतुर ब्राह्मण उसके चारों तरफ विराजमान थे। अग्नि की लपटें अब सिमट कर लौ बराबर रह गई थीं। सभी की निगाहें राजा पर लगी थीं।

जनमेजय ने कहा, 'मैं तो चकरा गया। इस गाथा का नायक कौन है? खलनायक कौन है?'

वैशंपायन बोले, 'हमारे महाराज, हम किसे खलनायक बताएं? दुर्योधन, जिसने सुई की नोंक के बराबर जमीन देने से भी इन्कार कर दिया था? युधिष्ठिर, जो पत्नी और राज्य को भी जुए में हार गए? भीष्म, जिन्होंने महज दृष्टिहीन होने की बिना पर धृतराष्ट्र को राजा नहीं बनने दिया? शांतनु, जिन्होंने अपनी हवस मिटाने के लिए अपने पुत्र का भविष्य बलिदान कर दिया? अथवा ये गांधारी हैं, जिन्होंने अपने पुत्र की तमाम गलतियों की ओर से अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली? अथवा शायद कृष्ण, जिन्होंने लंबा अरसा पहले संसार को पापी राजाओं से मुक्ति दिलाने का भू-देवी को वचन दिया था? आप तय कीजिए कि नायक कौन है और खलनायक कौन है।'

जनमेजय को कोई उत्तर नहीं सूझा। उसने कथा के प्रवाह को प्रभावित करने वाली अनेक शक्तियों को याद किया : वरदान एवं शाप और मनुष्य निर्मित संहिता। गाथा में कोई भी नायक अथवा खलनायक नहीं था, सिर्फ जीवन संघर्ष करते लोग, संकटों का हल ढूंढ़ते, गलतियां करते, गलतियां दोहराते, अनजाने में अथवा अज्ञान में, अपने जीवन को सार्थक और अनुकूल बनाने का प्रयास करते हुए। 'फिर आप इस गाथा को 'जय' क्यों कहते हैं? सच्ची जीत तो है ही नहीं।'

कथावाचक ऋषि ने कहा, 'इस संसार में दो प्रकार की जीत हैं। विजय और जय। विजय भौतिक जीत है, जिसमें कोई पराजित भी होता है। जय आध्यात्मिक जीत है, जिसमें कोई भी पराजित नहीं होता है। कुरूक्षेत्र में विजय तो हुई मगर जय नहीं हुई लेकिन युधिष्ठिर ने अपने क्रोध को विजित करके कौरवों को बिना शर्त क्षमा कर दिया तो उसे जय प्राप्त हो गई। वहीं मेरी कथा पूरी हो गई, इसीलिए इसका ये शीर्षक है।'

'युद्ध में पराजित होने के बावजूद पापी कौरव स्वर्गारोहण कर जाते हैं जबकि विजयी पांडवों को नरक भोगना पड़ता है। ये तो कोई बात न हुई?'

आस्तिक बोला, 'पुण्य अर्जित करने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। पाप अर्जित करने पर नरक भोगना पड़ता है। जीवन पूरा हो जाने पर कर्मों के लेखे में पवित्र भूमि पर पराजित होने से कौरवों के सारे पाप धुल जाते हैं। लेकिन युद्ध में अपने पूर्वाग्रहों से मुक्ति न पा सकने के कारण पांडव पुण्य अर्जित करने से वंचित रह गए। इसलिए एक को स्वर्ग में स्थान मिला और दूसरों को नरक भोगना पड़ा।'

राजा बोले, 'ये उचित नहीं प्रतीत होता।'

आस्तिक ने कहा, 'मेरे महाराज, आपकी दृष्टि सिर्फ एक ही जीवन काल तक सीमित है। स्वर्ग में स्थान स्थायी नहीं है और न ही नरक में स्थान स्थायी है। अंततः पुण्य और पाप पूरे हो जाने पर कौरव नीचे आ जाएंगे और पांडव आरोहित हो जाएंगे। दोनों पुनर्जन्म के चक्र के माध्यम से यात्रा में पुनः शामिल हो जाएंगे। वे फिर जन्म लेंगे और फिर मृत्यु को प्राप्त होंगे। वे फिर से पुण्य अथवा पाप अर्जित करेंगे। उन्हें फिर से या तो स्वर्ग मिलेगा अथवा वे नरक जाएंगे। वे जब तक जागृत नहीं हो जाते, ऐसा बार-बार होता रहेगा।'

'क्या सीखना?'

'जैसे युधिष्ठिर हुए–अस्तित्व का प्रयोजन पुण्य जमा करना नहीं, बल्कि ज्ञान से प्रकाशित होना है। हमें, स्वयं से पूछना है–हम जो कुछ भी करते हैं, वैसा क्यों करते हैं? हम जब उत्तर को हृदयंगम कर लेते हैं तो हम जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते हैं और स्वर्ग के भी ऊपर बसे लोक, वैकुंठ को प्राप्त हो जाते हैं जहां स्थायी शांति है।'

अचानक संदेहास्पद होकर जनमेजय बोले, 'मुझे लगा कि पांडवों ने जो भी किया, धर्म के लिए किया।'

'यदि वैसा सचमुच हुआ होता तो कौरवों पर विजय के साथ-साथ स्वयं पर जय भी प्राप्त हो जाती। कृष्ण के निर्देशन में उन्होंने कौरवों को पराजित अवश्य किया और जंगल के कानून के पालकों को सत्ताच्युत कर दिया। इससे संसार का भला हुआ लेकिन इसका स्वयं पांडवों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने पश्चाताप तो किया मगर जागृत नहीं हुए। वाह्य विजय के साथ-साथ आंतरिक जय नहीं हुई। आध्यात्मिक अंतःदृष्टि के अभाव में पांडव उसी में तुष्ट हो गए और इसीलिए उन्हें नरक भोगना पड़ा।'

जनमेजय ने पूछा, 'वो अंतःदृष्टि क्या थी, जिससे मेरे पूर्वज चूक गए?'

'कि संघर्ष का मूल क्रोध है, क्रोध का मूल भय है और भय का मूल अनास्था है। वो अनास्था जिसने कौरवों को बिगाड़ा, वही पांडवों के मन में भी घर कर गई। उसे निकाल बाहर करना जरूरी था।'

जनमेजय के मन में अर्जुन के सारथि रूप में और युद्ध पूर्व गीता का उपदेश देते कृष्ण की छवि कौंध गई। उसने कृष्ण को ये बोलते सुना, 'यदि मुझमें तुम्हारी आस्था है, पाप और पुण्य कर्मों के लेखे को मानते हो तो तुम कभी स्वयं को अरक्षित नहीं समझोगे।'

जनमेजय के मस्तिष्क में ज्ञान का कमल खिल गया। उसने स्वीकार किया, 'मैं भी अनास्थाग्रस्त हूं। इसीलिए मैं सर्पों से क्रुद्ध और भयभीत हूं। इसीलिए मैं स्वयं को न्याय और प्रतिशोध की दलीलों से भ्रमित कर रहा हूं। तुम ठीक कह रहे हो, इसलिए मेरा ये सर्पमेध अधर्म है।'

आस्तिक मुस्कुराया और वैशंपायन ने संतुष्ट होकर सिर नवाया : राजा ने अंततः अपने पूर्वजों के संचित ज्ञान की विरासत पा ली थी।

परीक्षित के पुत्र, अभिमन्यु के पौत्र और अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय के मुख मंडल पर शांति छा गई। उसने अंततः अपना निर्णय कर डाला। वह बोला, 'शांति।' वह दोबारा बोला, 'शांति।' उसने तीसरी बार दोहराया 'शांति।'

शांति। ये राजा द्वारा सर्प सत्र समाप्त करने का आह्वान था।

आस्तिक के आंसू छलक आए। जनमेजय ने अपने भय को विजित करके क्रोध से मुक्ति पा ली थी। अब और सर्प नहीं मारे जाएंगे। उसने कहा था, 'शांति, शांति, शांति'। वाह्य जगत में शांति नहीं। जब तक मनुष्य अरक्षित है, तब तक शांति स्थापित कैसे होगी? ये आंतरिक शांति स्थापना का आह्वान था।

आइए हम सब आस्थावान बनें। आइए, हम सब शांति का वरण करें- अपने भीतर, अपने संसारों में, और समस्त सृष्टि के लिए।

शांति। शांति। शांति।

- नागों ने भले ही भयभीत और क्रोधित होकर ऐसी हरकत की हो, लेकिन जनमेजय कोई बहाना नहीं कर सकता। मानव होने के नाते उसका मस्तिष्क अधिक गहन है और पाशविक प्रवृत्तियों से मुक्ति पाने की संभावना पर विचार कर सकता है। वही दिव्यता प्राप्ति की यात्रा की शुरुआत है। वही धर्म है।
- महाभारत मुख्यतः युद्ध नहीं, बल्कि संघर्ष के मूल पर केंद्रित है। युद्ध तो दुर्योधन के लालच और युधिष्ठिर द्वारा क्रोध जताने के कारण हुआ। लालच और क्रोध, दोनों का मूल असुरक्षा में निहित है; असुरक्षा दरअसल अपने वास्तविक स्वभाव और हमारे चारों ओर व्याप्त संसार के असली स्वभाव के प्रति नासमझी और अनास्था का परिणाम है।
- वेद कहते हैं जब तक हम जीवन को उसके स्वाभाविक रूप में स्वीकार नहीं करते, जब तक हम परिस्थितियों को नियंत्रित और परिवर्तित का प्रयास करेंगे, तब तक संघर्ष बरकरार रहेगा। ये समझ में आते ही संघर्ष समाप्त हो जाएगा कि लौकिक, भौतिक यथार्थ के पार अलौकिक आध्यात्मिक यथार्थ भी है।
- आस्तिक ये आत्म श्लाघा करता है कि सर्पों का संहार उसी के कारण रुका है। उसका भ्रम तोड़ने के लिए उसके चाचा नागराज वासुकी उसे सरमा से मिलवाते हैं। वो श्वानों की मां थी। उसने बताया कि मेध आरंभ होने पर जनमेजय, उसके भाइयों ने, उसकी संतानों पर पत्थर फेंके थे। उसकी संतानों पर उन्होंने ये निराधार आरोप लगाया कि वे बलि की सामग्री को चाट रहे थे। इससे कुपित होकर सरमा ने उन्हें शाप दिया कि मेध में विघ्न पड़ जाएगा। इसलिए सर्प सत्र आस्तिक के विरोध के कारण नहीं, बल्कि शायद सरमा के शाप से थमा था। इस ब्रह्मांड में कोई भी व्यक्ति क्षण भर के लिए भी श्रेय नहीं ले सकता।
- बंगाल में किसी लोककथा के अनुसार जनमेजय द्वारा व्यास से पूछा गया कि वे उसके पूर्वजों को युद्ध से बचने के लिए समझा क्यों नहीं पाए, व्यास का उत्तर था कि उत्तेजित लोग कभी भी तर्कसम्मत अनुरोध नहीं मानते। अपनी बात का उदाहरण देने के लिए व्यास ने जनमेजय को सलाह दी कि वो अपनी सुंदर नई प्रेयसी से विवाह न करे। जनमेजय ने इसके बावजूद उससे विवाह किया और यौन संक्रमित बीमारी का शिकार बना। राजा को तब जाकर समझ आया कि सलाह पर अमल के मामले में, वह भी अपने पूर्वजों के समान ही था।
- हिंदुओं का हरेक कर्मकांड 'शांति, शांति, शांति' के जप से ही पूर्ण होता है, क्योंकि सारी सृष्टि का अंतिम लक्ष्य शांति प्राप्त करना ही है। ये शांति वाह्य नहीं, बल्कि आंतरिक है। इसका प्रयोजन विश्व को शांतिपूर्ण स्थान बनाना नहीं बल्कि संसार से हमारा शांतिपूर्ण संबंध स्थापित करना है।
- हिंदू ग्रंथों के मध्य, महाभारत 'इतिहास' की श्रेणी में प्रतिपादित है। इतिहास का अर्थ दरअसल पारंपरिक समझ के अनुरूप प्रचलित इतिहास नहीं है। इस इतिहास का अर्थ है 'जीवन का ऐसा वर्णन जैसा वह था और हमेशा रहेगा।'

इतिहास तो अनित्य अथवा 'सनातन' है। इसीलिए ऋषि-मुनि महाभारत को पांचवां वेद, ईश्वर का अंतिम उपदेश मानते हैं।

विचार, जिसे धर्म कहते हैं

समानुभूति
धर्म

जंगल का कानून
जिसके लाठी उसकी भैंस
प्रभुत्व
क्षेत्रीयता
मत्स्य न्याय

शोषण
अधर्म

मृत्यु का भय पशुओं को अपना अस्तित्व बचाने के लिए लड़ने को प्रेरित करता है। सिर्फ सक्षम ही चूंकि जीवित रह पाते हैं, इसलिए 'जिसकी लाठी-उसकी भैंस' कहावत चरितार्थ होती है। शक्ति और चालाकी से अधिकार क्षेत्र स्थापित करके उत्तराधिकार क्रम निश्चित कर दिया जाता है। इस प्रकार जंगल का कानून स्थापित हो जाता है। पशुओं के सामने इसे मानने के अलावा कोई चारा नहीं बचता। लेकिन मनुष्य अवश्य इस कानून को स्वीकार, अवशोषित अथवा रद्द करने में सक्षम हैं।

अपने अपेक्षाकृत व्यापक मस्तिष्क की बदौलत हम ऐसे संसार की कल्पना और स्थापना कर सकते हैं जिसमें स्वयं के पार भी देख सकें, अन्य सबको समाविष्ट कर सकें और सभी को उपयोगी एवं सुरक्षित होने का विश्वास दिला सकें। यदि हम चाहें तो ऐसे समाज की रचना कर सकते हैं जहां शक्तिशाली को अशक्त की परवाह हो और जिसमें अक्षमों को भी फलने-फूलने के लिए संसाधन उपलब्ध कराया जा सके।

दुर्भाग्य से कल्पनाशीलता भय को भी बढ़ा सकती है और हमें अपनी जमीन से इस कदर चिपकने को मजबूर कर सकती है कि हम संसाधनों पर कब्जा करने पर उतारू हो जाएं, अशक्त का शोषण करें और तृप्त होने पर भी भक्षण करते रहें। यही अधर्म है। धर्म यदि हमें अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को विजित करने का मार्ग दिखाता है तो अधर्म हमें पशुओं से भी बदतर बना सकता है। धर्म यदि हमें दिव्यता की ओर प्रवृत्त करता है तो अधर्म हम पर दानवी प्रवृत्तियों को हावी कर सकता है।

युद्ध से पूर्व कौरव भूमि पर अपना कब्जा बरकरार रखने की जिद ठाने रहते हैं। युद्ध के बाद पांडव उदार बनने के लिए हाथ-पांव मारते हैं। इस प्रकार अधर्म सनातन प्रलोभन है, जबकि धर्म सतत जारी रहने वाली प्रक्रिया है, जिससे हमारी मानवता पुष्ट होती है।

आभारोक्ति

- बोधिसत्त्व, जिन्होंने मुझे जय और विजय शब्दों का अंतर समझाया।
- मेरे चालक दीपक सुतार, जो चित्रकार भी हैं, मेरे अनेक चित्रों में शेड भरने करने में वे सहायक रहे।
- रूपा, जिन्होंने मेरे द्वारा लिखित अनेक प्रारूप पढ़े और उन्हीं के भाव-भंगिमा से मैं ये समझ पाया कि क्या चलेगा और क्या नहीं चलेगा।
- इस पुनर्कथ्य को प्रसूत एवं सूचित करने वाली पुस्तकें एवं व्यक्तिः ए. हरींद्रनाथ (महाभारत से संबंधित इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्री), अकबर द ग्रेट (रज्मनामा की पेंटिंग और फारसी अनुवाद), अल्फ हिल्तेबेतेल (द्रौपदी की उपासना संबंधी शोध), भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट (आलोचनात्मक संस्करण), भास (संस्कृत नाटक *उरुभंगम*), बी.आर. चोपड़ा एवं राही मासूम रजा (टेलीविजन सीरियल, *महाभारत*), सी. राजगोपालाचारी (*महाभारत रीटोल्ड*), चित्रा बनर्जी देवाकरूणी (अंग्रेजी उपन्यास *पैलेस ऑफ इल्यूजंस*), धर्मवीर भारती (हिंदी नाटक, *अंधा युग*), गजेंद्र कुमार मित्रई (बंगाली उपन्यास, *पांचजन्य*), इरावती कर्वे (निबंध संग्रह, *युगांत*), ज्यां क्लॉड केरियेरे एवं पीटर ब्रुक्स (फ्रेंच नाटक, *ले महाभारत*), जॉन स्मिथ (अनुवाद, *महाभारत*), के. एम. मुंशी (अंग्रेजी उपन्यास, *कृष्णावतार*), कबि संजय (बंगाली महाभारत), कमला सुब्रमण्यम (*महाभारत रीटोल्ड*), किसाड़ी मोहन गांगुली (संस्कृत महाभारत का अंग्रेजी अनुवाद), कृष्णजी प्रभाकर खाडिलकर (मराठी नाटक, *कीचक वध*), एम. टीवासुदेवन नायर (मलयाली उपन्यास, *सेकेंड टर्न*), म्पु सेध एवं म्पु पानुलु (जावा में प्रचलित महाभारत शीर्षक *काकाविन भारतयुद्ध*), निरानत्त शंकर पणिक्कर (मलयाली में महाभारत, भारतमाला), पेरम देवनार (तमिल महाभारत), प्रदीप भट्टाचार्य (बोलोजी डॉट कॉम में निबंध), प्रतिभा रे (आड़िया उपन्यास, *यज्ञसेनी*), आर. के. नारायण (महाभारत रीटोल्ड), रमासरस्वती (असमिया महाभारत), रामधारी सिंह दिनकर (हिंदी की गाथा कविता *रश्मिरथी*), रमेश मेनन (महाभारत *रीटोल्ड*), रतन थियम (नाट्य प्रस्तुति *चक्रव्यूह*), एस. एल. भैरप्पा (कन्नड़ उपन्यास *पर्व*), सरला दास(आड़िया महाभारत), शिवाजी सावंत (मराठी उपन्यास *मृत्युंजय*), श्याम बेनेगल (हिंदी फिल्म *कलियुग* एवं टलीविजन सीरियल-*भारत एक खोज*), तीजन बाई (पंडवानी गायन), और विलियम बक (महाभारत रीटोल्ड)।

संदर्भ सूची

अभिषेकी, जानकी। *टेल्स एंड टीचिंग्स ऑफ द महाभारत*। मुंबईः भारतीय विद्या भवन, 1998।

भट्टाचार्जी, सुकुमारी। *द इंडियन थियोलॉजी*। नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2000।

कूपे, लॉरेंस। *मिथ*। लंदनःराउटलेज, 1997।

बनर्जी, देबजानी, अनुवाद बिष्णुपद चक्रवर्ती। *द पेंगुइन कंपेनियन टु द महाभारत*। नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2007।

डांगे, सदाशिव अंबादास। *इन्साइक्लोपीडिया ऑफ पुराणिक बिलिफ्स एंड प्रेक्टिसेज*, संस्करण 1-5। नई दिल्ली, नवरंग, 1990।

डेनियलाउ, एलेन। *गॉड्स ऑफ लव एंड एक्स्टेसी: द ट्रेडिशंस ऑफ शिव एंड डायोनिसस*। रोशेस्टर, वैटिंगः इनर ट्रेडिशंस इंटरनेशनल, 1992।

—*हिंदू पोलीथिईज्म*। रोशेस्टर, वैटिंगः इनर ट्रेडिशंस इंटरनेशनल, 1991।

इलियाड, मिर्सिया। *मिस्थ, ड्रीम्ज्, एंड मिस्ट्रीज*। लंदन: कॉलिंस, 1974।

फ्लड, गेविन। *ऐन इंट्रोडक्शन टु हिंदुइज्म*। नई दिल्ली: कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1998।

फ्रॉले, डेविड। *फ्रॉम द रिवर ऑफ हैवन*। नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1992।

हॉले, जे. एस. एवं डी. एम. वुल्फ्फ, संपादक। *द डिवाइन कंसोर्ट*। बोस्टनः बीकन प्रेस, 1982।

हिल्तेबीतल, अल्फ, संपादक। *क्रिमिनल गॉड्स एंड डेमन डिवोटीज*। न्यू यॉर्कः स्टेट युनिवर्सिटी ऑफ न्यू यॉर्क प्रेस, 1989।

हिल्तेबीतल, अल्फ। *कल्ट ऑफ द्रौपदी*। पहला खंड, शिकागोः युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1988।

हॉपकिंस, ई. वाशबर्न। *एपिक मिथोलॉजी*। नई दिल्लीःमोतीलाल बनारसीदास, 1986।

जकिमोविक्ज-शाह, मार्ता। *मेटामॉर्फोसिस एंड इंडियन गॉड्स*। कलकत्ताः सीगल बुक्स, 1988।

जयकर, पुपुल। *द अर्थ मदर*। नई दिल्लीः पेंगुइन बुक्स इंडिया, 1989।

किंस्ले, डेविड। *हिंदू गॉडेसेज*। नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1987।

क्लॉस्टरमायर, क्लॉस के.। *हिंदुइज्मः ए शॉर्त हिस्ट्री*। ऑक्सफोर्डः वन वर्ल्ड पब्लिकेशंस, 2000।

नैपर्ट, जान। *ऐन एंसाइक्लोपिडिया ऑफ मिथ एंड लिजेंड: इंडियन मिथोलॉजी*। नई दिल्लीः हार्पर कोलिंस, 1992।

कोसांबी, दामोदर धर्मानंद। *मिथ एंड रियलिटी*। मुंबईः पॉपुलर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1994।

मणि, वेत्तम। *पुराणिक इन्साइक्लोपीडिया* । नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1996।
मजूमदार, सुबाष। *हू इज हू इन द महाभारत* । मुंबईः भारतीय विद्या भवन, 1988।
मेयर, जॉनसन जेकब। *सेक्सुअल लाइफ इन एंशियंट इंडिया* । नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1989।
ओ'फ्लाहर्टी, वेंडी डोनिगर, अनुवाद। *हिंदू मिथ्स* । नई दिल्लीः पेंगुइन बुक्स इंडिया, 1975।
— *ओरिजिंस ऑफ इविल इन हिंदू मिथेलॉजी* । नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1988।
— *द ऋग्वेदः ऐन एंथोलॉजी* । नई दिल्लीः पेंगुइन बुक्स इंडिया, 1994।
ओ'फ्लाहर्टी, वेंडी डोनिगर। *सेक्सुअल मेटाफर्स एंड ऐनिमल सिंबल्स इन इंडियन मिथेलॉजी* । नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1981।
— *शिव: द इरोटिक एसेटिक* । लंदनः आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1981।
पांडे, राजबली। हिंदू संस्कार्स। नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1969।
पटनायक, देवदत्त। *देवी: ऐन इंट्रोडक्शन* । मुंबईः वकील, फेफर एंड साइमंस, 2000।
— *गॉडेस इन इंडिया: फाइव ऑफ द इटर्नल फेमिनाइन* । रोशेस्टर, वैंटिंगः इनर ट्रेडिशंस इंटरनेशनल, 2000।
— *हनुमानः ऐन इंट्रोडक्शन* । मुंबईः वकील, फेफर एंड साइमंस, 2001।
—*इंडियन मिथोलॉजीः टेल्स, सिंबल्स ऐंड रिचुअल्स ऑफ द हार्ट द इंडियन सबकॉटिनेंट* । रोशेस्टर, वैंटिंगः इनर ट्रेडिशंस इंटरनेशनल, 2003।
— *लक्ष्मी, गॉडेस ऑफ वैल्थ एंड फॉर्चूनः ऐन इंट्रोडक्शन* । मुंबईः वकील, फेफर एंड साइमंस, 2003।
— *मैन हू वाज ए वूमेन एंड अदर क्वीयर टेल्स ऑफ हिंदू लोर* । न्यू यॉक हैरिंगटन पार्क प्रेस, 2001।
— *शिवः ऐन इंट्रोडक्शन* । मुंबईः वकील, फेफर एंड साइमंस, 1997।
— *विष्णुः ऐन इंट्रोडक्शन* । मुंबईः वकील, फेफर एंड साइमंस, 1999।
सेन, माखन लाल। *द रामायण ऑफ वाल्मिकी* । नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल, 1978।
सुब्रमण्यम, कमला। *श्रीमद् भागवतम्* । मुंबईः भारतीय विद्या भवन, 1987।
— *महाभारत* । मुंबईः भारतीय विद्या भवन, 1988।
— *रामायण* । मुंबईः भारतीय विद्या भवन, 1992।
वरदपांडे, एम. एल.। *महाभारत इन पेरफॉर्मेंस* । क्लेरियन बुक्स, 1990।
वॉकर, बेंजामिन। *हिंदू वर्ल्ड-खंड 1 एवं 2* । नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल, 1983।
वाट्सन, डंकन। *द महाभारतः चैप्टर समरी ऑफ द ग्रेट इंडियन एपिक*, मूल 18 खंडों में से पैसेज ढूंढ़ने के लिए सहायक सामग्री के रूप में प्रयुक्त(14 दिसंबर, 1992)। इंटरनेट से 3 अप्रैल, 2007 को डाउनलोड की गई।
विल्किंस, डब्लू. जे.। *हिंदू मिथोलॉलॉजी* । नई दिल्लीः रूपा, 1997।
जिमर, हायनरीश। *मिथ्स एंड सिंबल्स इन इंडियन आर्ट एंड सिविलाइज़ेशन* । नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1990।
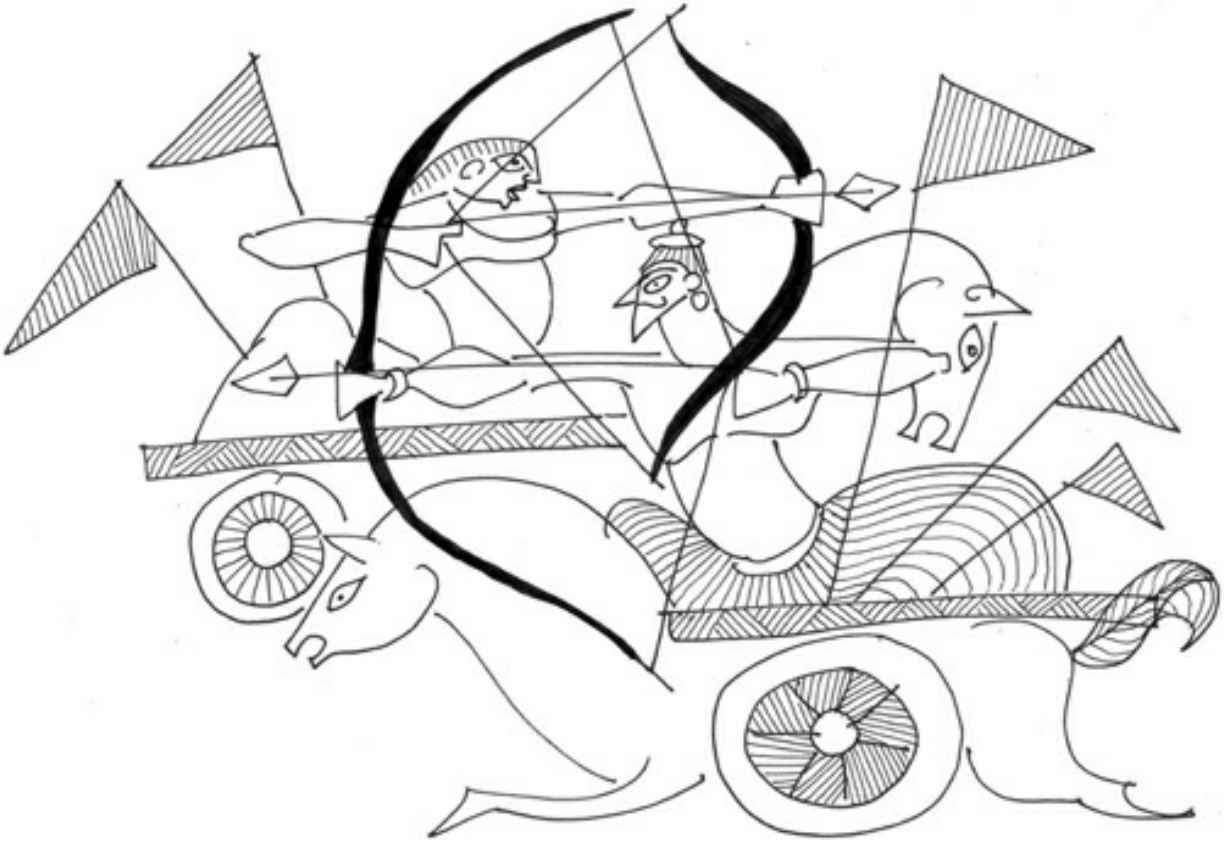
एक शुरुआत

आइए बातचीत शुरु की जाए

पेंगुइन को फोलो कीजिए ट्विटर.कॉम@पेंगुइनइंडिया

हमारे ताज़ातरीन जानकारियों के लिए आइए यूट्यूब.कॉम/पेंगुइनइंडिया

पेंगुइन बुक्स को आप लाईक कर सकते हैं फेसबुक.कॉम/पेंगुइनइंडिया

आप अपने लेखकों के बारे में ज़्यादा जानकारी प्राप्त कर सकते हैं और कई और जानकारियां पाने के लिए आ सकते हैं पेंगुइनबुक्सइंडिया.कॉम

पेंगुइन बुक्स

पेंगुइन बुक्स द्वारा प्रकाशित

पेंगुइन बुक्स इंडिया प्रा. लि., सातवीं मंज़िल, इनफिनिटी टावर सी, डीएलएफ साइबर सिटी, गुड़गांव 122022 हरियाणा, भारत (ए पेंगुइन रैंडम हाउस कंपनी)

पेंगुइन ग्रुप (यू.एस.ए.) इंक., 375 हडसन स्ट्रीट, न्यूयॉर्क 10014, यू.एस.ए.

पेंगुइन ग्रुप (कनाडा), 90 एलिंगटन एवेन्यू, ईस्ट सूइट 700, टोरंटो, ओंटारियो एम4पी 2वाय3 कनाडा

पेंगुइन बुक्स लि., 80 स्ट्रैंड, लंदन डब्ल्यू.सी.2आर. 0.आर.एल., इंग्लैंड

पेंगुइन आयरलैंड, 25 सेंट स्टीफ़ेंस ग्रीन, डबलिन 2, आयरलैंड (ए डिविज़न ऑफ़ पेंगुइन बुक्स लिमिटेड)

पेंगुइन ग्रुप (ऑस्ट्रेलिया), 707 कॉलिंस स्ट्रीट, मेलबर्न, विक्टोरिया 3008, ऑस्ट्रेलिया

पेंगुइन ग्रुप (एन.ज़ेड), 67 अपोलो ड्राइव, रोज़डेल ऑकलैंड 0632, न्यूज़ीलैंड

पेंगुइन बुक्स (साउथ अफ़्रीका) (पीटीवाई) लि., ब्लॉक डी, रोज़बैंक ऑफ़िस पार्क, 181 यान स्मट्स एवेन्यू, पार्कटाउन नॉर्थ, जोहांसबर्ग 2193, साउथ अफ़्रीका

पेंगुइन बुक्स लि., रजिस्टर्ड ऑफ़िस : 80 स्ट्रैंड, लंदन डब्ल्यू.सी2आर. 0आर.एल., इंग्लैंड

अंग्रेज़ी का प्रथम संस्करण : पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2010

हिंदी का प्रथम संस्करण : पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2015

पेंगुइनबुक्सइंडिया.कॉम

आवरण चित्रांकन: देवदत्त पटनायक

आवरण डिज़ाइन: पूजा आहूजा

आईएसबीएन 978-0-143-42294-5

यह डिजिटल संस्करण 2013 में प्रकाशित

ई-आईएसबीएन : 978-9-352-14066-4